श्रीरामचरितमानस



विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥

गोस्वामी तुलसीदास कृत

श्रीरामचरितमानस

टीकाकार

स्वर्गीय डा० शंकरलाल मेहरोत्रा

एम० ए०, एल - एल० बी०, पी - एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बरेली कालेज

सम्पादक

कैलाश भूषण जिन्दल

एम० ए०, एल - एल० बी०, आई० आर० एस० (अ० प्रा०)

एडवोकेट, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद

भाग-२

किताब महल (होलसेल डिवीज़न) प्रा० लि०

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण :१९९१

भाग-२

मुद्रक : किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्रा० लि०,
१५, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

पितातुल्य

स्वर्गीय पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी के

श्री चरणों में

अनुक्रमणिका

तृतीय सोपान
(अरण्य काण्ड)
श्लोक

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम् ।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भव शंकरं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम्।।१।।

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे।।२।।

भावार्थ– धर्मरूपी वृक्ष के मूल (धर्म की रक्षा करने वाले), विवेक-रूपी समुद्र में आनन्द की लहरें उठाने वाले पूर्ण चन्द्र (विवेक जगाने वाले), वैराग्य-रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य (वैराग्य को उत्पन्न करने वाले), पाप-रूपी अंधकार को पूर्णतः मिटा डालने वाले, तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) को हरने वाले, मोह-रूपी बादलों के समूह को छिन्न-भिन्न करने के लिए आकाश से उत्पन्न पवन-स्वरूप, ब्रह्म के वंशज, सब प्रकार के कलंक का नाश करने वाले, महाराज श्री राम के प्रिय शंकर जी की मैं वन्दना करता हूँ।

जिनका शरीर जलयुक्त मेघों के समान सुन्दर, श्यामवर्ण एवम् आनन्दप्रद है, जो सुन्दर पीतवस्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथों में बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है, जिनके कमल के समान विशाल नेत्र हैं और जो मस्तक पर जटा-जूट धारण किये हैं, उन अत्यन्त शोभायमान सीता-लक्ष्मण सहित मार्ग में चलते हुए, आनन्द देने वाले श्री रामचन्द्र जी को मैं भजता हूँ।

टिप्पणी– तुलसीदास 'मानस' के हर काण्ड के प्रारम्भ में संस्कृत श्लोकों द्वारा शिव और राम की वन्दना करते हैं। हर काण्ड में शिव के प्रथक प्रथक गुण बताऐ हैं और राम के भिन्न भिन्न स्वरूप। बालकाण्ड में शिव को विश्वास का स्वरूप दिया है, जिसके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। अयोध्याकाण्ड में शिव के स्वरूप का वर्णन किया है–गोद में हिमाचल सुता पार्वती जी, मस्तक पर गंगा जी, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा, कण्ठ में हलाहल विष और वक्षस्थल पर सर्पराज सुशोभित हैं। अरण्यकाण्ड में शिव को धर्म का रक्षक, विवेक को जगाने वाला, वैराग्य को उत्पन्न करने वाला, पाप को मिटाने वाला, दैहिक-दैविक-भौतिक तापों को हरने वाला और मोह को छिन्न-भिन्न करने वाला बताया है।

इसी प्रकार बालकाण्ड में राम को विष्णु (ईशं हरिम्) का अवतार मान कर पूजा है। अयोध्याकाण्ड में राम का समता भाव उजागर किया गया है–जो राज्याभिषेक के समाचार से न प्रसन्न हुए और न बनवास के दुःख से मलिन हुए। और अरण्यकाण्ड में 'बन-बिहारी' राम की आराधना की है।

एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। श्लोकों में शिव की वन्दना पहले की गई है, फिर राम की। क्यों ? शिव आराध्य के आराध्य हैं। गोस्वामी जी ने शिव के साक्षात् स्वरूप और गुणों का वर्णन करते हुए यह प्रदर्शित कर दिया है कि वे उनके इष्ट श्री रामचन्द्र जी के प्रिय हैं, अतः द्विगुणित पूज्य होने के कारण हार्दिक वन्दना के अधिकारी हैं।

सो०– उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति।।

भावार्थ– हे पार्वती ! श्री राम जी के गुण गूढ़ हैं, पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो भगवान से विमुख हैं और जिनका धर्म में प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ मोह को प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी– पृष्ठ ६३ पर बताया गया है कि रामचरित मानस को प्रमाणिक सिद्ध करने के लिए तुलसी दास जी ने बालकाण्ड के शुरु में ही घोषणा कर दी है कि वह जो कुछ लिखने जा रहे हैं, वह उनकी कोई मौलिक कृति नहीं है। उनके पहले राम-कथा चार महापुरुषों ने सुपात्र श्रोताओं को सुनाई और अन्तिम वक्ता से उन्हें प्राप्त हुई। वक्ता-श्रोता की परिपाटी गोस्वामी जी ने इस प्रकार कही है – राम कथा सबसे पहले शिवजी ने पार्वती और अपने शिष्य कागभुशुण्डी को सुनाई, कागभुशुण्डि ने याज्ञवल्क्य को सुनाई, याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को, अन्त में गुरु नरहरिदास ने अपने शिष्य तुलसीदास को।

यूँ तो समस्त 'मानस' तुलसीदास की लिखी हुई है, फिर भी गोसाई जी निरन्तर स्थान स्थान पर अपने पाठकों को स्मरण कराते जाते हैं कि इस महान ग्रन्थ के मूल वक्ता-श्रोता अन्य महापुरुष हैं। ऊपर के सोरठे में शिव जी पार्वती को सम्बोधित करके कहते हैं कि राम के गुण गूढ़ हैं, जिन्हें समझकर पण्डित वैराग्य प्राप्त करते हैं और मूढ़ संसार के मोहजाल में फस जाते हैं। पारवती के प्रति इस सम्बोधन को सुनकर, हमें एक दम स्मरण आ जाता है कि शिवजी ही अभी तक इस कथा को कह रहे हैं, जिसे उन्होंने बालकाण्ड के मध्य में आरम्भ किया था :

'राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका।।
जनम एक दुई कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी।।'

(देखिए पृष्ठ १६४)

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई।।
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन।।
एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।
सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा।।
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा।।
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा।।
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना।।

भावार्थ– पुरवासियों और भरत जी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियों के मनको भाने वाले प्रभु श्री रामचन्द्र जी के अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो जिन्हें वे बन में कर रहे हैं। एक बार सुन्दर फूल चुनकर श्री राम जी ने अपने हाथों से भाँति भाँति के गहने बनाये और सुन्दर स्फटिक शिला पर बैठे हुए प्रभु ने आदर के साथ वे गहने श्री सीता जी को पहनाये। देवराज इन्द्र का मूर्ख पुत्र जयन्त कौए का रूप धर कर श्री रघुनाथ जी का बल देखना चाहता है। जैसे महान् मन्दबुद्धि चीटी समुद्र की थाह पाना चाहती हो। वह मूढ़ मन्दबुद्धि कारण से (भगवान के बल की परीक्षा करने के लिये)बना हुआ कौआ सीता जी के चरणों में चोंच मार कर भागा। जब रक्त बह चला तब श्री रघुनाथ जी ने जाना, धनुष पर सींक (सरकंडे)का बाण सन्धान किया।

टिप्पणी– ऊपर की दूसरी चौपाई में बहुत मर्यादित शृंगार रस का वर्णन है। फटिक शिला पर सीता जी को बिठाकर राम पुष्पों के आभूषणों से उनका शृंगार कर रहे हैं। इसी समय इन्द्र का पुत्र जयन्त कौवे का रूप धारण करके, सीता जी के अँगूठे में चोंच से प्रहार करता है, और अंगूठे से रूधिर-प्रवाह होने लगता है। जयन्त की कथा का अगली चौपाई में सम्पूर्ण वर्णन है।

दो– अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह।।१।।

भावार्थ– श्री रघुनाथ जी, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनों पर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणों के घर मूर्ख जयन्त ने आकर छल किया।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा।।
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं।।

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥
काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥
मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥
नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥
आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई॥
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥

भावार्थ– मंत्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्म बाण दौड़ा। कौवा भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धर कर पिता इन्द्र के पास गया। पर श्री राम जी का विरोधी जानकर इन्द्र ने उसको नहीं रक्खा। तब वह निराश हो गया, उसके मन में भय उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्वासा ऋषि को चक्र से भय हुआ था (अन्तर्कथा के लिए देखिए पृष्ठ ५९४)। वह ब्रह्म लोक, शिव लोक आदि समस्त लोकों मे थका हुआ और भय-शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा। पर रखना तो दूर रहा, किसी ने उसे बैठने तक के लिये नहीं कहा। श्री राम जी के द्रोही को कौन रख सकता है ? (कागभुशुण्डि जी कहते हैं) "हे गरुड़ ! सुनिये, उसके लिये माता मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान और अमृत विष के समान हो जाता है। मित्र सैकड़ों शत्रुओं की सी करनी करने लगता है। देवनदी गंगा जी उसके लिए वैतरणी (यमपुरी की नदी) हो जाती है।" हे भाई ! सुनिये, जो श्री रघुनाथ जी के विमुख होता है, समस्त जगत उसके लिए अग्नि से भी अधिक गरम (जलने वाला) हो जाता है।

नारद जी ने जयन्त को व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गयी, क्योंकि संतों का चित बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे (समझाकर) तुरन्त श्री राम जी के पास भेज दिया। उसने (जाकर) पुकार कर कहा–'हे शरणागत के हितकारी, मेरी रक्षा कीजिये।' आतुर और भयभीत जयन्त ने आकर श्री राम जी के चरण पकड़ लिये (और कहा–) 'हे दयालु रघुनाथ जी, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मन्द बुद्धि जान नहीं पाया था। अपने किये हुए कर्म से उत्पन्न फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण तक कर आया हूँ।' (शिव जी कहते हैं–) 'हे पार्वती! कृपालु श्री रघुनाथ जी ने उसकी अत्यन्त आर्त्र (दुखभरी) वाणी **सुनकर उसे एक आँख** का काना करके छोड़ दिया।'

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १४ सम पंक्तियां है। इसमें तीन-तीन वक्ता-श्रोता आ गये हैं। इस बात की पुष्टि के लिए तीसरी, चौथी और अन्तिम चौपाई की दूसरी पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं–

मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होई विष सुनु हरिजाना ।।
सब जगु ताहि अनल ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ।।
सुनु कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी ।।

इन पंक्तियों से तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि श्रोता क्रमशः हरियान (गरुड़) भ्राता (जनमानस) और भवानी (पार्वती) हैं। अतएव वक्ता कागभुशुण्डी, तुलसीदास जी स्वयं और शिवजी हुए। यह श्रोता-वक्ता का सम्मिश्रण कोई नई बात नहीं है। बालकाण्ड में १२४- क दोहे में 'बोले बिहसि महेस' और ठीक उसी के नीचे के १२४-ख सोरठे में याज्ञवल्क्य कहते हैं, 'कहऊँ राम गुनगाथा भरद्वाज सादर सुनहुँ' (पृष्ठ १६७)। शिवजी अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाये कि याज्ञवल्क्य बोल पड़े। इस विसंगति के दो समाधान हैं।

तुलसीदास जी पहले ही शिवजी के मुख से कह चुके हैं–

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' (पृष्ठ १८२)

भगवान राम की कथा एक ही है, परन्तु उसे कई लोगों ने कई प्रकार से कहा है। सबसे पहले इस कथा को शिवजी ने पार्वती को सुनाया, फिर कागभुशुण्डि ने गरुड़ को, फिर याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को, फिर नरहरिदास ने तुलसीदास को, और अन्त में तुलसीदास ने जन समुदाय को। तो गोस्वामी जी की दृष्टि में क्या अन्तर पड़ता है कि कथा का किस समय कौन सूत्रधार है–ध्येय तो कथा को आगे बढ़ाना है।

एक ही चौपाई में तीन-तीन श्रोताओं को डालने का एक और अभिप्राय है। उस समय की कविता तुकान्त होती थी। चौपाई के हर चरण में १६ मात्रा होती हैं। मात्राओं को सीमित रखने के लिए उचित शब्दों का चयन करना पड़ता है। हर पद में अन्त्यानुप्रास आवश्यक है। तीसरी चौपाई के 'समाना' से काफ़िया मिलाने के लिए, तुलसीदास जी को 'हरिजाना' रखना ही पड़ा, चौथी चौपाई में 'ताता' से मिलता-जुलता 'भ्राता', और अन्तिम चौपाई में 'बानी' से तुक मिलता 'भवानी'।

पात्र-परिचय– जयन्त देवराज इन्द्र का पुत्र था। पारिजात हरण के समय इन्दपुत्र जयंत और कृष्णपुत्र प्रद्युम्न दोनों में खूब युद्ध हुआ था। इन्द्र पुत्र ही ने जानकी जी को काक का रूप धर, अपनी चोंच से घायल किया था और जब श्री रामचन्द्र जी ने उसके ऊपर ब्रह्मास्त्र चलाया तब वह प्राण बचाने के लिए तीनों लोकों में गया, पर उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सका। तब वह निरुपाय श्री राम जी की शरण में गया। श्री राम जी ने उसको प्राणदंड तो न दिया, किन्तु उसकी एक आंख फोड़ दी।

सो०– कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित ।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपालु रघुबीर सम ।।२।।

भावार्थ– उसने मोह वश द्रोह किया था, इसलिए यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभु ने कृपा करके उसे छोड़ दिया। रघुबीर श्री रामजी के समान कृपालु कौन होगा।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना ।।
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ।।
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई ।।
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ ।।
पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए ।।
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए ।।
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने ।।
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए ।।

भावार्थ– चित्रकूट में बस कर श्री रघुनाथ जी ने बहुत से चरित्र किये, जो कानों को अमृत के समान प्रिय हैं। फिर (कुछ समय पश्चात्) श्री राम जी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गये हैं, इससे बड़ी भीड़ हो जायेगी। (इसलिए) सब मुनियों से विदा लेकर सीता जी सहित दोनों भाई चले। जब प्रभु अत्रि जी के आश्रम मे गये, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गये। शरीर पुलकित हो गया। अत्रि जी उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर श्री राम जी और भी शीघ्रता से चले आये। दण्डवत् करते हुए श्री राम जी को (उठाकर) मुनि ने हृदय से लगा लिया, और प्रेमाश्रुओं के जल से दोनों जनों को (दोनों भाइयों को) नहला दिया। श्री राम जी की छबि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदर पूर्वक अपने आश्रम में ले आये। पूजन करके, सुन्दर बचन कहकर, मुनि ने मूल और फल दिये जो प्रभु के मन को बहुत रुचे।

सो०– प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि ।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत ।।३।।

भावार्थ– प्रभु आसन पर बिराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर, परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

छं०– नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं ।।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं ।।
निकाम श्याम सुंदरं। भवाम्बुनाथ मंदरं ।।
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं ।।

प्रलंब बाहु विक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवं ।।
निषंग चाप सायकं । धरं त्रिलोक नायकं ।।
दिनेश वंश मंडनं । महेश चाप खंडनं ।।
मुनींद्र संत रंजनं । सुरारि वृंद भंजनं ।।

मनोज वैरि बंदितं । अजादि देव सेवितं ।।
विशुद्ध बोध विग्रहं । समस्त दूषणापहं ।।
नमामि इंदिरा पतिं । सुखाकरं सतां गतिं ।।
भजे सशक्ति सानुजं । शची पति प्रियानुजं ।।

त्वदंघ्रि मूल ये नराः । भजंति हीन मत्सराः ।।
पतंति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ।।
विविक्त वासिनः सदा । भजंति मुक्तये मुदा ।।
निरस्य इंद्रियादिकं । प्रयांति ते गतिं स्वकं ।।

तमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वरं विभुं ।।
जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलं ।।
भजामि भाव वल्लभं । कुयोगिनां सुदर्लभं ।।
स्वभक्त कल्प पादपं । समं सुसेव्यमन्वहं ।।

अनूप रूप भूपतिं । नतोऽहमुर्विजा पतिं ।।
प्रसीद में नामामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ।।
पठंति ये स्तवं इदं । नरादरेण ते पदं ।।
व्रजंति नात्र संशयं । त्वदीय भक्ति संयुताः ।।

भावार्थ– हे भक्त वत्सल! हे कृपालु! हे कोमल स्वभाव वाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । निष्काम पुरुषों को परम धाम देने वाले आपके चरण कमलों को मैं भजता हूँ । आप नितान्त सुन्दर, श्याम, संसार रूपी समुद्र को मथने के लिए मंदराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रों वाले और मद आदि दोषों का नाश करने वाले हैं । हे प्रभो ! आपकी लंबी भुजाओं का पराक्रम और आपका **ऐश्वर्य अप्रमेय**(बुद्धि के परे अथवा असीम)है । आप तरकस और धनुष वाण धारण करने वाले तीनों लोकों के स्वामी हैं । सूर्य वंश के भूषण, महादेव जी के धनुष को तोड़ने वाले, मुनिराजों और संतों को आनन्द देने वाले तथा देवताओं

के शत्रु असुरों के समूह का नाश करने वाले हैं। आप कामदेव के शत्रु महादेव जी के द्वारा वन्दित, ब्रह्मा आदि देवताओं से सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषों को नष्ट करने वाले हैं। हे लक्ष्मीपते! हे सुखों के खान और सत्य पुरुषों की एक मात्र गति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे शचीपति (इन्द्र) के प्रिय छोटे भाई (वामन जी) स्वरूप ! शक्ति श्री सीता जी और छोटे भाई लक्ष्मण सहित आपको मैं भजता हूँ। जो मनुष्य मत्सररहित होकर, आप के चरण कमलों का सेवन करते हैं वे तर्क-वितर्क रूपी तरंगों से पूर्ण भवसागर में नहीं गिरते (आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ते)। जो एकान्तवासी पुरुष मुक्ति की आशा से इन्द्रियादि का विग्रह करके प्रसन्नता पूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गति को (अपने स्वरूप को) प्राप्त होते हैं। उन (आप) को जो एक अद्वितीय, अद्भुत, प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय तीनों गुणों से सर्वथा परे (और केवल) अपने स्वरूप में स्थित हैं ; जो भावप्रिय, कुयोगियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तों के लिये कल्प वृक्ष (अर्थात उनकी सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले), सम (वैषम्यरहित) और सुख पूर्वक सेवन करने योग्य हैं, मैं निरन्तर भजता हूँ। हे अतुलनीय सुन्दर ! हे पृथ्वीपति! हे जानकी नाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइये, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरण कमलों की भक्ति दीजिए। जो मनुष्य इस स्तुति को आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्ति से मुक्त होकर आपके परम पद को प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

टिप्पणी– पृष्ठ २ पर स्पष्ट कर दिया गया है कि 'मानस' का हर काण्ड संस्कृत श्लोकों से आरम्भ होता है। इन श्लोकों में शिव और राम की बन्दना है। बालकाण्ड के प्रारम्भ में अन्य देवी-देवताओं की भी बन्दना है। बालकाण्ड में बीच-बीच में कई छन्द आए हैं, जिनमें अवधी में राम की उपासना है। केवल अरण्य काण्ड और उत्तर काण्ड में राम की बन्दना संस्कृत छन्दों द्वारा की गई है।

ऊपर के छन्द में अत्रि ऋषि राम की संस्कृत में बन्दना करते हैं। इस छंद का हिन्दू समाज में आज वह स्थान है जो श्रद्धा राम फुल्लौरी (१८३७-८१) के 'जय जगदीश हरे' का है। दोनों ही स्तुति बड़े चाव से हर मन्दिर और शिवालय में आरती के समय गाई जाती हैं। यह छन्द बहुत सरल भाषा में है। एक प्रकार से राम के अनेक गुणों की पञ्जिका है और हर गुण को एक बचन द्वितीया में कहा गया है। हर विशेषण के अन्त में हलन्त 'म्' का प्रयोग किया गया है।

एक बात ध्यान में और रखने योग्य है। बालकाण्ड के दोहा १८६ के ऊपर के छन्द में राम को 'गोद्विज हितकारी' (पृष्ठ २२६) कहा गया है। राम ने सर्वदा ब्राह्मणों और ऋषि-मुनियों का आदर किया और उनकी रक्षा की। उनसे कभी अपनी उपासना नहीं

करवाई। जब गंगा पार करके राम वाल्मीकि के आश्रम मे आए तो उन्होंने ब्रह्मर्षि से पूछा कि उनके ठहरने के लिए कौन सा स्थान उपयुक्त होगा। वाल्मीकि जी ने तुरन्त उत्तर दिया:

'पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ।।'

(दोहा १२७, पृष्ठ ५१२)

अर्थात्, आपने मुझ से पूछा कि मै कहाँ रहूँ ? परन्तु मैं यह पूछता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिये। फिर वाल्मीकि जी ने कहा कि आप, निरन्तर भक्तों के हृदय में वास करते हैं और फिर विभिन्न प्रकार के भक्तों की सूची दी। और फिर उन्हें चित्रकूट में निवास करने का परामर्श दिया (देखिए पृष्ठ ५१८)। भले ही इस प्रकार वाल्मीकि जी ने राम के गुणों की विवेचना की, परन्तु नतमस्तक होके उनकी पूजा नहीं की।

आश्चर्य है कि जब राम ने चित्रकूट से प्रस्थान करने का निर्णय कर लिया और अत्रि ऋषि से विदा माँगी, तो वह महर्षि राम की स्तुति करने बैठ गए, जबकि उनकी पत्नी अनुसुइया इस छंद के नीचे की चौपाई में सीता को केवल आशीर्वाद और शिक्षा दे रही हैं।

दो०– बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि।।४।।

भावार्थ– मुनि ने (इस प्रकार)विनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा–'हे नाथ! मेरी बुद्धि आपके चरण कमलों को कभी न छोड़े।'

अनसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता।।
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई।।
दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए।।
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी।।
मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।।
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं।।

उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखइ कैसें । भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

भावार्थ– फिर परम शीलवती और विनम्र श्री सीता जी अत्रि जी की पत्नी अनसूय जी के चरण पकड़कर उनसे मिलीं । ऋषि-पत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ । उन्होंने आशि देकर सीता जी को पास बैठाया । और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये, जो नित नये, निर्मल और सुहावने बने रहते हैं । फिर ऋषि पत्नी उनके बहाने मधुर और कोमर वाणी से कुछ स्त्री धर्म बखान कर कहने लगीं – ''हे राजकुमारी ! सुनिये । माता, पिता भाई सभी हित करने वाले हैं, परन्तु यह सब एक सीमा तक ही (फल)देने वाले हैं । परन्त हे जानकी ! पति तो असीम (फल)देने वाला है । वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेव नहीं करती । धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन– ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति भाँति के दुःख पाती है । शरीर, वचन और मन से पति वे चरणों में प्रेम करना, स्त्री के लिये, बस एक ही धर्म है, एक ही ब्रत है और एक ही नियम है । जग में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं । वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि – [illegible] श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बना रहता है कि [illegible] उत्तम पुरुष स्वप्न में [illegible] जगत् में (मेरे पति को छोड़कर) दूसर [illegible] भी नहीं है । मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो (अर्थात् समान अवस्था वालों को वह भाई के रूप में देखती है, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है) । ज़ो धर्म को विचार कर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है वह निकृष्ट (निम्न श्रेणी की) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं । और जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना । पति को धोखा देने वाली स्त्री जो पराये पति से रति करती हैं, वह तो सौ कल्पों तक रौरव नरक में पड़ी रहती हैं। क्षणभर के सुख के लिये जो सौ करोड़ (असंख्य)जन्मों के दुःख को नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी । जो स्त्री छल छोड़ कर पातिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है । किन्तु जो पति के प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी में)विधवा हो जाती है ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १९ विषम पंक्तियाँ हैं। आज कल जब स्त्रियों को ग्राम-पंचायत में ३० प्रतिशत आरक्षण दिया जा रहा है और उनको पुरुषों के समान अधिकार पाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है, अनुसुइया की सीता को दी हुई शिक्षा अपना विशेष महत्व रखती है। हमारी हिन्दू संस्कृति में स्त्री को पुरुष की पूरक शक्ति माना गया है। स्त्री के बिना पुरुष अधूरा रहता है, और पुरुष के बिना स्त्री अधूरी रहती है। बालकाण्ड में दोहा २४६ के नीचे की चौपाई में (पृष्ठ २८५) जब तुलसीदास जी सीता की उपमा सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी से देने बैठे तो उन्होंने तीनों देवियों में कोई न कोई दोष पाया और उन्हें उपयुक्त उपमा नहीं समझा। पार्वती में उन्हे ''अर्धांगिनी''* का दोष दिखायी दिया। जिसे तुलसीदास जी ने दोष समझा, वह वास्तव में न केवल पार्वती का अपितु समस्त नारी जाति का गुण है। शिव जी ने प्रसन्न होकर पार्वती को अपने वामांग पर धारण किया। परम प्रणय के कारण पार्वती शंकर के वामांग में समन्वित हो गई। ऐसी स्थिति में शिव का शरीर आधा पुरुष और आधा नारी का बन गया। इसी कारण उन्हें अर्धनारीश्वर कहा गया।जो पार्वती जी का विशेषण था, वह समस्त विवाहित स्त्रियों की संज्ञा बन गया है। कालिदास ने विवाहित स्त्री को 'गृहिणी सचिव सखी मिथ:'** कहा है, अर्थात् वह अपने पति की स्त्री, सलाहकार और एकान्त की सखी है।

यद्यपि गृह को ही कालिदास ने स्त्री की कर्मभूमि बताया है, आज कल की महँगायी ने स्त्रियों को बाध्य कर दिया है कि आजीविका के लिए दफ्तरों में काम करें। परन्तु इन कार्यरत स्त्रियों का उद्देश्य और लक्ष है कि उन्हें योग्य वर मिले, वह अपना घर बसाऐं और एक सुन्दर बालक की जननी बनें। मातृत्व नारी की पहली और अन्तिम पहचान है। और इसके लिए उसका एक पति होना आवश्यक है। अविवाहित या विधवा स्त्री का समाज में न कोई स्थान था, न है। प्रकृति ने स्त्री को पुरुष से दुर्बल बनाया है। बिना पुरुष के स्त्री अबला और नि:सहाय है। स्त्री की आभा पुरुष की ज्योति से विकसित होती है। Woman shines but in the sunshine of man.

इसलिए अनुसुइया सीता को समझाती हैं कि स्त्री के पूर्ण विकास के लिए पति का होना आवश्यक है। माता-पिता और भाई स्त्री का एक सीमा तक ही हित कर सकते हैं, परन्तु पति असीम फल देने वाला है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना, स्त्री के लिए बस एक ही धर्म है, एक ही व्रत है, एक ही नियम है। जग में चार प्रकार की पतिव्रता हैं–

१- उत्तम पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बना रहता है कि जगत में उसके पति को छोड़कर दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है।

---

* अन्तर्कथा के लिए, देखिए पृष्ठ २८६।

**देखिए रघुवंश, आठवां सर्ग, श्लोक ६७।

२- मध्य पतिव्रता पराये पति को पिता, भाई या पुत्र के रूप में देखती है।

३- निम्न श्रेणी की पतिव्रता धर्म को विचार कर और अपने कुल की मर्यादा समझ कर बची रहती है।

४- अधम स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है।

जो स्त्री पति को धोका देकर परपति से रति करती है, वह तरुण अवस्था में ही विधवा हो जाती है और सौ कल्पों तक रौरव नरक में पड़ी रहती है।

सो०– सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ।।५(क)।।

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ।।५(ख)।।

भावार्थ– स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, परन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पतिव्रता धर्म के कारण ही) आज भी तुलसी जी भगवान को प्रिय हैं और चारो वेद उनका यश गाते हैं। सीता ! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले लेकर स्त्रियां पातिव्रत धर्म का पालन करेंगी। तुम्हें तो श्री राम जी प्राणों के समान प्रिय हैं। यह (पातिव्रत-धर्म की) कथा तो मैं ने संसार के हित के लिये कही है।

टिप्पणी– अनुसुइया, जिन्होंने अपने सतीबल से गंगा को मन्दाकिनी के रूप में चित्रकूट में आहूत किया और ब्रह्मा, विष्णु और महेश को बालक बना दिया,* वह स्वंय स्त्री-जाति को अपने मुख से 'सहज अपावनि' कहें,–उन्हें शोभा नहीं देता। इसी प्रकार तुलसीदास जी ने जगदम्बा पार्वती के मुख से कहलवा दिया : 'जद्यपि जोषिता नहिं अधिकारी' **। फिर शबरी अपने मुख से कहती है : 'अधम ते अधम अधम अति नारी।' और सुन्दर काण्ड के दोहा ५९ के ऊपर की चौपाई में समुद्र कहता है :

'ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।'

अन्त में रावण, मन्दोदरी की सीख न मानकर, कहता है :

'नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।
साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया ।।'

---

* देखिए 'पात्र-परिचय' पृष्ठ ५१८।

** 'स्त्री होने के कारण, मैं वेदों के सिद्धान्त को सुनने की अधिकारी नहीं हूँ।' देखिए बालकाण्ड दोहा १०९ और उसके नीचे की चौपाई, पृष्ठ १५२।

एक ओर जहाँ स्त्री की इतनी घोर निन्दा, वहाँ दूसरी ओर मनुस्मृति में कहा गया है:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलः क्रियाः ।।

अर्थात्, जहाँ नारी पूजी जाती है, वहाँ देवता रमण करते हैं। जहाँ उसकी अवहेलना की जाती है, वहाँ कोई काम सफल नहीं होता।

वैदिक काल से मनुस्मृति की रचना के समय तक स्त्री को जगज्जननी और आदिशक्ति के रूप में पूजा गया है। उसका पतन तो वेदान्त और पुराणों के समय से शुरू हुआ। नारी जागरण, नारी आन्दोलन, नारी मुक्ति संघर्ष के स्वर तो बीसवीं शताब्दी में सुनाई दिए। इसके पहले सैकड़ों वर्षों से पुरुष स्त्री का शोषण करता आ रहा है। स्त्री को उसने केवल अपनी कामक्रीड़ा की वस्तु समझा है। पुरुष-प्रभुत्व (male chauvenism) का अंग्रेजी कबि बायरन ने बहुत सजीव चित्रण किया है :

Man's love is of man's life a thing apart,
It is woman's whole existence; man may range
The court, camp, church, the vessel, and the mart;
Sword, gown, gain, glory, offer in exchange
Pride, fame, ambition, to fill up his heart,
And few there are whom these cannot estrange;
Men have all these resources, we but one,
To love again, and be again undone.*

इस्लामी राज्यों में स्त्रियों को नागरिक अधिकार नहीं है। पर्दे और बुरके में उन्हें बन्द करके रखा जाता है। उन्हें भेंड़-बकरी की तरह क्रय-बिक्रय की वस्तु समझा जाता है। विवाह के समय जो स्त्री को मेहर दिया जाता है, वह उसक मूल्य है। पुरुष चार विवाहित और अनगिनत अविवाहित स्त्रियाँ रख सकता है। विवाहितों से जब मन भर जाए, तलाक दे सकता है। परित्यक्ता को अपने मेहर के अतिरिक्त कोई अधिकार नहीं।

अपनी कमजोरी और कामातुरता पर पर्दा डालने के लिए, जैन दशलक्षण पूजा में ब्रह्मचर्य का महत्व बताते हुए कवि द्यानत राय स्त्री की इस प्रकार निन्दा करते हैं–

---

* Don Juan, Canto I

'कूरे त्रिया के अशुचि तन में, काम रोगी रति करें।
संसार में विषबेल नारी तज गये योगीश्वरा ।।'

तुलसीदास रूढ़ीवादी थे। सुधार और परिवर्तन में उनका विश्वास नहीं था। पुरानी मान्यताओं को चुनौती देने का उन्हें साहस नहीं था। स्त्री का जो स्वरूप संस्कृत शास्त्रों में वर्णित था, वही तुलसीदास ने अपने पाठकों के सामने रखा।

नाजी शासन काल मे गेबल्स सूचना एवम् प्रसारण मन्त्री था। उसका सिद्धान्त था कि झूठ को बार बार दोहराओ और लोग उसे सच मानने लगेंगे। सनातन पंडितों ने यह ही किया। स्त्री को गला फाड़ फाड़कर सुनाते रहे कि रजस्वला होने के कारण और प्रसूत-सूतक के कारण वह अपवित्र है। अतएव अपौरुषेय वेदों को पढ़ने और सुनने की अधिकारी नहीं है और भगवान की मूर्ति का स्पर्श, प्रक्षालन और श्रृंगार नहीं कर सकती। इस प्रकार स्त्री अपनी ही मानसिक रुग्णता से ग्रसित हो गई।

इसी कारण तुलसीदास नारी का नारी से ही अपमान कराते हैं। पार्वती अपने को वेद का अधिकारी नहीं समझतीं, अनुसुइया स्त्री को 'सहज अपावनि' कहती हैं और शबरी 'अधम ते अधम'।

अन्तर्कथा– पातिव्रत का गुणगान करते हुए, अनुसुइया ने तुलसी का उदाहरण दिया। तुलसी की अन्तर्कथा इस प्रकार है –

तुलसी एक गोपी थी। ये गोलोक में राधिका की सहेली थीं। राधा ने इन्हें एक दिन श्री कृष्ण के साथ क्रीड़ा करते देख, शाप दिया कि 'तुम मनुष्य योनि को प्राप्त होओ'। यह शाप सुनकर तुलसी दुखित हुई और श्रीकृष्ण की शरण गई। श्रीकृष्ण ने कहा, 'तुम मनुष्य-जन्म प्राप्त कर तपस्या द्वारा हमारा अंश प्राप्त कर सकोगी।' राधा के शाप से तुलसी ने मर्त्यलोक में राजा धर्मध्वज के औरस और उनकी स्त्री माधवी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। उसका रूप संसार के सभी पदार्थों से अतुलनीय था, इस तरह उसका नाम तुलसी पड़ा। इसने बन में जाकर कठोर तपस्या की। तपस्या के अंत में बर देने के लिए ब्रह्मा वहाँ उपस्थित हुए। तुलसी ने श्रीकृष्ण को पाने के लिए वर माँगा। ब्रह्मा ने कहा, ''सुदामा नामक एक गोप गोकुल में रहता था। वह श्रीकृष्ण के अंग से उत्पन्न हुआ था। वह भी राधा से शंखचूड़ नाम धारण करके पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है। पहले तुम उसको अपना पति बनाओ, बाद में तुमको श्रीकृष्ण भी मिल जायेंगे।'' शंखचूड की उत्पत्ति से देवता गण व्याकुल हो गये। शंखचूड को वर था कि जब तक उसकी स्त्री का सतीत्व नहीं नष्ट होगा, तब तक वह नहीं मारा जायेगा। देवताओं की दुर्दशा देखकर श्रीकृष्ण ने शंखचूड की मूर्ति धारण कर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। शंखचूड भी मारा गया। तुलसी ने अपना सतीत्व नष्ट हुआ जानकर श्रीकृष्ण को शाप दिया कि तुम पाषाण हो जाओ। तुलसी अपने स्वामी का मरना सुनकर नारायण के पैरों पर गिर पड़ी। तब नारायण ने कहा–'तुम्हारा शरीर गंडकी नदी हो और तुम्हारे केशों से तुलसी नामक वृक्ष उत्पन्न हो, तुम लक्ष्मी के समान हमारी प्रियतमा होओगी।'

सुनि जानकीं परम सुखु पावा । सादर तासु चरन सिरु नावा ॥
तब मुनि तन कह कृपानिधाना । आयसु होइ जाउँ बन आना ॥
संतत मो पर कृपा करेहू । सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी । सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी ॥
जासु कृपा अज सिव सनकादी । चहत सकल परमारथ बादी ॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे । दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥
अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुम्हहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥
केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल बह पुलक सरीरा ॥

भावार्थ– जानकी जी ने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणों में सिर नवाया । तब कृपा की खान श्री रामजी ने मुनि से कहा–'आज्ञा हो तो अब दूसरे वन में जाऊँ। मुझ पर निरन्तर कृपा करते रहियेगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा।' धर्म धुरन्धर प्रभु श्री रामजी के वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम पूर्वक बोले–'ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थ वादी जिसकी कृपा चाहते हैं, हे रामजी! आप वही निष्काम पुरुषो के भी प्रिय और दीनों के बन्धु भगवान हैं, जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं । अब मैंने लक्ष्मी जी की चतुराई समझी जिन्होंन सब देवताओं को छोड़कर आपको ही भजा । जिसके समान (सब बातों में)अत्यंन्त बड़ा और कोई नहीं है उसका शील भला ऐसा क्यों न होगा? मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी ! आप अब जाइये । हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं, आप ही कहिये ।' ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे । मुनि के नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का)जल बह रहा है और शरीर पुलकित है ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १० सम पंक्तियाँ है । अत्रि-ऋषि राम से कहते हैं कि वह ब्रह्मा, शिव, सनकादि निष्काम पुरुषों के भी प्रिय हैं । सनक तो ब्रह्मा के स्वयं मानस पुत्र हैं (देखिए पृष्ठ १६९)।

छं०– तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ।।
जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई ।।

भावार्थ– मुनि अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं, उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों को श्री राम जी के मुख-कमल में लगाये हुए है । (मन में विचार रहे हैं कि)मैंने ऐसे कौन से जप-

तप किये, जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियों से परे प्रभु के दर्शन पाये। जप, योग और धर्म समूह से मनुष्य अनुपम भक्ति को पाता है। श्री रघुबीर के पवित्र चरित्र को तुलसीदास रात दिन गाता है।

दो०— कलिमल समन दमन मन राम सुजसु सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल ।।६(क)।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी का सुन्दर यश कलियुग के पापों का नाश करने वाला, मन को दमन करने वाला और सुख का मूल है। जो लोग इसे आदर पूर्वक सुनते हैं, उन पर श्री राम जी प्रसन्न रहते हैं।

सो०— कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर ।।६(ख)।।

भावार्थ— यह कठिन कलिकाल पापों का ख़ज़ाना है, इसमें न धर्म है, न ज्ञान है, और न योग तथा जप ही है। इसमें जो लोग सब भरोसों को छोड़कर श्री राम जी को ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं।

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ।।
आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें ।।
उभय बीच श्री सोहई कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ।।
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा ।।
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ।।
मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता ।।
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा ।।
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा ।।

भावार्थ— मुनि के चरण कमलों मे सिर नवाकर, मनुष्य और मुनियों के स्वामी श्री राम जी वन को चले। आगे श्री राम जी हैं, और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मण जी हैं। दोनों ही मुनियों का सुन्दर वेष बनाये अत्यन्त सुशोभित हैं। दोनों के बीच में श्री जानकी जी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो। नदी, बन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामीको पहचान कर सुन्दर रास्ता दे देते हैं। जहाँ जहाँ देव श्री रघुनाथ जी जाते हैं, वहाँ वहाँ बादल आकाश में छाया करते जाते हैं। रास्ते में जाते हुए, विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्री रघुनाथ जी ने उसे मार डाला। (श्री रामजी के हाथ से मरते ही) उसने तुरन्त सुन्दर दिव्य रूप प्राप्त कर लिया। दुःखी देखकर प्रभु ने उसे अपने परम धाम को भेज दिया। फिर वे सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मण जी और सीता जी के साथ वहाँ आये जहाँ मुनि शरभंग जी थे।

पात्र परिचय– ऊपर की चौपाई में दो नए व्यक्तियों का नाम आया है–विराध और शरभंग।

(१) विराध– यह एक राक्षस विशेष था। श्री रामचन्द्र ने वनवास के समय शरभंग के आश्रम में जाते हुए, इसको मार कर, परमगति दी थी।

(२) शरभंग– ये महर्षि दक्षिण में रहते थे। ये उन महर्षियों में से एक हैं जिन लोगों ने अरण्यानी परिवृत दक्षिण देश में आर्य सभ्यता का विस्तार किया था। रामागमन का समाचार मिलने पर यह ब्रह्मलोक जाते जाते रुक गए। राम के दर्शन करने के बाद इन्होंने योगाग्नि प्रज्वतिल कर उसमे अपने शरीर को भस्म कर दिया और बैकुण्ठ को चले गए।

दो०– देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग।।७।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी का मुख-कमल देखकर मुनि श्रेष्ठ के नेत्र रूपी भौंरे अत्यन्त आदरपूर्वक उनका मकरन्द रस पान कर रहे हैं। शरभंग जी का जन्म धन्य है।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला।।
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा।।
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।।
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना।।
सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा।।
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी।।
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।।
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा।।

भावार्थ– मुनि ने कहा–'हे कृपालु रघुबीर! हे शंकर जी के मनरूपी मानसरोवर के राजहंस! मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था। इतने में सुना कि श्री रामचन्द्र जी वन में आयेंगे। तब से मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब आज प्रभु को देखकर मेरी छाती शीतल हो गयी। हे नाथ! मैं साधनों से हीन हूँ। आपने अपना दीन सेवक जान कर मुझ पर कृपा की है। हे देव! यह कुछ मुझ पर आपका एहसान नहीं है। हे भक्त मन-चोर! ऐसा करके आपने अपने प्रण की ही रक्षा की है। अब इस दीन के कल्याण के लिए तब तक यहाँ ठहरिये जब तक मैं शरीर छोड़कर आपसे (आपके धाम में) न मिलूँ।' जितने भी योग, यज्ञ, तप, व्रत, मुनि ने किये थे सब प्रभु को समर्पण करके बदले में भक्ति का वरदान ले लिया। इस प्रकार (दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके) फिर चिता रचकर, मुनि शरभंग जी हृदय से सब आसक्ति छोड़कर उस पर जा बैठे।

दो०– सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम ।।८।।

भावार्थ– 'नीले मेघ के समान श्याम शरीर वाले सगुनरूप श्री रामजी, सीता जी और लक्ष्मण जी सहित प्रभु (आप)निरन्तर मेरे हृदय में निवास कीजिए ।'

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा ।।
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ।।
रिषि निकाय मुनिबर गति देखी । सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी ।।
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा । जयति प्रनत हित करुना कंदा ।।
पुनि रघुनाथ चले बन आगे । मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे ।।
अस्थि समूह देखि रघुराया । पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ।।
जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी । सबदरसी तुम्ह अंतरजामी ।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए । सुनि रघुबीर नयन जल छाए ।।

भावार्थ– ऐसा कह कर शरभंग जीने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और श्री रामचन्द्र जी की कृपा से बैकुण्ठ को चले गये । मुनि भगवान में लीन इसलिए नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्ति का वर ले लिया था । ऋषि समूह शरभंग जी की यह (दुर्लभ)गति देखकर अपने हृदय में विशेष रूप से सुखी हुए । समस्त मुनिवृन्द श्री रामचन्द्र जी की स्तुति कर रहे हैं (और कर रहे हैं) 'शरणागत हितकारी करुणा कन्द प्रभु की जय हो ' । फिर श्री रघुनाथ जी आगे वन में चले । श्रेष्ठ मुनियों के बहुत से समूह उनके साथ हो लिए । हड्डियों का ढेर देखकर श्री रघुनाथ जी को बड़ी दया आयी । उन्होंने मुनियों से पूछा। (मुनियों ने कहा)–'हे स्वामी ! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) हैं और अन्तर्यामी (सब के हृदय को जानने वाले)हैं । जानते हुए भी (अनजान की तरह) हमसे कैसे पूछ रहे हैं ? राक्षसों के दलों ने सब मुनियों को खा डाला है । (ये उन्हीं की हड्डियों के ढेर हैं)।' यह सुनते ही श्रीरघुबीर जी के नेत्रों में जल छा गया ।

टिप्पणी–'भेद-भक्ति' का अर्थ है कि भक्त और भगवान में भेद रहना चाहिये । दोनों का एकाकीकारण नहीं होना चाहिए । मुनि शरभंग भगवान में लीन इस कारण से नहीं हुए क्योंकि उन्होंने पहले ही भेद-भक्ति का वरदान पा लिया था और इसी कारण वह ब्रह्मलोक भी जाते जाते रुक गए ।

दो०– निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।।९।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी ने भुजा उठाकर प्रण किया कि 'मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूँगा।' फिर समस्त मुनियों के आश्रम में जा जाकर (दर्शन एवं सम्भाषण का) सुख दिया।

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना ॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥
प्रभु आगवनु श्रवनु सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा ॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया ॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं ॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की ॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ॥
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए ॥
मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यानजनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ॥
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई ॥
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥
राम बदनु बिलोकु मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा ॥

भावार्थ– मुनि अगस्त्य जी के एक सुतीक्षण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे। उनकी भगवान में प्रीति थी। वे मन, वचन और कर्म से श्री राम जी के चरणों के सेवक थे। उन्हें स्वप्न में भी किसी दूसरे देवता का भरोसा नहीं था। उन्होंने ज्योंहि प्रभु जी का आगमन कानों से सुन पाया, त्योंहि भाँति-भाँति के मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़े चले।

'हे विधाता! क्या दीन बन्धु श्री रघुनाथ जी मुझ जैसे दुष्ट पर भी दया करेंगे। क्या स्वामी श्री राम जी छोटे भाई लक्ष्मण सहित मुझ से अपने सेवक की तरह मिलेंगे ? मेरे हृदय में दृढ़ विश्वास नहीं होता। क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है। मैंने न तो सत्संग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किये हैं और न प्रभु के चरण कमलों में मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ दया के भण्डार प्रभु की एक बान है कि जिसे किसी दूसरे का सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है। (भगवान की इस बात का स्मरण आते ही मुनि आनन्द मग्न होकर मन-ही मन कहने लगे) अहा! भव बन्धन से छुड़ाने वाले प्रभु के मुखारबिन्द को देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे।' (शिव जी कहते हैं—)हे भवानी ! ज्ञानी मुनि प्रेम में पूर्ण रूप से निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती। उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि)और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ —इसका भी ज्ञान नहीं है। वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी प्रभु के गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं। मुनि ने प्रगाढ़ प्रेमभक्ति प्राप्त कर ली। प्रभु (श्री राम जी)वृक्ष की आड़ में छिपकर (भक्त की प्रेमोन्मत्त दशा)देख रहे हैं। मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भवभय को हरने वाले श्री रघुनाथ जी मुनि के हृदय में प्रकट हो गये। (हृदय में प्रभु के दर्शन पाकर)मुनि बीच रास्ते में अचल (स्थिर)होकर बैठ गये। उनका शरीर रोमाञ्च से कटहल के फल के समान (कण्टकित) हो गया। तब श्री रघुनाथ जी उनके पास चले आये और अपने भक्त की प्रेम दशा देखकर मन में बहुत प्रसन्न हुए। श्री राम जी ने मुनि को बहुत प्रकार से जगाया पर मुनि नहीं जागे। क्योंकि उन्हें प्रभु के ध्यान का सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्री रामजी ने अपने राज्य-रूप को छिपा लिया और उनके हृदय में चतुर्भुज रूप प्रकट किया। तब (अपने इष्ट-स्वरूप के अन्तर्धान होते ही) मुनि ऐसे व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर)सर्प मणि केबिना व्याकुल हो जाते है। मुनि ने अपने सामने सीता जी और लक्ष्मण जी सहित श्याम सुन्दर विग्रह सुखधाम श्री रामचन्द्र जी को देखा। प्रेम में मग्न हुये वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठी की तरह गिरकर श्री रामचन्द्र जी के चरणों में लग गये। श्री रामचन्द्र जी ने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़ कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से हृदय से लगा रक्खा। कृपालु श्री रामचन्द्र जी मुनि से मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानों सोने के वृक्ष से तमाल का वृक्ष गले लगकर मिल रहा हो। मुनि निस्तब्ध खड़े हुए (टकटकी लगाकर)श्री रामचन्द्र जी का मुख देख रहे हैं। मानों चित्र में लिखकर बनाये गये हों।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई विशेष लम्बी है। इसकी २४ सम पंक्तियों में तुलसीदास जी ने सुतीक्षण की कथा कही है। सुतीक्षण अगस्त्य ऋषि के शिष्य थे (अगस्त्य की अन्तर्कथा के लिये देखिए पृष्ठ १२-१३)। यह राम के अनन्य भक्त थे। जब उन्हे श्री राम के दर्शन हुए, तो उन्होंने राम को आत्मसात कर लिया और ध्यानस्थ हो गए। जब राम उनको ध्यानमुद्रा से जगाने मे सफल न हुए, तो उन्होंने अपने चतुर्भुज विराट स्वरूप को उनके (सुतीक्षण के)हृदय में प्रविष्ट कर दिया। इससे सुतीक्षण बहुत उद्विग्न हो गए और उनका ध्यान टूट गया। ध्यान टूटते ही उन्हें श्री राम के वास्तविक स्वरूप का दर्शन हुआ।

दो०— तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार ।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार ।।१०।।

भावार्थ— तब मुनि ने हृदय में धीरज धरकर बार-बार चरणों को स्पर्श किया। फिर प्रभु को अपने आश्रम में लाकर अनेक प्रकार से उनकी पूजा की।

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी ।।
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी ।।
श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं ।।
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं ।।
मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः ।।
निशिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः ।।
अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं ।।
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं ।।
संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः ।।
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः ।।
निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ।।
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं ।।
भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ।।
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः ।।
अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलि मल विपुल विभंजन नामः ।।
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः। संतत शं तनोतु मम रामः ।।
जदपि बिरजन ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयँ निरंतर बासी ।।
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी ।।
जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी ।।
जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना ।।
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ।।
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए ।।
परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही ।।
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा ।।
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई ।।

अबिरल भगति बिरति बिग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥
प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥

भावार्थ– मुनि कहने लगे–''हे प्रभो मेरी विनती सुनिये, मैं किस प्रकार से आपकी स्तुति करूँ ? आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है । जैसे सूर्य के सामने जुगनू का उजाला । हे नीलकमल की माला के समान श्याम शरीर वाले, हे जटाओं का मुकुट और मुनियों के (वल्कल)वस्त्र पहने हुए, हाथों में धनुष बाण लिये तथा कमर में तरकस कसे हुए श्री रघुवीर जी! मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ । जो मोह रूपी घने बन को जलाने के लिये अग्नि हैं, संतरूपी कमलों के वन को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य हैं, राक्षसरूपी हाथियों के समूह को पछाड़ने के लिए सिंह हैं और भव (आवागमन)रूपी पक्षी के मारने के लिये बाजरूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें । लाल कमल के समान नेत्र और सुन्दर वेष वाले सीता जी के नेत्ररूपी चकोर के चन्द्रमा, शिवजी के हृदय रूपी मानसरोवर के बालहंस, विशाल हृदय और भुजावाले श्री रामचन्द्र जी! मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ । जो संशय रूपी सर्प को ग्रसने के लिये गरुड़ हैं, अत्यन्त कठोर तर्क से उत्पन्न होने वाले विषाद का नाश करने वाले हैं, आवागमन को मिटाने वाले और देवताओं के समूह को आनन्द देने वाले हैं, वे कृपा के समुद्र श्री राम जी सदा हमारी रक्षा करें । हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप ! हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत! हे अनुपम, निर्मल, सम्पूर्ण, दोषरहित, अनन्त एवं पृथ्वी का भार उतारने वाले श्री रामचन्द्र जी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । जो भक्तों के लिए कल्प वृक्ष के बगीचे हैं; क्रोध, लोभ, मद और काम को डराने वाले हैं, अत्यन्त ही चतुर और संसार रूपी समुद्र से तरने के लिये सेतुरूप हैं, वे सूर्यकुल की ध्वजा श्री राम जी सदा मेरी रक्षा करें । जिनकी भुजाओं का प्रताप अतुलनीय है, जो बल के धाम हैं, जिनका नाम कलियुग के बड़े भारी पापों को नाश करने वाला है, जो धर्म के कवच (रक्षक)हैं और जिनके गुण समूह आनन्द देने वाले हैं, वे श्री रामजी निरन्तर मेरे कल्याण का विस्तार करें । यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सब के हृदय में निरन्तर निवास करने वाले हैं, तदपि हे खरारि श्री राम जी ! लक्ष्मण जी और सीता जी सहित वन में विचरने वाले आप इसी रूप में मेरे हृदय में निवास कीजिये । हे स्वामी ! आपको जो सगुण और अन्तर्यामी जानते हों, वह जाना करें । मेरे हृदय को तो कोसलपति कमलनयन श्री राम जी ही अपना घर बनावें । ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्री रघुनाथ जी मेरे स्वामी हैं ।'' मुनि के वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी मन में बहुत प्रसन्न हुए । तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया (और कहा–) 'हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो । जो वर माँगों वहीं मैं तुम्हे दूँ ।' मुनि सुतीक्षण जी ने कहा–'मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं । मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सच है (क्या माँगू, क्या नहीं)। हे रघुनाथ जी! हे दीनों को सुख देने वाले ! आपको जो अच्छा लगे मुझे वही

दीजिये।' (श्री रामचन्द्र जी ने कहा–) 'हे मुनि! तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञान के विधान हो जाओ।' (तब मुनि बोले) 'प्रभु ने जो वरदान दिया वह तो मैने पा लिया। अब मुझे जो अच्छा लगता है वह दीजिये।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में २७ विषम पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ ७०६ पर बताया गया है कि दोहा ३ के नीचे के छन्द में अत्रि ऋषि ने राम की संस्कृत में वन्दना की है। राम के हर गुण को एक वचन द्वितिया में कहा गया है। हर विशेषण के अन्त में हलन्त 'म्' का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अगस्त्य के शिष्य सुतीक्षण ने भी राम की स्तुति की। पर दोनों स्तुतियों में भेद है। सुतीक्षण कभी प्रथमा (विसर्ग) और कभी द्वितिया (अनुस्वार) का प्रयोग करते हैं। जब भगवान राम की केवल वन्दना करते हैं, तो द्वितिया का प्रयोग करते हैं। जब सांसारिक पाप और ताप से अपनी भगवान से रक्षा करवाना चाहते हैं तो प्रथमा का प्रयोग करते हैं। एक पंक्ति में 'वसतु मनसि मम' का प्रयोग किया है –मेरे हृदय में वास करो–यह शुद्ध संस्कृत वाक्य है। पहली दो पंक्तियाँ और अन्तिम नौ पंक्तियाँ अवधी में हैं और उनमें कोई संस्कृत का पुट नहीं है। इस प्रकार यह चौपाई संस्कृत- मिश्रित- अवधी खिचड़ी भाषा में है।

दो०– अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ॥११॥

भावार्थ– हे प्रभो! श्री रामचन्द्र जी, छोटे भाई लक्ष्मण जी और सीता जी सहित, धनुष बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदय रूपी आकाश में चन्द्रमा की भांति सदा निवास कीजिए।'

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रम आएँ॥
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहसे द्वौ भाई॥
पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुरु पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥
सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥

पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा । मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा ॥
जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा । हरषे सब बिलोकि सुखकंदा ॥

भावार्थ— 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मी निवास श्री रामचन्द्र जी हर्षित होकर अगस्त ऋषि के पास चले । (तब सुतीक्षण बोले) ''गुरुजी (अगस्त जी) का दर्शन पाये और इसी आश्रम में आये मुझे बहुत दिन हो गये । अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरु जी के पास चलता हूँ । इसमें हे नाथ ! आप पर मेरा कोई एहसान नहीं है ।'' मुनि की चतुरता देखकर कृपा के भण्डार श्री रामचन्द्र जी ने उनको साथ ले लिया और दोनों भाई हँसने लगे । रास्ते में अपनी अनुपम भक्ति का वर्णन करते हुए, देवताओं के राज राजेश्वर श्री रामचन्द्र जी अगस्त मुनि के आश्रम में पहुँचे । सुतीक्षण जी तुरन्त ही गुरु (अगस्त जी) के पास गये और दण्डवत करके ऐसा कहने लगे– 'हे नाथ! कौशलपति दशरथ जी के कुमार जगदाधार श्री रामचन्द्र जी, छोटे भाई (लक्ष्मण) और सीता जी सहित आप से मिलने आये हैं, जिनका हे देव ! आप रात-दिन जप करते रहते हैं ।' ज्ञानी मुनि ने आदर पूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसन पर बैठाया । फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके कहा 'मेरे समान भाग्यवान और दूसरा कोई नहीं है ।' वहाँ जहाँ तक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनन्दकन्द श्री रामचन्द्र जी के दर्शन करके हर्षित हो गये ।

टिप्पणी – ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं । सुतीक्षण राम की स्तुति करने के बाद (पृष्ठ ७१९), उनको अपने गुरु अगस्त्य ऋषि के पास ले गया ।

दो०– मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर ।
सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर ।।१२।।

भावार्थ— मुनियों के समूह में श्री रामचन्द्र जी सब की ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को श्री राम जी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखलाई देते हैं, और सब मुनि टकटकी लगाये उनके मुख को देख रहे हैं)। ऐसा ज्ञात होता है मानो चकोरों का समुदाय शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा की ओर देख रहा हो ।

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं । तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ । ताते तात न कहि समुझायउँ ॥
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥
तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी । जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥

जीव चराचर जंतु समाना । भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फल भच्छक कठिन कराला । तव भयँ डरत सदा सोउ काला ॥
ते तुम्ह सकल लोकपति साईं । पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं ॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता । बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता ॥
अबिरल भगति बिरति सतसंगा । चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता । अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता ॥
अस तव रूप बखानउँ जानउँ । फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई । तातें मोहि पूँछेहु रघुराई ॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पंचबटी तेहि नाऊँ ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू । उग्र साप मुनिबर कर हरहू ॥
बास करहु तहँ रघुकुल राया । कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयसु पाई । तुरतहिं पंचबटी निअराई ॥

भावार्थ-- श्री रघुबीर जी ने मुनि से कहा--'हे प्रभो! आपसे तो कुछ छिपाव है नहीं, मैं जिस कारण से आया हूँ वह आप जानते ही हैं । इसी से हे तात ! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा । हे प्रभो ! अब आप मुझे वही मन्त्र (सलाह) दीजिये, जिस प्रकार मैं मुनियों के द्रोही राक्षसों को मारूं ।' प्रभु की वाणी सुनकर मुनि मुसकराये और बोले--''हे नाथ ! आपने क्या समझकर मुझ से पूछा है । हे पापनाशन! मैं तो आपके ही भजन के प्रभाव से आपकी कुछ थोड़ी सी महिमा जानता हूँ । आपकी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है, अनेकों ब्रह्माण्डों के समूह उसके फल हैं । चर और अचर जीव गूलर के फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे जन्तुओं के समान उन ब्रह्माण्ड रूपी फलों के भीतर बसते हैं और वे (अपने उस छोटे से जगत के सिवा)दूसरा कुछ नहीं जानते । उन फलों का भक्षण करने वाला कठिन और कराल काल है । वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है । वही आप समस्त लोकों के स्वामी होकर मुझ से मनुष्य की तरह पूछ रहे हैं । हे कृपा के धाम ! मैं तो यह वर मांगता हूं कि आप श्री सीता जी और छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित मेरे हृदय में सदा निवास कीजिये। मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरण-कमलों में अटूट प्रेम प्राप्त हो । यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, जो अनुभव से ही जानने में आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं । यद्यपि मैं आपके ऐसे रूप को जानता हूं और उसका वर्णन भी करता हूँ, तो भी लौट लौटकर मैं सगुण ब्रह्म में (आपके इस सुन्दर स्वरूप में)ही प्रेम मानता हूँ । आप सेवकों को सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसी से हे रघुनाथ जी ! आपने मुझ से पूछा है । हे प्रभो ! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, जिसका नाम पंचवटी है। हे प्रभो ! आप दण्डकवन को (जहाँ पंचवटी है)पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि के कठोर श्राप को हर

लीजिये। हे रघुकुल के स्वामी! आप सब मुनियों पर दया करके वहीं निवास कीजिये।'' मुनि की आज्ञा पाकर श्री रामचन्द्र जी वहाँ से चल दिये और शीघ्र ही पंचवटी के निकट पहुँच गये।

अन्तर्कथा– ऊपर की चौपाई में १८ सम पंक्तियाँ हैं। अन्त में एक पंक्ति है–

'दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू।।'

राम के पूछने पर, अगस्त्य ऋषि ने उनको परामर्श दिया कि दण्डकारण्य में पंचवटी (पाँच वटवृक्ष वाला) नामक सुन्दर स्थान है, जो सर्वथा उनके ठैरने योग्य है। साथ में अगस्त्य ऋषि ने यह भी संकेत किया कि श्री राम के वहाँ ठहरने से दण्डकारण्य को जो मुनि ने श्राप दिया, उससे वह मुक्त हो जायेगा। श्राप की अन्तर्कथा इस प्रकार है– दण्ड इक्ष्वाकुपुत्रों में कनिष्ठतम था। यह मूढ़, विद्याविहीन और उन्मत्त स्वभाव का था। इसके घोर नामक दोष के कारण राजा इक्ष्वाकु ने इसे सुदूर विंध्याद्रि तथा शैवल पर्वत प्रान्त का राजा बना दिया। विंध्य तथा नील पर्वतों के बीच का प्रदेश इसके अधीन था। वहां इसने मधुमत्त या मधुमंत नामक नगरी का निर्माण किया। उशनस् शुक्र इसका पुरोहित था। एक बार यह महर्षि भार्गव के आश्रम में गया। वहाँ महर्षि की अनुपस्थिति में कामातुर ऋषिकन्या अरजा के साथ बलात्कार करके अपने नगर में भाग आया। महर्षि के लौटने पर उन्हें सारी घटना का पता लगा। तब उन्होंने दंड को सराज्य विनष्ट होने का शाप दिया। अरजा एक सरोवर में सौ वर्षों तक देहशुद्धि के लिए तपस्या करती रही। दंड के विनष्ट राज्य को दंडकारण्य के नाम से कहा गया। कुछ ग्रंथों में इसका विस्तार गोदावरी के उद्‌गमस्थल तक और कुछ ग्रंथों में आधुनिक बुंदेलखंड से कृष्णा नदी तक बताया गया है। पुराणों में इसका वर्णन एक पवित्र तीर्थ के रूप में हुआ है, जो कि दक्षिण में था। वहां अनेक जलकुंड, आश्रम और पहाड़ी सरिताएं थीं। इसे विंध्यापर्वत के पार्श्व में निर्धारित किया गया है, जो कि मध्य तथा दक्षिण का विभाजक है।

दो०– गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ।।१३।।

भावार्थ– वहाँ गृधराज जटायु से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी गोदावरी जी के समीप पर्ण कुटी छाकर रहने लगे।

टिप्पणी– बालकाण्ड के दोहा २४ और उसके नीचे की चौपाई (पृष्ठ ५४-५५) में तुलसीदास जी राम-नाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम ने गृद्धराज जटायु का उद्धार किया। भालू (जामवन्त) और बन्दरों (सुग्रीव-हनुमान) की सहायता से समुद्र पर सेतु बाँधा। फिर आगे की चौपाई में घड़ियाल और हाथी को मुक्त कराने की कथा है

(पृष्ठ ५६, ५८)। और अब प्रस्तुत अरण्य काण्ड में कहा है कि वनस्पति में 'तुलसी' हरि को प्रिय है (दोहा ५ क, पृष्ठ ७१०, ७१२)। जैन-धर्म और हिन्दू धर्म के अनुसार पशु, पक्षी, वनस्पति सभी में जीवात्मा विद्यमान है। रामावतार केवल मनुष्य जाति के उद्धार के लिये नहीं हुआ था, अपितु संसार के सारे प्राणियों के लिये। इसी कारण पशु-पक्षी की शृंखला में तुलसीदास राम की सबसे पहले गृद्धराज जटायु से भेंट कराते हैं और पारस्परिक मैत्री का परिचय देते हैं :'गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।' अन्तर्कथा और पात्र-परिचय के लिए देखिए पृष्ठ ८२०।

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥
खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥
एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥

भावार्थ– जब श्री राम जी ने वहाँ निवास किया तब से मुनि सुखी हो गये, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभा से छा गये और वे दिनों दिन अधिक सुहावने मालूम होने लगे। पक्षी और पशुओं के समूह आनन्दित रहते हैं। और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष रघुबीर जी विराजमान हैं, उस वन का वर्णन सर्पराज शेष जी भी नहीं कर सकते। एक बार प्रभु श्री राम जी सुख से बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मण जी ने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे-"हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचर के स्वामी ! मैं अपने प्रभु की तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ। हे देव ! मुझे समझा कर वही कहिये, जिससे सब छोड़ कर मैं आपकी चरण-रज की ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिऐ, और उस भक्ति को कहिये जिसके कारण आप दया करते हैं।

दो०– ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥१४॥

भावार्थ– हे प्रभो ! ईश्वर और जीव का भेद भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणों मे मेरी प्रीति हो और शोक, मोह, भ्रम नष्ट हो जाये।"

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई । सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भवकूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥

भावार्थ-- (श्री राम जी ने कहा--) ''हे तात ! मैं थोड़े में ही सब समझाकर कहे देता हूँ । तुम मन, चित और बुद्धि लगा कर सुनो । मैं और मेरा, तू और तेरा--यही माया है जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है । इन्द्रियों के विषय को और जहाँ तक मन जाता है, हे भाई ! उस सब को माया जानना । उसके भी--एक विद्या और दूसरी अविद्या--इन दोनों भेदों को तुम सुनो । एक (अविद्या) दुष्ट (दोष युक्त) है और अत्यन्त दुख रूप है, जिसके वश होकर जीव संसार रूपी कुएँ में पड़ा हुआ है और एक (विद्या)जिसके वश में गुण है और जो जगत की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है । उसमें अपना बल कुछ भी नहीं है । ज्ञान वह है जहाँ (जिसमें)मान आदि एक भी (दोष) नहीं है, और जो सब में समानरूप से ब्रह्म को देखता है । हे तात ! उसी को परम वैराग्यवान कहना चाहिये जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका है ।

दो०-- माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव ।।१५।।

भावार्थ-- जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता उसे जीव कहना चाहिये । जो कर्मानुसार बन्धन और मोक्ष देने वाला सब से परे और माया का प्रेरक है, वह ईश्वर है ।

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥
भगति कि साधन कहउँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें । तात निरंतर बस मैं ताकें ॥

भावार्थ– धर्म (के आचरण)से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा मोक्ष का देने वाला है–ऐसा वेदों ने वर्णन किया है और हे भाई! जिससे मैं प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है, जो भक्तों को सुख देने वाली है । वह भक्ति स्वतंत्र है, उसको (ज्ञान-विज्ञान आदि किसी)दूसरे साधन का सहारा (अपेक्षा)नहीं है । ज्ञान और विज्ञान भी उसके अधीन है । हे तात! भक्ति अनुपम सुख की मूल है और वह तभी मिलती है जब संत अनुकूल (प्रसन्न)होते हैं । अब मैं भक्ति के साधन विस्तार से कहता हूँ । यह सुगम मार्ग हैं, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं । पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यन्त प्रीति हो और वेद की रीति अनुसार अपने अपने (वर्णाश्रम)कर्मों में लगा रहे । इसका फल फिर विषयों से वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होने पर)मेरे धर्म में (भागवत धर्म में) प्रेम उत्पन्न होगा । जिनका संतों के चरण कमलों में अत्यन्त प्रेम हो, मन, वचन और कर्म से भजन का दृढ़ नियम हो, और जो मुझ को ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवा में दृढ़ हो, मेरा गुन गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाय, वाणी गद्‌गद् हो जाय और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का)जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई ! मैं सदा उसके वश में रहता हूँ ।

टिप्पणी– ऊपर की चोपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं । बालकाण्ड के दोहा २३ के नीचे की अन्तिम चौपाई में (पृष्ठ ५३)तुलसीदास जी कहते हैं कि महर्षि भार्गव से श्रापित दण्डकवन को श्री राम ने पुनः सुहावना बना दिया :

'दंडक बनु प्रभु कीन्हि सुहावन ।'

बालकाण्ड में आगे आने वाली घटना का केवल पूर्वाभास दिया गया था । जब अरण्यकाण्ड में राम गोदावरी के तट पर दण्डकवन में पंचवटी नामक स्थान पर आ बसे, तब तुलसीदास उसकी प्राकृतिक छटा का वर्णन करना भूल गए । उसके स्थान पर राम के मुख से लक्ष्मण को धार्मिक शिक्षा देने बैठ गए । राम लक्ष्मण को पञ्चवटी पहुँचते ही समझाते हैं कि धर्म से विरक्ति पैदा होती है, और योग से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति होती है । परन्तु मैं (राम) भक्तों की केवल भक्ति से द्रवित हो जाता हूँ । इसी प्रकार,

केशवदास भी अपनी 'रामचन्द्रिका' में राम के पञ्चवटी पहुँचने पर उसके प्राकृतिक सौन्दर्य को भूलकर एक अनुप्रास द्वारा उसके आध्यात्मिक पक्ष को केवल उजागर करते हैं –

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि मीचु घटी, हूँ घटी, जगजीव जतीन की छूटी तटी।।
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी ।
चहु ओरन नाचत मुक्ति नटी, गुन धूरजटी बन पंचवटी ।।'

दो०– बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ।।१६।।

भावार्थ– जिनके कर्म, वचन और मन से मेरी ही गति है, और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं उनके हृदय-कमल में मैं सदा निवास किया करता हूँ ।''

भगति जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ।।
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती । कहत बिराग ग्यान गुन नीती ।।
सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ।।
पंचबटी सो गइ एक बारा । देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ।।
भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।।
होइ बिकल सक मनहि न रोकी । जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ।।
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ।।
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ।।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ।।
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।।
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ।।
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ।।
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ।।
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा । जो कछु करहिं उनहि सब छाजा ।।
सेवक सुख चह मान भिखारी । ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी ।।
लोभी जसु चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ।।
पुनि फिरि राम निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ।।
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ।।

तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥

भावार्थ – इस भक्ति योग को सुनकर लक्ष्मण जी ने अत्यन्त सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाया । इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये । सूर्पनखा नामक रावण की एक बहिन थी, जो नागिन जैसी भयानक और दुष्ट हृदय की थी । वह एक बार पंचवटी में गई और दोनों राजकुमारों को देखकर विकल (काम से पीड़ित) हो गई । (कागभुशुण्डि जी कहते हैं–) "हे गरुड़ जी! (सूर्पनखा जैसी राक्षसी, धर्मज्ञान शून्य, कामान्ध) स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो विकल हो जाती है और मन को रोक नहीं सकती है, जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वाला से पिघल जाती है)। वह सुन्दर रूप धर कर प्रभु के पास जाकर और बहुत मुसकराकर वचन बोली–'न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री । विधाता ने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचार कर रखा है। मेरे योग्य पुरुष (वर) जगतभर में नहीं है । मैंने तीनों लोकों को खोज देखा । इसी से मैं अब तक कुमारी (अविवाहित) रही । अब तुम को देखकर कुछ मन माना (चित ठहरा) है।' सीता जी की ओर देखकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने यह बात कही कि 'मेरा छोटा भाई कुमार है ।' तब वह लक्ष्मण जी के पास गई । लक्ष्मण उसे शत्रु की बहिन समझकर और प्रभु की ओर देखकर कोमल वाणी से बोले–'हे सुन्दरी ! सुन, मैं तो उनका दास हूँ । मैं पराधीन हूँ। अतः तुम्हें सुभीता (सुख) न होगा । प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुर के राजा हैं । वे जो कुछ करें उन्हें सब फलता है । सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, शराब आदि का व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, और दूत घमण्डी होकर अपने स्वामी का कार्य करना चाहे तो ये सब प्राणी आकाश को दुह कर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असम्भव बात को सम्भव करना चाहते हैं)।' वह लौटकर फिर श्री रामजी के पास आयी । प्रभु ने उसे फिर लक्ष्मण जी के पास भेज दिया । लक्ष्मण जी ने कहा–'तुम्हें वही वरेगा जो लज्जा को तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा (अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा)। तब वह खिसियायी हुई (कुछ क्रुद्ध होकर) श्री रामजी के पास गयी और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया । सीता जी को भयभीत देखकर श्री रघुनाथ जी ने लक्ष्मण जी को इशारा देकर कहा ।

टिप्पणी– यह चौपाई २० सम पंक्तियों की है । इसमें और इसके नीचे के दोहे में शूर्पणखा का प्रसंग है । शूर्पणखा रावण की बहन थी । जब राम भक्ति और ज्ञान का प्रवचन समाप्त कर चुके, तब शूर्पणखा राम के पास गई और उनके समक्ष वरण का प्रस्ताव रक्खा। राम ने उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया । लक्ष्मण ने अपने को राम का दास बताया और

कहा कि राम समर्थ हैं, जो चाहे करें। राम ने पुनः उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मण के मना करने पर, वह खिसिया कर फिर राम पर गई और विकराल रूप धारण कर लिया। राम का संकेत पाकर, लक्ष्मण ने, उसके नाक-कान काट कर, उसे कुरूप कर दिया।

इस प्रसंग को लेकर मैथिलीशरण गुप्त ने एक खण्डकाव्य 'पञ्चवटी' लिखा। मैथिलीशरण गुप्त और तुलसीदास के कथानकों में भेद हैं:-

१-'मानस' में शूर्पणखा दिन में राम-लक्ष्मण-सीता के सामने आती है और खुल कर सबके सामने बात करती है। 'पञ्चवटी' में शूर्पणखा 'अर्द्धयामिनी' में अकेले लक्ष्मण से मिलने आती है और रात भर प्रेम-वार्ता करती रहती है जिसे प्रातः उठकर सीता जी ने विनोद में 'शुक-रम्भा' संवाद कहा है। राम से तो उसकी पहली भेंट तब होती है, जब सीता कुटिया में जाकर राम को जगाती है।

२-'मानस' में शूर्पणखा का पहला सम्वाद राम से होता है, 'पञ्चवटी' में पहला सम्वाद लक्ष्मण से होता है।

३-'मानस' में शूर्पणखा तीन बार राम के और दो बार लक्ष्मण के पास गई, 'पञ्चवटी' में दोनों के पास दो-दो बार गई।

४- सीता-शूर्पणखा संवाद केवल 'पञ्चवटी' में है। 'मानस' में नहीं।

५- शूर्पणखा को 'मानस' में लक्ष्मण ने राम से संकेत पाने पर विकलांगी किया। 'पञ्चवटी' मे लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक-कान स्वयं काटे।

६- नाक-कान कटने पर तुलसीदास जी स्वयं कहते हैं—मानों लक्ष्मण ने रावण को चुनौती दी। 'पञ्चवटी' में पहली प्रतिक्रिया सीता की हुई, जब वह कहती हैं :

'हुआ आज अपशकुन सबेरे, कोई संकट पड़े न हा !'

'पञ्चवटी' के कुछ अंश नीचे उद्धृत हैं :-

'हा नारी ! किस भ्रम में है तू, प्रेम नहीं यह तो है मोह ;
आत्मा का विश्वास नहीं यह है तेरे मन का विद्रोह !' (लक्ष्मण)

'तो अब सुनो, बड़े होने से तुममें बड़ी बड़ाई है,
दृढ़ता भी है मृदुता भी है, इनमें एक कड़ाई है।
पहनो कान्त, तुम्ही यह मेरी जयमाला-सी वरमाला,
बने अभी प्रासाद तुम्हारी, यह एकान्त पर्णशाला।' (शूर्पणखा)

'कि तू न फिर छल सके किसी को मारूँ तो क्या नारी जान,
विकलांगी ही तुझे करूँगा,जिससे छिप न सके पहचान।' (लक्ष्मण)
'हुआ आज अपशकुन सबेरे, कोई संकट पड़े न हा !
कुशल करे कर्तार' उन्होंने लेकर एक उसाँस कहा। (सीता)

'नहीं विघ्न-बाधाओं को हम स्वयं बुलाने जाते हैं,
फिर भी यदि वे आ जावें तो कभी नहीं घबड़ाते हैं।
मेरे मत में तो विपदाएँ हैं प्राकृतिक परीक्षाएँ,
उनसे वही डरें कच्ची हों जिनकी शिक्षा-दीक्षाएँ।।' (लक्ष्मण)

दो०– लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि।।१७।।

भावार्थ– लक्ष्मण जी ने बड़ी फुर्ती से उसको बिना नाक कान की कर दिया। मानो उसके हाथ रावण को चुनौती दी हो।

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा।।
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता।।
तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई।।
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा।।
नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा।।
सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी।।
असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी।।
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं।।
कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई।।
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा।।
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर।।
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी।।
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा।।

भावार्थ– बिना नाक कान के वह विकराल हो गयी। (उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा) मानो (काले) पर्वत से गेरू की धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खरदूषण के पास गई (और बोली) 'हे भाई ! तुम्हारे पौरुष वीरता को धिक्कार है।

तुम्हारे बल को धिक्कार है।' उन्होंने पूछा। तब सूर्पनखा ने सब समझाकर कहा। सब सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की। राक्षस समूह झुण्ड के झुण्ड दौड़े मानों पक्षधारी काजल के पर्वतों का झुंड हो। अनेकों प्रकार की सवारियों पर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों)के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकार के असंख्य भयानक हथियार धारण किये हुए हैं। उन्होंने नाक कान कटी हुई अमंगल (अशुभ)रूपिणी शूर्पणखा को आगे कर दिया। अनगिनत भयंकर अपशकुन हो रहे हैं। परन्तु मृत्यु के वश होने के कारण वे सब के सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं। ललकारते हैं और आकाश में उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं। कोई कहता है कि दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्री को छीन लो। आकाश मंडल धूल से भर गया। तब श्री राम जी ने लक्ष्मण जी को बुलाकर उनसे कहा। राक्षसों की भयानक सेना आ गयी है। जानकी जी को लेकर तुम पर्वत की गुफा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचन्द्र जी के बचन सुनकर लक्ष्मम जी हाथ में धनुष बाण लिये श्री सीताजी सहित चले। शत्रुओं की सेना (समीप)चली आयी है। यह देखकर श्री राम जी ने हँसकर कठिन धनुष को चढ़ाया।

पात्र परिचय– ऊपर की चौपाई में १३ विषम पंक्तियाँ हैं। जब लक्ष्मण नें शूर्पणखा के नाक-कान काट लिये, तो प्रतिशोध के लिए वह खर-दूषण की शरण गई। इन दो पात्रों का परिचय इस प्रकार है –

(१.) **खर–** साली राक्षस की कन्या राखा विश्राम मुनि को ब्याही गई थी। राखा के गर्भ से खर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। खर १४ हजार राक्षसी सेना लेकर रावणके अधिकृत जन स्थान की रक्षा करता था। राम के बनवास के समय दुराचारिणी शूर्पणखा के नाक-कान काट लिये गये थे। इस कारण खर ने १४ राक्षसों को राम के विरूद्ध भेजा, परन्तु वे सब राक्षस मारे गये। तदनंतर खर के सेनापति दूषण और त्रिशिरा ने चौदह हजार राक्षसों की सेना लेकर राम पर आक्रमण किया। परन्तु अन्त में वह मारा गया। अंकपन इनके मारे जाने की खबर लंका ले गया था।

(२) **दूषण–** लंकापति रावण के एक सेनापति का नाम। इसके दूसरे भाई का नाम था खर। रावण का राज्य गोदावरी तीरस्थ दंडकारण्य तक विस्तृत था। राज्य के प्रांत भाग की रक्षा करने के लिए खर और दूषण १४ हजार सेना लेकर दंडकारण्य में रहा करते थे।

छं०– कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों।।
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै।।

भावार्थ– कठिन धनुष चढ़ाकर जटा का जूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं.

तरकस कसकर, विशाल भुजाओं में धनुष लेकर और बाण सुधार कर प्रभु श्री रामचन्द्र जी राक्षसों की ओर देख रहे हैं, मानों मतवाले हाथियों के समूह को आता देखकर सिंह ताक रहा हो।

सो०— आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज ।।१८।।

भावार्थ— इतने में घोड़ों की लगाम मिलाए हुए, 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते हुए बड़े-बड़े वीर राक्षसों (के घुड़सवारों) के दल ने झट प्रभु के पास पहुँचकर उन्हें ऐसा घेर लिया जैसे उदयकालीन बाल सूर्य को अकेला देखकर दैत्य आ घेरते हैं।

किम्वदन्ति— सूर्य के उदय-काल में नित्य 'सन्देह' नाम के दैत्य उन्हें आ घेरते हैं और मारे जाते हैं। पर ब्रह्मा के वरदान से वे फिर जी उठते हैं। संकेत कोहरे से है, जो उदय होते हुए प्रकाश को क्षीण कर देता है और फिर सूर्य के ताप से स्वयम् विलीन हो जाता है। दनुज-दल का रवि को घेर लेना, तुलसीदास जी की अपनी कल्पना है। शेष दोहे के भाव का प्रेरणा-स्रोत वाल्मीकीय रामायण के अरण्य-काण्ड के चौबीसवें सर्ग का २८ श्लोक है :

'अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यपद्यत।
वीरालापान् विसृजतामन्योन्यमभिगर्जताम् ।।'

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी।।
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन।।
नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते।।
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई।।
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।।
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई।।
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु।।
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई।।
हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं।।
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं।।
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक।।
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू।।
रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई।।
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ।।

भावार्थ– (सौन्दर्य- माधुर्यनिधि)प्रभु श्री राम जी को देखकर राक्षसों की सेना चकित रह गई। वे उन पर बाण नहीं छोड़ सके। मन्त्री को बुलाकर खर-दूषण ने कहा–"यह राजकुमार कोई मनुष्यों का भूषण हैं। जितने भी नाग,असुर, देवता, मनुष्य और मुनि है, उनमें से हमने कितनों ही को देखा है, जीता है और मार डाला है। पर हे सब भाइयों ! सुनो, हमने जन्म भर में ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी। यद्यपि इन्होंने हमारी बहिन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष बध करने योग्य नहीं है। छिपायी हुई अपनी स्त्री हमें तुरन्त दे दो और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाओ। मेरा यह कथन तुम लोग सुनकर उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर)सुनकर शीघ्र आओ।" दूतों ने जाकर यह सन्देश श्री रामचन्द्र जी से कहा। उसे सुनते ही श्री रामचन्द्र जी मुसकराकर बोले – "हम क्षत्रिय हैं, बन में शिकार करते हैं और तुम्हारे सरीखे दुष्ट पशुओं को तो ढूँढ़ते ही फिरते हैं। हम बलवान शत्रु को देखकर नहीं डरते। लड़ने को आवे तो एक बार हम काल से भी लड़ सकते हैं। यद्यपि हम मनुष्य हैं परन्तु दैत्य कुल का नाश करने वाले और मुनियों की रक्षा करने वाले हैं। हम बालक हैं परन्तु हैं दुष्टों को दण्ड देने वाले। यदि बल नहीं तो घर लौट जाओ। संग्राम में पीठ दिखाने वाले किसी को मैं नहीं मारता। रण में चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रु पर कृपा करना (दया दिखाना)तो बड़ी भारी कायरता है।"दूतों ने लौट कर सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषण का हृदय अत्यन्त जल उठा।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में चौदह सम पंक्तियाँ हैं। राम के अतुल सौन्दर्य को देखकर खर-दूषण उन पर बाण नहीं छोड़ सके। दूतों के द्वारा सन्देश भिजवाया कि 'छिपाई हुई अपनी स्त्री हमें दे दो और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाओ।' राम ने मुस्कराकर उत्तर दिया 'यदि बल नहीं तो घर लौट जाओ। संग्राम में पीठ दिखाने वाले को मैं नहीं मारता।'

छं०– उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

भावार्थ– खर-दूषण का हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा– 'पकड़ लो (कैद कर लो)।' (यह सुनकर)भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष लेकर, शक्ति (साँग), शूल (बरछी),कृपाण (कटार),परिघ और फरसा धारण किये हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने पहले धनुष का बड़ा कठोर, घोर और भयानक टंकार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये। उस समय उन्हें कुछ भी होश नहीं रहा।

दो०– सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति॥१९(क)॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर ।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर ।।१९(ख)।।

भावार्थ— फिर वे शत्रु को बलवान जानकर सावधान होकर दौड़े, और श्री रामचन्द्र जी के ऊपर बहुत प्रकार के अस्त्र शस्त्र बरसाने लगे । श्री रघुबीर जी ने उनके हथियारों को तिल के समान (टुकड़े-टुकड़े)करके काट डाला । फिर धनुष को कान तक तान कर अपने तीर छोड़े ।

छं०— तब चले बान कराल । फुंकरत जनु बहु ब्याल ।।
कोपेउ समर श्रीराम । चले बिसिख निसित निकाम ।।
अवलोकि खरतर तीर । मुरि चले निसिचर बीर ।।
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ । जो भागि रन ते जाइ ।।

तेहि बधब हम निज पानि । फिरे मरन मन महुँ ठानि ।।
आयुध अनेक प्रकार । सनमुख ते करहिं प्रहार ।।
रिपु परम कोपे जानि । प्रभु धनुष सर संधानि ।।
छाँड़े बिपुल नाराच । लगे कटन बिकट पिसाच ।।

उर सीस भुज कर चरन । जहँ तहँ लगे महि परन ।।
चिक्करत लागत बान । धर परत कुधर समान ।।
भट कटत तन सत खंड । पुनि उठत करि पाषंड ।।
नभ उड़त बहु भुज मुंड । बिनु मौलि धावत रुंड ।।

खग कंक काक सृगाल । कटकटहिं कठिन कराल ।।
कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं ।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं ।।
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा ।

जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयंकर गिरा ।।
अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं ।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं ।।
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे ।

अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे ।।
सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं ।

करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं ।।
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका ।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका ।।
महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी ।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ।।
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करयो ।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो ।।

भावार्थ– तब भयानक बाण ऐसे चले मानो फुंकारते हुए बहुत से सर्प जा रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी संग्राम में क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले। अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों को देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर, दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले–'जो रण से भाग कर जायगा, उसका हम अपने हाथों बध करेंगे।' तब मन में मरना ठान कर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकार के हथियारों से श्री रामचन्द्र जी पर प्रहार करने लगे। शत्रु को अत्यन्त कुपित जानकर, प्रभु ने धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत से बाण छोड़े जिससे भयानक राक्षस कटने लगे। उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही वे हाथी की तरह चिंग्घाड़ते हैं। उनके पहाड़ के समान धड़ कट-कट कर गिर रहे हैं। योद्धाओं के शरीर कट कर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं। आकाश में बहुत-सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं। तथा बिना सिर के धड़ दौड़ रहे हैं। चील, क्रौञ्च, कौए आदि पक्षी, सियार कठोर भयंकर कट-कट शब्द कर रहे हैं। सियार कटकटाते हैं। भूत, प्रेत, और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं (अथवा खप्पर भर रहे हैं)। वीर-वैताल खोपड़ियों पर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। श्री रघुबीर के प्रचण्ड बाण योद्धाओं के वक्षस्थल, भुजा और सिरों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं, फिर उठते और लड़ते है और पकड़ो-पकड़ो का भयंकर शब्द करते हैं। अंतड़ियों के एक छोर को पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हीं का दूसरा छोर हाथ से पकड़ कर पिशाच दौड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है मानो संग्रामरूपी नगर के निवासी बहुत से बालक पतंग उड़ा रहे हैं। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गये। बहुत से जिनके हृदय विदीर्ण हो गये हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेना को व्याकुल देखकर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा श्री राम जी की ओर फिरे। अगणित राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बार में श्री रघुबीर पर छोड़ने लगे। प्रभु ने पल भर में शत्रुओं के बाणों को नष्ट करके ललकार कर उन पर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस सेनापतियों के हृदयों में दस-दस बाण मारे। योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकार की अतिशय माया

रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस)चौदह हजार हैं और अयोध्या नाथ श्री राम जी अकेले हैं। देवता और मुनियों को भयभीत देखकर मायापति प्रभु ने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओं की सेना एक दूसरे को राम रूप देखने लगी और आपस में ही युद्ध करके लड़ मरी।

टिप्पणी– बालकाण्ड में आठ छन्द १६-१६ पंक्तियों के हैं। छंद चार पंक्तियाँ का होता है। इस प्रकार बालकाण्ड के वह आठ छंद वास्तव में ३२ छन्द हैं। ऊपर के छन्द में २९ विषम पंक्ति हैं। २८ पंक्ति होती तो सम्पूर्ण सात छंद होते। **अन्तिम उन्तीसवी पंक्ति** पिंगल शास्त्र के विरुद्ध है। वास्तव में उस पंक्ति में कोई दोष नहीं है। तीसरा छंद 'नभ उड़त बहुभुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुण्ड॥' पर समाप्त हो जाता है। उसके बाद की पंक्ति 'खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥' क्षेपक प्रतीत होता है। क्योंकि चील, क्रौंच और कौए जैसे पंक्षियों को सियार जैसे पशुओं के साथ रखना समीचीन नहीं है। 'कट-कट' शब्द पक्षी भले ही करें, सियार ऐसा शब्द कभी नहीं करता।

ऊपर के छः छंदों में रौद्र और वीभत्स रस हैं। अन्तिम छन्द में राम के एक चमत्कार का वर्णन है। खर-दूषण की सेना में चौदह हज़ार राक्षस थे और राम अकेले थे। अतएव उन्होंने एक कौतुक किया, जिससे शत्रुओं की सेना एक दूसरे को राम-रूप देखने लगी और आपस में ही युद्ध करके लड़ मरी।

दो०– राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान ॥२०(क)॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥२०(ख)॥

भावार्थ– सब (यही राम है, इसे मारो, इस प्रकार)'राम-राम' कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष)पद पाते हैं। कृपानिधान श्री रामजी ने यह उपाय करके क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला। देवता हर्षित हो कर फूल बरसाते हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानों पर सुशोभित हुए चले गये।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते।
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥
सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥
धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥

बोली बचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवसि दिनु राती । सुधि नहिं तब सिर पर आराती ॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ । श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

भावार्थ– जब श्री रघुनाथ जी ने शत्रुओं को जीत लिया, और देवता, मनुष्य और मुनि सब के भय नष्ट हो गये, तब लक्ष्मण जी सीता जी को ले आये । चरणों में पड़ते हुए उनको प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदय से लगा लिया । सीता जी श्री रामजी के श्याम और कोमल शरीर को प्रेम के साथ देख रही हैं। नेत्र अघाते नहीं है । इस प्रकार, पञ्चवटी में बस कर सीता जी सहित श्री रघुनाथ जी देवताओं और मुनियों को सुख देने वाले चरित्र करने लगे । खर-दूषन का विध्वंस देखकर शूर्पणखा ने जाकर रावण को भड़काया । वह बड़ा क्रोध करके बचन बोली–"तूने देश और खजाने की सुधि ही भुला दी । शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है । तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है । नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़ने से परिणाम से श्रम ही हाथ लगता है । विषय संग से सन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरापान से लज्जा, नम्रता के बिना (नम्रता न होने से) प्रीति और मद (अहंकार)से गुणगान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, ऐसी नीति मैंने सुनी है ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में ११ विषम पंक्तियाँ हैं । आश्चर्य है कि शूर्पणखा अपने भाई रावण के पास जाकर प्रतिशोध की बात नहीं करती है । पहले उसे उत्तेजित करती है और उसके दोष बताती है । वह उसे सीख देती है कि नीति के बिना राज्य, धर्म के बिना धन, भगवान को समर्पण किए बिना कर्म, विवेक के बिना विद्या व्यर्थ हैं । विषयसंग से सन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरा से लज्जा, अहंकार से गुण, और नम्रता के बिना प्रीति नष्ट हो जाते हैं ।

सो०– रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन ।।२१(क)।।

भावार्थ– शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी, और सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिये ।" ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी ।

दो०– सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ ।।२१(ख)।।

भावार्थ– रावण की सभा के बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकार से रो-रो कर कह रही है कि "अरे दशग्रीव ! तेरे जीते जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिए ?"

सुनत सभासद उठे अकुलाई । समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता । केइँ तव नासा कान निपाता ॥
अवध नृपति दसरथ के जाए । पुरुष सिंघ बन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी । रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥
जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भए बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ॥
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥
रूप रासि बिधि नारि सँवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥
खर दूषन सुनि लगे पुकारा । छ्न महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता । सुनि दससीस जरे सब गाता ॥

भावार्थ– शूर्पणखा के बचन सुनते ही सभासद अकुला उठे । उन्होंने शूर्पणखा की बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया । लंकापति रावण ने कहा–'अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक कान काट लिये ।' वह बोली " अवध नरेश दशरथ के पुत्र, जो पुरुषों में सिंह के समान हैं, बन में शिकार खेलने आये हैं । मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर देंगे । जिनकी भुजाओं का बल पाकर हे दशमुख ! मुनिगण वन में निर्भय होकर विचरने लगे हैं । वे देखने में तो बालक हैं, पर हैं काल के समान । वे परम धीर श्रेष्ठ धनुर्धर और अनेकों गुणों से युक्त हैं । दोनों भाइयों का बल और प्रताप अतुलनीय है । वे दुष्टों के बध करने में लगे हैं । और देवता और मुनियों को सुख देने वाले हैं । वे शोभा के धाम, 'राम' ऐसा उनका नाम है । उनके साथ एक तरुणी सुन्दरी स्त्री है । विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेवकी स्त्री) भी उस पर निछावर हैं । उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक-कान काट डाले । मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरा मज़ाक उड़ाने लगे । मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आये पर उन्होंने क्षणभर में सारी सेना को मार डाला ।' खर-दूषण और त्रिशिरा का बध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं । शूर्पणखा पहले ही राम-लक्ष्मण पर मुग्ध हो चुकी थी । इस चौपाई में वह उनके रूप और पौरुष का विश्लेषण करती है ।

दो०— सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति ।
गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति ।।२२।।

भावार्थ— उसने शूर्पणखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया। किन्तु मन में वह अत्यन्त चिन्ता वश होकर अपने महल में गया। उसे रात भर नींद नहीं पड़ी।

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ।।
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ।।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ।।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ।।
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ।।
चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ।।
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ।।

भावार्थ— (वह मन ही मन विचार करने लगा)देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवक की भी बराबरी का हो। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान थे, उन्हें भगवान के सिवा और कौन मार सकता है। देवताओं को आनन्द देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने यदि अवतार लिया हैं तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण के आघात से प्राण छोड़ कर भवसागर से तर जाऊँगा। इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं, अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्य रूप में कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर स्त्री को हर लूँगा। (यों विचार कर)रावण रथ पर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्र के तट पर मारीच रहता था। (शिवजी कहते हैं कि–) 'हे पार्वती ! यहाँ श्री रामचन्द्र जी ने जैसे युक्ति रची, वह सुन्दर कथा सुनो।'

टिप्पणी— आने वाली घटनाओं का इस चौपाई में तुलसी दास जी ने पूर्वाभास दे दिया है। रावण ने जानकर राम से वैर लिया। वह स्वयं कहता है-'पृथ्वी का भारहरण करने वाले भगवान ने यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण के आघात से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊँगा।' वास्तव में रावण अभिशप्त राजा प्रतापभानु था। देखिए बालकाण्ड, दोहा १७५ के नीचे की चौपाई और 'पात्र-परिचय', पृष्ठ २१६।

दो०— लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद ।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद ।।२३।।

भावार्थ— लक्ष्मण जी जब कन्द-मूल फल लेने के लिये बन में गये तब अकेले में कृपा और सुख के समूह श्री रामचन्द्र जी हँस कर जानकी जी से बोले ।

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नरलीला ।।
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लगि करौं निसाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ।।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ।।
नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।।
भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ।।

भावार्थ—'हे प्रिये ! हे सुन्दर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशीले ! सुनो मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा । इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ तब तक तुम अग्नि में निवास करो ।' श्री रामजी ने ज्योंहि सब समझाकर कहा, त्यों ही श्री सीता प्रभु के चरणों को हृदय में धर कर अग्नि में समा गई । सीता जी ने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके जैसे ही शीलस्वभाव और रूप वाली तथा वैसी ही विनम्र थी । भगवान ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्य को लक्ष्मण जी ने भी नहीं जाना । स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था, और उसको सिर नवाया । नीच का झुकना (नम्रता)भी अत्यन्त दुःखदायी होता है । जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना। 'हे भवानी! दुष्ट की मीठी वाणी भी भय देने वाली होती है जैसे बिना ऋतु के फूल ।'

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई 'मानस' की सबसे मार्मिक चौपाई है । राम सीता से कहते हैं कि 'मैं अब कुछ नरलीला करने जा रहा हूँ । जब तक मैं समस्त राक्षस जाति का नाश न कर दूँ, तुम अग्नि में प्रवेश कर जाओ और उसी में निवास करो ।' राम की आज्ञा को शिरोधार्य करके, सीता ने अग्नि में प्रवेश किया और अपनी प्रतिकृति छोड़ गईं ।

यह मर्म राम और सीता के बीच सीमित रहा । लक्ष्मण को भी नहीं पता चला क्योंकि लक्ष्मण उस समय 'मूल, फल, कन्द' लेने गये थे ।

तुलसीदास यह नहीं चाहते थे कि उनकी इष्ट देवी जगज्जननी सीता के चरित्र पर किसी प्रकार का लांछन आवे । जिस सीता का रावण ने अपहरण किया, जिस सीता को वह

अपनी गोद में बिठा कर पुष्पक विमान से लंका ले गया, और जो सीता उसके प्रमद वन में एक साल रही, वह वास्तव में सीता देवी नहीं थी, केवल उनका प्रतिबिम्ब था।

जन साधारण की धारणा है कि रावण के वध के बाद राम ने सीता की अग्नि परीक्षा ली। वास्तव में जो सीता अरण्यकाण्ड में अग्नि में प्रवेश कर गयी थी, वही सीता, अग्नि में से लंकाकाण्ड में, पुनः विद्यमान हो गयीं। और उनका प्रतिबिम्ब अग्नि में हमेशा के लिए भस्म हो गया। लंकाकाण्ड के दोहा १०८ के ऊपर की चौपाई में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है–

'सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी।'

इस पंक्ति से स्पस्ट हो जाता है कि जिस सीता ने अग्नि में प्रवेश किया वह कृत्रिम थी, और जो सीता अग्नि से निकली वह वास्तविक थी। राम ने सीता के सतीत्व पर कभी भी संदेह नहीं किया। उन्होंने केवल नर लीला खेली थी।

वाल्मीकिय रामायण के लंकाकाण्ड के ११५ वें सर्ग में सीता के प्रति राम की अभद्र उक्ति और सीता का उत्तर और तदन्तर उनकी अग्नि परीक्षा तुलसीदास जी को कदापि ग्राह्य नहीं थी :

एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम्॥२॥

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यंगम् च परिमार्जता॥१६॥

प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रमिमुखे स्थिता।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा॥१७॥

तद्गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया॥१८॥

कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहल्लोभेन चेतसा॥१९॥

रावणांक परिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन् महत्॥२०॥

११६ सर्ग

यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ।।८।।

त्वया तु नरशार्दूल रोषमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्री त्वमेव पुरस्कृतम् ।।१४।।

अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ ते न पुरस्कृतम् ।।१५।।

इति ब्रुवन्ती रुदती वाष्पगद्गदभाषिणी ।
उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरायणम् ।।१७।।

चितां में कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ।।१८।।

प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्टवा हव्यवाहने ।।
पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ।। ३२ ।।

११७ सर्ग

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णाः प्रजापतिः ।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।।२८।।

११८ सर्ग

एतच्छ्रुवा शुभं वाक्य पितामहसमीरितम् ।
अंकेनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः ।।१।।

विधूयाथ चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः ।
उत्तस्थौ मूर्तिमानाशु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ।।२।।

अब्रवीत् तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ।।५।।

नैव वाचा न मनसा नैवबुद्ध्या न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा ।।६।।

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णी मैथिलीम् ।
न किंचदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ।।१०।।

एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः ।
उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ।।१२।।

अवश्यं त्रिषु लोकेषु न सीता पापमर्हति ।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ।।१३।।

बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः ।
इति वक्ष्यन्ति मां लोको जानकीमविशोध्य हि ।।१४।।

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ।।१७।।

अर्थात्, वे कहने लगे– ''हे भद्रे ! मैंने युद्ध में शत्रु को परास्त कर तुमको पुनः प्राप्त कर लिया। पुरुषार्थ जो किया जा सकता था, वह मैंने कर दिखाया। किन्तु (रावण को मार कर)मैंने चरित्र की रक्षा की है और अपनी बदनामी को बचाया है तथा अपने विख्यात वंश के अपयश को धो बहाया है। हे सीते ! तुम्हारे चरित्र में सन्देह उत्पन्न हो गया है। अतः तुम मेरे सामने खड़ी हुई मेरे लिए उसी प्रकार असह्य हो रही हो, जिस प्रकार नेत्र रोग से पीड़ित मनुष्य को सामने रखा हुआ दीपक असह्य जान पड़ता है। सो हे जनकात्मजे! ये दसों दिशायें तुम्हारे लिए खुली पड़ी हैं। मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि जिधर तुम्हारी इच्छा हो उधर चली जाओ। मुझे तुमसे अब कुछ प्रयोजन नहीं है। क्योंकि ऐसा कौन तेजस्वी पुरुष होगा जो स्वयं उच्चकुल में उत्पन्न होकर दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को सुहृद समझ कर (अपनी समझकर)फिर अंगीकार कर लेगा। अतः रावण की गोद में बैठ चुकी हुई उसकी कुदृष्टि से देखी हुई तुझको, इतने बड़े कुल मे उत्पन्न होकर मैं भला अब क्यों कर ग्रहण करूँ ?''

सीता ने उत्तर दिया : ''हे प्रभो ! जब रावण ने मुझे पकड़ा तब उसने मेरा शरीर (अवश्य) स्पर्श किया था, किन्तु उस समय मैं विवश थी। मेरी इच्छा से उसने शरीर नहीं छुआ था। इसमे मेरा कुछ भी अपराध नहीं, इसके लिए तो दैव (भाग्य) ही अपराधी है। हे नरशार्दूल ! तुमने तो ओछे मनुष्यों की तरह क्रोध के वशवर्ती हो, साधारण स्त्रियों की तरह मुझको भी समझ लिया। हे वृत्तज्ञ ! मेरा समस्त वृत्तान्त जानने वाले!मैं जनक की लड़की हूँ। इस विचार से तुमने न तो मेरी पृथ्वी से उत्पत्ति ही की ओर ध्यान दिया और न मेरे (लोकोत्तर)चरित्र ही का कुछ विचार किया।''

इस प्रकार कह कर रोती, आँसू बहाती तथा गद्‌गद् हो कर सीता, लक्ष्मण जी से, जो उस समय उदास हो, एकाग्र मन में कुछ सोच रहे थे, बोली — "हे लक्ष्मण ! इस मिथ्यापवाद से पीड़ित हो, मैं अब जीना नहीं चाहती । अत: तुम मेरे लिए चिता बना दो । क्योंकि ऐसे रोग की एकमात्र यही औषधि है ।"

जैसे यज्ञ में मन्त्रों द्वारा संस्कार की हुई बसुधारा की आहुति दी जाती है, उसी प्रकार सीता को आग में गिरते देख वहाँ आयी हुई सभी स्त्रियाँ चीख उठीं ।

तब ब्रह्मा जी बोले–'यह सीता देवी भगवती लक्ष्मी है और तुम विष्णु, कृष्ण तथा प्रजापति देव हो । इस रावण को मारने के लिए ही तुम मनुष्य रूप में धराधाम पर अवतीर्ण हुए हो ।'

पितामह ब्रह्मा जी के कहे हुए, इन शुभ वचनों को सुन कर अग्निदेव सीता जी को गोद में लेकर (उस चिता से)प्रकट हुए । जब उस चिता की आग ठंडी पड़ गई तब अग्निदेव मनुष्य जैसा शरीर धारण कर जनकनन्दिनी वैदेही को लिये हुए शीघ्रता पूर्वक निकले । तदनन्तर सब लोकों के साक्षी अग्निदेव ने श्री रामचन्द्र जी से कहा–"हे राम ! यह तुम्हारी सीतादेवी है । इनमें किसी प्रकार का पाप नहीं है । हे धर्मशील ! मन, वचन, बुद्धि और नेत्रों से आपको छोड़, ये दूसरे की ओर कभी नहीं फिरी । यह सब प्रकार से सदाचारिणी है । हे राघव ! इस विशुद्ध हृदय वाली पापरहित सीता को तुम अंगीकार करो । मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि अब तुम उस विषय पर इनसे कुछ न कहो ।"

तदन्तर महातेजस्वी, कान्तिमान्, दृढ़पराक्रमी एवं धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, श्री रामचन्द्र जी श्रेष्ठ अग्निदेव से बोले : "निश्चय ही तीनों लोकों के बीच जानकी पवित्र है । किन्तु यह सौभाग्यवती बहुत दिनों तक रावण के रनवास में रही है । यदि मैं जानकी की शुद्धता की परीक्षा न कर, इन्हें शुद्ध सिद्ध न करवाता, तो सब लोग यही कहते कि महाराज दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र जी बड़े कामी और अनाड़ी हैं । मैनें सत्य का आश्रय लेते हुए, अग्नि में प्रवेश करते समय सीता को इसलिए नहीं रोका था और इनकी उपेक्षा की थी, जिससे तीनों लोकों को इनकी विशुद्ध चरित्रता का विश्वास हो जाय ।"

किन्तु उत्तर काण्ड में सीता परित्याग का प्रसंग देखने पर श्री रामचन्द्र का यह अनुमान ठीक सिद्ध न हुआ । जन अपवाद के दबाव में आकर राम द्वारा सीता का परित्याग, उनका दुबारा वन गमन और वाल्मीकि के आश्रम में लव कुश का जन्म, यह तुलसीदास की रामायण में नहीं है । यह वाल्मीकिय रामायण में है, जैसा कि पृष्ठ ४१-४२ पर स्पष्ट कर दिया गया है । तुलसीदास के अनुसार लव-कुश का जन्म अयोध्या में ही बड़े उत्साह के साथ हुआ था, जैसा की उत्तर काण्ड की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है :

'दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए । लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ।।
दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर । हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर ।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे । भए रूप गुन सील घनेरे ।।'

दो०– करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात ।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात ।।२४।।

भावार्थ– तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी । 'हे तात ! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र हैं और आप अकेले आये हैं।'

दसमुख सकल कथा तेहि आगें । कही सहित अभिमान अभागें ।।
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी । जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी ।।
तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नररूप चराचर ईसा ।।
तासों तात बयरु नहिं कीजै । मारें मरिअ जिआएँ जीजै ।।
मुनि मख राखन गयउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ।।
सत जोजन आयउँ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं ।।
भइ मम कीट भृंग की नाई । जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई ।।
जौं नर तात तदपि अति सूरा । तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ।।

भावार्थ– भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही, (और फिर कहा) 'तुम छल करने वाले कपट मृग बनो जिस उपाय से मैं इस राजबधू को हर लाऊँ।' तब मारीच ने कहा "हे दशशीश ! सुनिये वे मनुष्य रूप में चराचर के ईश्वर हैं। हे तात! उनसे बैर न कीजिये । उन्ही के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता हैं। सब का जीवन मरण उन्हीं के अधीन हैं । यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिये गये थे । उस समय श्री रघुनाथ जी ने बिना फर का बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षण भर में सौ योजन पर आ गिरा । उनसे बैर करने में भलाई नहीं है । श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखता हूँ । और हे तात ! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं, उनसे विरोध करने में पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी)।

टिप्पणी– जब रावण मारीच की सहायता लेने आया तो मारीच ने उसे सावधान किया कि वह राम से बैर न करे क्योंकि राम मनुष्य रूप में चराचर के ईश्वर हैं । सब का जीवन-मरण उन्हीं के अधीन है । यह बात वह अपने अनुभव से कह रहा था । देखिए पात्र-परिचय पृष्ठ ५४ पर, और बालकाण्ड की २०९ दोहे के नीचे की चौपाई ।

दो०– जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड ।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड ।।२५।।

भावार्थ– जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिव जी का धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिरा का बध कर डाला, ऐसा प्रचण्ड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है।

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी । सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा । कहु जग मोहि समान को जोधा ॥
तब मारीच हृदयँ अनुमाना । नवहि बिरोधें नहिं कल्याना ॥
स्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि भानस गुनी ॥
उभय भाँति देखा निज मरना । तब ताकिसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें । कस न मरौं रघुपति सर लागें ॥
अस जियँ जानि दसानन संगा । चला राम पद प्रेम अभंगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही । आजु देखिहउँ परम सनेही ॥

भावार्थ– अतः अपने कुल की कुशलविचार कर आप लौट जाइये ।'' यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दी (दुर्वचन कहे) (कहा)—''अरे मूर्ख ! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता हैं । बता तो संसार में मेरे समान योद्धा कौन हैं ।'' तब मारीच ने अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी) मर्मी (भेद जानने वाला), समर्थ स्वामी, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया, इन नौं व्यक्तियों से विरोध बैर करने में कल्याण (कुशल)नहीं होता । जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा, तब उसने श्री रघुनाथ जी की शरण तकी (अर्थात् उनकी शरण जाने में ही कल्याण समझा) । (सोचा कि)उत्तर देते ही (नहीं करते ही)यह अभागा मुझे मार डालेगा । फिर श्री रघुनाथ जी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ । हृदय में ऐसा समझकर वह रावण के साथ चला । श्री राम जी के चरणों में उसका अखण्ड प्रेम हैं । उसके मन में इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम सनेही श्री राम जी को देखूँगा, किन्तु यह हर्ष रावण को नहीं बताया ।

छं०– निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं ।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ।।
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी ।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ।।

भावार्थ– (वह मन ही मन सोचने लगा)अपने परम प्रियतम को देख कर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा । जानकी सहित और छोटे भाई लक्ष्मण जी समेत कृपानिधान श्री राम जी के चरणों में मन लगाउँगा, जिनका क्रोध भी मोक्ष देने वाला है और जिनकी भक्ति

उन अवश (किसी के वश में न होने वाले, स्वतंत्र भगवान) को भी वश में करने वाली हैं। अहा! वे ही आनंद के समुद्र श्री हरि अपने हाथों से बाण सन्धानकर मेरा बध करेंगे।

दो०— मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन ।।२६।।

भावार्थ— धनुष-बाण धारण किये मेरे पीछे-पीछे पृथ्वी पर (पकड़ने के लिये) दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर कर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है।

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ ।।
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ।।
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ।।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला ।।
सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही ।।
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन ।।
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा ।।
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ।।
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ।।
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी ।।
निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा ।।
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई ।।
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी ।।
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा ।।
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा ।।
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा ।।
अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ।।

भावार्थ— जब रावण उस वन के (जिस वन में श्री रघुनाथ जी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपट मृग बन गया। वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नही किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों से जड़ कर बनाया था। सीता जी ने उस परम सुन्दर हिरन को देखा, जिसके अंग अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। (वे कहने लगी)—'हे देव! हे कृपालु रघुबीर! सुनिये इस मृग की छाल बहुत ही सुन्दर है।' जानकी जी ने कहा—'हे सत्य प्रतिज्ञ प्रभो! इसको मार कर इसका चमड़ा ला दीजिये।' तब श्री रघुनाथ जी, मारीच को कपट मृग बनने का सब कारण जानते हुए भी, देवताओं का कार्य बनाने के लिये हर्षित होकर उठे।

हिरन को देखकर श्री राम जी ने कमर में फैटा बाँधा और हाथ में धनुष लेकर उस पर सुन्दर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मण जी को समझाकर कहा 'हे भाई! बन में बहुत से राक्षस फिरते हैं। तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा सबल और समय का विचार करके सीता की रखावाली करना।' प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्री रामचन्द्र जी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े। बेद जिनके विषय में 'नेति नेति' कह कर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हे ध्यान में नहीं पाते (अर्थात् जो मन और वाणी से नितान्त परे हैं) वे ही श्री राम जी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता हैं और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है। इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ बहुतेरे छ्ल करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्री रामचन्द्र जी ने तक कर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, जिसके लगते ही वह घोर शब्द करके, पृथ्वी पर गिर पड़ा। पहले लक्ष्मण जी का नाम लेकर, उसने पीछे मन में श्री राम जी का स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेमसहित श्री रामजी का स्मरण किया। सुजान (सर्वज्ञ) श्री राम जी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचान कर उसे वह गति (अपना परम पद) दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १७ विषम पंक्तियाँ हैं। रावण का मारीच को लेकर पञ्चवटी के निकट आना, मारीच का कपट मृग का रूप धारण करना, सीता के आग्रह पर राम का उसके पीछे दौड़ना, उसका कभी निकट आना और कभी दूर भाग जाना, कभी छिप जाना, कभी प्रकट हो जाना, राम का उस पर बाण चलाना, मरते समय उसका 'हे लक्ष्मण कहना' और फिर राम को स्मरण करना, उसका अपने असली रूप में प्रकट होना और राम का उसको सद्गति देना—यह समस्त कथानक सत्रह पंक्तियों में समाप्त कर देना—यह तुलसीदास ही कर सकते थे।

दो– बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ।।२७।।

भावार्थ– देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं (कि) श्री रघुनाथ जी एसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को भी अपना परमपद दे दिया।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा।।
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता।।
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता।।
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई।।
मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।

बन दिसि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥
सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जती कें बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं ॥
सो दससीस स्वान की नाईं । इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥
नाना बिधि करि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं । बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥
तब रावन निज रूप देखावा । भई सभय जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा । आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥
जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा । भएसि कालबस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना । मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥

भावार्थ– दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुबीर तुरंत लौट पड़े । हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभा दे रहा है । इधर जब सीता जी ने दुखभरी वाणी, मरते समय मारीच की 'हा लक्ष्मण' की आवाज़ सुनी, तो वे बहुत भयभीत होकर लक्ष्मण जी से कहने लगीं — 'तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकट में हैं ।' लक्ष्मण जी नें हंसकर कहा–'हे माता ! सुनो, जिनके भृकुटिविलास (भौं के इशारे)मात्र से सारी सृष्टि का लय (प्रलय)हो जाता है, वे श्री रामजी क्या कभी स्वप्न में भी संकट में पड़ सकते हैं ।' इस पर सीता जी जब कुछ मर्म वचन (हृदय में चुभने वाले वचन)कहने लगीं, तब भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मण जी का मन भी चञ्चल हो उठा । वे श्री सीता जी को बन और दिशाओं आदि के देवताओं को सौंप कर, वहाँ चले जहाँ रावण रूपी चन्द्रमा के लिये राहु रूप श्री राम जी थे । रावण, सूना मौका देखकर,यति (सन्यासी)के वेष में श्री सीता जी के समीप आया । जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में भर पेट अन्न नहीं खाते, वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई (चोरी)के लिये चला । (कागभुशुण्डि कहते हैं) 'हे गरुड़ जी ! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही, शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता ।' रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सीता जी को राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया । सीता जी ने कहा 'हे यति गोसाई ! तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे ।'तब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया, और जब नाम सुनाया तब तो सीता जी भयभीत हो गयीं । उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा: "हे दुष्ट ! खड़ा तो रह, प्रभु आ गये । जैसे सिंह की स्त्री को खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षस राज! तू (मेरी चाह करके)काल के वश हुआ है ।" यह बचन सुनते ही रावण को क्रोध आ गया । परन्तु मन में उसने सीता जी के चरणों की वन्दना करके सुख माना ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में १६ सम पंक्तियाँ हैं। जगज्जननी सीता माता के विषय में तुलसीदास को कोई भी अप्रिय घटना असहनीय थी, जैसा कि भाग१, पृष्ठ ४१-४२ तथा ऊपर पृष्ठ ७४१-४६ में स्पष्ट कर दिया गया है। इसी प्रकार सीता जी की गरिमा बनाये रखने के लिये उनके मुख से तुलसीदास जी ने कोई भी अभद्र शब्द नहीं कहलवाये। ऊपर की चौपाई में केवल संकेत किया गया है—

'मरम बचन जब सीता बोला।'

यह 'मर्म वचन' क्या थे इसके लिये हमें वाल्मीकीय रामायण के ४५वें सर्ग को देखना होगा।:

'सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ।।२४।।

तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा।
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम् ।।२५।।

उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम्।
समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ।।२६।।'

अर्थात्, लक्ष्मण ! तेरा स्वभाव बड़ा खोटा है, इसी से तू अकेला श्रीराम के साथ वन में आया है। अथवा छिप कर भरत का भेजा हुआ तू श्रीराम के साथ आया है। सो लक्ष्मण! याद रखना तेरी और भरत की यह साध कभी पूरी होने वाली नहीं। भला मैं नीलोत्पल श्याम और कमलनयन श्री रामचन्द्र को छोड़, क्यों क्षुद्र जन को अपना पति बनाऊँगी। मैं तो तेरे सामने ही अपने प्राण निश्चय ही दे दूँगी।

जनमानस में अरण्य काण्ड के सन्दर्भ में एक कथा बहुत प्रचलित है। मारीच ने मरते समय जो 'हा लक्ष्मण !' का आर्तनाद किया उसको सुनकर सीता विचलित हो गई और लक्ष्मण को अपने भाई की मदद के लिये जाने का मनुहार करने लगीं। लक्ष्मण ने जाने से इन्कार कर दिया क्योंकि एक ओर उनके भाई सीता की रक्षा का भार उनके ऊपर छोड़ गये थे, और दूसरी ओर लक्ष्मण को दृढ़ विश्वास था कि जिनके भृकुटि विलास से सारी सृष्टि का लय हो जाता है, वे श्री राम स्वप्न में भी संकट में नहीं पड़ सकते। फिर भी जब सीता ने 'मर्मवचन' बोले तो लक्ष्मण को सीता को अकेले छोड़ कर जाना ही पड़ा। जाते समय वह पर्ण कुटी के सामने अर्धचन्द्राकार रेखा अपने वाण की नोक से खींच गये और सीता को सावधान कर गए कि वह इस रेखा के बाहर कदापि न जायें। रावण जब यति का रूप धारण करके पञ्चवटी में पर्णकुटी के पास आया तो लक्ष्मण रेखा को पार करने का उसे साहस नहीं हुआ। वह जानता था कि रेखा के उस पार ज्योंहि उसने कदम बढाया वह अग्नि की ज्वाला में भस्म हो जायेगा। रेखा के बाहर खड़े-खड़े

उसने सीता को सम्बोधित करके कहा : 'भिक्षाम् देहि ।' सीता ने कपटी साधु से कहा कि वह अपने देवर की आज्ञा का उलंघन नहीं कर सकतीं और वह कंद मूल फल की भिक्षा रेखा के इस ओर देंगी और साधु स्वयं उसे उठा ले । इस पर रावण ने अपना रोष प्रकट करते हुये कहा कि 'तुम आये हुये अतिथि का अपमान कर रही हो।' इस पर सीता साधु के भूलावे में आ गयीं और रेखा के बाहर निकल आयीं । रावण ने तुरन्त अपना असली रूप प्रकट कर दिया और सीता का अपहरण कर लिया । आश्चर्य है की इस पूरे कथानक का ऊपर की चौपाई में संकेत मात्र भी नहीं है । तुलसीदास ने तो केवल इतना ही कहा है कि रावण ने सीता को 'राजनीति, भय और प्रेम' दिखलाया । इस पर सीता ने रावण से कहा कि 'तुमने दुष्ट की तरह वचन कहे ।' तदनन्तर रावण ने सीता को बर्वश अपने रथ पर बैठा लिया । लक्ष्मण-रेखा का संकेत आगे चलकर तुलसीदास जी ने लंका काण्ड में दिया है। मन्दोदरी रावण को बहुत प्रकार से समझा रही है कि वह राम का महात्म्य समझे और उनसे बैर न करे ।'जिसके छोटे भाई की खीचीं हुई रेखा को पार करने का तुम्हारा साहस नहीं हुआ उससे बैर लेना तुम्हारी कुमति है ' :

'कंत समुझि मन तजहु कुमतिही । सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही ।।
रामानुज लघु रेख खचाई । सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई ।।'

दो०– क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाई ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ।।२८।।

भावार्थ– फिर क्रोध में भर कर रावण ने सीता जी को रथ पर बैठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला । किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था ।

हा जग एक बीर रघुराया । केहिं अपराध बिसारेहु दाया ।।
आरति हरन सरन सुखदायक । हा रघुकुल सरोज दिननायक ।।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा । सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा ।।
बिबिध बिलाप करति बैदेही । भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ।।
बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा । पुरोडास जह रासभ खावा ।।
सीता कै बिलाप सुनि भारी । भए चराचर जीव दुखारी ।।
गीधराज सुनि आरत बानी । रघुकुलतिलक नारि पहिचानी ।।
अधम निसाचर लीन्हे जाई । जिमि मलेछ बस कपिला गाई ।।
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहउँ जातुधान कर नासा ।।

धावा क्रोधवंत खग कैसें । छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें ॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही । निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतांत समाना । फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥
की मैनाक कि खगपति होई । मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा । मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥
सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू । नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥
राम रोष पावक अति घोरा । होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा । तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही । दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥
तब सक्रोध निसिचर खिसिआना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम करि अद्भुत करनी ॥
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता । ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ । बन असोक महँ राखत भयऊ ॥

भावार्थ– (सीता जी विलाप कर रही थीं) 'हा जगत के अद्वितीय वीर श्री रघुनाथ जी ! आपने किस अपराध से मुझपर दया भुला दी । हे दुःखों के हरने वाले, हे शरणागत को सुख देने वाले, हा रघुकुल रूपी कमल के सूर्य ! हा लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं है । मैने क्रोध किया, उसका फल पाया ।' श्री जानकी जी बहुत प्रकार से विलाप कर रहीं है –'हा ! प्रभु की कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं । प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनाये । यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है ।' सीता जी का भारी विलाप सुनकर जड़चेतन सभी जीव दुखी हो गये । गिद्धराज जटायु ने सीता जी की दुख भरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्रजी की स्त्री हैं । (उसने देखा कि)नीच राक्षस इनको (बुरी तरह)लिये जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गई है। (वह बोला) 'हे सीते पुत्री ! भय मत कर । मैं इस राक्षस का नाश करूँगा ।' (यह कहकर)वह पक्षी क्रोध में भरकर कैसे दौड़ा, जैसे पर्वत की ओर बज्र छूटता हो । (उसने ललकार कहा) 'रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता ? निडर होकर चल दिया । मुझे तूने नहीं जाना ।' उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन में अनुमान करने लगा । यह या

तो मैनाक पर्वत (सिवालिक)है, या पक्षियों का स्वामी गरुड़। पर वह (गरुड़)तो अपने स्वामी विष्णुसहित मेरे बल को जानता है। (कुछ पास आने पर)रावण ने उसे पहचान लिया (और बोला) "यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथ रूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा।" यह सुनते ही गीध क्रोध मे भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला " रावण मेरी सिखावन सुन। जानकी जी को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओं वाले! ऐसा होगा कि श्री राम जी की क्रोध रूपी अत्यन्त भयानक अग्नि में तेरा सारा वंश पतिंगा होकर भस्म हो जायगा।" योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा। उसने रावण के बाल पकड़कर उसे रथ से नीचे उतार लिया। रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीता जी को एक ओर बैठा कर फिर लौटा और चोचों से मार-मार कर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। उससे इसे एक घड़ी के लिये मुर्छा हो गयी। तब खिसिआये हुए रावण ने क्रोध युक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और चटायु के पंख काट डाले। पक्षी (जटायु)श्री राम जी की अद्‌भुत लीला का स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़ा। सीता जी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसे भय कम न था। सीता जी आकाश में विलाप करती हुई जा रही थीं मानो व्याध के वश में पड़ी हुई कोई भयभीत हिरनी हो। पर्वत पर बैठे हुये बन्दरों को देखकर सीता जी ने हरि नाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीता जी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रखा।

टिप्पणी– ऊपर अरण्य काण्ड की सबसे लम्बी चौपाई है। इसमें २६ सम पंक्तियां हैं। इसमें सीता-अपहरण, सीता का विलाप, रावण और जटायु का युद्ध, और सीता को ले जाकर अशोक वाटिका में रखने की कथा है।

दो०– हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥२९(क)॥

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥२९(ख)॥

भावार्थ– सीता जी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया। जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्री रामजी दौड़ चले थे, उसी छबि को हृदय में रखकर वे हरिनाम (रामनाम)रटती रहती हैं।

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥

गहि पद कमल अनुज कर जोरी । कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥
अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥
आश्रम देखि जानकी हीना । भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥
हा गुन खानि जानकी सीता । रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं । प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥
पूरनकाम राम सुख रासी । मनुजचरित कर अज अबिनासी ॥
आगें परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

भावार्थ– इधर श्री रघुनाथ जी ने छोटे भाई-लक्ष्मण जी को आते देखकर बाह्य रूप से बहुत चिन्ता की और कहा–'हे भाई ! तुमने जानकी को अकेला छोड़ दिया और मेरा वचन टालकर यहाँ चले आये । राक्षसों के झुंड वन में फिरते रहते हैं । मेरे मन में ऐसा आता है कि सीता आश्रम में नहीं है ।' छोटे भाई लक्ष्मण जी ने श्री राम के चरण पकड़कर हाथ जोड़कर कहा–'हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है ।' लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री राम जी वहाँ गये जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था । आश्रम को जानकी जी से रहित देखकर श्री राम साधारण मनुष्य की भाँति ब्याकुल और दीन (दुखी)हो गये । (वे विलाप करने लगे–) 'हा, गुणों की खान जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते!' लक्ष्मण जी ने बहुत प्रकार से समझाया । श्री राम जी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछतें हुए चले । ''हे पक्षियो ! हे पशुओं!हे भौरों की पक्तियों ! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है ? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौरों का समूह, प्रवीण कोयल, कुन्द कली, अनार, बिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा और नागिनी, वरुण का पाशा, कामदेव का धनुष, हँस, गज और सिंह ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं । बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं । इनके मन में ज़रा सी भी शंका और संकोच नहीं है । हे जानकी ! सुनों तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानों राज पा गये हैं । (अर्थात तुम्हारे अंगों के

सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित हैं। आज तुम्हें न देखकर,ये अपनी शोभा के अभिमान में फूल रहे हैं)।

तुम से यह अनख (स्पर्द्धा)कैसे सही जाती है ? हे प्रिये तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होतीं ?'' इस प्रकार (अनन्त ब्रह्माण्डों के अथवा महिमामयी स्वरूपा शक्ति श्री सीता जी के)स्वामी श्री रामजी सीता को खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो। पूर्णकाम, आनन्द की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्री राम जी मनुष्यों के से चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होंने गृध्रपति जटायु को पड़ा देखा। वह श्रीराम जी के चरणों का स्मरण कर रहा था, जिसमें ध्वजा, कुलिश आदि की रेखाएँ (चिन्ह)हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १८ सम पंक्तियाँ हैं। बालकाण्ड में दोहा २३७ और उसके नीचे की चौपाई में (पृष्ठ २७७)राम चन्द्रमा को देखकर कहने लगे कि चन्द्रमा से सीता के मुख की उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि चन्द्रमा का जन्म खारे समुद्र से हुआ है और विष उसका भाई है। वह घटता बढ़ता रहता है। उसको राहु ग्रसता है। वह कोक के लिये शोकप्रद है। और कमल का द्रोही है। जिसमें इतने दोष हैं, उससे सीता के मुख की बराबरी कैसे की जा सकती है। फिर आगे चलकर दोहा २४६ के नीचे की चौपाई (पृष्ठ २८६)में तुलसीदास जी कहते हैं कि कवियों की सब उपमायें लौकिक स्त्रियों के लिये हैं। जगज्जनिनी जानकी की शोभा के वर्णन के लिये सब उपमायें तुच्छ लगती हैं। तीनों देवियों—सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी—में कुछ न कुछ कमी है। सरस्वती बहुत बोलने वाली हैं ; पार्वती अर्धांगिनी है ; रति भी अपने पति कामदेव को अनंग पाकर दु:खी रहती है। इसलिए सीता हर प्रकार से अनोपमेय है। इसी बात को पुन: ऊपर की चौपाई में दोहराया गया है। जब सीता को रावण हर ले गया और राम उसको वन-वन में ढूँढते फिर रहे हैं, तो आत्मग्लानि से विभोर होकर वह कहते हैं–

'खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।।'

स्त्री के नेत्रों की उपमा खंजन पक्षी, हिरण और मछली के नेत्रों से दी जाती है। उसकी नाक की उपमा तोते की नाक से दी जाती है। उसके बालों की उपमा भौरों से दी जाती है। उसकी गर्दन की उपमा कपोत की गर्दन से दी जाती है। और उसकी वाणी की

उपमा कोयल के बोल से दी जाती है। उसके स्तनों की उपमा नारियल से दी जाती है। उसकी कमर की उपमा सिंह की कमर से दी जाती है। उसकी जंघा की उपमा केले के पेड़ के तने से दी जाती है। उसके शरीर की उज्ज्वलता की उपमा चन्द्रमा, कुंद की कली और बिजली से दी जाती है। उसकी चाल की उपमा हाथी की चाल से दी जाती है। राम कहते हैं कि जब से सीता का जन्म हुआ यह सब उपमान फीके पड़ गये थे। अब जब सीता का हरण हो गया है तो यह सब उपमान हर्षित हो रहे हैं। क्योंकि अब लौकिक स्त्रियों का नख-शिख वर्णन कवि लोग फिर से इन्हीं उपमानों के सहारे करेंगे। अन्त में राम अदृश्य सीता को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि 'हे सीते तुमसे यह स्पर्धा कैसे सही जाती है ? तुम शीघ्र क्यों नहीं प्रकट होतीं ?'

दो०— कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ।।३०।।

भावार्थ— कृपा सागर श्री रघुबीर ने अपने कर-कमल से उसके सिर का स्पर्श किया (उसके सिर पर कर-कमल फेर दिया)। शोभाधाम श्री रामजी का (परमसुन्दर)मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही।

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा ।।
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही ।।
लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं ।।
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना।
राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ।।
जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ।।
सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें ।।
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई ।।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ।।

भावार्थ— तब धीरज धर कर गीध ने यह वचन कहा— "हे भव (जन्म-मृत्यु) के भय का नाश करने वाले श्री राम जी ! सुनिये। हे नाथ ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकी जी को हर लिया है। हे गोसाई ! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीता जी कुररी (मादा क्रौञ्च)की तरह अत्यन्त विलाप कर रहीं थी। हे प्रभो ! मैंने आपके दर्शनों के लिये ही प्राण रोक रक्खे हैं। हे कृपा निधान ! अब ये चलना चाहते हैं।" श्री रामचन्द्रजी ने कहा— 'हे तात ! शरीर को बनाये रखिये।' तब उसने मुस्कराते हुए मुँह

से यह बात कही–''मरते समय जिनका नाम मुख में आ जाने से अधम (महापापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद कहते हैं। वही (आप)मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ ! अब मैं किस कमी की पूर्ति के लिये देह को रक्खूँ ?'' नेत्रों में जल भरकर श्री रघुनाथ जी कहने लगे– ''हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से दुर्लभ गति पायी है। जिनके लिये जगत में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाइये। मैं आपको क्या दूँ ? आप तो पूर्ण काम हैं (सब कुछ पा चुके हैं)।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। इस चौपाई की अंतिम दो पंक्तियाँ बहुत मार्मिक हैं। मरते हुये जटायु से राम कहते हैं कि जिनका मन दूसरों के हित के लिये सदा लालायित रहता है उसके लिये जगत में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं। जटायु ने सीता को रावण के चंगुल से बचाने के लिये अपने प्राण भी न्यौछावर कर दिये। परहित के कारण जटायु पूर्ण काम हो गया, अर्थात् सब कुछ पा चुका इसलिये राम कहते हैं कि ऐसे पूर्ण काम व्यक्ति को वह क्या दें ? वह एक ही वरदान दे सकते हैं कि इस भौतिक शरीर को त्याग कर वह (जटायु)मेरे परमधाम (बैकुंठ)में जाय।

दो०– सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ।।३१।।

भावार्थ– हे तात ! सीता हरण की बात आप जाकर पिता जी से न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा।''

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।

भावार्थ– जटायु ने गीध की देह त्याग कर हरि का रूप धारण किया और बहुत से अनुपम (दिव्य) आभूषण और दिव्य पीताम्बर पहन लिये। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ है और नेत्रों में (प्रेम तथा आनन्द के आँसुओं का)जलभर कर वह स्तुति कर रहा है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई समस्त रामचरितमानस में एक अपवाद रूप विद्यमान है। दोहे के बाद मानस में निरन्तर चौपाईयाँ आती हैं परन्तु ये चौपाईयाँ कम से कम पांच पंक्तियों की और ज्यादा से ज्यादा ३७ पंक्तियों की हैं। दोहे और छंद के बीच में एक चौपाई में तुलसीदास जी ने एक बड़े चमत्कार का प्रदर्शन किया है। जब राम ने जटायू को मरते समय सद्गति दी,तो उससे एक विनय की कि आप मेरे परम धाम (बैकुंठ)को जा तो रहे हैं। परन्तु जब वहाँ मेरे पिता जी आप को मिलें तो आप उनसे सीता अपहरण की बात मत कहियेगा।

यह बात रावण अपने मुख से स्वयं कहेगा। यह बात सुनते ही गिद्ध राज ने अपना शरीर त्याग दिया और तुरन्त बैकुंठ में जाने के लिये स्वयं भगवान का शरीर धारण किया। उसके चार विशाल भुजायें थीं, दिव्य पीताम्बर और आभूषण पहने था। इसी भेष मे बैकुंठ जाने के पूर्व उसने नेत्रों में प्रेमाश्रु भर कर, राम की स्तुति की, जो नीचे के छंद में है।

छं०— जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही।।
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं।।१।।

बलप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं।।
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं।।२।।

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं।।
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई।।३।।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा।।
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी।।४।।

भावार्थ— हे रामजी! आपकी जय हो! आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और साथ ही गुणों के (माया के) प्रेरक हैं। दस सिर वाले रावण की प्रचण्ड भुजाओं को खण्ड-खण्ड करने के लिये प्रचण्ड बाण धारण करने वाले, पृथ्वी को सुशोभित करने वाले, जलयुक्त मेघ के समान श्याम शरीर वाले, कमल के समान मुख और (लाल) कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, विशाल भुजाओं वाले और भव-भय से छुड़ाने वाले कृपालु श्री राम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। आप अपरिमित बल वाले हैं, अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक, अगोचर (अलक्ष्य), गोविंद (वेदवाक्यों द्वारा जानने योग्य), इन्द्रियों से अतीत, जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वन्दों को हरने वाले, विज्ञान की

घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं। तथा जो संत राम-मन्त्र को जानते हैं, उन निष्काम जनों के प्रिय तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट वृत्तियों)के दल का दलन करने वाले, श्री राम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। जिनको श्रुतियां निरञ्जन (माया से परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्म रहित कह कर गान करती हैं, मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य, और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं , वे ही करुणाकन्द, शोभा के समूह (स्वयं श्री भगवान)प्रकट होकर जड़-चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय-कमल के भ्रमररूप उनके अंग-अंग में बहुत से कामदेवों की छबि शोभा पा रही है। जो अगम और सुगम हैं, निर्मल स्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शान्त)हैं। मन और इन्द्रियों को सदा वश में करते हुए योगी बहुत साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं, वे तीनों लोकों के स्वामी रमानिवास श्री रामजी निरन्तर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटाने वाली है।

टिप्पणी—बालकाण्ड में दोहा १८५ के नीचे ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की है और दोहा २१० के नीचे अहिल्या ने राम की। राम की स्तुति करके अहिल्या बैकुण्ठ सिधारी। इसी प्रकार यहाँ जटायु ने राम की स्तुति करके स्वर्गारोहण किया।

दो०— अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ।।३२।।

भावार्थ— अखण्ड भक्ति का वर माँगकर गृधराज जटायु श्री हरि के परमधाम को चला गया। श्री रामचन्द्र जी ने उसकी दाह कर्म आदि सारी क्रियायें यथायोग्य अपने हाथों से कीं।

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथा कृपाला ।।
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी ।।
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ।।
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ।।
संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ।।
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता ।।
दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ।।
सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ।।

भावार्थ— श्री रघुनाथ जी अत्यन्त कोमल चित्त वाले, दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध पक्षियों में भी अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी जिसे योगीजन मांगते रहते हैं। (शिवजी कहते हैं—)'हे पार्वती! सुनों, वे लोग अभागे

हैं जो भगवान को छोड़कर विषयों से अनुराग करते हैं।' फिर दोनों भाई सीता जी को खोजते हुये आगे चले । वे बन की सघनता देखते जाते हैं । वह सघन बन लताओं और वृक्षों से भरा है, उसमें बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं । श्री राम जी ने रास्ते में आते हुये कंबध राक्षस को मारा । उसने शाप की सब बात कही । (वह बोला—) 'दुर्बासा जी ने मुझे शाप दिया था । अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया ।' (श्री राम जी ने कहा–) ''हे गन्धर्व ! सुनों मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मण कुल से द्रोह करने वाला मुझे नहीं सुहाता ।

अन्तर्कथा– कबन्ध एक गन्धर्व था । यह काश्यप-पत्नी दनु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ब्रह्मा ने इसे दीर्घायु होने का वर दिया था । ब्रह्मा के वर से गर्वित होकर यह सदा इंद्र का अपमान किया करता था, इस कारण इंद्र ने वज्राघात से इसके उरु, मुख और मस्तक तोड़ दिये । राक्षस बोला, ब्रह्मा के बल से मैं दीर्घायु हुआ हूँ परन्तु इस समय आपके वज्राघात से भग्नशिर और भग्नमुख होकर किस प्रकार जी सकता हूँ । ब्रह्मा के वचन को तो व्यर्थ नहीं होना चाहिये । तब देवराज इन्द्र ने इसकी दोनो भुजाओं को योजन परिमित दीर्घ बना दिया और इसके पेट के भीतर तीक्ष्ण दांतयुक्त मुंह बना दिया । तब से यह दंडकारण्य में रहनें लगा और सिंह-व्याघ्र आदि को हाथों से पकड़कर खाने लगा । यह ऋषियों को पीड़ित किया करता था । स्थूलशिरा नामक एक ऋषि ने शाप देकर इसे कुत्सित राक्षस बना दिया, परन्तु जब इसने अनुनय किया तब प्रसन्न होकर महर्षि ने कहा कि श्री रामचन्द्र जी के द्वारा तुम्हारी बांहे काटी जाने पर तुम मुक्त हो जाओगे । जिस समय रामचन्द्र दंडकारण्य में आये, उस समय उनके द्वारा छिन्नबाहु होकर कबंध शापमुक्त हुआ था ।

दो०— मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव ।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस तार्कें सब देव ।।३३।।

भावार्थ– मन, कर्म और वचन से कपट छोड़कर जो भू-देवों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं।

सापत ताड़त परुष कहंता । बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ।।
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना । सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ।।
कहि निज धर्म ताहि समुझावा । निज पद प्रीति देखि मन भावा ।।
रघुपति चरन कमल सिरु नाई । गयउ गगन आपनि गति पाई ।।
ताहि देइ गति राम उदारा । सबरी कें आश्रम पगु धारा ।।
सबरी देखि राम गृहँ आए । मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ।।
सरसिज लोचन बाहु बिसाला । जटा मुकुट सिर उर बनमाला ।।

स्याम और सुंदर दोउ भाई । सबरी परी चरन लपटाई ॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥

भावार्थ– शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर बचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य है, ऐसा संत कहते हैं । शील और गुण से हीन ब्राह्मण पूजनीय है । और गुणगणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है ।'श्री राम जी ने अपना धर्म (भागवत धर्म)कहकर उसे समझाया । अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को भाया । तदन्तर श्री रघुनाथ जी के चरण-कमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति (गन्धर्व का स्वरूप)पाकर आकाश में चला गया । उदार श्री राम जी उसे गति देकर शबरी के आश्रम में पधारे । शबरी ने श्री रामचन्द्र जी को घर में आये देखा । तब मुनि मतंग जी के वचनों को याद करके उसका मन प्रसन्न हो गया। कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर बनमाला धारण किये हुये सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ी । वह प्रेम में मग्न हो गयी, मुख से वचन नहीं निकलता । बार-बार चरण-कमलों में सिर नवा रही थी । फिर उसने जल लेकर आदर पूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनों पर बैठाया ।

पात्र परिचय– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । कथानक को बढ़ाते हुये, तुलसीदास जी कहते हैं कि कबन्ध को श्राप-मुक्त करके, राम आगे चलकर 'शबरी के आश्रम' में पहुँचे । वास्तव में यह मतंग ऋषि का आश्रम था । शबरी शवर अनुसूचित जन-जाति की कन्या थी जो बचपन से इस आश्रम की सेविका और परिचारिका थी ।

धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों के सानिध्य से शबरी को परमात्मा के तत्व का नित्य ज्ञान प्राप्त था । इस स्थान पर भावितात्मा मतंग ऋषि ने गायत्री मन्त्र के जप से विशुद्ध हुये अपने देहरूपी पञ्जर को मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्नि में होम दिया था । जाते समय उन्होंने शबरी से कहा :'तेरे इस परम पवित्र आश्रम पर श्री राम चन्द्र जी पधारेंगे और लक्ष्मण के साथ तेरे अतिथि होंगे । तुम उनका यथावत् सत्कार करना । उनका दर्शन करके तू श्रेष्ठ एवम् अक्षय लोकों में जायेगी ।'

फलतः राम का आथित्य-सत्कार और वन्दना करके, शबरी ने उनसे कहा, 'मैं आपकी आज्ञा लेकर इस देह का परित्याग करना चाहती हूँ । जिनका यह आश्रम है और जिनके चरणों की मैं दासी रही हूँ, उन्हीं पवित्रात्मा महर्षियों के समीप अब मैं जाना चाहती हूँ ।'

तदन्तर श्री राम ने शबरी से कहा, 'भद्रे ! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया । अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार आनन्दपूर्वक अभीष्ट लोक की यात्रा करो ।'श्री रामचन्द्र जी के इस

प्रकार आज्ञा देने पर शबरी ने अपने को आग में होमकर प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी शरीर प्राप्त किया। सुदाम पर्वत पर प्रकट होने वाली बिजली के समान उस प्रदेश को प्रकाशित करती हुई स्वर्ग (साकेत) लोक को चली गयी। एक बात और ध्यान में देने योग्य है। शबरी बहुत वृद्ध तपस्विनी थी। नीति से वर्गबाह्य थी। अपना परिचय उसने इस प्रकार दिया;

'...अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।'

उसकी आत्म-ग्लानि को मिटाने के लिये, श्री राम ने निरन्तर उसको 'भामिनी' कहके सम्बोधित किया है। 'भामिनी' सुन्दर स्त्री को कहते हैं। वाल्मीकिय रामायण में भी श्री राम ने उसको 'तपोधने' और 'भद्रे' कह कर सम्बोधित किया है।* समस्त रामायण में स्त्री के लिये 'भामिनि' शब्द का प्रयोग या तो दशरथ ने कैकेयी के लिये किया, या राम ने शबरी के लिए। शुरू में दशरथ ने केवल 'सुमुखि, सुलोचनि, पिकबचनी, गजगामिनी' का प्रयोग किया है **। यह सब विशेषण शरीरिक बाह्य सौन्दर्य के हैं। 'भामिनि' शब्द शबरी के आन्तरिक सौन्दर्य का द्योतक है।

दो०— कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ।।३४।।

भावार्थ— उसने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्री राम जी को दिये। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

पानि जोरि आगें भई ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ।।
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ।।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।

---

* देखिये वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, ७४ सर्ग

**देखिये अयोध्याकाण्ड, सोरठा २५, पृष्ठ ४१७

भावार्थ– फिर वह हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयी। प्रभु को देखकर उसका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। (उसने कहा–) 'मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ! मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ। जो अधम से भी अधम हैं, स्त्रियाँ, उनमें भी मैं अत्यन्त अधम हूँ और उनमें भी हे पाप नाशन ! मैं मंदबुद्धि हूँ।' श्री रघुनाथ जी ने कहा– ''हे भामिनी! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्ति ही का सम्बन्ध मानता हूँ। जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता, इन सब के होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य ऐसा लगता है, जैसे जलहीन बादल शोभाहीन दिखायी पड़ता है। मैं तुझ से अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम।

दो०– गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥३५॥

भावार्थ– तीसरी भक्ति है अभिमान रहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा। और चौथी भक्ति है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करे।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहु आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी॥
पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा॥
बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥

भावार्थ– मेरे मन्त्र (राम का जाप) और मुझ में दृढ़ विश्वास यह पाँचवी भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र) बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सत्पुरुषों के आचरण (धर्म) में लगे रहना। सातवीं भक्ति है जगत भर को समभाव से मुझ में ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझ से भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना और स्वयं

में भी पराये दोषों को न देखना। नवीं भक्ति है सरलता और सब के साथ कपट रहित बर्ताव करना। हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद)का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन,कोई भी हो–हे भामिनि ! मुझे वही अत्यन्त प्रिय है। फिर तुझ में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ हैं। अतएव जो गति योगियों को दुर्लभ है, वही तेरे लिये आज सुलभ हो गयी है। मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि ! अब यदि तू गजगामिनी जानकी की कुछ खबर जानती हो, तो बता।'' (शबरी ने कहा–) 'हे रघुनाथ जी ! आप पंपा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव ! हे रघुनाथ ! वह सब हाल बतायेगा। हे धीर बुद्धि ! आप सब जानते हुये भी मुझ से पूछते हैं।' बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर प्रेम सहित उसने सब कथा सुनाई।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १३ विषम पंक्तियाँ हैं। इस चौपाई में और इसके ऊपर के दोहे और चौपाई में भी श्री राम ने शबरी को नवधा भक्ति का स्वरूप समझाया है। जब शबरी ने अपने को नीच जाति का, मतिमन्द और नारी होने के कारण अधमो अधमा कहा तो श्री राम ने उसको सांत्वना देते हुये समझाया कि जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता यह सब भक्ति के आगे गौण है। राम तो केवल भक्ति के वश में हैं। भक्ति नौ प्रकार की होती है, परन्तु शबरी में तो नवों प्रकार की भक्ति विद्यमान थीं। इसलिए वह प्रभुपद (बैकुण्ठ) की अधिकारी थी। नवधा भक्ति इस प्रकार हैं :-

१- संतो का संग–सत्संग

२- राम कथा सुनने की स्पृहा-हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता (देखिये पृष्ठ १८२)

३- गुरु की सेवा।

४- कपट छोड़कर, हरिगुणगान करना।

५- रामनाम का जप करना और भगवान में दृढ़ विश्वास।

६- इन्द्रियों का निग्रह, शील चरित्र और निरन्तर सत्पुरुषों के आचरण में लगे रहना।

७- जगत भर को समभाव से भगवान में ओत-प्रोत देखना–'सिय राम मैं सब जग जानी' (देखिए पृष्ठ२२)।

८- जो कुछ मिल जाये उसी में सन्तोष करना–परिग्रह परिमाण। स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना

९- सरलता और सबके साथ कपट रहित बर्ताव करना–आर्जव।

छं०— कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे ।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ।।
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू ।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू ।।

भावार्थ— सब कथा कहकर भगवान के मुख के दर्शन कर, हृदय में चरण कमलों को धारण कर लिया, और योगाग्नि से देह को त्यागकर (जलाकर)वह उस दुर्लभ हरिपद मे लीन हो गयी, जहाँ से लौटना नहीं होता । तुलसीदास जी कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत से मत, ये सब शोक प्रद हैं । हे मनुष्यों ! इनका त्याग कर दो, और विश्वास करके श्री राम जी के चरणों में प्रेम करो ।

टिप्पणी— ऊपर के छन्द में यह बताया गया है कि शबरी ने भगवान के दर्शन कर, योगाग्नि प्रज्वलित कर उसमें अपने पार्थिव शरीर को भस्म कर दिया और दुर्लभ हरिपद में लीन हो गयी । इस घटना का वाल्मीकिय रामायण में अरण्यकाण्ड के ७४ वें सर्ग में बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है (देखिए पृष्ठ ७६३)।

दो०— जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ।।३६।।

भावार्थ— जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता हैं?

चले राम त्यागा बन सोऊ । अतुलित बल नर केहरि दोऊ ।।
बिरही इव प्रभु करत बिषादा । कहत कथा अनेक संबादा ।।
लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा ।।
नारि सहित सब खग मृग बृंदा । मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ।।
हमहि देखि मृग निकर पराहीं । मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ।।
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए । कंचन मृग खोजन ए आए ।।
संग लाइ करिनीं करि लेहीं । मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं ।।
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ।।
राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ।।
देखहु तात बसंत सुहावा । प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी ने उस बन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले । दोनों भाई अतुलनीय बलवान और मनुष्यों में सिंह के समान हैं । प्रभु विरही की तरह विचार

करते हुये अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं—"हे लक्ष्मण ! यहाँ बन की शोभा तो देखो, इसे देखकर किस का मन क्षुब्ध नहीं होगा? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानों वो मेरी निन्दा कर रहे है। हमें देखकर (जब डर के मारे) हिरनों के झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं—'तुम को भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरणों में पैदा हुये हो, अतः तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरण खोजने आये हैं।' हाथी हथनियों को साथ लगा लेते हैं। वे मानों मुझे शिक्षा देते हैं (कि स्त्री को कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिये)। भलीभाँति चिन्तन किये हुये शास्त्र को भी बार-बार देखते रहना चाहिये। अच्छी तरह सेवा किये हुये राजा को भी वश में नहीं समझना चाहिये। और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रक्खा जाये, परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राज्य किसी के वश में नहीं रहते। हे तात ! इस सुन्दर बसन्त को तो देखो, प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। इसमें दो विभिन्न भावों का विश्लेषण किया गया है। शुरू की पंक्तियों में राम की आत्म-ग्लानि है। उन्हें देखकर जब हिरण के झुण्ड भागने लगे, तब हिरणियां उन्हें समझाती हैं —'तुम व्यर्थ के भय से भाग रहे हो। इन्हें तो स्वर्ण के हिरण की तलाश है। साधारण हिरण से इनका कोई प्रयोजन नहीं।' अर्थात्, हिरणियाँ राम पर कटाक्ष करती हैं कि भगवान के अवतार होते हुये भी, उन्हें यह समझ नहीं आई कि हिरण स्वर्ण का नहीं होता है। दण्डकारण्य में वह मारीच के कपट जाल में कैसे फंस गये। ऐसी भूल तो एक साधारण व्यक्ति भी नहीं करता है (देखिये पृष्ठ ७४८-४९)।

लक्ष्मण के सन्मुख इस प्रकार अपनी आत्म-ग्लानि प्रकट करने के पश्चात्, राम एक और तथ्य का निरूपण करते हैं। उन्होंने देखा कि हाथी हथनियों को अपने बीच में करके चल रहे हैं। जब पशु अपनी मादा की इस प्रकार रक्षा करते हैं, तो पुरुषों को भी उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। स्त्री, विशेषकर युवती स्त्री, को कभी भी अकेला निःसहाय नहीं छोड़ना चाहिये। उन्होंने ऐसी गलती की। परिणाम, रावण ने सीता का पञ्चवटी में अपहरण कर लिया। न केवल स्त्री, अपितु शास्त्र और राजा के प्रति भी सर्वदा जागरूक रहना चाहिये। भलीभाँति चिन्तन किये हुये शास्त्र को बार-बार देखते रहना चाहिये। मनुष्य को यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि वह सर्वगुणसम्पन्न विद्या में पारंगत है। पाठ को बार-बार दोहराना चाहिये।

इसी प्रकार अच्छी तरह सेवा किये हुये राजा को भी वश में नहीं समझना चाहिये। राजा से निरन्तर सावधान रहना चाहिये।

दो०— बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥३७(क)॥
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात॥३७(ख)॥

भावार्थ– मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेव ने बन, भौरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया। परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाई के साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ)तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना रोक कर डेरा डाल दिया है।

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर भुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥
मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥
लछिमन देखत राम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥
एहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥

भावार्थ– विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकार के तंबू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता जिसका मन धीर है। अनेकों वृक्ष नाना प्रकार से फूले हुये हैं। मानों अलग-अलग बाना (वर्दी)धारण किये हुये बहुत से तीरंदाज़ हों। कहीं कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धा लोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों। कोयलें कूज रही हैं, मानो मतवाले हाथी चिंग्घाड़ रहे हैं। ढेक और महोख पक्षी मानों ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर, और हंस मानों सब सुन्दर ताजी (अरबी)घोड़े हैं। तीतर और बटेर पैदल सिपाहियों के झुण्ड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुण समूह का (विरदावली का)वर्णन करते हैं। भौरों की गुंजार भेरी और शहनाई हैं। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूत का काम लेकर आयी है। इस प्रकार चतुरंगिणी सेना साथ लिये, कामदेव मानो सब को चुनौती देता विचर रहा है। हे लक्ष्मण ! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत में उन्हीं की वीरों में प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव के एक स्त्री का बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाये, वही श्रेष्ठ योद्धा है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं। सीता के विरह में दुःखी राम बन की सम्पदा को देखकर लक्ष्मण से कहते हैं कि बन के पशु पक्षियों और बनस्पति मानो कामदेव की सेना है, जो मुझे घेरने आई है। रूपक इस प्रकार बाँधा गया है—

१- वृक्षों में लतायें उलझी हुई तम्बू के समान हैं।

२- केले और ताड़ के वृक्ष मानों सेना की ध्वजा पताका हैं।

३- वृक्षों में जो फूल आये हुये हैं मानों वह सिपाही अपनी वर्दी पहने हैं।

४- सुन्दर वृक्ष मानो योद्धा लोग हैं।

५- कोयलों की कूज मानो हाथी की चिंग्घाड़ है।

६- ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं।

७- मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हँस मानो अरबी घोड़े हैं।

८- तीतर और बटेर मानो सिपाही हैं।

९- पर्वतों की शिलाये मानो रथ हैं।

१०- जल के झरने मानो नगाड़े हैं।

११- पपीहे मानो भाट हैं जो विरदावली गा रहे हैं।

१२- भौरों की गुंजार मानो भेरी शहनाई है।

१३- शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु मानों दूत हैं।

इस प्रकार मानो कामदेव अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर राम को चुनौती देने आया है।

दो०— तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ।।३८(क)।।

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ।।३८(ख)।।

भावार्थ— हे तात ! काम, क्रोध और लोभ, ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पलभर में मुग्ध कर देते हैं। लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है, काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बल है;श्रेष्ठ मुनि विचार कर ऐसा कहते हैं।''

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई ॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम कीं दाया ॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

भावार्थ– (शिवजी कहते हैं–) "हे पार्वती ! श्री रामचन्द्र जी गुणातीत (तीनो गुणों से परे), चराचर जगत के स्वामी और सब के अन्तर की जानने वाले हैं। (उपर्युक्त बातें कहकर) उन्होंने कामी लोगों की दीनता (बेबसी) दिखलायी है और धीर (विवेकी) पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया । क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये सभी श्री रामजी की दया से छूट जाते हैं । वह नर (नटराज भगवान) जिस पर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इन्द्रजाल (माया) में नहीं भूलता । हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ– हरि का भजन ही सत्य है, यह सारा जगत तो स्वप्न की भाँति असत् है ।" फिर प्रभु श्री राम जी पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये । उसका जल संतों के हृदय जैसा निर्मल है । मन को हरने वाले चार घाट बँधे हुये है । भाँति-भाँति के पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं । मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी है।

दो०– पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म ।।३९(क)।।
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ।।३९(ख)।।

भावार्थ– घनी पुरइनों (कमल के पत्तों) की आड़ में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया से ढके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता । उस सरोवर के अत्यन्त अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं । जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं ।

बिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रबाक बक खग समुदाई । देखत बनई बरनि नहिं जाई ॥

सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

भावार्थ– उसमें रंग बिरंगे कमल खिले हुये हैं। बहुत से भौंरे मधुर स्वर में गुंजार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहंस बोल रहे है। मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो रास्ते में जाते हुये पथिकों को बुलाये लेती है। उस झील (पंपासरोवर) के समीप मुनियों ने आश्रम बना रक्खे हैं। उसके चारों ओर बन के सुन्दर वृक्ष हैं। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि– बहुत प्रकार के वृक्ष नये नये पत्तों और (सुगन्धित) पुष्पों से युक्त हैं, जिन पर भौरों के समूह गुंजार रहे हैं। स्वभाव से ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मन को हरने वाली हवा सदा बहती रहती है। कोयले 'कुहूँ-कुहूँ' ध्वनि कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियों का भी ध्यान टूट जाता है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियां हैं। इसमें पम्पा सरोवर के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बहती रहती है। कोयल कूकती रहती है। चम्पा, मौलश्री, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि बहुत प्रकार के वृक्ष लगे हैं।

दो०– फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥४०॥

भावार्थ– फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ गये हैं। जैसा परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर विनय से झुक जाते हैं।

लोकोक्ति– ऊपर के दोहे में एक बहुत प्रिय और प्रचलित लोकोक्ति है। जैसे फल के भार से वृक्ष झुक जाता है, उसी प्रकार एक परोपकारी पुरुष, धनाढ्य होने पर भी विनय भाव से झुका रहता है।

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए । अस्तुति करि निज धाम सिधाए ॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला । कहत अनुज सन कथा रसाला ॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी । नारद मन भा सोच बिसेषी ॥
मोर साप करि अंगीकारा । सहत राम नाना दुख भारा ॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई । पुनि न बनिहि अस अवसरु आई ॥
यह बिचारि नारद कर बीना । गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥
गावत राम चरित मृदु बानी । प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लिए उठाई । राखे बहुत बार उर लाई ॥
स्वागत पूँछि निकट बैठारे । लछिमन सादर चरन पखारे ॥

भावार्थ– श्री राम जी ने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुन्दर उत्तम वृक्ष की छाया देखकर श्री रामचन्द्र जी छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित बैठ गये। फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने धाम को चले गये। कृपालु श्री राम जी परम प्रसन्न बैठे हुये छोटे भाई लक्ष्मण जी से रसीली कथायें कह रहे हैं। भगवान को बिरह युक्त देखकर नारद जी के मन में विशेष रूप से सोच हुआ। (उन्होंने विचार किया कि) मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्री राम जी नाना प्रकार से दु:खों का भार सह रहे हैं (दु:ख उठा रहे हैं)। ऐसे (भक्तवत्सल)प्रभु को जाकर देखें। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचार कर नारद जी हाथ में वीणा लिये हुये वहाँ गये, जहाँ प्रभु सुख पूर्वक बैठे हुये थे। वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान-बखान कर रामचरित का गान करते हुये चले जा रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्री रामचन्द्र जी ने नारद को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा। फिर स्वागत (कुशल)पूछ कर पास बैठा लिया। लक्ष्मण जी ने आदर के साथ उनके चरण धोये।

अन्तर्कथा– ऊपर की चौपाई में ११ विषम पंक्तियाँ है। नारद ने विष्णु को क्यों, कब और क्या श्राप दिया, इसकी अन्तर्कथा के लिये देखिये बालकाण्ड, पृष्ठ १६८-७९।

दो०– नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि ।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥४१॥

भावार्थ– बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारद जी कमल सदृश हाथों को जोड़कर वचन बोले।

सुनहु उदार सहज रघुनायक । सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी । जद्यपि जानत अंतरजामी ॥

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ । जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी । जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मांगी ॥
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें । अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई । अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

भावार्थ–'हे स्वभाव से ही उदार श्री रघुनाथ जी ! सुनिये । आप अगम और सुगम वर देने वाले हैं । हे स्वामी मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते हैं ।'

(श्री राम जी ने कहा–) 'हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते हो । क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूं । मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगती है जिसे हे श्रेष्ठ मुनि ! तुम नहीं माँग सकते । मुझे भक्त के लिये कुछ अदेय नहीं है । ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो ।' तब नारद जी हर्षित होकर बोले "मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ। यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं, और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ ! रामनाम सब नामों से बढ़कर, और पाप रूपी पक्षियों के समूह के लिये वह बधिक के समान हो ।

दो०– राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम ।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुं भगत उर ब्योम ॥४२(क)॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ ॥४२(ख)॥

भावार्थ– आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है, उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदय रूपी आकाश में निवास करेंगे ।" कृपासागर श्री रघुनाथ जी ने मुनि से 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा । तब नारद जी ने मन में अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया ।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी । पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता । प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥
जनहि मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥

भावार्थ— श्री रघुनाथ जी को अति प्रसन्न जानकर नारद जी फिर कोमल वाणी बोले—हे रामजी ! हे रघुनाथ जी ! सुनिये, जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था, तब मैं विवाह करना चाहता था । प्रभु आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया?' (प्रभु बोले—) ''मुनि ! सुनो मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझ को ही भजते हैं मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूं जैसे माता बालक की रक्षा करती है । छोटा बच्चा जब आग और सांप को पकड़ने दौड़ता है, तो वहाँ माता उसे (अपने हाथों)अलग करके बचा लेती है । किन्तु जब वह सयाना हो जाता है तब उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती । (अर्थात मातृ परायण शिशु की तरह फिर उसको बचाने की चिन्ता नहीं करती, क्योंकि वह माता पर निर्भर न रह कर अपनी रक्षा आप करने लगता है)। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने)पुत्र के समान और (तुम्हारे जैसा)अपने बल का मान न करने वाला सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है । मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानी को)अपना बल होता है । पर काम-क्रोध रूपी शत्रु तो दोनों के लिये हैं । भक्त के शत्रुओं के मारने की जिम्मेदारी मुझ पर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है परन्तु अपने बल को मानने वाले ज्ञानी के शत्रुओं का नाश करने की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है । ऐसा विचार कर पण्डितजन (बुद्धिजन लोग)मुझको ही भजते हैं । वे ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ १०८ पर जो चौपाई है उसमे नारद ने राम से कहा कि आपके अनेक रूप में अवतार हुये हैं किन्तु मुझे 'रामावतार' में भक्ति का वरदान दीजिये । इस पर राम ने 'एवमस्तु ' कहा । फिर जब नारद ने पूछा कि जब मैं विवाह करना चाहता था तब आपने मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया (देखिये बालकाण्ड, पृष्ठ ११४) । इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले राम ने नारद को समझाया कि वे अपने भक्तों को पुत्र समान समझते हैं । ज्ञानी भक्त प्रौढ़ पुत्र के समान हैं । प्रौढ़ पुत्र से माता प्रेम तो करती है परन्तु उसकी रक्षा का भार माता पर नहीं होता । इसी प्रकार ज्ञानी को अपना बल होता है । दूसरे भक्त शिशु के समान होते हैं जिन्हें भगवान के सिवाय और

कोई सहारा नहीं होता। जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल भगवान को भजते हैं, भगवान उनकी वैसे ही रक्षा करता है जैसे माता शिशु की। काम और क्रोध दोनों प्रकार के भक्तों के लिये शत्रु हैं। परन्तु ज्ञानी को अपने बल का सहारा रहता है। अतएव ज्ञानी को काम-क्रोध से बचाने की जिम्मेदारी भगवान पर नहीं है। परन्तु जिस सेवक को अपने बल का मान नहीं और वह भगवान पर आश्रित है, उसको भगवान सर्वदा काम-क्रोध रूपी शत्रुओं से बचाते हैं। जहाँ तक नारद का प्रश्न है, वह ज्ञानी होते हुये भी भक्ति को नहीं छोड़ते, इसलिये भगवान उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लिये हुये हैं।

दो०– काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ।।४३।।

भावार्थ– काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। इनमें माया रूपिणी (माया की साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली है।

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता।।
जब तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई।।
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा।।
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।।
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधिआरी।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना।।

भावार्थ– हे मुनि ! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोह रूपी बन को विकसित करने के लिये स्त्री बसन्त ऋतु के समान है। जप, तप, नियम-रूपी सम्पूर्ण जल के स्थानों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है। काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेढक हैं। इनको वर्षा ऋतु होकर हर्ष प्रदान करने वाली एक मात्र यही (स्त्री) है। बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं। उनकी सदा सुख देने वाली यह शरद ऋतु है। समस्त धर्म कमलों के फूल हैं। यह नीच (विषय जन्य) सुख देने वाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममता रूपी ज्वाला का समूह (मन) स्त्री रूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा-भरा हो जाता है। पापरूपी उल्लुओं के समूह के लिये यह स्त्री सुख देने वाली घोर अन्धकार मयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य ये सब मछलियाँ और उनको फाँसने के लिये स्त्री बंसी के समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित हैं। आज तुम्हें न देखकर,ये अपनी शोभा के अभिमान में फूल रहे हैं)।

तुम से यह अनख (स्पर्द्धा)कैसे सही जाती है ? हे प्रिये तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होतीं ?'' इस प्रकार (अनन्त ब्रह्माण्डों के अथवा महिमामयी स्वरूपा शक्ति श्री सीता जी के)स्वामी श्री रामजी सीता को खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो। पूर्णकाम, आनन्द की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्री राम जी मनुष्यों के से चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होंने गृध्रपति जटायु को पड़ा देखा। वह श्रीराम जी के चरणों का स्मरण कर रहा था, जिसमें ध्वजा, कुलिश आदि की रेखाएँ (चिन्ह)हैं।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में १८ सम पंक्तियाँ हैं। बालकाण्ड में दोहा २३७ और उसके नीचे की चौपाई में (पृष्ठ २७७)राम चन्द्रमा को देखकर कहने लगे कि चन्द्रमा से सीता के मुख की उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि चन्द्रमा का जन्म खारे समुद्र से हुआ है और विष उसका भाई है। वह घटता बढ़ता रहता है। उसको राहु ग्रसता है। वह कोक के लिये शोकप्रद है। और कमल का द्रोही है। जिसमें इतने दोष हैं, उससे सीता के मुख की बराबरी कैसे की जा सकती है। फिर आगे चलकर दोहा २४६ के नीचे की चौपाई (पृष्ठ २८६)में तुलसीदास जी कहते हैं कि कवियों की सब उपमायें लौकिक स्त्रियों के लिये हैं। जगज्जनिनी जानकी की शोभा के वर्णन के लिये सब उपमायें तुच्छ लगती हैं। तीनों देवियों—सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी—में कुछ न कुछ कमी है। सरस्वती बहुत बोलने वाली हैं ; पार्वती अर्धांगिनी है ; रति भी अपने पति कामदेव को अनंग पाकर दु:खी रहती है। इसलिए सीता हर प्रकार से अनोपमेय है। इसी बात को पुनः ऊपर की चौपाई में दोहराया गया है। जब सीता को रावण हर ले गया और राम उसको वन-वन में ढूँढते फिर रहे हैं, तो आत्मग्लानि से विभोर होकर वह कहते हैं—

'खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।।'

स्त्री के नेत्रों की उपमा खंजन पक्षी, हिरण और मछली के नेत्रों से दी जाती है। उसकी नाक की उपमा तोते की नाक से दी जाती है। उसके बालों की उपमा भौरों से दी जाती है। उसकी गर्दन की उपमा कपोत की गर्दन से दी जाती है। और उसकी वाणी की

उपमा कोयल के बोल से दी जाती है। उसके स्तनों की उपमा नारियल से दी जाती है। उसकी कमर की उपमा सिंह की कमर से दी जाती है। उसकी जंघा की उपमा केले के पेड़ के तने से दी जाती है। उसके शरीर की उज्ज्वलता की उपमा चन्द्रमा, कुंद की कली और बिजली से दी जाती है। उसकी चाल की उपमा हाथी की चाल से दी जाती है। राम कहते हैं कि जब से सीता का जन्म हुआ यह सब उपमान फीके पड़ गये थे। अब जब सीता का हरण हो गया है तो यह सब उपमान हर्षित हो रहे हैं। क्योंकि अब लौकिक स्त्रियों का नख-शिख वर्णन कवि लोग फिर से इन्हीं उपमानों के सहारे करेंगे। अन्त में राम अदृश्य सीता को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि 'हे सीते तुमसे यह स्पर्धा कैसे सही जाती है ? तुम शीघ्र क्यों नहीं प्रकट होतीं ?'

दो०— कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर।।३०।।

भावार्थ— कृपा सागर श्री रघुबीर ने अपने कर-कमल से उसके सिर का स्पर्श किया (उसके सिर पर कर-कमल फेर दिया)। शोभाधाम श्री रामजी का (परमसुन्दर)मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही।

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा।।
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही।।
लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।।
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना।
राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता।।
जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा।।
सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें।।
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई।।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा।।

भावार्थ— तब धीरज धर कर गीध ने यह वचन कहा— "हे भव (जन्म-मृत्यु) के भय का नाश करने वाले श्री राम जी! सुनिये। हे नाथ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकी जी को हर लिया है। हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीता जी कुररी (मादा क्रौञ्च)की तरह अत्यन्त विलाप कर रहीं थी। हे प्रभो! मैंने आपके दर्शनों के लिये ही प्राण रोक रक्खे हैं। हे कृपा निधान! अब ये चलना चाहते हैं।" श्री रामचन्द्रजी ने कहा— 'हे तात! शरीर को बनाये रखिये।' तब उसने मुस्कराते हुए मुँह

से यह बात कही—"मरते समय जिनका नाम मुख में आ जाने से अधम (महापापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद कहते हैं। वही (आप)मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ ! अब मैं किस कमी की पूर्ति के लिये देह को रक्खूँ ?" नेत्रों में जल भरकर श्री रघुनाथ जी कहने लगे— "हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से दुर्लभ गति पायी है। जिनके लिये जगत में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाइये। मैं आपको क्या दूँ ? आप तो पूर्ण काम हैं (सब कुछ पा चुके हैं)।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। इस चौपाई की अंतिम दो पंक्तियाँ बहुत मार्मिक हैं। मरते हुये जटायु से राम कहते हैं कि जिनका मन दूसरों के हित के लिये सदा लालायित रहता है उसके लिये जगत में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं। जटायु ने सीता को रावण के चंगुल से बचाने के लिये अपने प्राण भी न्यौछावर कर दिये। परहित के कारण जटायु पूर्ण काम हो गया, अर्थात् सब कुछ पा चुका इसलिये राम कहते हैं कि ऐसे पूर्ण काम व्यक्ति को वह क्या दें ? वह एक ही वरदान दे सकते हैं कि इस भौतिक शरीर को त्याग कर वह (जटायु)मेरे परमधाम (बैकुंठ)में जाय।

दो०— सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ।।३१।।

भावार्थ— हे तात ! सीता हरण की बात आप जाकर पिता जी से न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा।"

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा ।।
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी ।।

भावार्थ— जटायु ने गीध की देह त्याग कर हरि का रूप धारण किया और बहुत से अनुपम (दिव्य) आभूषण और दिव्य पीताम्बर पहन लिये। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ है और नेत्रों में (प्रेम तथा आनन्द के आँसुओं का)जलभर कर वह स्तुति कर रहा है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई समस्त रामचरितमानस में एक अपवाद रूप विद्यमान है। दोहे के बाद मानस में निरन्तर चौपाईयाँ आती हैं परन्तु ये चौपाईयाँ कम से कम पांच पंक्तियों की और ज्यादा से ज्यादा ३७ पंक्तियों की हैं। दोहे और छंद के बीच में एक चौपाई में तुलसीदास जी ने एक बड़े चमत्कार का प्रदर्शन किया है। जब राम ने जटायु को मरते समय सद्गति दी,तो उससे एक विनय की कि आप मेरे परम धाम (बैकुंठ)को जा तो रहे हैं। परन्तु जब वहाँ मेरे पिता जी आप को मिलें तो आप उनसे सीता अपहरण की बात मत कहियेगा।

यह बात रावण अपने मुख से स्वयं कहेगा। यह बात सुनते ही गिद्ध राज ने अपना शरीर त्याग दिया और तुरन्त बैकुंठ में जाने के लिये स्वयं भगवान का शरीर धारण किया। उसके चार विशाल भुजायें थीं, दिव्य पीताम्बर और आभूषण पहने था। इसी भेष मे बैकुंठ जाने के पूर्व उसने नेत्रों में प्रेमाश्रु भर कर, राम की स्तुति की, जो नीचे के छंद में है।

छं०— जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं॥१॥

बलप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं॥२॥

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥३॥

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥४॥

भावार्थ— हे रामजी! आपकी जय हो! आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और साथ ही गुणों के (माया के)प्रेरक हैं। दस सिर वाले रावण की प्रचण्ड भुजाओं को खण्ड-खण्ड करने के लिये प्रचण्ड बाण धारण करने वाले, पृथ्वी को सुशोभित करने वाले, जलयुक्त मेघ के समान श्याम शरीर वाले, कमल के समान मुख और (लाल) कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, विशाल भुजाओं वाले और भव-भय से छुड़ाने वाले कृपालु श्री राम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। आप अपरिमित बल वाले हैं, अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक, अगोचर (अलक्ष्य), गोविंद (वेदवाक्यों द्वारा जानने योग्य), इन्द्रियों से अतीत, जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वन्दों को हरने वाले, विज्ञान की

घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं। तथा जो संत राम-मन्त्र को जानते हैं, उन निष्काम जनों के प्रिय तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट वृत्तियों)के दल का दलन करने वाले, श्री राम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। जिनको श्रुतियां निरञ्जन (माया से परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्म रहित कह कर गान करती हैं, मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य, और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं , वे ही करुणाकन्द, शोभा के समूह (स्वयं श्री भगवान)प्रकट होकर जड़-चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय-कमल के भ्रमररूप उनके अंग-अंग में बहुत से कामदेवों की छबि शोभा पा रही है। जो अगम और सुगम हैं, निर्मल स्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शान्त)हैं। मन और इन्द्रियों को सदा वश में करते हुए योगी बहुत साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं, वे तीनों लोकों के स्वामी रमानिवास श्री रामजी निरन्तर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटाने वाली है।

टिप्पणी–बालकाण्ड में दोहा १८५ के नीचे ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की है और दोहा २१० के नीचे अहिल्या ने राम की। राम की स्तुति करके अहिल्या बैकुण्ठ सिधारी। इसी प्रकार यहाँ जटायु ने राम की स्तुति करके स्वर्गारोहण किया।

दो०– अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ।।३२।।

भावार्थ– अखण्ड भक्ति का वर माँगकर गृधराज जटायु श्री हरि के परमधाम को चला गया। श्री रामचन्द्र जी ने उसकी दाह कर्म आदि सारी क्रियायें यथायोग्य अपने हाथों से कीं।

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथा कृपाला ।।
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी ।।
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ।।
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ।।
संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ।।
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता ।।
दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ।।
सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ।।

भावार्थ– श्री रघुनाथ जी अत्यन्त कोमल चित्त वाले, दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध पक्षियों में भी अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी जिसे योगीजन मांगते रहते हैं। (शिवजी कहते हैं–)'हे पार्वती ! सुनों, वे लोग अभागे

हैं जो भगवान को छोड़कर विषयों से अनुराग करते हैं।' फिर दोनों भाई सीता जी को खोजते हुये आगे चले। वे बन की सघनता देखते जाते हैं। वह सघन बन लताओं और वृक्षों से भरा है, उसमें बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्री राम जी ने रास्ते में आते हुये कंबध राक्षस को मारा। उसने शाप की सब बात कही। (वह बोला—) 'दुर्बासा जी ने मुझे शाप दिया था। अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया।' (श्री राम जी ने कहा–) "हे गन्धर्व ! सुनों मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मण कुल से द्रोह करने वाला मुझे नहीं सुहाता।

अन्तर्कथा— कबन्ध एक गन्धर्व था। यह काश्यप-पत्नी दनु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ब्रह्मा ने इसे दीर्घायु होने का वर दिया था। ब्रह्मा के वर से गर्वित होकर यह सदा इंद्र का अपमान किया करता था, इस कारण इंद्र ने वज्राघात से इसके उरु, मुख और मस्तक तोड़ दिये। राक्षस बोला, ब्रह्मा के बल से मैं दीर्घायु हुआ हूँ परन्तु इस समय आपके वज्राघात से भग्नशिर और भग्नमुख होकर किस प्रकार जी सकता हूँ। ब्रह्मा के वचन को तो व्यर्थ नहीं होना चाहिये। तब देवराज इन्द्र ने इसकी दोनो भुजाओं को योजन परिमित दीर्घ बना दिया और इसके पेट के भीतर तीक्ष्ण दांतयुक्त मुंह बना दिया। तब से यह दंडकारण्य में रहनें लगा और सिंह-व्याघ्र आदि को हाथों से पकड़कर खाने लगा। यह ऋषियों को पीड़ित किया करता था। स्थूलशिरा नामक एक ऋषि ने शाप देकर इसे कुत्सित राक्षस बना दिया, परन्तु जब इसने अनुनय किया तब प्रसन्न होकर महर्षि ने कहा कि श्री रामचन्द्र जी के द्वारा तुम्हारी बांहे काटी जाने पर तुम मुक्त हो जाओगे। जिस समय रामचन्द्र दंडकारण्य में आये, उस समय उनके द्वारा छिन्नबाहु होकर कबंध शापमुक्त हुआ था।

दो०— मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव ।।३३।।

भावार्थ— मन, कर्म और वचन से कपट छोड़कर जो भू-देवों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं।

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ।।
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ।।
कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा ।।
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई ।।
ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा ।।
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ।।
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ।।

स्याम और सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥

भावार्थ– शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर बचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुण से हीन ब्राह्मण पूजनीय है। और गुणगणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है।'श्री राम जी ने अपना धर्म (भागवत धर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को भाया। तदन्तर श्री रघुनाथ जी के चरण-कमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति (गन्धर्व का स्वरूप) पाकर आकाश में चला गया। उदार श्री राम जी उसे गति देकर शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी ने श्री रामचन्द्र जी को घर में आये देखा। तब मुनि मतंग जी के वचनों को याद करके उसका मन प्रसन्न हो गया। कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर बनमाला धारण किये हुये सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ी। वह प्रेम में मग्न हो गयी, मुख से वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलों में सिर नवा रही थी। फिर उसने जल लेकर आदर पूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनों पर बैठाया।

पात्र परिचय– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। कथानक को बढ़ाते हुये, तुलसीदास जी कहते हैं कि कबन्ध को श्राप-मुक्त करके, राम आगे चलकर 'शबरी के आश्रम' में पहुँचे। वास्तव में यह मतंग ऋषि का आश्रम था। शबरी शवर अनुसूचित जन-जाति की कन्या थी जो बचपन से इस आश्रम की सेविका और परिचारिका थी।

धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों के सानिध्य से शबरी को परमात्मा के तत्व का नित्य ज्ञान प्राप्त था। इस स्थान पर भावितात्मा मतंग ऋषि ने गायत्री मन्त्र के जप से विशुद्ध हुये अपने देहरूपी पञ्जर को मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्नि में होम दिया था। जाते समय उन्होंने शबरी से कहा :'तेरे इस परम पवित्र आश्रम पर श्री राम चन्द्र जी पधारेंगे और लक्ष्मण के साथ तेरे अतिथि होंगे। तुम उनका यथावत् सत्कार करना। उनका दर्शन करके तू श्रेष्ठ एवम् अक्षय लोकों में जायेगी।'

फलतः राम का आथित्य-सत्कार और वन्दना करके, शबरी ने उनसे कहा, 'मैं आपकी आज्ञा लेकर इस देह का परित्याग करना चाहती हूँ। जिनका यह आश्रम है और जिनके चरणों की मैं दासी रही हूँ, उन्हीं पवित्रात्मा महर्षियों के समीप अब मैं जाना चाहती हूँ।'

तदन्तर श्री राम ने शबरी से कहा, 'भद्रे ! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया। अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार आनन्दपूर्वक अभीष्ट लोक की यात्रा करो।'श्री रामचन्द्र जी के इस

प्रकार आज्ञा देने पर शबरी ने अपने को आग में होमकर प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी शरीर प्राप्त किया। सुदाम पर्वत पर प्रकट होने वाली बिजली के समान उस प्रदेश को प्रकाशित करती हुई स्वर्ग (साकेत) लोक को चली गयी। एक बात और ध्यान में देने योग्य है। शबरी बहुत वृद्ध तपस्विनी थी। नीति से वर्गबाह्य थी। अपना परिचय उसने इस प्रकार दिया ;

'...अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।'

उसकी आत्म-ग्लानि को मिटाने के लिये, श्री राम ने निरन्तर उसको 'भामिनी' कहके सम्बोधित किया है। 'भामिनी' सुन्दर स्त्री को कहते हैं। वाल्मीकिय रामायण में भी श्री राम ने उसको 'तपोधने' और 'भद्रे' कह कर सम्बोधित किया है।* समस्त रामायण में स्त्री के लिये 'भामिनि' शब्द का प्रयोग या तो दशरथ ने कैकेयी के लिये किया, या राम ने शबरी के लिए। शुरू में दशरथ ने केवल 'सुमुखि, सुलोचनि, पिकबचनी, गजगामिनी' का प्रयोग किया है **। यह सब विशेषण शरीरिक बाह्य सौन्दर्य के हैं। 'भामिनि' शब्द शबरी के आन्तरिक सौन्दर्य का द्योतक है।

दो०— कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ।।३४।।

भावार्थ— उसने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्री राम जी को दिये। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

पानि जोरि आगें भई ठाढ़ी । प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ।।
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी । अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।
अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ।।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।

---

* देखिये वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, ७४ सर्ग

**देखिये अयोध्याकाण्ड, सोरठा २५, पृष्ठ ४१७

भावार्थ– फिर वह हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयी। प्रभु को देखकर उसका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। (उसने कहा–) 'मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ! मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ। जो अधम से भी अधम हैं, स्त्रियाँ, उनमें भी मैं अत्यन्त अधम हूँ और उनमें भी हे पाप नाशन ! मैं मंदबुद्धि हूँ।' श्री रघुनाथ जी ने कहा– ''हे भामिनी! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्ति ही का सम्बन्ध मानता हूँ। जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता, इन सब के होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य ऐसा लगता है, जैसे जलहीन बादल शोभाहीन दिखायी पड़ता है। मैं तुझ से अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम।

दो०– गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।३५।।

भावार्थ– तीसरी भक्ति है अभिमान रहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा। और चौथी भक्ति है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करे।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।।
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहु आजु सुलभ भइ सोई।।
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी।।
पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई।।
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा।।
बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई।।

भावार्थ– मेरे मन्त्र (राम का जाप) और मुझ में दृढ़ विश्वास यह पाँचवी भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र) बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सत्पुरुषों के आचरण (धर्म) में लगे रहना। सातवीं भक्ति है जगत भर को समभाव से मुझ में ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझ से भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना और स्वयं

में भी पराये दोषों को न देखना। नवीं भक्ति है सरलता और सब के साथ कपट रहित बर्ताव करना। हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद)का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन,कोई भी हो–हे भामिनि! मुझे वही अत्यन्त प्रिय है। फिर तुझ में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ हैं। अतएव जो गति योगियों को दुर्लभ है, वही तेरे लिये आज सुलभ हो गयी है। मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! अब यदि तू गजगामिनी जानकी की कुछ खबर जानती हो, तो बता।'' (शबरी ने कहा–) 'हे रघुनाथ जी! आप पंपा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव! हे रघुनाथ! वह सब हाल बतायेगा। हे धीर बुद्धि! आप सब जानते हुये भी मुझ से पूछते हैं।' बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर प्रेम सहित उसने सब कथा सुनाई।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १३ विषम पंक्तियाँ हैं। इस चौपाई में और इसके ऊपर के दोहे और चौपाई में भी श्री राम ने शबरी को नवधा भक्ति का स्वरूप समझाया है। जब शबरी ने अपने को नीच जाति का, मतिमन्द और नारी होने के कारण अधमो अधमा कहा तो श्री राम ने उसको सांत्वना देते हुये समझाया कि जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता यह सब भक्ति के आगे गौण है। राम तो केवल भक्ति के वश में हैं। भक्ति नौ प्रकार की होती है, परन्तु शबरी में तो नवों प्रकार की भक्ति विद्यमान थीं। इसलिए वह प्रभुपद (बैकुण्ठ) की अधिकारी थी। नवधा भक्ति इस प्रकार हैं :-

१- संतो का संग–सत्संग

२- राम कथा सुनने की स्पृहा-हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता (देखिये पृष्ठ १८२)

३- गुरु की सेवा।

४- कपट छोड़कर, हरिगुणगान करना।

५- रामनाम का जप करना और भगवान में दृढ़ विश्वास।

६- इन्द्रियों का निग्रह, शील चरित्र और निरन्तर सत्पुरुषों के आचरण में लगे रहना।

७- जगत भर को समभाव से भगवान में ओत-प्रोत देखना–'सिय राम मैं सब जग जानी' (देखिए पृष्ठ२२)।

८- जो कुछ मिल जाये उसी में सन्तोष करना–परिग्रह परिमाण। स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना

९- सरलता और सबके साथ कपट रहित बर्ताव करना–आर्जव।

छं०– कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे ।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ।।
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू ।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू ।।

भावार्थ– सब कथा कहकर भगवान के मुख के दर्शन कर, हृदय में चरण कमलों को धारण कर लिया, और योगाग्नि से देह को त्यागकर (जलाकर)वह उस दुर्लभ हरिपद मे लीन हो गयी, जहाँ से लौटना नहीं होता । तुलसीदास जी कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत से मत, ये सब शोक प्रद हैं । हे मनुष्यों ! इनका त्याग कर दो, और विश्वास करके श्री राम जी के चरणों में प्रेम करो ।

टिप्पणी– ऊपर के छन्द में यह बताया गया है कि शबरी ने भगवान के दर्शन कर, योगाग्नि प्रज्वलित कर उसमें अपने पार्थिव शरीर को भस्म कर दिया और दुर्लभ हरिपद में लीन हो गयी । इस घटना का वाल्मीकिय रामायण में अरण्यकाण्ड के ७४ वें सर्ग में बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है (देखिए पृष्ठ ७६३)।

दो०– जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ।।३६।।

भावार्थ– जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता हैं?

चले राम त्यागा बन सोऊ । अतुलित बल नर केहरि दोऊ ।।
बिरही इव प्रभु करत बिषादा । कहत कथा अनेक संबादा ।।
लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा ।।
नारि सहित सब खग मृग बृंदा । मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ।।
हमहि देखि मृग निकर पराहीं । मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ।।
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए । कंचन मृग खोजन ए आए ।।
संग लाइ करिनीं करि लेहीं । मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं ।।
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ।।
राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ।।
देखहु तात बसंत सुहावा । प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ।।

भावार्थ–श्री रामचन्द्र जी ने उस बन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले । दोनों भाई अतुलनीय बलवान और मनुष्यों में सिंह के समान हैं । प्रभु विरही की तरह विचार

करते हुये अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं—"हे लक्ष्मण ! यहाँ बन की शोभा तो देखो, इसे देखकर किस का मन क्षुब्ध नहीं होगा? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानों वो मेरी निन्दा कर रहे है। हमें देखकर (जब डर के मारे) हिरनों के झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं—'तुम को भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरणों में पैदा हुये हो, अतः तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरण खोजने आये हैं।' हाथी हथनियों को साथ लगा लेते हैं। वे मानों मुझे शिक्षा देते हैं (कि स्त्री को कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिये)। भलीभाँति चिन्तन किये हुये शास्त्र को भी बार-बार देखते रहना चाहिये। अच्छी तरह सेवा किये हुये राजा को भी वश में नहीं समझना चाहिये। और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रक्खा जाये, परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राज्य किसी के वश में नहीं रहते। हे तात ! इस सुन्दर बसन्त को तो देखो, प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। इसमें दो विभिन्न भावों का विश्लेषण किया गया है। शुरू की पंक्तियों में राम की आत्म-ग्लानि है। उन्हें देखकर जब हिरण के झुण्ड भागने लगे, तब हिरणियां उन्हें समझाती हैं—'तुम व्यर्थ के भय से भाग रहे हो। इन्हें तो स्वर्ण के हिरण की तलाश है। साधारण हिरण से इनका कोई प्रयोजन नहीं।' अर्थात्, हिरणियाँ राम पर कटाक्ष करती हैं कि भगवान के अवतार होते हुये भी, उन्हें यह समझ नहीं आई कि हिरण स्वर्ण का नहीं होता है। दण्डकारण्य में वह मारीच के कपट जाल में कैसे फंस गये। ऐसी भूल तो एक साधारण व्यक्ति भी नहीं करता है (देखिये पृष्ठ ७४८-४९)।

लक्ष्मण के सन्मुख इस प्रकार अपनी आत्म-ग्लानि प्रकट करने के पश्चात्, राम एक और तथ्य का निरूपण करते हैं। उन्होंने देखा कि हाथी हथनियों को अपने बीच में करके चल रहे हैं। जब पशु अपनी मादा की इस प्रकार रक्षा करते हैं, तो पुरुषों को भी उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। स्त्री, विशेषकर युवती स्त्री, को कभी भी अकेला निःसहाय नहीं छोड़ना चाहिये। उन्होंने ऐसी गलती की। परिणाम, रावण ने सीता का पञ्चवटी में अपहरण कर लिया। न केवल स्त्री, अपितु शास्त्र और राजा के प्रति भी सर्वदा जागरूक रहना चाहिये। भलीभाँति चिन्तन किये हुये शास्त्र को बार-बार देखते रहना चाहिये। मनुष्य को यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि वह सर्वगुणसम्पन्न विद्या में पारंगत है। पाठ को बार-बार दोहराना चाहिये।

इसी प्रकार अच्छी तरह सेवा किये हुये राजा को भी वश में नहीं समझना चाहिये। राजा से निरन्तर सावधान रहना चाहिये।

दो०— बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल।।३७(क)।।
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात।।३७(ख)।।

भावार्थ– मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेव ने बन, भौरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया। परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाई के साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ)तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना रोक कर डेरा डाल दिया है।

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर भुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥
मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥
लछिमन देखत राम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥
एहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥

भावार्थ– विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकार के तंबू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता जिसका मन धीर है। अनेकों वृक्ष नाना प्रकार से फूले हुये हैं। मानों अलग-अलग बाना (वर्दी)धारण किये हुये बहुत से तीरंदाज़ हों। कहीं कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धा लोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों। कोयलें कूज रही हैं, मानो मतवाले हाथी चिंग्घाड़ रहे हैं। ढेक और महोख पक्षी मानों ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर, और हंस मानों सब सुन्दर ताजी (अरबी)घोड़े हैं। तीतर और बटेर पैदल सिपाहियों के झुण्ड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुण समूह का (विरदावली का)वर्णन करते हैं। भौरों की गुंजार भेरी और शहनाई हैं। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूत का काम लेकर आयी है। इस प्रकार चतुरंगिणी सेना साथ लिये, कामदेव मानो सब को चुनौती देता विचर रहा है। हे लक्ष्मण! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत में उन्हीं की वीरों में प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव के एक स्त्री का बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाये, वही श्रेष्ठ योद्धा है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं। सीता के विरह में दुःखी राम बन की सम्पदा को देखकर लक्ष्मण से कहते हैं कि बन के पशु पक्षियों और बनस्पति मानो कामदेव की सेना है, जो मुझे घेरने आई है। रूपक इस प्रकार बाँधा गया है–

१- वृक्षों में लतायें उलझी हुई तम्बू के समान हैं।

२- केले और ताड़ के वृक्ष मानों सेना की ध्वजा पताका हैं।

३- वृक्षों में जो फूल आये हुये हैं मानों वह सिपाही अपनी वर्दी पहने हैं।

४- सुन्दर वृक्ष मानो योद्धा लोग हैं।

५- कोयलों की कूज मानो हाथी की चिंग्घाड़ है।

६- ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं।

७- मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हँस मानो अरबी घोड़े हैं।

८- तीतर और बटेर मानो सिपाही हैं।

९- पर्वतों की शिलाये मानो रथ हैं।

१०- जल के झरने मानो नगाड़े हैं।

११- पपीहे मानो भाट हैं जो विरदावली गा रहे हैं।

१२- भौरों की गुंजार मानो भेरी शहनाई है।

१३- शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु मानों दूत हैं।

इस प्रकार मानो कामदेव अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर राम को चुनौती देने आया है।

दो०– तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ।।३८(क)।।

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ।।३८(ख)।।

भावार्थ– हे तात ! काम, क्रोध और लोभ, ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पलभर में मुग्ध कर देते हैं। लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है, काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बल है;श्रेष्ठ मुनि विचार कर ऐसा कहते हैं।''

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई ॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम कीं दाया ॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

भावार्थ– (शिवजी कहते हैं–) "हे पार्वती ! श्री रामचन्द्र जी गुणातीत (तीनो गुणों से परे), चराचर जगत के स्वामी और सब के अन्तर की जानने वाले हैं। (उपर्युक्त बातें कहकर) उन्होंने कामी लोगों की दीनता (बेबसी) दिखलायी है और धीर (विवेकी) पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया । क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये सभी श्री रामजी की दया से छूट जाते हैं । वह नर (नटराज भगवान) जिस पर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इन्द्रजाल (माया) में नहीं भूलता । हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ– हरि का भजन ही सत्य है, यह सारा जगत तो स्वप्न की भाँति असत् है ।" फिर प्रभु श्री राम जी पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये । उसका जल संतों के हृदय जैसा निर्मल है । मन को हरने वाले चार घाट बँधे हुये है । भाँति-भाँति के पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं । मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी है।

दो०– पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म ।।३९(क)।।
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ।।३९(ख)।।

भावार्थ– घनी पुरइनों (कमल के पत्तों) की आड़ में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया से ढके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता । उस सरोवर के अत्यन्त अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं । जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं ।

बिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रबाक बक खग समुदाई । देखत बनई बरनि नहिं जाई ॥

सुंदर खग गन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

भावार्थ– उसमें रंग बिरंगे कमल खिले हुये हैं । बहुत से भौंरे मधुर स्वर में गुंजार कर रहे हैं । जल के मुर्गे और राजहंस बोल रहे है । मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हैं । चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । सुन्दर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो रास्ते में जाते हुये पथिकों को बुलाये लेती है । उस झील (पंपासरोवर)के समीप मुनियों ने आश्रम बना रक्खे हैं । उसके चारों ओर बन के सुन्दर वृक्ष हैं । चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि– बहुत प्रकार के वृक्ष नये नये पत्तों और (सुगन्धित) पुष्पों से युक्त हैं, जिन पर भौरों के समूह गुंजार रहे हैं । स्वभाव से ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मन को हरने वाली हवा सदा बहती रहती है । कोयले 'कुहूँ-कुहूँ' ध्वनि कर रही हैं । उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियों का भी ध्यान टूट जाता है ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियां हैं । इसमें पम्पा सरोवर के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है । शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बहती रहती है । कोयल कूकती रहती है । चम्पा, मौलश्री, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि बहुत प्रकार के वृक्ष लगे हैं ।

दो०– फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ।।४०।।

भावार्थ– फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ गये हैं । जैसा परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर विनय से झुक जाते हैं ।

लोकोक्ति– ऊपर के दोहे में एक बहुत प्रिय और प्रचलित लोकोक्ति है । जैसे फल के भार से वृक्ष झुक जाता है, उसी प्रकार एक परोपकारी पुरुष, धनाढ्य होने पर भी विनय भाव से झुका रहता है ।

देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुंदर तरुबर छाया । बैठे अनुज सहित रघुराया ॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए ॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला ॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी ॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा ॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई ॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥
गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई ॥
स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे ॥

भावार्थ– श्री राम जी ने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुन्दर उत्तम वृक्ष की छाया देखकर श्री रामचन्द्र जी छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित बैठ गये। फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने धाम को चले गये। कृपालु श्री राम जी परम प्रसन्न बैठे हुये छोटे भाई लक्ष्मण जी से रसीली कथायें कह रहे हैं। भगवान को बिरह युक्त देखकर नारद जी के मन में विशेष रूप से सोच हुआ। (उन्होंने विचार किया कि) मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्री राम जी नाना प्रकार से दुःखों का भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं)। ऐसे (भक्तवत्सल)प्रभु को जाकर देखें। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचार कर नारद जी हाथ में वीणा लिये हुये वहाँ गये, जहाँ प्रभु सुख पूर्वक बैठे हुये थे। वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान-बखान कर रामचरित का गान करते हुये चले जा रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्री रामचन्द्र जी ने नारद को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा। फिर स्वागत (कुशल)पूछ कर पास बैठा लिया। लक्ष्मण जी ने आदर के साथ उनके चरण धोये।

अन्तर्कथा– ऊपर की चौपाई में ११ विषम पंक्तियाँ है। नारद ने विष्णु को क्यों, कब और क्या श्राप दिया, इसकी अन्तर्कथा के लिये देखिये बालकाण्ड, पृष्ठ १६८-७९।

दो०– नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥४१॥

भावार्थ– बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारद जी कमल सदृश हाथों को जोड़कर वचन बोले।

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ । जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी । जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मांगी ॥
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें । अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई । अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

भावार्थ–'हे स्वभाव से ही उदार श्री रघुनाथ जी ! सुनिये । आप अगम और सुगम वर देने वाले हैं । हे स्वामी मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते हैं ।'

(श्री राम जी ने कहा–) 'हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते हो । क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूं । मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगती है जिसे हे श्रेष्ठ मुनि ! तुम नहीं माँग सकते । मुझे भक्त के लिये कुछ अदेय नहीं है । ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो ।' तब नारद जी हर्षित होकर बोले "मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ। यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं, और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ ! रामनाम सब नामों से बढ़कर, और पाप रूपी पक्षियों के समूह के लिये वह बधिक के समान हो ।

दो०– राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम ।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुं भगत उर ब्योम ।।४२(क)।।
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ ।।४२(ख)।।

भावार्थ– आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है, उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदय रूपी आकाश में निवास करेंगे ।" कृपासागर श्री रघुनाथ जी ने मुनि से 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा । तब नारद जी ने मन में अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया ।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी । पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता । प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥
जनहि मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥

भावार्थ— श्री रघुनाथ जी को अति प्रसन्न जानकर नारद जी फिर कोमल वाणी बोले—'हे रामजी ! हे रघुनाथ जी ! सुनिये, जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था, तब मैं विवाह करना चाहता था ! प्रभु आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया?' (प्रभु बोले—) "मुनि ! सुनो मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझ को ही भजते हैं मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूं जैसे माता बालक की रक्षा करती है । छोटा बच्चा जब आग और सांप को पकड़ने दौड़ता है, तो वहाँ माता उसे (अपने हाथों)अलग करके बचा लेती है । किन्तु जब वह सयाना हो जाता है तब उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती । (अर्थात मातृ परायण शिशु की तरह फिर उसको बचाने की चिन्ता नहीं करती, क्योंकि वह माता पर निर्भर न रह कर अपनी रक्षा आप करने लगता है)। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने)पुत्र के समान और (तुम्हारे जैसा)अपने बल का मान न करने वाला सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है । मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानी को)अपना बल होता है । पर काम-क्रोध रूपी शत्रु तो दोनों के लिये हैं । भक्त के शत्रुओं के मारने की जिम्मेदारी मुझ पर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है परन्तु अपने बल को मानने वाले ज्ञानी के शत्रुओं का नाश करने की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है । ऐसा विचार कर पण्डितजन (बुद्धिजन लोग)मुझको ही भजते हैं । वे ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ १०८ पर जो चौपाई है उसमे नारद ने राम से कहा कि आपके अनेक रूप में अवतार हुये हैं किन्तु मुझे 'रामावतार' में भक्ति का वरदान दीजिये । इस पर राम ने 'एवमस्तु ' कहा । फिर जब नारद ने पूछा कि जब मैं विवाह करना चाहता था तब आपने मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया (देखिये बालकाण्ड, पृष्ठ ११४) । इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले राम ने नारद को समझाया कि वे अपने भक्तों को पुत्र समान समझते हैं । ज्ञानी भक्त प्रौढ़ पुत्र के समान हैं । प्रौढ़ पुत्र से माता प्रेम तो करती है परन्तु उसकी रक्षा का भार माता पर नहीं होता । इसी प्रकार ज्ञानी को अपना बल होता है । दूसरे भक्त शिशु के समान होते हैं जिन्हें भगवान के सिवाय और

कोई सहारा नहीं होता। जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल भगवान को भजते हैं, भगवान उनकी वैसे ही रक्षा करता है जैसे माता शिशु की। काम और क्रोध दोनों प्रकार के भक्तों के लिये शत्रु हैं। परन्तु ज्ञानी को अपने बल का सहारा रहता है। अतएव ज्ञानी को काम-क्रोध से बचाने की जिम्मेदारी भगवान पर नहीं है। परन्तु जिस सेवक को अपने बल का मान नहीं और वह भगवान पर आश्रित है, उसको भगवान सर्वदा काम-क्रोध रूपी शत्रुओं से बचाते हैं। जहाँ तक नारद का प्रश्न है, वह ज्ञानी होते हुये भी भक्ति को नहीं छोड़ते, इसलिये भगवान उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लिये हुये हैं।

दो०— काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ।।४३।।

भावार्थ— काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। इनमें माया रूपिणी (माया की साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली है।

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ।।
जब तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ।।
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ।।
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा ।।
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ।।
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधिआरी ।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।।

भावार्थ— हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोह रूपी बन को विकसित करने के लिये स्त्री बसन्त ऋतु के समान है। जप, तप, नियम-रूपी सम्पूर्ण जल के स्थानों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है। काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेढक हैं। इनको वर्षा ऋतु होकर हर्ष प्रदान करने वाली एक मात्र यही (स्त्री) है। बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं। उनकी सदा सुख देने वाली यह शरद ऋतु है। समस्त धर्म कमलों के फूल हैं। यह नीच (विषय जन्य) सुख देने वाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममता रूपी ज्वाला का समूह (मन) स्त्री रूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा-भरा हो जाता है। पापरूपी उल्लुओं के समूह के लिये यह स्त्री सुख देने वाली घोर अन्धकार मयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य ये सब मछलियाँ और उनको फाँसने के लिये स्त्री बंसी के समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

टिप्पणी– पृष्ठ ७७४ पर बताया गया है कि नारद ने जब राम से पूछा कि 'जब मैं विवाह करना चाहता था, तब आपने मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया ?' प्रश्न का उत्तर देने के पहले राम ने नारद को ज्ञान-मार्ग और भक्ति मार्ग में अन्तर समझाया। काम, क्रोध, लोभ, मद समान रूप से भक्तों और ज्ञानियों के शत्रु हैं। सबसे बड़ा शत्रु माया है और माया की साक्षात मूर्ति स्त्री है।

नारद को इतना समझा कर एक रूपक द्वारा राम बताते हैं कि साधक के मार्ग में स्त्री कैसे बाधक बनती है :

१- यदि मोह एक बन है, तो उसको विकसित करने के लिये स्त्री **बसन्त ऋतु** के समान है।

२- यदि जप, तप, नियम जल-स्थान हैं, तो उनको सुखाने के लिये स्त्री **ग्रीष्म-ऋतु** के समान है।

३- यदि काम, क्रोध, मद, मत्सर मेढक मान लिये जायें, तो उनको हर्षित करने के लिये स्त्री **वर्षा-ऋतु** के समान है।

४- यदि बुरी वासनाएँ कुमुदिनी हैं, तो उनको सुख देने वाली स्त्री **शरद-ऋतु** के समान है।

५- यदि समस्त धर्म कमल माने जायें, तो उनको जला डालने वाली स्त्री **हेमन्त-ऋतु** के समान है।

६- यदि ममता जवास* का समूह है, तो उसको पुष्पित और पल्लवित करने वाली स्त्री शिशिर ऋतु के समान है।

इस प्रकार स्त्री की षड्ऋतुओं से उपमा देते हुये, उसे सत्कर्मों का नाशक और दुष्कर्मों का द्योतक बताया है। अन्त में दो और उपमा दी है।

७- पाप रूपी उलूकों के समूह को सुख देने वाली स्त्री घोर अन्धकारमयी रात्री है।

८- और अन्त में बुद्धि, बल, शील और सत्य-रूपी मछलियों को फाँसने के लिये स्त्री काँटे के समान है।

आगे दोहे में राम नारद को समझाते हैं कि इस प्रकार युवती स्त्री सब अवगुणों का मूल, दुःख की खान और पीड़ा देने वाली है। इस कारण राम ने नारद को विवाह करने से रोका था।

---

* एक प्रकार का कटीला झाड़, जो आयुर्वेदिक औषधि में काम आता है और जिसका ग्रीष्म ऋतु में बुन्देलखण्ड में खस की टट्टी के स्थान में प्रयोग किया जाता है। वर्षा ऋतु मे इसकी पत्तियाँ कुम्हला कर झड़ जाती हैं।

दो०— अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ।।४४।।

भावार्थ— युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा देने वाली और सब दुःखों की खान है। इसलिये हे मुनि ! मैंने जी में जानकर तुमको विवाह करने से रोका था।''

सुनि रघुपति के बचन सुहाए । मुनि तन पुलक नयन भरि आए ।।
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती । सेवक पर ममता अरु प्रीती ।।
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी । ग्यान रंक नर मंद अभागी ।।
पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम बिग्यान बिसारद ।।
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा । कहहु नाथ भव भंजन भीरा ।।
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ ।।
षट बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।।
अमितबोध अनीह मितभोगी । सत्यसार कबि कोबिद जोगी ।।
सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म गति परम प्रबीना ।।

भावार्थ— श्री रघुनाथ जी के सुन्दर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र (प्रेमाश्रुओं के जल से)भर आये । (वे मन-ही-मन कहने लगे–) कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीति है, जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो । जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते, वे ज्ञान के कंगाल दुर्बुद्धि और अभागे हैं । फिर नारद मुनि आदर सहित बोले ''हे विज्ञान विशारद श्री राम जी ! सुनिये । हे रघुबीर ! हे भव-भय का नाश करने वाले मेरे नाथ ! अब कृपा कर संतों के लक्षण कहिये ।'' (श्री राम जी ने कहा–) ''हे मुनि! सुनों मैं संतों के गुणों को कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ । वे संत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छः विकारों (दोषों) को जीते हुये, पाप रहित, कामना रहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिञ्चन(सर्वत्यागी), बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान, इच्छारहित, मितहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान, योगी, सावधान, दूसरों को मान देने वाले, अभिमान रहित, धैर्यवान, धर्म के ज्ञान और आचरण में अत्यन्त निपुण होते हैं ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्ति हैं । जब नारद समझ गये कि विष्णु भगवान ने उन्हें विवाह करने से क्यों रोका था, तब उन्होंने राम से संतों के लक्षण पूछे । इस चौपाई में और इसके आगे की चौपाई में बहुत विस्तार पूर्वक राम ने उन्हें संतों के लक्षण बताये । वह इस प्रकार हैं—

१- संत काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर—इन छः विकारों को जीते हुये होते हैं।

२- वह पाप और कामना रहित होते हैं।

३- वह स्थिर-बुद्धि होते हैं।

४- वह सर्वत्यागी होते हैं।

५- वह बाहर-भीतर से पवित्र होते हैं।

६- वह इच्छा रहित होते हैं।

७- वह मितहारी होते हैं।

८- वह सुख के धाम होते हैं।

९- वह सत्यनिष्ठ होते हैं।

१०- वह कवि और विद्वान होते हैं।

११- वह योगी होते हैं।

१२- वह सावधान रहते हैं।

१३- वह अभिमान-रहित होते हैं।

१४- वह दूसरों को मान देने वाले होते हैं।

१५- वह धैर्यवान होते हैं।

१६- वह धर्म के ज्ञान और आचरण में निपुण होते हैं।

१७- वह गुणों के भण्डार होते हैं।

१८- वह संसार के दुःखों से रहित होते हैं।

१९- वह सन्देह से सर्वथा दूर रहते हैं।

२०- भगवान के चरणों को छोड़कर उनको न देह प्रिय होती है, न घर।

२१- वह कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं और दूसरों के गुण सुनने में विशेष हर्षित होते हैं।

२२- वे सर्वदा समता और शान्त भाव रखते हैं।

२३- वे न्याय का कभी त्याग नहीं करते।

२४- वे सरल स्वभाव के होते हैं।

२५- वे सभी से प्रेम करते हैं।

२६- वे जप, तप, व्रत, दम्भ, संयम और नियम से आचरण करते हैं।

२७- वे गुरु, गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं।

२८- उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया और प्रसन्नता होती है।

२९- उन्हें वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद-पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है।

३०- वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते।

३१- वे भूलकर भी कुमार्ग पर नहीं चलते।

३२- वे सदा मेरी (भगवान की)लीलाओं को गाते-सुनते रहते हैं।

३३- वे बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहते हैं।

दो०— गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।।४५।।

भावार्थ— गुणों के घर, संसार के दुःखों से रहित और सन्देहों से सर्वथा छूटे हुये होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही।

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ।।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ।।
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ।।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला ।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ।।

भावार्थ— कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं, दूसरों के गुण सुनने में विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल होते हैं, न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं। वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम से आचरण करने वाले होते हैं। वे गुरु , गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा,

क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है। वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्मा के तत्व का ज्ञान) और वेद-पुराण का उन्हें यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते। सदा मेरी लीलाओं को गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहने वाले होते हैं। हे मुनि ! सुनो, संतों के जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते।

छं०– कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ।।
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ।।

भावार्थ– शेष और शारदा भी नहीं कह सकते।" यह सुनते ही नारद जी ने श्री रामजी के चरणकमल पकड़ लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्री मुख से अपने भक्तों के गुण कहे। भगवान के चरणों में बार-बर सिर नवाकर नारद जी ब्रह्म लोक चले गये। तुलसीदास जी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब आशा छोड़कर केवल श्री हरि के रंग में रंग गये हैं।

दो०– रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग ।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ।।४६(क)।।

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ।।४६(ख)।।

भावार्थ– जो लोग रावण के शत्रु श्री राम जी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योग के बिना ही श्री राम जी की दृढ़ भक्ति पायेंगे। युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है, हे मन, तू उसका पतंगा न बन। काम और मद को छोड़कर श्री रामचंद्र जी का भजन कर और सदा सत्संग कर।

टिप्पणी– पहले दो काण्ड छन्द के बाद सोरठे से समाप्त हुये हैं। परन्तु अरण्य काण्ड के छन्द के बाद दो दोहे आये हैं। बालकाण्ड के अन्तिम सोरठे में कहा गया है कि जो लोग सीता-राम के विवाह प्रसंग को गाते ओर सुनते हैं, उनके घर में सदा मंगल-उत्सव रहता है। अयोध्याकाण्ड के अन्तिम सोरठे में बताया गया है कि जो भरतचरित को सुनते हैं, उनको भव-सागर से विरक्ति होती है। और अरण्यकाण्ड के अन्तिम दोहों में समझाया गया है कि जो राम की यश गाथा गाते और सुनते हैं, उनको राम की दृढ़ भक्ति प्राप्त होती है। और इस भक्ति द्वारा उन्हें स्त्री में आसक्ति नहीं होती।

चतुर्थ सोपान
(किष्किन्धाकाण्ड)

श्लोक

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ।।१।।

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा ।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ।।२।।

भावार्थ– कुन्द पुष्प और नील कमल के समान सुन्दर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यन्त बलवान, विज्ञान के धाम, शोभा-सम्पन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदों के द्वारा वन्दित, गौ-ब्रह्मणों के समूह के प्रिय (अथवा प्रेमी), माया से मनुष्यरूप धारण किये हुए, श्रेष्ठ धर्म के लिये कवच स्वरूप, सब के हितकारी श्री सीता जी की खोज में लगे हुये, पथिक रूप रघुकुल के श्रेष्ठ श्री राम जी और श्री लक्ष्मण जी निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों। वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेद-रूपी समुद्र के मथने से उत्पन्न हुए, कलियुग के मल को सर्वदा नष्ट कर देने वाले अविनाशी, भगवान श्री शम्भु के सुन्दर और श्रेष्ठ मुख-रूपी चन्द्रमा में सदा शोभायमान, भय-रोग के औषधि, सब को सुख देने वाले और जानकी जी के जीवन स्वरूप श्री रामनाम रूपी अमृत का निरन्तर पान करते रहते हैं।

टिप्पणी– बालकाण्ड के प्रारम्भ में सात संस्कृत श्लोकों में तुलसीदास जी ने क्रमशः सरस्वती-गणेश, शिव-पार्वती, गुरु, महाकवि वाल्मीकि, राम भक्त हनुमान और सीता-राम की वन्दना की है। अयोध्या काण्ड के प्रारम्भ में तीन श्लोकों में केवल शिव और राम की वन्दना की है। अरण्य काण्ड में वही वन्दना दो श्लोकों में की है। किष्किन्धा काण्ड के प्रारम्भ में भी दो ही श्लोक हैं। इन श्लोकों में केवल राम गुण-गान किया गया है। इस गुणगान में अनायास लक्ष्मण, शिव और सीता के नाम आ गए हैं पहले श्लोक में सीता के अन्वेषण में तत्पर दो रघुवर बताए गए हैं–अर्थात् राम और लक्ष्मण। दूसरे श्लोक में राम की महिमा का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी उनके दो विशेषण बताते हैं–राम शिव के मुख में सर्वदा शोभायमान हैं और दूसरे वह जानकी जी (सीता) के जीवन हैं।

सो०– मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ।।

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस ।।

भावार्थ– जहाँ श्री शिव-पार्वती जी बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करने वाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय ? जिस भीषण हलाहल विष से सब देवता गण जल रहे थे, उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, हे मन्दमन ! तू उन शंकर जी को क्यों नहीं भजता ? उनके समान कृपालु कौन है ?

टिप्पणी– बालकाण्ड और अरण्य काण्ड की भाँति किष्किन्धा काण्ड में भी तुलसीदास जी ने संस्कृत श्लोकों के बाद सोरठे का प्रयोग किया है । ऊपर पहले सोरठे में काशी की महिमा बताई गई है । काशी महान है क्योंकि उसमें शिव-पार्वती वास करते हैं । दूसरे सोरठे में शिव जी को महान बताया है क्योंकि उन्होंने उस विष का पान किया, जिससे सब देवता जल रहे थे ।

आगें चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्बत निअराया ।।
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल बल सींवा ।।

अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल रूप निधाना ।।
धरि बटु रूप देखु तैं जाई । कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई ।।

पठए बालि होहिं मन मैला । भागौं तुरत तजौं यह सैला ।।
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ।।

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्री रूप फिरहु बन बीरा ।।
कठिन भूमि कोमल पद गामी । कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ।।

मृदुल मनोहर सुंदर गाता । सहत दुसह बन आतप बाता ।।
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ । नर नारायन की तुम्ह दोऊ ।।

भावार्थ– श्री रघुनाथ जी फिर आगे चले । ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया । वहाँ (ऋष्यमूक पर्वत पर) मन्त्रियों सहित सुग्रीव रहते थे । अतुलनीय बल की सीमा श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को आते देखकर, सुग्रीव अति भयभीत होकर बोले–'हे हनुमान ! सुनो, यह दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं । तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदय में यथार्थ बात जानकर मुझे इशारे से (समझाकर)कह देना । यदि वे मन के मलिन बालि के भेजे हुए हों, तों मैं तुरन्त ही भाग जाऊँ । इस पर्वत को छोड़ दूँ ।' ब्राह्मण का रूप धर कर हनुमान जी वहाँ गये और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे – "हे वीर! साँवले और गोरे शरीर वाले आप कौन हैं ? हे स्वामी ! कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलने वाले आप किस कारण बन में विचर रहे हैं ? मन को हरण करने वाले आपके सुन्दर कोमल अंग हैं, और आप बन के दुःसह धूप और वायु को सह रहे हैं । क्या आप ब्रह्मा, विष्णु,

महेश इन तीन देवताओं में से कोई हैं ? या आप दोनों नर और नारायण हैं ?

पात्र-परिचय— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है । इसमें तुलसीदास जी ने तीन नये पात्रों का समावेश किया है—

१- बालि— एक समय ब्रह्मा मेरू पर्वत पर योगासन से बैठे थे । उस समय सहसा उनके नेत्रों से अश्रुबिन्दु पतित हुए । उन्हीं से एक वानर उत्पन्न हुआ । एक समय उसी वानर ने एक सुंदर स्त्री का रूप धारण किया । देवराज इंद्र और सूर्य दोनों उस स्त्री को देखकर उसपर मोहित हो गए । इंद्र का वीर्य उस स्त्री के सिर पर गिरा और सूर्य का वीर्य उसके गले पर । उसी सिर पर के वीर्य से बालि और ग्रीवा के वीर्य से सुग्रीव की उत्पत्ति हुई । थोड़े दिनों के बाद उस स्त्री ने पुनः बन्दर का रूप धारण किया । एक दिन वह अपने पुत्रों को लेकर ब्रह्मा के समीप गयी । ब्रह्मा ने आज्ञा दी कि किष्किंधा में जाकर राज्य करो । बालि की पत्नी का नाम तारा और सुग्रीव की पत्नि का नाम रूमा था ।

एक स मायावी दैत्य का वध करने के लिये बालि पाताल गया था । उसके आने में विलम्ब होते देखकर, सुग्रीव ने समझ लिया कि बालि मर गया और यह समझकर पाताल-द्वार को पत्थर से बंद करके वह किष्किंधा लौट आया । मंत्रियों ने मिलकर सुग्रीव को राजा बनाया । राजासन पाकर सुग्रीव बालि की पत्नी के साथ सुख-विलास करने लगा। कुछ दिनों के बाद दैत्य का विनाश करके बालि लौटा और पैर से मारकर उसने द्वार के पत्थर को हटा दिया । तदनन्तर वह राजधानी में लौट आया । यहाँ की लीला देखकर बालि चुप । उसने सुग्रीव को मारना चाहा । सुग्रीव प्राण भय से राजधानी छोड़कर भाग गया । बालि को अपना राज्य और अपनी पत्नी तो मिली ही, साथ ही सुग्रीव की पत्नी रूमा भी बालि ने हथिया ली ।

२-सुग्रीव— पर्वतपरिवृता किष्किन्धा नगरी इनकी राजधानी थी । इनके बड़े भाई बाली ने इनको राज्य से निकालकर राज्य तथा उनकी पत्नी को ग्रहण कर लिया था। रामचन्द्र ने बाली को मारकर इनको किष्किन्धा का राज्य दे दिया था । इनकी ही सहायता से राम ने रावण का नाश करके सीता का उद्धार किया था । वृद्धावस्था में अपने भतीजे अंगद को राज्य देकर, सुग्रीव ने रामचन्द्र के साथ सरयू तीर पर शरीर का त्याग किया । ये सूर्य के औरस से उत्पन्न हुए थे ।

३-हनुमान— ये पवनदेव के औरस और अंजना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । रामचन्द्र और सुग्रीव की मित्रता इनके द्वारा ही हुई थी । सीता का अनुसंधान करने के लिये ये ही समुद्र पार करके सबसे पहले लंका गए थे । सीता से इन्होंने बातें की और उनसे चिन्ह लेकर रावण के प्रमोदवन का नाश करने लगे । इस कारण इनका राक्षसों से युद्ध हुआ । बहुत राक्षस मारे गए। अंत में मेघनाद ने इन्हें ब्रह्मपाश में बांध लिया । तदनन्तर लंका को जलाकर ये राम के समीप लौट आए ।

लंका के युद्ध में इन्होंनें बड़ी वीरता दिखलाई थी। मेघनाद ने जब लक्ष्मण को शक्ति मारी और लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए तब हनुमान संजीवन बूटी लाए थे। रामचन्द्र के अयोध्या लौट आने की सूचना इन्होंने ही भरत को दी थी। ये रामचन्द्र के बड़े भक्त थे।

दो० – जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ।।१।।

भावार्थ– अथवा आप जगत के मूल कारण और सम्पूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान् हैं, जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिये मनुष्य रूप में अवतार लिया है।''

टिप्पणी– बालकाण्ड में दोहा १८६ और उसके नीचे की चौपाई (पृष्ठ२२७-२८)में स्पष्ट कर दिया गया है कि ब्रह्मा की स्तुति सुनकर भगवान प्रसन्न हुए और आकाशवाणी हुई 'हे मुनि, सिद्ध और देवता ! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्य का रूप धारण करूँगा और उदार सूर्यवंश में अंशो सहित मनुष्य का अवतार लूँगा।' आकाशवाणी होने पर ब्रह्मा जी ने देवताओं को आदेश दिया कि वे पृथ्वी पर वानरों का शरीर धर कर भगवान के चरण की सेवा करें। ब्रम्हा की आज्ञा पालन करने में देवताओं ने ज़रा भी देर नहीं की। पृथ्वी पर उन्होंने वानर देह धारण की और भगवान के आने की राह देखने लगे। वे पर्वतों और जंगलों में जहाँ तहाँ अपनी-अपनी सुन्दर सेना बनाकर भरपूर छा गये।

ऊपर जो दोहा १८७ और उसके ऊपर-नीचे की चौपाई का सारांश दिया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि हनुमान बन्दर-शरीर-धारी देवता थे। वह बहुत दिनों से राम की किष्किन्धा आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

जब राम-लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे तो उन्हें दूर से देखकर सुग्रीव भयभीत हो गया। उसे शंका हुई कि कहीं बालि ने उसका वध करने के लिये सेनानी तो नहीं भेजे है। उसने हनुमान को आदेश दिया कि ब्राह्मण का रूप धारण करके जाये और गुप्त रूप से जानकारी करे कि बल और रूप की सीमा वाले वह दो पुरुष कौन हैं।

हनुमान को ऐसी कोई आशंका नहीं थी। वह तो बहुत दिनों से अपने इष्टदेव की प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते ही उन्हें पहचान गए। इसीलिये इस दोहे के ऊपर की चौपाई की अन्तिम पंक्ति में हनुमान कहते हैं–'आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश-त्रिदेवताओं में से एक है। आप दोनों नर और नारायण हैं।' और फिर अपने मन्तव्य को दोहे में स्पष्ट कर देते हैं –

''आप जगत के मूल कारण और सम्पूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान हैं, जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिये मनुष्य रूप में अवतार लिया है।''

कौसलेस दसरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन जाए ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही । बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई । कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तन मुख आव न बचना । देखत रुचिर बेष कै रचना ॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही । हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही ॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं । तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं ॥
तव माया बस फिरउँ भुलाना । ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥

भावार्थ – (श्री रामचन्द्र जी ने कहा–) ''हम कोसलराज दशरथ जी के पुत्र हैं और पिता का बचन मानकर बन आये हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं। हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुकुमारी सुन्दर स्त्री थीं। यहाँ (बन में) राक्षस ने (मेरी पत्नी) जानकी को हर लिया। हे ब्राह्मण ! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण ! अपनी कथा समझा कर कहिये।'' प्रभु को पहचान कर हनुमान जी उनके चरण पकड़ कर पृथ्वी पर गिर पड़े (उन्होंने साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया)। शिवजी कहते हैं–'हे पार्वती ! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुख से वचन नहीं निकलता। वे प्रभु के सुन्दर वेष की रचना देख रहे हैं। फिर धीरज धर कर स्तुति की। अपने नाथ को पहचान लेने से हृदय में हर्ष हो रहा है।' (फिर हनुमान जी ने कहा–) ''हे स्वामी ! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्यायसंगत था। परन्तु आप मनुष्य की तरह कैसे पूछ रहे हैं ? मैं आपकी माया के वश भूला-भटका फिरता हूँ। इसीलिए मैं आपको नहीं पहचान पाया।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। जैसा कि पिछले पृष्ठ में बतलाया गया है, हनुमान दूर से देखते ही अपने इष्टदेव राम को पहचान गये थे। यह तो उनकी विनम्रता थी जो वह इस चौपाई में कहते हैं–

'तव माया बस फिरऊँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥'

साथ में वह राम को उलाहना देते हैं–

'मोर न्याउ मैं पुछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं ॥'

अर्थात, मैं वानर जाति का हूँ। आपको न पहचानना मेरे लिये स्वाभाविक था। परन्तु, आप अपने भक्तो को कैसे भूल गये। आप एक साधारण पुरुष की तरह मेरा परिचय क्यों पूछ रहे हैं ?

इस बात को अगले दोहे और चौपाई में और स्पष्ट किया गया है।

दो० – एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान ॥२॥

भावार्थ– एक तो मैं यो ही मन्द हूँ, दूसरे मोह के वश में हूँ, तीसरे हृदय का कुटिल अज्ञानी हूँ। फिर हे दीनबन्धु भगवान ! प्रभु ने (आपने) भी मुझे भुला दिया।

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥
सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

भावार्थ– हे नाथ ! यद्यपि मुझ में बहुत से अवगुण हैं तथापि सेवक स्वामी की विस्मृति में न पड़े (आप उसे न भूल जायें)। हे नाथ ! जीव आपकी माया से मोहित है। वह आपकी ही कृपा से निस्तार पा सकता है। उदार हे रघुबीर ! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामी के, और पुत्र माता के भरोसे निश्चिन्त रहता है ; प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है)।'' ऐसा कहकर हनुमान जी अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदय में प्रेम छा गया। तब श्री रघुनाथ जी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींच कर शीतल किया। (फिर कहा) – ''हे कपि! सुनो, मन में न्यूनता मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय)। पर मुझ को सेवक प्रिय हैं, क्योंकि वह अनन्य गति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)।

दो०– सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥३॥

भावार्थ– और हे हनुमान ! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और वह चराचर (जड़चेतना) जगत मेरे स्वामी भगवान रूप है।''

देखि पवनसुत पति अनुकूला । हृदयँ हरष बीती सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई । सो सुग्रीव दास तव अहई ॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे । दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि । जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥
एहि बिधि सकल कथा समुझाई । लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई ॥
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा । अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥
सादर मिलेउ नाइ पद माथा । भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती । करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती ॥

भावार्थ– स्वामी को अनुकूल (प्रसन्न)देखकर पवनकुमार हनुमान जी के हृदय में हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे । (उन्होंने कहा–) ''हे नाथ ! इस पर्वत पर बानर राज सुग्रीव रहता है वह आपका दास है । हे नाथ ! उससे मित्रता कीजिये और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिये । वह सीता जी की खोज करायेगा और जहाँ तहाँ करोड़ो वानरों को भेजेगा ।'' इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान जी ने (श्री राम-लक्ष्मण)दोनों जनों को पीठ पर चढ़ा लिया । जब सुग्रीव ने श्री रामचन्द्र को देखा तो अपने जन्म को अत्यन्त धन्य समझा ! सुग्रीव चरणों में मस्तक नवा कर आदर सहित मिले ! श्री रघुनाथ जी भी छोटे भाई सहित उनसे गले लग कर मिले । सुग्रीव मन में इस प्रकार सोच रहे हैं कि 'विधाता! क्या वे मुझ से प्रीति करेंगे ।'

दो०– तब हनुमंत उंभय दिसि की सब कथा सुनाइ ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ।।४।।

भावार्थ– तब हनुमान जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात अग्नि को साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी ।

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा । लछिमन राम चरित सब भाषा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी । मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी ॥
मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा । बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
गगन पंथ देखी मैं जाता । परबस परी बहुत बिलपाता ॥
राम राम हा राम पुकारी । हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा । पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई । जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥

भावार्थ– दोनों ने हृदय से प्रीति की, कुछ भी अन्तर नहीं रक्खा । तब लक्ष्मण जी ने

मिथिलेशकुमारी जानकी जी मिल जायेंगी। मैं एक बार यहाँ मन्त्रियों के साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने पराये (शत्रुके) वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीता जी को आकाश मार्ग से जाते देखा था। हमें देखकर उन्होंने 'राम ! राम ! हे राम !' पुकार कर वस्त्र गिरा दिया था।'' श्री राम जी ने उसे माँगा, तब सुग्रीव ने तुरन्त ही दे दिया। वस्त्रों को हृदय से लगाकर रामचन्द्र जी ने बहुत ही सोच किया। सुग्रीव ने कहा—''हे रघुबीर सुनिये ! सोच छोड़ दीजिये। मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा, जिस प्रकार जानकी जी आकर आपको मिलें।''

दो० – सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव ।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ।।५।।

भावार्थ– कृपा के समुद्र और बल की सीमा श्री रामजी सखा सुग्रीव के वचन सुनकर हर्षित हुए। (और बोले–)''हे सुग्रीव ! मुझे बताओ, तुम बन में किस कारण रहते हो ?''

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।।
मय सुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ।।
अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा।।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा।।
गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई।।
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा।।
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी।।
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई।।
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं।।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा।।
रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।।
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला।।
इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं।।
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला।।

भावार्थ– (सुग्रीव ने कहा–) ''हे नाथ ! बालि और मैं दो भाई हैं। हम दोनों में ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभो ! मयदानव का एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँव में आया। उसने आधीरात को नगर के फाटक पर आकर पुकारा (ललकारा)। बालि शत्रु के बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा।

उसे देखकर मायावी भागा । मैं भी भाई के संग लगा चला गया । वह मायावी एक पर्वत की गुफा में जा छुपा । तब बालि ने मुझे समझाकर कहा–'तुम एक पखवाड़े (पन्द्रह दिन) तक मेरी बाट देखना । यदि मैं उतने दिनों में न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया ।' हे खरारि! मैं वहाँ महीने भर तक रहा । वहाँ (गुफा में से) रक्त की बड़ी भारी धारा निकली । (तब मैंने समझा कि) उसने बालि को मार डाला । अब आकर मुझे मारेगा । इसलिये मैं वहाँ (गुफा के द्वारपर) एक शिला लगाकर भाग आया । मन्त्रियों ने नगर को बिना स्वामी (राजा) का देखा तो मुझको ज़बरदस्ती राज्य दे दिया । बालि उसे मारकर घर आ गया । मुझे राजसिंहासन पर देख कर उसने जी में भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना)। (उसने समझा कि यह राज्य के लोभ से ही गुफा के द्वार पर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ। और यहाँ आकर राजा बन बैठा)। उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया । हे कृपालु रघुबीर ! मैं उसके भय से समस्त लोकों में बेहाल होकर फिरता रहा । वह शाप के कारण यहाँ नहीं आता। तो भी मैं मन में भयभीत रहता हूँ ।'' सेवक का दु:ख सुनकर दीनों पर दया करने वाले श्री रघुनाथ जी की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं ।

अन्तर्कथा– ऊपर की चौपाई में बारह सम पंक्तियाँ हैं । इनमें सुग्रीव राम को समस्त कथा सुनाते हैं कि किस प्रकार उनका भाई बाली, जो उनसे पहले बहुत प्रेम करता था, उनका शत्रु बन गया । उसके भय से किष्किंधा को छोड़कर वह अपने मंत्री हनुमान के साथ अकेले ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हैं । कथा को सविस्तार समझने के लिए देखिए 'पात्र परिचय'–(१)बालि, पृष्ठ ७८३।

सुग्रीव ने राम को यह बताया कि श्रापवश बालि उसको मारने ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं आता । इसकी अन्तर्कथा इस प्रकार है :

दुंदुभि नाम का भैसे के रूप वाला एक असुर था । उसको एक हजार हाथियों के बल का वरदान मिला था । उतना अधिक बल पा जाने पर वह सोचने लगा कि उसका प्रयोग कैसे किया जाय । उसने समुद्र को युद्ध के लिए ललकारा । सागरराज ने उससे कह दिया कि मैं तेरे साथ युद्ध नहीं कर सकता । तू अपने बराबर के व्यक्ति से लड़ । उत्तर दिशा में हिमवान् के पास पहुँचा और युद्ध करने को कहा । हिमवान् ने उससे कह दिया, ''भाई, मुझसे क्यों लड़ता है ? मेरे पास तो अनेक ऋषि मुनि ठहरे हुए हैं । उन भले और भोले लोगों के साथ मेरा दिन रात का सहवास रहता है । मैं भला लड़ना क्या जानूँ ?'' तब दुंदुभि ने हिमवान् से कहा, 'तू नहीं लड़ सक्ता तो अपने समान किसी दूसरे बलशाली को बता जो मुझसे लड़ सके ।' हिमवान् ने उत्तर दिया, 'हे महिषासुर, दक्षिण में तेरे जैसा ही बलवान वानरराज बालि है । तुझमें हिम्मत हो तो उसे अपने साथ युद्ध करने के लिए निमंत्रण दे ।'

दुंदुभि वहाँ से किष्किंधा पहुँचा और ज़ोरो से उछल कूद करने लगा। बड़े-बड़े पेड़ों को सींगों से गिराते हुए उसने गरजकर बालि को ललकारा ''सब कहते हैं कि तुझमें बड़ा बल है, तो बाहर निकल और मेरे साथ युद्ध कर!''

बालि उस समय अंत:पुर में आराम से सो रहा था। असुर की गर्जना सुनकर जाग पड़ा और महल के बाहर निकल आया। साथ में उसकी पत्नीयाँ चली आईं। बालि ने असुर से कहा, 'दुंदुभि क्यों व्यर्थ में शोर मचा रहे हो। जान बचानी हो तो अभी चले जाओ यहाँ से।'

बालि की तिरस्कारपूर्ण बातों से दुंदुभि को बड़ा गुस्सा आया। वह बोला, ''अपनी स्त्रियों के सामने क्यों बढ़ बढ़ बाते बना रहा है। मैं तो तेरे साथ युद्ध करने आया है। बकवास करना बंद कर। अभी तो मालूम होता है तू सोकर उठा है। मदिरा का नशा तेरे दिमाग से उतरा नहीं है। मैं दिन चढ़ते तक ठहरुँगा। तब तक तू तैयार हो जा और जो कुछ भोगादि की इच्छा हो, पूरी कर ले। सबसे विदा लेकर मेरे सामने आ जा। मैं तुझे युद्ध में समाप्त करने वाला हूँ।''

दुंदुभि की बातें सुनकर बालि ज़ोर ते हँस पड़ा। अपनी स्त्रियों को उसने अंदर चले जाने को कहा और राक्षस से बोला, ''अरे दुंदुभि मैं नशें में नहीं हूँ। यही समझ ले कि युद्ध करने के लिए उत्तेजक पेय पीकर आया हूँ। मेरे साथ युद्ध करना हो तो तैयार!'' और यों कहकर बालि ने दुंदुभि की पूँछ को पकड़कर उसके शरीर को जोरों से घुमाकर उसे फेंक दिया। असुर के मुँह से खून निकलने लगा। लेकिन इतने पर भी वह दौड़ता हुआ लौटा और बालि से भिड़ गया। लेकिन बालि ने अपने मुष्टि प्रहारों से उसे मार डाला। उस मरे भैंसे को उठाकर ऐसे जोर से फेंका कि वह एक योजन दूर जा गिरा और उसके शरीर से खून के छीटे हवा में उड़कर मतंग मुनि के आश्रम में जा गिरे। मतंग मुनि को इसका पता चल गया कि यह कैसे हुआ होगा। उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने बालि को शाप दिया कि 'हे बालि, घमंड के मारे मुरदार शरीर को फेंक कर उसके खून से तूने आश्रम को अपवित्र किया। इसलिए इस आश्रम में यदि तू प्रवेश करेगा तो उसी क्षण तेरी मौत हो जायेगी।' इसी कारण से बालि यहाँ आने की हिम्मत नहीं करता था।

दो०– सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥६॥

भावार्थ– (राम ने कहा) "हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाण से बालि को मार डालूँगा। ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी, उसके प्राण न बचेंगे।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

जिन्ह कें असि मति सहज न आईं । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥
आगें कह मृदु बचन बनाई । पाछें अनहित मन कुटिलाई ॥
जा कर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूल सम चारी ॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । बालि महाबल अति रनधीरा ॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए । बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ॥
बार बार नावइ पद सीसा । प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा ॥
उपजा ग्यान बचन तब बोला । नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला ॥
सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥
ए सब रामभगति के बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक ॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं । माया कृत परमारथ नाहीं ॥
बालि परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ॥
सपनें जेहि सन होइ लराई । जागें समुझत मन सकुचाई ॥
अब प्रभु कृपा करहु एहिं भाँती । सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी । बोले बिहँसि रामु धनुपानी ॥
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई । सखा बचन मम मृषा न होई ॥
नट मरकट इव सबहि नचावत । रामु खगेस बेद अस गावत ॥
लै सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥
सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा । ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा ॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥

भावार्थ– जो लोग मित्र के दुःख से दुखी नहीं होते, उन्हें देखने से भारी पाप लगता है । अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को । सुमेरू (बड़े भारी पर्वत)के समान जाने । जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे

मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं ? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलाये। उसके गुण को प्रकट करे और अवगुण को छिपावे। देने लेने में मन में शंका न रक्खे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में तो सदा से सौ गुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्र के गुण (लक्षण) ये हैं। जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है-हे भाई !(इस तरह) जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है। मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र—ये चारों शूल के समान पीड़ा देने वाले हैं। हे सखा ! मेरे बल पर अब तुम चिन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा)।" सुग्रीव ने कहा—'हे रघुबीर ! सुनिये, बालि महा बलवान और अत्यन्त रणधीर है।' फिर सुग्रीव ने श्री राम जी को दुंदुभि राक्षस की हड्डियाँ और साल के वृक्ष दिखलाये। श्री रघुनाथ जी ने उन्हें बिना ही परिश्रम के (आसानी से) ढहा दिया। श्री राम जी का अपरिमित बल देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़ गयी और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालि का बध अवश्य करेंगे। वे बार बार चरणों में सिर नवाने लगे। प्रभु को पहचान कर सुग्रीव मन में हर्षित हो रहे थे। जब ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब वे ये बचन बोले कि "हे नाथ ! आपकी कृपा से अब मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, सम्पत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सब को त्याग कर मैं आपकी सेवा ही करूँगा। क्योंकि आपके चरणों की आराधना करने वाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख, सम्पत्ति आदि)राम-भक्ति के विरोधी हैं। जगत में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुख आदि द्वन्द हैं, सब के सब माया रचित हैं, परमार्थता (वास्तव) में नहीं हैं। हे श्री रामजी ! बालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपा से (जन्म-मरण के)दुःख का नाश करने वाले आप मुझे मिले। जिसके साथ अब स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर उसे समझ कर मन में संकोच होगा (कि स्वप्न में भी मैं उससे क्यों लड़ा)। हे प्रभो ! अब तो इस प्रकार कीजिये कि सब छोड़कर दिनरात मैं आपका भजन ही करूँ।" सुग्रीव की वैराग्य युक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्य को देखकर) हाथ में धनुष धारण करने वाले श्री रामजी मुस्कराकर बोले :'तुमने जो कुछ कहा है सत्य है। परन्तु हे सखा ! मेरा वचन मिथ्या नहीं होगा (अर्थात बालि मारा जायेगा और तुम्हें राज्य मिलेगा)।'(काक भुशुण्डि जी कहते हैं कि—)'हे पक्षियों के राजा गरुड़, नट (मदारी)के बन्दर की तरह श्री राम जी सब को नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं।' तदनन्तर सुग्रीव को साथ लेकर और हाथों में धनुष वाण धारण करके श्री रघुनाथ जी चले। तब श्री रघुनाथ जी ने सुग्रीव को बालि के पास भेजा। वह श्रीराम जी का बल पाकर बालि के निकट जाकर गरजा। बालि सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा। उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया कि 'हे पति ! सुनिये सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं। वे कोसलाधीश दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राम में काल को भी जीत सकते हैं।'

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में २९ विषम पंक्तियां हैं। समस्त मानस में यह सबसे लम्बी चौपाई है। इसमें विविध विषय हैं—हनुमान सुग्रीव से बार-बार कहता है कि अब राम के साथ मैत्री हो जाने से बालि को जीतना बहुत ही आसान हो गया है, फिर भी सुग्रीव के मन की शंका मिटी नहीं। वह बालि को एक प्रकार से अजेय समझता था। उसके लोहे के समान शरीर का राम भी कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे, सुग्रीव का यही विश्वास था। श्रीराम ने सुग्रीव की श्रद्धा और बालि से उसका डर देखकर सोचा कि उसे अपनी शक्ति का कुछ प्रमाण देना आवश्यक है। तभी वह निश्चिंत हो पायेगा।

वहीं पास में ही दुंदुभि का शव पहाड़ की तरह पड़ा हुआ था। अपने अंगूठे से राम ने उसे उछाला तो दस योजन दूर जा गिरा।

फिर राम ने अपने धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींचकर एक बाण छोड़ा, जिसने सुग्रीव के बताये हुए शाल वृक्ष तथा उसके पीछे एक कतार में खड़े छः वृक्षों को भेद दिया। भेदकर वह अद्भुत वाण फिर वापस रामचन्द्र के तुणीर में प्रवेश कर गया।

श्रीरामचन्द्र की शस्त्रकला के इस आश्चर्यजनक प्रदर्शन से सुग्रीव का संदेह पूर्णतया मिट गया। उसको विश्वास हुआ कि राम का बाण बालि के बज्र शरीर को भेद सकेगा। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने राम को साष्टांग प्रणाम किया और बोला 'हे राम, मैंनें आपका पराक्रम देखा। इंद्र के नेतृत्व में सारे देवता भी आकर आप पर आक्रमण करें तो भी आप विजयी होंगे। बालि तो आपके सामने कुछ भी नहीं हैं। आज मैं निश्चिंत हुआ। बस, आप शीघ्र से शीघ्र बालि को मारकर मेरी रक्षा कीजिए। चलिये, आज ही किष्किंधा को चल पड़ें।'

दो०— कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहि तौ पुनि होउँ सनाथ॥७॥

भावार्थ— बालि ने कहा-'भीरु (डरपोक) प्रिये! सुनो श्री रघुनाथ जी समदर्शी हैं। जो कदाचित वे मुझे मारेंगे तो मैं सनाथ हो जाऊँगा। परमपद पा जाऊँगा।'

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥
एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥
मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

भावार्थ– ऐसा कह कर वह महा अभिमानी बालि सुग्रीव को तिनके समान जानकर चला। दोनों भिड़ गये। बालि ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़ी ज़ोर से गरजा। तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसा की चोट उसे बज्र के समान लगी। (सुग्रीव ने आकर कहा–) 'हे कृपालु रघुबीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं काल है।' (श्री राम जी ने कहा–) 'तुम दोनों भाइयों का एक-सा ही रूप है। इसी भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा।' फिर श्री रामजी ने सुग्रीव के शरीर को हाथ से स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर बज्र के समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही। तब श्री राम जी ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनों में पुनः अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। श्री रघुनाथ जी वृक्ष की आड़ से देख रहे थे।

दो०– बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि ॥८॥

भावार्थ– सुग्रीव ने बहुत छल-बल किये, किन्तु अन्त में भय मान कर हृदय से हार गया। तब श्री राम जी ने तानकर बालि के हृदय में बाण मारा।

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥
धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥
अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

भावार्थ– बाण के लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, किन्तु प्रभु श्री रामचन्द्र जी को आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान का श्याम शरीर है, सिर पर जटा बनाये हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिये हैं और धनुष चढ़ाये हैं। बालि ने बार-बार भगवान की ओर देखकर चित्त को उनके चरणों में लगा दिया। प्रभु को पहचान कर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदय में प्रीति थी, पर मुख में कठोर वचन थे। वह श्री राम जी की ओर देखकर बोला 'हे गोसाई! आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह छिपकर मारा! मैं बैरी हूं और सुग्रीव प्यारा है! हे नाथ! किस दोष से आपने मुझे मारा है।' (श्री राम जी ने कहा–) 'हे मूर्ख! सुन। छोटे भाई की स्त्री, बहन,

पुत्र की स्त्री और कन्या, ये चारों समान हैं। इन्हें जो कोई बुरी दृष्ट से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता। हे मूढ़! तुझे अत्यन्त अभिमान है। तूने अपनी स्त्री की सीख पर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल का आश्रित जानकर भी अरे अधम, अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा।'

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस पंक्तियाँ हैं। राम के बाण से आहत, बालि मरते समय राम को उलहना देता है: "आप इस पृथ्वी पर धर्म की रक्षा हेतु ही आये हैं। फिर भी आपने व्याध के समान छिपकर मुझे मारा। मैं आपकी दृष्टि में बैरी हो गया और सुग्रीव आपको प्रिय, जबकि आप समदर्शी हैं। मैंने आप का क्या अपराध किया था जिससे आपने मुझे मारा!" राम उत्तर देते हैं: 'छोटे भाई और पुत्र की स्त्री, बहिन और बेटी – इन चारों को जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं।' राम ने बालि को मारने का भले ही कारण बता दिया। परन्तु बालि का प्रश्न कुछ और ही था। राम ने पेड़ की आड़ में छिपकर उसे क्यों मारा? इस प्रश्न का उत्तर तुलसीदास जी ने कहीं नहीं दिया है। उत्तर के लिए हमें एक किम्वदन्ति का सहारा लेना पड़ेगा। बालि को वरदान था कि जो भी उसका सामना करेगा, उसका आधा बल बालि में समा जायेगा। इस संदर्भ में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य अपने 'दशरथ नन्दन श्री राम' में कहते हैं–"यह बात तो सच थी कि बालि को सामने युद्ध करके कोई नहीं जीत सकता था। राम से भी यह अशक्य था। जैसे रावण को देवगण नहीं मार सकते थे, उसी प्रकार वरदान के कारण बालि की भी ऐसी ही स्थिति हो गई थी।" (पृष्ठ २२३)

बालि ने श्री राम के चरित्र पर जो प्रश्न-चिन्ह लगा दिया, उसके समाधान की राम किंकर उपाध्याय ने अपनी 'मानस मुक्तावली'* में कई प्रकार से चेष्टा की है, परन्तु कोई भी उत्तर सन्तोषजनक नहीं है।

१. 'छिपकर मारना जहाँ लोकदृष्टि में अन्यायपूर्ण माना जाता है, वहाँ ईश्वर सारी सृष्टि का संहार अदृश्य रहकर ही करता है।' लोक व्यवहार से तटस्थ, अदृश्य निर्गुण ब्रह्म का निरूपण तुलसीदास जी ने नहीं किया। गोस्वामी जी ने तो नारायण वासुदेव के मंगलमय रूप का साक्षात्कार कराया। लोक में इष्टदेव की प्रतिष्ठा हो गई। भगवान पृथ्वी का भार उतारने और धर्म की स्थापना करने के लिए बार बार आते हुए साक्षात दिखाई पड़े। श्री राम असीम सौन्दर्य, शील और शक्ति के प्रतीक हैं। वह पुरुषोत्तम हैं और अनुकरणीय हैं। ईश्वरांश माने जाने पर भी मनुष्यांश नहीं छोड़ते। जनक की वाटिका में सीता का साक्षात्कार होते ही उनके हृदय में सामान्य नवयुवक के सामान प्रेम का उदय होता है। सीता के अपहरण के बाद उनकी विरह वेदना उतनी ही तीव्र है जितनी किसी सामान्य प्रेमी की होती है।

---

* देखिए भाग ३, पृष्ठ १७४-१८२।

उन्होंने ताड़का, सुबाहु, मारिच, खरदूषण, त्रिशिरा और कबंध का बध खुले आम किया। फिर बालि के वध के लिये उन्हें रक्षा कवच की आवश्यक्ता क्यों हुई ?

२. 'पशु पर तो व्याध ही प्रहार करता है, और वह प्रहार भी छिपकर ही किया जाता है।' बालि को पशु समझना राम किन्कर जी का भ्रम है। इस सन्दर्भ में देखिये पृष्ठ ७८३।

३. 'बालि यह कह सकता था कि आपने मुझे अवसर प्रदान नहीं किया। प्रभु इस आरोप का खण्डन करने के लिए ही तारा द्वारा बालि को दिये गये उपदेश का स्मरण दिलाते हैं।.....प्रभु का संकेत यह था कि इस परिचय के बाद तुम्हारा कर्तव्य था कि तुम मेरे सम्मुख शरणागत के रूप में आते और अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना करते। जब तुम मुझसे यह माँग करते हो कि मुझे तुम्हारे समक्ष आना चाहिए था तब यह प्रश्न स्वभावत: किया जा सकता है कि जीव को ईश्वर के सम्मुख आना चाहिये अथवा जीव के सम्मुख ईश्वर का आना कर्तव्य है।' प्रश्न यहाँ जीव और ब्रह्म का नहीं है। प्रश्न है एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य द्वारा छल से वध का। तारा से कहीं अधिक ज्ञानोपदेश मन्दोदरी ने रावण को दिया था।

'कंत राम विरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू।।'*

न बालि ने तारा की सुनी और न रावण ने मन्दोदरी की। अनसुनी करने पर भी राम ने रावण को खुलेआम मारा, नाकि साल पेड़ के पीछे छुपकर।

४. 'पुष्पमाला के द्वारा मेरी उपस्थिति का ज्ञान होने पर भी जब तुमने सुग्रीव पर प्रहार करने में संकोच का अनुभव नहीं किया तब मैं यह समझ गया कि तुम जान-बूझकर मुझे अनदेखा करना चाहते हो।' बालि और सुग्रीव सगे भाई थे। उनकी आकृति में बहुत क्षमता थी। इसीलिये पहले दिन जब दोनों भाइयों में मल्ल युद्ध हुआ तो राम ने बालि पर बाण नहीं चलाया, क्योंकि वे भ्रम में पड़ गये की दोनों में से कौन बालि है। दूसरे दिन पहचान के लिये उन्होंने सुग्रीव के गले में सफेद फूलों की माला पहना दी। माला इसलिये नहीं पहनायी गई थी कि बालि को चेतावनी दी जाये की सुग्रीव उनका मित्र और शरणागत है और उस पर प्रहार करने का बालि साहस न करे।

कुछ रामायणों में ऐसा कहा गया है कि बालि ने त्रेतायुग में छल द्वारा मारे जाने का राम से बदला लिया। द्वापर में बालि व्याध के रूप में पैदा हुआ, और कृष्ण राम के दूसरे अवतार हुये। इस व्याध ने कृष्ण की ऐड़ी में छिपकर वाण मारा। इसी के द्वारा कृष्ण की मृत्यु हुई।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला।।
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।।

---

* देखिए लंकाकाण्ड के दोहे १४-१५ और उनके बीच की चौपाई

श्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ।।
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।।
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति प पालन प्रलय समीहा ।।
रोम राजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।।
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कलपना ।।

दो० – सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि ।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि ।।९।।

भावार्थ– (बालि ने कहा–)"हे श्री राम जी ! सुनिये, स्वामी (आप)से मेरी चतुराई नहीं चल सकती । हे प्रभो ! अन्तकाल में आपकी गति (शरण)पाकर मैं अब भी पापी ही रहा ?"

सुनत राम अति कोमल बानी । बालि सीस परसेउ निज पानी ।।
अचल करौं तनु राखहु प्राना । बालि कहा सुनु कृपानिधाना ।।
जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ।।
जासु नाम बल संकर कासी । देत सबहि सम गति अबिनासी ।।
मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ।।

भावार्थ– बालि की अत्यन्त कोमल वाणी सुनकर, श्री रामचन्द्र जी ने उसके सिर को अपने हाथ से स्पर्श किया (और कहा–) 'मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ , तुम प्राणों को रक्खो ।' बालि ने कहा–"हे कृपानिधान ! सुनिये । मुनिगण जन्म जन्म में (प्रत्येक जन्म में)अनेकों प्रकार का साधन करते रहते हैं, फिर भी अन्तकाल में उन्हें 'राम' कह नहीं आता (उनके मुख में 'राम-नाम' नहीं निकलता)। जिन के नाम के बल से शंकर जी काशी में सब को समान रूप से अविनाशी गति (मुक्ति)देते हैं । वही श्री राम स्वयं मेरे नेत्रों के सामने आ गये हैं । हे प्रभो ! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा ?

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में केवल पाँच विषम पंक्तियाँ हैं । इससे भी छोटी चौपाई अरण्य काण्ड में दोहा ३१ के नीचे केवल दो पंक्तियों की है (देखिए पृष्ठ ७५८) । ऊपर की चौपाई में एक बहुत सुन्दर भाव है । जब बालि का अहंकार जाता रहा और उसने अपनी गलती मान ली, तो राम उसको पुनः जीवन दान देने लगे । परन्तु बालि ने स्वीकार नहीं किया । उसने कहा–'साक्षात् भगवान का दर्शन होने के बाद, कौन और जीना चाहेगा।' इसी भाव को नीचे के छन्द में और विस्तार से कहा गया है।

छं०– सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं ।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ।।

मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही ।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही ।।१।।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ।।
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिऐ ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ ।।२।।

भावार्थ— श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरन्तर जिसका गुणगान करती रहती हैं, तथा प्राण और मन को जीतकर एवं इन्द्रियों को विषयों के रस से सर्वथा नीरस बनाकर (छुड़ाकर) मुनिगण ध्यान में जिनकी कदाचित ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट हैं । आपने मुझे अत्यन्त अभिमान वश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो । परन्तु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काटकर उस पर बबूर की बाढ़ लगायेगा (अर्थात पूर्ण काम बना देने वाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा) ? हे नाथ ! अब मुझपर दयादृष्टि कीजिये, और जो वर माँगता हूँ उसे दीजिये । मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूं, वहीं श्री राम जी (आप) के चरणों में प्रेम करूँ। हे कल्याणप्रद प्रभो ! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है । इसे स्वीकार कीजिये । और हे देवता और मनुष्यों के नाथ ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइये ।"

टिप्पणी— पृष्ठ ७९७ की चौपाई में जो भाव व्यक्त किया गया है, उसी भाव को तुलसीदास जी बालि के मुख से ऊपर के दो छन्दों में विस्तारपूर्वक और स्पष्ट करते हैं । राम ने बालि के समक्ष जब पुनर्जीवन का प्रस्ताव रखा, तो बड़ी विनम्रता से उसे अस्वीकार करते हुए, बालि कहता है: "भगवान का साक्षात दर्शन होने के बाद, ऐसा मूर्ख कौन होगा जो पूर्णकाम भगवान को छोड़कर, इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा?'' ऐसा कहकर बालि ने अपने प्राण त्याग दिये । संसार को छोड़ते समय, बालि ने अपने पुत्र अंगद को राम के संरक्षण में छोड़ दिया । तभी तो राम ने जब सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया, तो अंगद को वहाँ का युवराज । ये ही अंगद बाद में किष्किन्धा का राजा हुआ, जब सुग्रीव ने वृद्धावस्था में रामचन्द्र के साथ सरयू तीर पर शरीर का त्याग किया (देखिये पात्र-परिचय– २.' सुग्रीव', पृष्ठ ७८३)।

दो०— राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ।।१०।।

भावार्थ— श्री राम जी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके, बालि ने शरीर को वैसे ही (आसानी से) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना न जाने।

राम बालि निज धाम पठावा । नगर लोग सब ब्याकुल धावा ।।
नाना बिधि बिलाप कर तारा । छूटे केस न देह सँभारा ।।
तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ।।
छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ।।
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा । जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ।।
उपजा ग्यान चरन तब लागी । लीन्हेसि परम भगति बर मागी ।।
उमा दारु जोषित की नाईं । सबहि नचावत रामु गोसाईं ।।
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा । मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ।।
राम कहा अनुजहि समुझाई । राज देहु सुग्रीवहि जाई ।।
रघुपति चरन नाइ करि माथा । चले सकल प्रेरित रघुनाथा ।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी ने बालि को अपने परम धाम भेज दिया । नगर के सब लोग व्याकुल होकर दौड़े । बालि की स्त्री तारा अनेकों प्रकार से विलाप करने लगी । उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की संभाल नहीं है । तारा को व्याकुल देखकर श्री रघुनाथ जी ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान)हर ली । उन्होंने कहा–"पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु, इन पाँच तत्वों से यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है । वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है । फिर तुम किसके लिये रो रही हो?'' जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान के चरणों में लगी और उसने परम भक्ति का वर मांग लिया । (शिव जी कहते हैं–)'हे उमा ! स्वामी श्री राम जी सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं ।' तदनन्तर श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधिपूर्वक बालि का सब मृतक-कर्म किया । तब श्री रामचन्द्र जी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो । श्री रघुनाथ जी की प्रेरणा (आज्ञा)से सब लोग श्री रघुनाथ जी के चरणों में मस्तक नवाकर चले ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । तारा जब अपने पति बालि के मरने पर विलाप करने लगी, तो उसे श्री राम ने समझाया कि मनुष्य का शरीर पाँच तत्वों– पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु– से बना है । और जब मनुष्य का आयुकर्म पूरा हो जाता है तो यह शरीर इन्हीं पाँच तत्वों में जा मिलता है । आत्मा अमर है । यही शिक्षा श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को दी थी :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।। *

---

* श्रीमद्भागवद्गीता, अध्याय २, श्लोक २२.

जब तारा को यह ज्ञान हुआ कि जैसे पुराने वस्त्र छोड़कर मनुष्य नये वस्त्र धारण करता है, इसी प्रकार आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरे में प्रवेश करती है, उसका मोह भंग हो गया और उसने राम के चरणों में गिरकर उनकी परम भक्ति का वरदान माँगा।

दो०— लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज ।।११।।

भावार्थ— लक्ष्मण जी ने तुरन्त ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों की समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं।।
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।।
बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती।।
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ।।
जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं।।
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई।।
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा।।
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई।।
अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू।।
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए।।

भावार्थ— "हे पार्वती ! जगत में श्री राम जी के समान हित करने वाला गुरू, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सब की यह रीति है कि स्वार्थ के लिये ही सब प्रीति करते हैं। जो सुग्रीव दिन-रात बालि के भय से व्याकुल रहता था, जिसके शरीर में बहुत से घाव हो गये थे और जिसकी छाती चिन्ता के मारे जला करती थी, उसी सुग्रीव को उन्होंने बानरों का राजा बना दिया। श्री रघुवीर जी का स्वभाव अत्यन्त ही कृपालु है। जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभु को त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्ति के जाल में फँसें ?" फिर श्री राम जी ने सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से उन्हें राजनीति की शिक्षा दी। फिर प्रभु ने कहा-'हे बानरपति सुग्रीव ! सुनो। मैं चौदह वर्ष तक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षा ऋतु आ गयी। अतः मैं यहां पास ही पर्वत पर टिका रहूँगा। तुम अंगद सहित राज्य करो। मेरे काम का सदा ध्यान रखना।' तदनन्तर जब सुग्रीव जी घर लौट आये, तब श्री रामजी प्रवर्षण पर्वत पर जा टिके।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियौ है। इसमें दो विशेष बातें कही गयी हैं—

१) अधिकतर लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये दूसरे से मैत्री करते हैं, परन्तु राम की सुग्रीव के प्रति मैत्री निस्प्रह थी।

(२) दोहा ११ के ऊपर की चौपाई में निम्न पंक्ति है–

'राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई।'

इस पंक्ति का आशय राम सुग्रीव को इस प्रकार समझाते हैं–

'कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाऊँ दस चारि बरीसा।।'

राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ था, अतएव इन चौदह वर्षों में जंगलों में ही बिचरना था और वे किसी नगर में प्रवेश नहीं कर सकते थे। इसी कारण बालि का वध हो जाने पर, उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया कि किष्किन्धा पुरी में जाकर सुग्रीव का राजतिलक करें। इसी प्रकार लंकाकाण्ड में भी रावण का जब वध हो गया तो राम ने लक्ष्मण को ही लंका के राजमहल में जाकर विभीषण का तिलक करने का आदेश दिया था। और अयोध्याकाण्ड में अयोध्या से निकल कर जब निषादराज गुह ने उन्हें अपने पुर में निवास करने का मनुहार किया :

'कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सब लोग सिहाऊ।।'

तब राम ने गुह का निमंत्रण बड़ी विनम्रता से अस्वीकार कर दिया :

'बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु।।'

(देखिये पृष्ठ४७४)

दो०– प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ।।१२।।

भावार्थ– देवताओं ने पहले से ही उस पर्वत की एक गुफा को सुन्दर बना (सजा) रक्खा था। उन्होंने सोच रक्खा था कि कृपा की खान श्री राम जी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे।

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा।।
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए।।
देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा।।
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा।।
मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते।।
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई।।

कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाए । गरजत लागत परम सुहाए ॥

भावार्थ– सुन्दर फूला हुआ बन अत्यन्त सुशोभित है । मधु के लोभ से भौरों के समूह गुँजार कर रहे हैं। जब से प्रभु आये, तब से बन में सुन्दर कन्द, मूल और पत्तों की बहुतायत हो गयी । मनोहर और अनुपम पर्वत को देखकर देवताओं के सम्राट श्री रामजी छोटे भाई सहित वहाँ रह गये । देवता, सिद्ध और मुनि भौरों, पक्षियों और पशुओं के शरीर धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे । जब से रमापति श्री रामजी ने वहाँ निवास किया तब से बन मंगलस्वरूप हो गया । सुन्दर स्फटिक मणि की एक अत्यन्त उज्ज्वल शिला है, उस पर दोनों भाई सुख पूर्वक विराजमान हैं । श्री रामजी छोटे भाई लक्ष्मण से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेकों कथाएँ कहते हैं। वर्षाकाल में आकाश में छाए हुए बादल गरजते हुए बहुत सुहावने लगते हैं।

दो०– लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि ।।१३।।

भावार्थ– (श्री रामजी कहने लगे–) "हे लक्ष्मण ! देखो, मोरों के झुंड बादलों को देखकर नाच रहे हैं । जैसे गृहस्थ वैराग्य में अनुरक्त किसी विष्णु भक्त को देखकर हर्षित होते हैं ।

घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रही न घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ । जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई । जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी । जनु जीवहि माया लपटानी ॥
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

भावार्थ– आकाश में बादल घुमड़-घुमड़ कर घोर गर्जना कर रहे हैं । प्रिया विहीन (सीता जी के बिना) मेरा मन डर रहा है । बिजली की चमक बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती । बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतर कर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान नम्र हो जाते हैं । बूँदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं । छोटी नदियाँ भरकर (किनारों को) तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े से ही धन से दुष्ट इतरा जाते हैं (मर्यादा का त्याग कर देते हैं)। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी

गँदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीव के माया लिपट गई हो। जल एकत्र हो-होकर तालाबों मे भर रहा है, जैसे सद्गुण (एक-एक कर)सज्जन के पास चले आते हैं। नदी क जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त)हो जाता है।

दो०— हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ।।१४।।

भावार्थ — पृथ्वी हरित घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गई है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखण्ड मत के प्रचार से सद्ग्रन्थ गुप्त (लुप्त)हो जाते हैं।

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।।
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका ।।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ ।।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ।।
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी ।।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ।।
महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं।।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ।।
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ।।
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा ।।
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना ।।

भावार्थ— चारों दिशाओं में मेढ़कों की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है मानों विद्यार्थियों समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नये पत्ते आ गये हैं। जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं शोभित हो गये हैं जैसे साधक क मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है। मदार र जवास बिना पत्ते के हो गये (उनके पत्ते झड़ गये हैं)। जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का द्यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चलती)। धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, से क्रोध धर्म को दूर कर देता है (अर्थात क्रोध का आवेश होने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह ता है)। अन्न से युक्त (ललहाती हुई खेती से हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, से उपकारी पुरुष की सम्पत्ति। रात के घने अन्धकार में जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो म्भियों का समाज आ जुटा है। भारी वर्षा से खेतों की क्यारियां फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र ने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमें से घास आदि

को निकाल कर फेंक रहे हैं) जैसे विद्वान लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं। चक्रबाक पक्षी दिखाई नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुग को पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर में वर्षा होती है, पर घास नहीं उगती। जैसे हरिभक्त के हृदय में काम नहीं उत्पन्न होता। पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ शिथिल होकर विषयों की ओर नाता छोड़ देती हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं। दोहा १३ से १५ तक और उनके बीच की चौपाइयों में तुलसीदास जी ने वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए एस विशाल रूपक बाँधा है।

१. मोर बादलों को देखकर हर्ष से नाच रहे हैं, जैसे गृहस्थ वैराग्य में अनुरक्त किसी विष्णु भक्त को देखकर हर्षित होते हैं।

२. बिजली की चमक बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती।

३. **बादल** पृथ्वी के समीप आकर बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान नम्र हो जाते हैं।

४. बूँदों की चोट पर्वत ऐसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं।

५. छोटी नदियाँ भरकर किनारों को तोड़ती हुई चलीं, जैसे थोड़े से ही धन से दुष्ट इतरा जाते हैं, अर्थात मर्यादा का त्याग कर देते हैं।

६. पृथ्वी पर पड़ते ही पानी गंदला हो जाता है, जैसे शुद्ध जीव के माया लिपट गई हो।

७. जल एकत्र हो-होकर तलाबों में भर रहा है, जैसे सद्गुण एक-एक कर सज्जन के पास चले आते हैं।

८. नदी का जल समुद्र में जाकर स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त)हो जाता है।

९. पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गयी है और रास्ते समझ नहीं पड़ते, जैसे पाखण्ड मत के प्रचार से सद्ग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं।

१०. मेढकों की टर्र-टर्र ऐसी लग रही है मानो ब्राह्मणों के बालक वेद पढ़ रहे हों। इसमें पंडितों के ऊपर एक व्यंग है जो बिन समझे वेद का पाठ करते रहते हैं।

११. वृक्ष हरे-हरे नये पत्तों से सुशोभित हो गये हैं, जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान)प्राप्त होने पर हो जाता है।

१२. मदार और जवास के पत्ते झड़ गये हैं, जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों की एक नहीं चलती।

१३. धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

१४. अन्न से युक्त पृथ्वी ऐसी सुशोभित हो रही है, जैसे उपकारी पुरुष की सम्पत्ति।

१५. रात के घने अन्धकार में जूगनू ऐसी शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियों का समाज आ जुटा हो।

१६. भारी वर्षा से खेतों की क्यारियां फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं।

१७. चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं, जैसे विद्वान लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं।

१८. चक्रवाक पक्षी दिखायी नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुग को पाकर धर्म भाग जाते हैं।

१९. ऊसर में वर्षा होती है पर घास नहीं उगती, जैसे हरिभक्त के हृदय में काम उत्पन्न नहीं होता।

२०. पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से शोभायमान है, जैसे स्वराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है।

२१. जहाँ-तहाँ अनेक पथिक ठहरे हुये हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ शिथिल होकर विषयों की ओर नाता छोड़ देती हैं।

२२. जब वायु बड़े जोर से चलने लगती है तब बादल इधर-उधर बिखर जाते हैं, जैसें कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के श्रेष्ठ आचरण नष्ट हो जाते हैं।

२३. बादलों के कारण कभी दिन में घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाता है, जैसे कुसंगति पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंगति पाकर उत्पन्न हो जाता है।

दो०— कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं।।१५(क)।।
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।।१५(ख)।।

भावार्थ-- कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं, जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ-आचरण) नष्ट हो जाता है। कभी (बादलों के कारण) दिन में घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है।

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

भावार्थ-- हे लक्ष्मण ! देखो, वर्षा बीत गयी और परम सुन्दर शरद्‌ऋतु आ गयी। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गयी। मानों वर्षा ऋतु ने (कास रूपी सफेद बालों के रूप में) अपना बुढ़ापा प्रकट किया है। अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे सन्तोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय। नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है, जैसे ज्ञानी पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गये, जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य प्रकट हो जाते हैं)। न कीचड़ है, न धूल। इससे धरती निर्मल होकर ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीति निपुण राजा की करनी। जल के कम हो जाने से मछलियां व्याकुल हो रही हैं जैसे मूर्ख (विवेक शून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है। बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवत् भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (बिरले ही स्थानों में) शरद ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है, जैसे कोई बिरले ही मेरी भक्ति पाते हैं।

टिप्पणी-- ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। तुलसीदास जी के समकालीन कवि लोक जगत से उपमेय लेते थे और प्रकृति जगत से उपमान। तुलसीदास जी की विधा इसकी उल्टी है। दोहा १३ से १५ तक और उनके बीच की चौपाइयों में वर्षा के प्रकृति

जगत से उपमेय और लोकजगत से उपमान लेकर तुलसीदास ने जो रूपक बांधा है, उसको इस चौपाई में और आगे के दो दोहों और बीच की चौपाई में और आगे बढ़ाया है। अन्तर केवल इतना है कि वर्षा ऋतु के उपमेयों के स्थान पर शरद ऋतु के उपमेय आ गए हैं।

१. शरदऋतु के आते ही कास के झाड़ सफेद फूलों से भर गये, मानो वर्षा ऋतु ने अपना बुढ़ापा प्रकट किया है।

२. अगस्त के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे सन्तोष लोभ को सोख लेता है।

३. नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है, जैसे मद और मोह से रहित संतो का हृदय।

४. नदी और तलाबों का जल धीरे- धीरे सूख रहा है, जैसे ज्ञानी पुरुष ममता का त्याग करते हैं।

५. खंजन पक्षी आ गये, जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं।

६. न कीचड़ है न धूल। धरती निर्मल होकर ऐसी शोभा दे रही है, जैसे नीति-निपुण राजा की करनी।

७. जल के कम हो जाने से मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे सामान्य पुरुष धन के बिना व्याकुल होता है।

८. बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है, जैसे भगवत्-भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं।

९. कहीं-कहीं शरद ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है, जैसे भगवान की भक्ति बिरले ही पाते हैं।

१०. वर्षा के कारण चौमासे में (जेठ, अषाढ़, सावन, भादों)जो लोग घर में विश्राम कर रहे थे वे शरद ऋतु के आते ही नगर छोड़कर अपने-अपने काम पर चले, जैसे श्री हरि की भक्ति पाकर चारों आश्रम के लोग (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, सन्यास)नाना प्रकार के साधन-रूपी श्रमों को त्याग देते हैं।

११. जो मछलियाँ अथाह जल में हैं वे सुखी हैं, जैसे हरि की शरण में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती।

१२. कमलों से तलाब ऐसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है।

१३. रात्रि देखकर चकवे के मन में वैसे ही दुख हो रहा है, जैसे दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुष्ट को होता है।

१४. पपीहा रट लगाये है। उसको बड़ी प्यास है, जैसे शंकर भगवान का द्रोही सुख के लिये झींकता रहता है।

१५. शरदऋतु के ताप को रात में चन्द्रमा हर लेता है, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं।

१६. चकोरों के समुदाय चन्द्रमा को इस प्रकार चाव से देख रहे हैं जैसे भगवत् भक्त भगवान को पाकर उनके दर्शन करते हैं।

१७. मच्छर और डाँस, जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गये, जैसे ब्राह्मण के साथ बैर करने से कुल का नाश हो जाता है।

१८. वर्षा ऋतु के कारण पृथ्वी पर जो जीव भर गये थे, वे शरद ऋतु को पाकर नष्ट हो गये, जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर सन्देह और ब्रह्म के समूह नष्ट हो जाते हैं।

दो० — चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ।।१६।।

भावार्थ— (शरद ऋतु पाकर) राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी (क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षा के लिए) हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्री हरि की भक्ति पाकर चारों आश्रम वाले (नानाप्रकार के साधन-रूपी) श्रमों को त्याग देते हैं।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ।।
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ।।
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा ।।
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी ।।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही ।।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई ।।
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ।।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ।।

भावार्थ-- जो मछलियां अथाह जल में है वे सुखी हैं, जैसे हरि की शरण में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलों के फूलने से तालाब कैसा शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है। भौरें अनुपम शब्द करते हुए गूँज रहे हैं, तथा पक्षियों के नाना प्रकार के सुन्दर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवे के मन में वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुष्ट को होता है। पपीहा रट लगाये है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्री शंकर जी का द्रोही सुख नहीं पाता (सुख के लिए झींकता रहता है)। शरद ऋतु के ताप को रात के समय चन्द्रमा हर लेता है, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। चकोरों के समुदाय चन्द्रमा को इस प्रकार चाव से देख रहे हैं जैसे भगवत्-भक्त भगवानको पाकर उनके दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गये जैसे ब्राम्हण के साथ बैर करने से कुल का नाश हो जाता है।

दो०-- भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जिमि संसय भ्रम समुदाइ ।।१७।।

भावार्थ-- (वर्षा ऋतु के कारण) पृथ्वी पर जो जीव भर गये थे, वे शरद ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गये जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर सन्देह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं।

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई ।।
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ।।
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई ।।
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी ।।
जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।।
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा ।।
जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी ।।
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ।।

भावार्थ-- वर्षा बीत गयी, निर्मल शरद ऋतु आ गयी। परन्तु हे तात सीता की कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो काल को भी जीतकर पलभर में जानकी को ले आऊँ। कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात ! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खज़ाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिये सुग्रीव ने भी मेरी सुध भुला दी। जिस बाण से मैंने बालि को मारा था उसी बाण से कल उस मूढ़ को मारूँ।" (शिव जी कहते हैं) "हे उमा ! जिसकी कृपा से मद और मोह छूट जाते हैं उनको कहीं स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है (यह तो लीला मात्र है)। ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रीति मान ली हैं (जोड़ ली है) वे ही इस चरित्रो को (लीला रहस्य को) जानते हैं।" लक्ष्मण जी ने जब प्रभु को क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथ में ले लिये।

दो०— तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव ।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।।१८।।

भावार्थ— तब दया की सीमा श्री रघुनाथ जी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाया कि 'हे तात ! सखा सुग्रीव को केवल भय दिखाकर ले आओ (उसे मारने की बात नहीं है) ।'

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा । राम काजु सुग्रीवँ बिसारा ।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ।।
सुनि सुग्रीवँ परम भय माना । बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ।।
अब मारुतसुत दूत समूहा । पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ।।
कहहु पाख महुँ आव न जोई । मोरें कर ता कर बध होई ।।
तब हनुमंत बोलाए दूता । सब कर करि सनमान बहूता ।।
भय अरु प्रीति नीति देखराई । चले सकल चरनन्हि सिर नाई ।।
एहि अवसर लछिमन पुर आए । क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए ।।

भावार्थ— यहाँ (किष्किन्धा नगरी में) पवन कुमार हनुमान जी ने विचार किया कि सुग्रीव ने राम कार्य को भुला दिया । उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर चरणों में सिर नवाया तथा (साम, दाम, दण्ड, भेद) चारों प्रकार की नीति कह कर उन्हें समझाया । हनुमान जी के वचन सुनकर सुग्रीव ने बहुत ही भय माना । (और कहा) 'विषयों ने मेरे ज्ञान को हर लिया । अब हे पवनसुत! जहाँ-तहाँ बानरों के यूथ रहते हैं, वहाँ दूतों के समूहों को भेजो । और कहला दो कि एक पखवाड़ में (पन्द्रह दिनों में) जो न आ जायगा, उसका मेरे हाथों वध होगा ।' तब हनुमान जी ने दूतों को बुलाया और सब का बहुत सम्मान करके, सबको भय, प्रीति और नीति दिखलायी । सब बन्दर चरणों में सिर नवाकर चले । इसी समय लक्ष्मण जी नगर में आए । उनका क्रोध देखकर बन्दर जहाँ-तहाँ भागे ।

दो०— धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार ।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार ।।१९।।

भावार्थ— तदनन्तर लक्ष्मण जी ने धनुष चढ़ा कर कहा कि नगर को जला कर अभी राख कर दूँगा । तब नगर भर को व्याकुल देखकर बालि पुत्र अंगद जी उनके पास आये ।

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही । लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही ।।
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना । कह कपीस अति भयँ अकुलाना ।।
सुनु हनुमंत संग लै तारा । करि बिनती समुझाउ कुमारा ।।
तारा सहित जाइ हनुमाना । चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना ।।

करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए ॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥
नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा ॥
पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई ॥

भावार्थ— अंगद ने उनके चरणों में सिर नवाकर विनती की (क्षमा याचना की)। तब लक्ष्मण जी ने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि डरो मत)। सुग्रीव ने अपने कानों से लक्ष्मण जी को क्रोधायुक्त सुनकर भय से अत्यन्त व्याकुल होकर कहा—"हे हनुमान! तुम तारा को साथ ले जाकर विनती करके राजकुमार को समझाओ (समझा-बुझाकर शान्त करो)"। हनुमान जी ने तारा सहित जाकर लक्ष्मण जी के चरणों की वन्दना की और प्रभु के सुन्दर यश का बखान किया। वे विनती करके उन्हें महल में ले आये तथा चरणों को धोकर उन्हें पलंग पर पैठाया। तब बानरराज सुग्रीव ने उनके चरणों में सिर नवाया और लक्ष्मण जी ने हाथ पकड़ कर उसको गले से लगा लिया। (सुग्रीव ने कहा--)'हे नाथ! विषय के समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियों के मन में भी क्षणमात्र में मोह उत्पन्न कर देता है (फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहरा)।' सुग्रीव के विनय युक्त बचन सुनकर लक्ष्मण जी ने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार से समझाया। तब पवन सुत हनुमान जी ने जिस प्रकार सब दिशाओं में दूतों के समूह गये थे, सब हाल सुनाया।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। इसमें पिछली सब घटनाओं का समावेश है। सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य देने के उपरान्त, राम ने उससे कहा:

'गत ग्रीष्म बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई ॥
अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू ॥'*

अर्थात, वर्षा ऋतु के कारण मैं कहीं बाहर नहीं जाऊगाँ।** प्रवरषन पर्वत की गुफा में वास करुंगा। तुम भी जाओ और अंगद सहित राज करो। परन्तु मेरे काज सीता–अन्वेषण का निरन्तर ध्यान रहे।

धरा, सम्पति और राज्य पाकर सुग्रीव विलास में इतना लीन हो गया कि उसे राज – काज का ध्यान नहीं रहा। क्रोधावेश में राम कहते हैं :

* देखिये दोहा १२ के ऊपर की चौपाई, पृष्ठ ८००

** वर्षा-ऋतु में भूमि 'जीव–संकुल' हो जाती है। जीव हत्या की आशंका से जैन- मुनि वर्षाऋतु में कहीं भी यात्रा नहीं करते। एक ही स्थान पर रहकर स्वाध्याय करते हैं। इसे चौमासा (चतुर्मास) कहते हैं। चार मासों –आषाढ़ श्रावण, भाद्रपद और आश्विन- में मुनियों के लिये यात्रा वर्जित है।

'वरषा गत निर्मल रितु आई *। सुधि न तात सीता कै पाई ।।
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी । पावा राज कोस पुर नारी ।।
जेहिं सायक मारा मैं बाली । तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।।'

अर्थात, वर्षा बीत गई। शरद ऋतु आ गई। परन्तु सीता की कोई खबर नहीं मिली। सुग्रीव ने भी मेरी सुधि नहीं ली। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पाकर अपने कर्तव्य को भी भूल गया। मैं कल ही उसको उस वाण से मार डालूँगा जिससे मैंने उसके बड़े भाई बालि को मारा था। क्रोध जब शान्त हुआ तब राम लक्ष्मण को समझाते हैं :

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव ।
भय दिखाई लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।। दोहा १८।।

अर्थात, सुग्रीव को मारने की कोई आवश्यकता नहीं ; उसे सिर्फ भय दिखा कर ले आओ। भाई की आज्ञा का पालन करते हुये लक्ष्मण तुरन्त किष्किन्धा नगरी गये और घोषणा की–

धनुष चढ़ाई कहा तब जारि करउँ पुरछार ।
व्याकुल नगर देखि तब आयउ बालि कुमार । दोहा १९।

लक्ष्मण ने जब यह धमकी दी की वह सारे नगर को जलाकर भस्म कर देंगे, तब अंगद उनकी शरण में आया। आगे का कथानक ऊपर की चौपाई में है। लक्ष्मण ने जब अंगद को अभयदान दे दिया, तब हनुमान लक्ष्मण को राजमहल में ले आये और सुग्रीव उनके पैरों पड़ गया। और प्रलाप करने लगा कि बड़े-बड़े देवता, नर और मुनि विषय के बस में आ चुके हैं। फिर मेरे जैसे नीच, पशु, वानर की क्या गिनती ? उसके पश्चाताप को देखकर लक्ष्मण ने उसको गले लगा लिया। इतने में हनुमान ने लक्ष्मण को आश्वासन दिया कि जिस कार्य के लिये वह आये हैं, उसकी प्रतिक्रिया पहले से शुरू हो चुकी है और दूत बानरों की सेना एकत्रित करने के लिये हर ओर भेजे जा चुके हैं।

दो०– हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ ।।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ ।।२०।।

भावार्थ– तब अंगद आदि बानरों को साथ लेकर और श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मण जी को आगे करके (अर्थात् उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले, और जहाँ श्री रघुनाथ जी थे वहाँ आये।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी । नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ।।
अतिसय प्रबल देव तव माया । छूटइ राम करहु जौं दाया ।।

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी । मैं पावँर पसु कपि अति कामी ॥
नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया । सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥
यह गुन साधन तें नहिं होई । तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई ॥
तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई । जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥

भावार्थ– श्री रघुनाथ जी के चरणों में सिर नवाकर हाथ जोड़ कर सुग्रीव ने कहा "हे नाथ ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है । हे देव ! आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम ! तभी वह छूटती है । हे स्वामी ! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयों के वश में हैं । फिर मैं तो पामर पशु और पशुओ में भी अत्यन्त कामी बन्दर हूँ । स्त्री का नयन वाण उसके नहीं लगा, जो भयंकर क्रोधरूपी अन्धेरी रात में भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता) । और लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बँधाया है, हे रघुनाथ जी! वह मनुष्य आपही के समान है । ये गुण साधन से प्राप्त नहीं होते, आपकी कृपा से ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं ।" तब श्री रघुनाथ जी मुस्करा कर बोले–"हे भाई ! तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो । अब मन लगाकर कोई उपाय करो जिस उपाय से सीता की खबर मिले ।"

दो०– एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ ।।२१।।

भावार्थ– इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि बानरों के यूथ (झुंड) आ गये । अनेक रंगो के बानरों के दल सब दिशाओं में दिखाई देने लगे ।

बानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
आइ राम पद नावहिं माथा । निरखि बदनु सब होहिं सनाथा ॥
अस कपि एक न सेना माहीं । राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई । बिस्वरूप ब्यापक रघुराई ॥
ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई । कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा । बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥
जनकसुता कहुँ खोजहु जाई । मास दिवस महँ आएहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ । आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ ॥

भावार्थ– (शिवजी कहते हैं–) 'हे उमा! बानरों की वह सेना मैंने देखी थी । उसकी जो गिनती करना चाहे वह महान मूर्ख है ।' सब वानर आकर श्री रामजी के चरणों में मस्तक

नवाते है और (सौन्दर्य माधुर्य निधि) श्री मुख के दर्शन कर कृतार्थ होते हैं। सेना में एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्री रामजी ने कुशल न पूछी हो। प्रभु के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। क्योंकि श्री रघुनाथ जी विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं (सारे रूपों में और सब स्थानों में हैं)। आज्ञा पाकर सब जहाँ तहाँ खड़े हो गये। तब सुग्रीव ने सबको समझा कर कहा कि "हे वानरों के समूहों! यह श्री रामचन्द्र जी का कार्य है, और मेरा निहोरा (अनुरोध) है; तुम चारों ओर जाओ। और जाकर जानकी जी को खोजो। हे भाई! महीने भर में वापस आ जाना। जो महीने भर की अवधि बिताकर बिना पता लगाये लौट आवेगा उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात मुझे उसका वध करना ही पड़ेगा)।"

दो०– बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत ।।२२।।

भावार्थ– सुग्रीव के वचन सुनते ही सब बानर तुरन्त जहाँ तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओं में) चल दिये। तब सुग्रीव ने अंगद, नल, हनुमान आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओं को बुलवाया (और कहा–)

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना ।।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू ।।
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचन्द्र कर काजु सँवारेहु ।।
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी ।।
तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका ।।
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई ।।
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी ।।
आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई ।।
पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा ।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी ।।
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु ।।
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना ।।
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता ।।

भावार्थ– "हे धीर बुद्धि और चतुर नील, अंगद, जामवंत और हनुमान! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सब किसी से सीताजी का पता पूछना। मन, वचन तथा कर्म से उसी का (सीता जी का पता लगाने का) उपाय सोचना। श्री रामचन्द्र जी का कार्य सफल करना। सूर्य की पीठ और अग्नि को हृदय से (सामने से) सेवन करना चाहिए, परन्तु स्वामी की सेवा तो छल छोड़कर स्वभाव से (मन, वचन, कर्म से) करनी चाहिए।

के धाम की प्राप्ति के लिए भगवत्सेवा रूप साधन) करना चाहिए, जिससे भव (जन्म मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जायें। हे भाई! देह धारण करने का यही फल है कि सब कामों को (कामनाओं को) छोड़कर श्री राम जी का भजन ही किया जाय। सद्गुणों को पहचानने वाला (गुणवान) तथा बड़भागी वही है जो श्री रघुनाथ जी के चरणों का प्रेमी है।" आज्ञा माँगकर और चरणों में सिर नवाकर श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले। सब के पीछे पवन सुत हनुमान जी ने सिर नवाया। कार्य का विचार करके प्रभु ने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने कर कमल से उनके सिर का स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर अपने हाथ की अगूँठी उतार कर दी। (और कहा—) 'बहुत प्रकार से सीता को समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना।' हनुमान जी ने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभु को हृदय में धारण करके वे चले। यद्यपि देवताओं की रक्षा करने वाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीति की रक्षा कर रहे हैं। नीति की मर्यादा रखने के लिए सीता जी का पता लगाने को जहाँ-तहाँ वानरों को भेज रहे हैं।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में १३ विषम पंक्तियाँ हैं। सुग्रीव ने वानर सेना की टोलियाँ सब दिशाओं में भेज दीं। और उनको आदेश दिया कि एक महीने के अन्दर सीता का पता लगायें। अपने विश्वस्त सेनापतियों को दक्षिण की ओर जाने का आदेश दिया। यह चार विश्वस्त व्यक्ति थे नील, अंगद, जामवन्त और हनुमान। हनुमान सबके पीछे गये। जाने के पहले राम ने उनको बुलाया, और पहचान के लिये अपनी मुद्रिका दी। और हनुमान को अपना परम भक्त समझकर उन्हें सीता के लिये सन्देश दिया कि वह सीता जी को समझायें कि राम उनके विरह में तड़प रहे हैं; और अपने असीम बल के द्वारा उनको शीघ्र प्राप्त करेंगे। इस चौपाई में जो दो नये पात्र आये हैं, उनका परिचय इस प्रकार है—

पात्र-परिचय— (१) जाम्बवान— ये भल्लूकराज ब्रह्मा के पुत्र थे। त्रेतायुग में कपिराज सुग्रीव के सेनापति होकर लंका के युद्ध में उन्होंने श्री रामचन्द्र को सहायता दी थी। द्वापरयुग में स्यमंतक मणि के कारण श्री कृष्ण से इनका युद्ध हुआ था। इसी युद्ध के अन्त में जाम्बवान् ने स्यमंतक मणि और अपनी कन्या श्रीकृष्ण को सौंप दी। मालूम होता है, जाम्बवान् ऋक्षजातीय अनार्य राजा थे।

(२) **नील—** नील और उसका भाई नल वानर सेनापति थे। यह कुशल अभियन्ता थे। रामचन्द्र जी के सेतु बाँधने के समय इन्हीं वानरों ने सहायता की थी।

दो०— चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह ॥२३॥

भावार्थ— सब बानर बन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतों की कन्दराओं में खोजते हुये चले जा रहे हैं। मन श्री राम जी के कार्य में लवलीन है। शरीर का प्रेम (ममत्व) भूल गया है।

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा । प्रान लेहिं एक एक चपेटा ।।
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं । कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं ।।
लागि तृषा अतिसय अकुलाने । मिलइ न जल घन गहन भुलाने ।।
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना । मरन चहत सब बिनु जल पाना ।।
चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा । भूमि बिबर एक कौतुक देखा ।।
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं । बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं ।।
गिरि ते उतरि पवनसुत आवा । सब कहुँ लैं सोइ बिबर देखावा ।।
आगें कै हनुमंतहि लीन्हा । पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा ।।

भावार्थ— कहीं किसी राक्षस से भेंट हो जाती, तो एक-एक चपत में ही उसके प्राण ले लेते हैं। पर्वतों और बनों को बहुत प्रकार से खोजते हैं। कोई मुनि मिल जाता है तो पता पूछ्ने के लिये सब उसे घेर लेते हैं। इतने में ही सब को प्यास लगी । जिससे सब अत्यन्त ही व्याकुल हो गये, किन्तु जल कहीं नहीं मिला। घने जंगल में सब भुला गये। हनुमान जी ने मन में अनुमान किया कि जल पिये बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं। उन्होंने पहाड़ी की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वी के अन्दर एक गुफा में उन्हें एक कौतुक (आश्चर्य) दिखाई दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे थे, और बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे थे। पवन कुमार हनुमान जी पर्वत से उतर आये और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलायी। सब ने हनुमान जी को आगे कर लिया और वे गुफा में घुस गये, देर नहीं की।

दो०— दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज ।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज ।।२४।।

भावार्थ— अन्दर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा)और तालाब देखा, जिसमें बहुत-से कमल खिले हुए हैं। वहीं एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है।

अन्तर्कथा— ऊपर के दोहे में अन्तिम पद है 'तहँ बैठि नारि तप पुंज'। इस तपस्विनी का नाम था स्वयंप्रभा। स्वयंप्रभा की अन्तर्कथा इस प्रकार है।

गुफा से बाहर निकल कर बन्दरों ने जो अद्‌भुत भवन देखा वह दानवों के विश्वकर्मा मय ने बनाया था। उसने यह कला शुक्राचार्य से सीखी थी। इस निर्माण-कला में वह बहुत निपुण था। यहां पर वह कई वर्ष रहा। बाद में इंद्र और मय के बीच युद्ध हुआ। उसमें मय मारा गया। इंद्र ने इस भवन को अपनी प्रेयसी हेमा नाम की अप्सरा को दे दिया। हेमा स्वयंप्रभा की सखी थी। इस भवन और बागों की वही मालकिन थी। जिस समय हनुमान और उसकी सेना वहाँ पहुंची हेमा देवलोक गई हुई थी।

जब बन्दर लोग खा-पी चुके तब तपस्विनी स्वयंप्रभा ने उनको सम्बोधित करते हु कहा :'बाहर से जो भी आदमी यहाँ आता है वह जिन्दा बाहर नहीं निकलता। इस गुफा के यही विशेषता है। फिर भी तुम लोगों के कार्य की मैं सफलता चाहती हूँ। अपने तपोबल र तुम लोगों को यहां से बाहर निकाल दूँगी। सब आंखे बंद कर लो।'

सब वानरों ने आँखें मूंद लीं। खोलीं तो साध्वी के तपोबल से सबने अपने को दक्षिण सागर के किनारे पाया।

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछें निज बृत्तान्त सुनावा ॥
तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना ॥
मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु नकट पुनि सब चलि आए ॥
तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई ॥
मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥
नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा ॥
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा ॥
नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ॥

भावार्थ– दूर से ही सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना सब बृत्तान्त कह सुनाया। तब उसने कहा–'जलपान करो और भाँति-भाँति के रसीले सुन्दर फल खाओ। (आज्ञा पाकर)सब ने स्नान किया, मीठे फल खाये और फिर सब उसके पास चले आये तब उसने अपनी सब कथा कह सुनायी। (और कहा–)'मैं अब वहाँ जाऊँगी जहाँ श्री रघुनाथ जी हैं। तुम लोग आँखे मूँद लो और गुफा को छोड़कर बाहर जाओ। तुम सीता जी को पा जाओगे (निराश न होओ)।' आँख मूंदकर फिर जब आखें खोलीं तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्र के तीर पर खड़े हैं। और वह स्वयं वहाँ गयी जहाँ श्री रघुनाथ जी थे उसने जाकर प्रभु के चरण कमलों में मस्तक नवाया और बहुत प्रकार से विनती की। प्रभु ने उसे अपनी अनपायिनी भक्ति दी।

दो०– बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस ॥२५॥

भावार्थ– प्रभु की आज्ञा सिरपर धारण कर और श्री राम जी के युगल चरणों को, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वन्दना करते हैं, हृदय में धारण कर वह स्वयंप्रभा बद्रिकाश्रम को चली गयी।

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं ॥
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता ॥

कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी ॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई ॥
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही ॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं ॥
अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा ॥
छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए ॥
हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना ॥
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥
जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी ॥
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥

भावार्थ– यहाँ बानरगण मन में विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गयी, पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपस में बात करने लगे कि हे भाई ! अब तो सीता जी की खबर लिये बिना लौट कर भी क्यों करेंगे। अंगद ने नेत्रों में जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकार से हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो सीता जी की सुध नहीं मिली और वहाँ जाने पर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे। वे तो पिता के वध होने पर ही मुझे मार डालते। श्री रामचन्द्र जी ने ही मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीव का कोई एहसान नहीं है। अंगद से बार-बार सब कह रहे हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। बानर वीर अंगद के वचन सुनते हैं। किन्तु कुछ बोल नहीं सकते। उनके नेत्रों से जल बह रहा है। एक क्षण के लिये सब सोच में मग्न हो रहे ; फिर सब ऐसा वचन कहने लगे–'हे सुयोग्य युवराज ! हम लोग सीता जी की खोज लिये बिना नहीं लौटेंगे।' ऐसा कहकर लवण सागर के तट पर सब बानर कुश बिछा कर बैठ गये। जामवंत ने अंगद का दुख देखकर विशेष उपदेश की कथाएँ कहीं। (वे बोले) "हे तात ! श्री राम जी को मनुष्य न मानो। उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो। हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं, जो निरन्तर सगुण ब्रह्म (श्रीराम जी) में प्रीति रखते हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं। जब तक वानर-सेना समुद्र तट पर पहुँचे, उन्हें किष्किन्धा छोड़े एक मास बीत गया था। अंगद को सुग्रीव की चेतावनी याद आ गयी कि यदि एक मास के अन्दर सीता का पता लगाए बिना वह लौटेंगे तो उन्हें सुग्रीव मृत्यु दण्ड देगा। देखिये दोहा २१ के नीचे की अन्तिम चौपाई, पृष्ठ ८१३। इस भय से विकल अंगद को देखकर जामवंत ने उन्हें सान्त्वना दी और समझाया कि राम कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। वह निर्गुण ब्रह्म हैं जिन्होंने मानव जाति के उपकार के लिये सगुण रुप धारण किया है। हम सब का सौभाग्य है कि हम उस सगुण ब्रह्म में प्रीति रखते हैं।

दो०— निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संत तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ।।२६।।

भावार्थ— देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणों के लिये प्रभु अपनी इच्छा से (किसी कर्म बन्धन से नहीं)अवतार लेते हैं । वहाँ सगुणोपासक भक्तगण सालोक्य (ब्रह्मलोक), सारूप्य (सोऽहम्), सृष्टि (ब्रह्म में ही लुप्त होना), सानुज्य (सदा ब्रह्म के निकट) रहना, सब प्रकार के मोक्षों को त्याग कर उनकी सेवा में साथ रहते हैं । "

एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती । गिरि कंदराँ सुनी संपाती ॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा । मोहि अहार दीन्ह जगदीसा ॥
आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ । दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा । आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा ॥
डरपे गीध बचन सुनि काना । अब भा मरन सत्य हम जाना ॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी । जामवंत मन सोच बिसेषी ।
कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायु सम कोउ नाहीं ॥
राम काज कारन तनु त्यागी । हरि पुर गयउ परम बड़भागी ॥
सुनि खग हरष सोक जुत बानी । आवा निकट कपिन्ह भय मानी ॥
तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई । कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई ॥
सुनि संपाति बंधु कै करनी । रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी ॥

भावार्थ— इस प्रकार जाम्बवान बहुत प्रकार से कथाएँ कह रहे हैं । इनकी बातें कन्दरा में सम्पाती ने सुनीं । बाहर निकल कर उसने बहुत से बानर देखे (तब वह बोला)—'जगदीश्वर ने मुझ को घर बैठे बहुत सा आहार भेज दिया । आज इन सब को खा जाऊँगा । बहुत दिन बीत गये, भोजन के बिना मर रहा था । पेट भर भोजन कभी नहीं मिलता । आज विधाता ने एक ही बार में बहुत सा भोजन दे दिया ।' गीध के वचन कानों से सुनते ही सब डर गये कि अब निश्चय ही मरना हो गया, यह हमने जान लिया । फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब बानर उठ खड़े हुए । जाम्बवान के मन में विशेष सोच हुआ । अंगद ने मन में विचार कर कहा—'अहो जटायु के समान धन्य कोई नहीं है । श्री रामजी के कार्य के लिये शरीर छोड़कर, वह परम बड़भागी भगवान के परम धाम को चला गया ।' हर्ष और शोक से युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (संपाती) बानरों के पास आया । वानर डर गये । उनको अभय करके (अभय-वचन देकर)उसने पास जाकर जटायु का वृतान्त पूछा । तब उन्होंने सारी कथा उसको कह सुनाई । भाई जटायु की करनी को सुनकर सम्पाती ने बहुत प्रकार से श्री रघुंनाथ जी की महिमा वर्णन की ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में ग्यारह विषम पंक्तियाँ हैं। जामवन्त अंगद को राम का सगुण स्वरूप समझा रहे थे, तब यह संवाद सुनकर एक बृद्ध गृधराज सम्पाती, जो पहाड़ की कंदरा में रहता था, बाहर निकल आया और ज़ोर-ज़ोर से कहने लगा कि आज भगवान ने मुझे पर्याप्त भोजन भेजा है। मैं इन बन्दरों को खा जाऊँगा। उसकी धमकी सुनकर, अंगद बोले कि यदि हम सम्पाती द्वारा मारे गये तो हमारा जीवन धन्य हो जायेगा क्योंकि हम प्रभु के कार्य में प्राण त्यजेंगे। दृष्टान्त के लिये उन्होंने जटायु का नाम लिया। जटायु सम्पाती का छोटा भाई था। भाई का नाम सुनते ही सम्पाती की हिन्सक प्रवृत्ति बदल गई और वह समस्त वानर सेना का मार्ग दर्शक हो गया (देखिये अगली चौपाई)।

पात्र परिचय– सम्पाती सूर्य सारथी अरुण का ज्येष्ठ पुत्र और जटायु का बड़ा भाई था। ये दोनों भाई सूर्य को जीतने की इच्छा से उन पर दौड़े थे। सूर्य के तेज से जटायु के पक्ष जलने लगे। उस समय सम्पाती ने जटायु को अपने पक्षों में छिपा लिया। छोटे भाई की रक्षा करने के कारण सम्पाती स्वयं जलकर विंध्यपर्वत पर गिर गया। मूर्च्छा के नष्ट होने पर, वह निशाकर मुनि के उपदेश से उसी पर्वत पर रहने लगा। यह कथा नीचे की चौपाई में सम्पाति ने वानरों को दूसरी प्रकार से सुनाई।

दो०– मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि ।।२७।।

भावार्थ– (उसने कहा–) 'मुझे समुद्र के किनारे ले चलो, मैं जटायु को तिलांजलि दे दूँ। इस सेवा के बदले तुम्हारी वचन से सहायता करूँगा (अर्थात सीता जी कहां हैं सो बतला दूँगा)। जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा जाओगे।'

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा ।।
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई ।।
तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा ।।
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा ।।
मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही ।।
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान छड़ावा ।।
त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही ।।
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता ।।
जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता ।।
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ।।
गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका ।।
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई ।।

भावार्थ– समुद्र के तीर पर छोटे भाई जटायु की क्रिया (श्राद्ध आदि)करके सम्पाती अपनी कथा कहने लगा–''हे वीर वानरों ! सनो, हम दोनों भाई उठती जवानी में एक बार आकाश में उड़ कर सूर्य के निकट चले गये। वह (जटायु) तेज नहीं सह सका, इससे लौट आया। (किन्तु)मैं अभिमानी था, इस लिए सूर्य के पास चला गया। अत्यन्त अपार तेज से मेरे पंख जल गये। मैं बड़ी जोर से चीख मार कर जमीन पर गिर पड़ा। वहाँ चन्द्रमा नाम के एक मुनि थे। मुझे देखर उन्हें बड़ी दया आई। उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देह जनित (देह सम्बन्धी)अभिमान को छुड़ा दिया। (उन्होंने कहा–) 'त्रेता युग में साक्षात् परब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को राक्षसों का राजा हर ले जायेगा। उसकी खोज में प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलने पर तू पवित्र हो जायेगा। और तेरे पंख उग आयेंगे। चिन्ता न कर। उन्हें तू सीता जी को दिखा देना। मुनि की वह वाणी आज सत्य हुई। अब मेरे बचन सुनकर तुम प्रभु का कार्य करो। त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। वहाँ स्वभाव से ही निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नामक उपवन (बगीचा)है, जहाँ सीता जी रहती हैं। (इस समय भी)वे सोच में मग्न बैठी हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में बारह सम पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ ८२० पर जो सम्पाति का पात्र-परिचय दिया गया है, वह परिचय स्वयं सम्पाति अपने मुख से इस चौपाई में देता है। अन्तिम दो पंक्तियों में वह वानरों को सीता का पूरा पता देता है। वह उन्हें बताता है कि त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। वहाँ अशोक नामक वन में सीता रहती है। तट के इस पार बैठे सुदूर लंका में सीता का निवास स्थान सम्पाति ने कैसे बता दिया ? इसका रहस्य वह स्वयं अगले दोहे में बताता है। जो वस्तु साधारण मनुष्य अपने चरम-चक्षु से नहीं देख सकता, वह उसको अपनी गृध्र-दृष्टि से (Eagle's Eye) से स्पष्ट देख रहा है। गृध्र जाति के पक्षी भले ही दूरदर्शी हों, परन्तु अगली चौपाई में कहा गया है कि लंका सौ योजन दूर है इतनी दूर कोई पक्षी नहीं देख सकता। संभव है यह चन्द्रमा मुनि का वरदान हो। मुनि ने वरदान दिया था कि 'सीता की खोज में जब प्रभू-दूत आयेंगे, तो उनसे मिलने पर तू पवित्र हो जायेगा और तेरे पंख उग जायेंगे।' यद्यपि ऊपर की चौपाई में इतना ही वरदान लिखा है, सम्भव है चन्द्रमां-मुनि के आशीर्वाद से सम्पाति को इस समय दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गई हो।

दो०–मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न तु करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥ २८॥

भावार्थ– मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते, क्योंकि गीध की दृष्टि अपार होती है (बहुत दूर तक जाती है)। क्या करूँ ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता।

जो नाघइ सत जोजन सागर । करइ सो राम काज मति आगर ।।
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा । राम कृपाँ कस भयउ सरीरा ।।
पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं । अति अपार भवसागर तरहीं ।।
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई । राम हृदयँ धरि करहु उपाई ।।
अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ । तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ ।।
निज निज बल सब काहूँ भाषा । पार जाइ कर संसय राखा ।।
जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा । नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ।।
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी । तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी ।।

भावार्थ– जो सौ योजन (चार सौ कोस)समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धिनिधान होगा, वही श्री राम जी का कार्य कर सकेगा । (निराश होकर घबराओ मत)मुझे देककर मन में धीरज धरो । देखो, श्री रामजी की कृपा से (देखते ही देखते) मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पाँख के बेहाल था, पाँख उगने से सुन्दर हो गया) । पापी भी जिसका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागर से तर जाते हैं, तुम उनके दूत हो, अत: कायरता छोड़कर श्री राम जी को हृदय में धारण करके उपाय करो । " (कागभुशुण्डि जी कहते हैं–) 'हे गरुड़ जी ! इस प्रकार कह कर जब गीध चला, तब बानरों के मन में अत्यन्त विस्मय हुआ। सब किसी ने अपना-अपना बल कहा । पर समुद्र के पार जाने में सभी ने सन्देह प्रकट किया।' ऋक्षराज जाम्यवान कहने लगे–'मैं अब बूढ़ा हो गया । शरीर में पहले वाले बल का लेश भी नहीं रहा । जब खरारि (खर के शत्रु) श्री राम वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझ में बड़ा बल था ।

दो०– बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय घरी महँ दीन्ही सात प्रदच्छिन धाइ ।।२९।।

भावार्थ– बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता। किन्तु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर (उस शरीर की)सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं।'

टिप्पणी– पृष्ठ ८१५।पर जाम्वान का परिचय देते हुए कहा गया है कि त्रेता युग में वे सुग्रीव के सेनापति थे और द्वापर युग में स्यंमतक मणि के कारण उनका श्री कृष्ण से युद्ध हुआ था । ऊपर के दोहे से प्रतीत होता है कि वे सतयुग में भी विद्यमान थे । वह स्वयम् कहते हैं कि सतयुग में जब वामन-अवतार विष्णु ने अपना विराट स्वरूप धारण किया और दो पग में ही बलि का सारा साम्राज्य नाप लिया, उस समय वे तरुण थे और उनमें असीम बल था । दो ही घड़ी में दौड़कर उन्होंने भगवान के विराट शरीर की सात प्रदक्षिणा कर डालीं । असुर राज बलि की अन्तर्कथा के लिए, देखिए पृष्ठ ४२२।

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा । जियँ संसय कछु फिरती बारा ॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक । पठइअ किमि सबही कर नायक ॥
कहइ रीछपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना । बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं । जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्बताकारा ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा । मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा ॥
सहित सहाय रावनहि मारी । आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही । उचित सिखावनु दीजहु मोही ॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई । सीतहि देखि कहहु सुधि आई ॥
तब निज भुज बल राजिवनैना । कौतुक लागि संग कपि सेना ॥

भावार्थ– अंगद ने कहा–'मैं पार तो चला जाऊँगा । परन्तु लौटते समय के लिए हृदय में कुछ सन्देह है ।' जाम्बवान ने कहा–'तुम सब प्रकार से योग्य हो । परन्तु तुम सब के नेता हो, तुम्हें कैसे भेजा जाय ।' ऋक्षराज जाम्बवान ने कहा–'हे हनुमान ! हे बलवान ! सुनो तुमने यह क्या चुप साध रक्खी है? तुम पवन के पुत्र हो, और बल में पवन के समान हो । तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान की खान हो । जगत में कौनसा ऐसा कठिन काम है जो हे तात ! तुमसे न हो सके । श्री रामजी के कार्य के लिये ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है ।' यह सुनते ही, हनुमान जी पर्वत के आकार के (अत्यन्त विशालकाय हो गये)। उनका सोने का रंग है, शरीर पर तेज सुशोभित है, मानों दूसरा पर्वतों का राजा सुमेरु हो । हनुमान जी ने बार-बार सिंहनाद करके कहा–'मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ । और सहायकों सहित रावण को मारकर, त्रिकूट पर्वत को उखाड़ कर यहाँ ला सकता हूँ । हे जाम्बवान ! मैं तुमसे पूछता हूँ ; तुम मुझे उचित सीख देना (कि मुझे क्या करना चाहिये)।' (जाम्बवान् ने कहा–) 'हे तात ! तुम जाकर इतना ही करो कि सीता जी को देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो । फिर कमल नयन श्री राम जी अपने बाहुबल से ही (राक्षसों का संहार कर सीता जी को ले आयेंगे) । केवल खेल के लिये ही वे वानरों की सेना साथ लेंगे।'

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ है । सम्पाती ने बन्दर समुदाय को चेतावनी दी कि भारतीय सीमा तट से लंका सौ योजन दूर है । जो सौ योजन समुद्र पार करने का सामर्थ्य रखता है, वही राम का कार्य कर सकता है । जिस राम के नाम लेने से बड़े-बड़े पापी भवसागर पार कर गये हैं, उनके दूतों के लिये भारत और लंका के बीच समुद्र

की खाई पार करना कोई कठिन काम नहीं है । गृध्रराज की यह चुनौती सुनकर सब लोग अपना-अपना बल झाँकने लगे । पर समुद्र को पार करने का किसी का भी साहस नहीं हुआ। अंगद ने कहा, कि भले ही मैं समुद्र पार कर लूँ, पर मुझे लौटने की आशंका है । तब जाम्बवान ने अंगद को लंका जाने की अनुमति नहीं दी क्योंकि वह सेना नायक थे । और नायक को सेना छोडकर जाना उचित नहीं । अब बचे हनुमान । हनुमान जी विशेष गुणों से युक्त होने पर भी अपने को सेवक और छोटा समझना ही उचित समझते थे । इस कारण उनमें सर्वाधिक दीनता है और श्री रामचन्द्र जी पर पूर्ण विश्वास । अत: वे स्वयं अपने मुँह से अपना बखान करना उचित नहीं समझते। जानते हैं कि कार्य उन्हें ही करना है, परन्तु सब के आगे अपने भाव प्रकट करना उन्हें उचित नहीं लगता । जब सब अपनी-अपनी नियमित शक्ति का केवल बखान कर चुके, तो स्वयं जामवन्त को इनसे ही कहना पड़ा । जामवंत ने हनुमान को प्रेरित करते हुये कहा-"तुम तो पवन के पुत्र हो और बल में भी पवन ही के समान हो। साथ ही बुद्धि, विवेक और विज्ञान के भी भण्डार हो । श्री रामचन्द्र जी के कार्य को पूरा करने के लिये ही तुम्हारा अवतार इस जगत में हुआ है (देखिए 'असंन्ह सहित मनुज अवतारा' की व्याख्या, बालकाण्ड, पृष्ठ १९५-१९६) । इसलिये जिस कार्य को सम्पादन करने हेतु तुम संसार मे आये हो, वह तो तुम्हें ही करना है और उसकी योग्यता एवं सामर्थ्य तुम्हें पहले से ही प्राप्त है ।" जामवन्त के यह वचन सुनकर, हनुमान जी तुरन्त पर्वताकार एवं विशालकाय हो गये। उन्होने बार-बार सिंहनाद करके कहा 'मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ । और सहायकों सहित रावण को मारकर, त्रिकूट पर्वत को उखाड़ कर यहाँ ला सकता हूँ ।'

हनुमान की उत्तेजना को शान्त करते हुए, जामवंत ने कहा कि 'राम ने तुम्हें केवल सीता का पता लगाने के लिये कहा है । तुम जाकर, सीता जी को देखकर, लौट आओ और उनकी खबर राम को दो । फिर श्री रामचन्द्र जी अपने बाहुबल से स्वयं राक्षसों का संहार करेंगे और सीता जी को ले आयेंगे ।'

छं०– कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं ।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ।।
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई ।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ।।

भावार्थ– वानरों की सेना साथ लेकर राक्षसों का संहार करके श्री राम जी सीता जी को ले आयेंगे । तब देवता और नारदादि मुनि भगवान के तीनों लोकों को पवित्र करने वाले सुन्दर यश का बखान करेंगे, जिसे सुनने, गाने, कहने और समझने से मनुष्य परम पद पाते है और जिसे श्री रघुबीर के चरण-कमल का मधुकर (भ्रमर)तुलसीदास गाता है ।

दो०– भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ।।३०(क)।।

भावार्थ– श्री रघुबीर का यश भवरोग की अचूक दवा है । जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिरा के शत्रु श्री राम जी उनके सब मनोरथों को सिद्ध करेंगे ।

अन्तर्कथा– ऊपर के दोहें में राम को 'त्रिशिरारि' करके सम्बोधित किया गया है, त्रिशिरा एक राक्षस था । यह खरदूषण की सेना में विद्यमान था । श्री रामचन्द्र जी के द्वारा १४ हजार राक्षसों के मारे जाने पर, त्रिशिरा और खर ये दो ही बचे थे। 'खर दूषण' के लिए देखिए अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ७३२ ।

सो०–नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक ।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक।।३०(ख)।।

भावार्थ– जिनका नीले कमल के समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है, और जिनका नाम पापरूपी पक्षियों को मारने के लिये बधिक (व्याध) के समान है, उन राम के गुणों के समूह को (लीला को)अवश्य सुनना चाहिये ।

टिप्पणी– तुलसीदास जी ने बालकाण्ड और अयोध्या काण्ड का समापन एक छंद और सोरठे से किया है । अरण्य काण्ड में सोरठे की जगह दो दोहे कहे हैं, और किष्किन्धा काण्ड में एक दोहे और एक सोरठे का प्रयोग किया है । जो भाव छंदों में व्यक्त किया है, उसी की पुनरोक्ति दोहे और सोरठे में है । केन्द्र बिन्दु है भगवान का यशगान ।

बालकाण्ड में राम के विवाहोत्सव को प्रधानता दी गई है । जो इस उत्सव का मंगल गान करते और सुनते हैं, उनका जीवन सदा मंगल मय रहता है । अयोध्या काण्ड में भरत चरित को प्रधानता दी गई है । जो नियम पूर्वक भरत का चरित्र सुनते हैं, उनको सहज में ही सीता राम के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है । और भव रस से विरक्ति । अरण्य काण्ड के अन्त में राम के एक नये स्वरूप की प्रशंसा की गई है । राम अपने भक्तों के गुणों का स्वयं विवेचन करते हैं । ऐसे राम के गुण जो गाता है, वह बिना वैराग्य, जप और योग के राम भक्ति को सहज में पाता है । किष्किन्धा काण्ड में वही राम-भक्ति को दूसरे रूप में कहा गया है । जो राम के सुयश को सुनते, गाते, कहते और समझते हैं वे परमपद को सहज में प्राप्त करते हैं । रघुनाथ का यश संसार के दु:ख-निवारण के लिये एक वैद्य के समान है और पापरूपी पक्षी को नाश करने के लिये एक बधिक है ।

पञ्चम सोपान

(सुन्दरकाण्ड)

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ।।१।।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।।२।।

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।३।।

भावार्थ– शान्त, सनातनन, अप्रमेय, निष्पाप, मोक्षरूप, परम शांति देने वाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेष जी से निरन्तर सेवित, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओ में सब से बड़े, माया से मनुष्यरूप में दीखनेवाले, समस्त पापों को हरने वाले, करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि, राम कहलाने वाले, जगदीश्वर की मैं वन्दना करता हूँ। हे रघुनाथ जी ! मैं सत्य कहता हूँ, और फिर आप सबके अन्तरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं),-कि मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है । हे रघुकुल श्रेष्ठ ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण)भक्ति दीजिये और मेरे मन को काम आदि दोषों से रहित कीजिये । अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत (सुमेरु)के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्य रूपी वन को ध्वंस करने के लिये अग्नि रूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, सम्पूर्म गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्री रघुनाथ जी के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमान जी को मै प्रणाम करता हूँ।

टिप्पणी– किष्किन्धा काण्ड के भाँति सुन्दरकाण्ड के आरम्भ में संस्कृत के दो श्लोकों में गोस्वामी तुलसीदास ने राम का गुणगान किया है । एक तीसरा श्लोक और है जिसमें राम के अनन्य भक्त हनुमान की वन्दना की गई है। श्लोक के बाद कोई सोरठा नहीं आया है । सीधे चौपाई के माध्यम से तुलसीदास जी कथानक को आगे बढ़ाते हैं ।

जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई । सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥
जब लगि आवौं सीतहि देखी । होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी ॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ॥
सिंधु तीर एक भूधर सुंदर । कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥
बार बार रघुबीर सँभारी । तरकेउ पवनतनय बल भारी ॥
जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता । चलेउ सो गा पाताल तुरंता ॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । एही भाँति चलेउ हनुमाना ॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी । तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥

भावार्थ– जाम्यवान् के सुन्दर वचन सुनकर हनुमान जी हृदय में बहुत प्रसन्न हुए । (वे बोले–) ''हे भाई ! तुम लोग दुःख सहकर कन्द, मूल, फल खाकर तब तक मेरी राह देखना जब तक मैं सीता जी को देखकर लौट न आऊँ । काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत हर्ष हो रहा है ।'' यह कहकर और सब को मस्तक नवाकर तथा हृदय में श्री रघुनाथ जी को धारण करके हनुमान् जी हर्षित होकर चले । समुद्र के तीर पर एक सुन्दर पर्वत था। हनुमान जी खेल से ही (अनायास ही)कूद कर उसके ऊपर जा चढ़े । और बार-बार श्री रघुबीर जी का स्मरण करके अत्यन्त बलवान हनुमान जी उसपर बड़े वेग से उछले । जिस पर्वत पर हनुमान जी पैर रखकर चले (जिसपर से वे उछले)वह तुरन्त ही पाताल में धँस गया । श्री रघुनाथ जी का अमोघ बाण जिस प्रकार चलता है, उसी तरह हनुमान जी चले । समुद्र ने उन्हें श्री रघुनाथ जी का दूत समझकर मैनाक पर्वत से कहा कि ''हे मैनाक! तू इनकी थकावट दूर करने वाला है (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दें)।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । किष्किन्धाकाण्ड के अन्त में पृष्ठ ८२४ पर बताया गया है कि समुद्र पार करने का किसी को भी साहस नहीं हुआ । इस कार्य के लिये जामवंत ने हनुमान को प्रेरित किया, और कहा 'इस कार्य को सम्पादन करने हेतु तुम संसार में आये हो । उसके लिए योग्यता एवं सामर्थ्य तुम्हे पहले से ही प्राप्त है ।' जामवंत के वचन सुनकर हनुमान जी तुरन्त पर्वताकार एवं विशालकाय हो गये । उन्होंने बार-बार सिंहनाद करके कहा ''मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ । और सहायकों सहित रावण को मारकर, त्रिकूट पर्वत को उखाड़ कर यहाँ ला सकता हूँ ।'' हनुमान की उत्तेजना को शान्त करते हुए जामवंत ने कहा–''राम ने तुम्हें केवल सीता का पता लगाने के लिये कहा है । तुम जाकर, सीता जी को देखकर, लौट आओ और उनकी खबर राम को दो ।'' जामवंत की यह सीख हनुमान को बहुत रुचिकर लगी । उन्होंने सबको मस्तक नवाकर लंका की ओर प्रस्थान किया । समुद्र तट पर एक पर्वत था । उसके शिखर पर हनुमान जी एक छलाँग मारकर पहुँच गये और उस शिखर से इतनी वेग से उछले कि वह समस्त पर्वत पाताल में

धँस गया। आकाश मार्ग से हनुमान को लंका की ओर जाता हुआ देखकर, समुद्र ने मेनाक पर्वत से कहा कि तुम समुद्र के तल से बाहर निकल आओ और हनुमान जी को बीच में विश्राम करने का स्थान दो।

दो०– हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥१॥

भावार्थ– हनुमान जी ने उसे हाथ से छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा-''भाई!श्री रामचन्द्र जी का काम किये बिना मुझे विश्राम कहाँ?''

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥
जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥
बदन पैठि पुनि बाहेर आवा। माँगा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

भावार्थ– देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान जी को जाते देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धि को जानने के लिये (परीक्षार्थ)उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा। उसने आकर हनुमान् जी से यह बात कही–''आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है।'' यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान जी ने कहा-'' श्री रामजी का कार्य करके मैं लोट आऊँ और सीता जी की खबर प्रभु को सुना दूँ, तब मैं आकर तुम्हारें मुँह में घुँस जाऊँगा (तुम मुझे खा लेना)। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दो।'' जब किसी भी उपाय से उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान जी ने कहा–''तो फिर मुझे खाती क्यों नहीं ? '' उसने योजन भर (चार कोस में)मुँह फैलाया। तब हनुमान जी ने अपने शरीर को उससे दूना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान जी तुरन्त ही बत्तीस योजन के हो गये। जैसे-जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान जी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोस)का मुख किया। तब हनुमान जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर

लिया। और वे उसके मुख में घुसकर तुरन्त बाहर निकल आये और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे। (उसने कहा–)" मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओं ने मुझे भेजा था।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं। देवताओं ने जब हनुमान जी को आकाश मार्ग से लंका की ओर जाते देखा तो उन्होंने हनुमान की निष्ठा, बल और साहस की परीक्षा लेने हेतु सर्पों की माता सुरसा को भेजा। सुरसा ने कहा कि 'देवताओं ने मुझे तुम्हें भोज्य रूप में खाने के लिये भेजा है।" परन्तु ज्यों-ज्यों सुरसा अपना मुख खोलती जाती थी, हनुमान जी उससे दुगना अपना शरीर बड़ा करते जाते थे। अन्त में उसने मुख का विस्तार सौ योजन कर लिया। तब सहसा हनुमान जी बहुत सिकुड़ गये और अपना बहुत सूक्ष्म रूप धारण कर लिया। वह उसके मुख में घुसकर तुरन्त बाहर निकल आये। सुरसा ने उनको आशीर्वाद दिया और कहा कि 'देवताओं ने मुझे तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये भेजा था। मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया। तुम श्री राम जी का कार्य अवश्य करोगे।"

दो०– राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ॥२॥

भावार्थ– तुम श्री रामचन्द्र जी का कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धि के भण्डार हो", यह आशीर्वाद देकर वह चली गयी। तब हनुमान जी हर्षित होकर चले।

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥
ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥
अति उतंग जलनिधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

भावार्थ– समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो जीव जन्तु उड़ा करते थे, वह जल में उनकी परछाई देखकर, इस परछाई को पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे (और जल में

गिर पड़ते थे)। इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़ने वाले जीवों को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान जी से भी किया। हनुमान जी ने तुरन्त उसका कपट पहचान लिया। पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर हनुमान जी उसको मारकर समुद्र के पार गये। वहाँ जाकर उन्होंने बन की शोभा देखी। मधु (पुष्परस)के लोभ में भौंरे गुँजार रहे थे। अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित थे। पक्षी और पशुओं के समूह को देखकर वे मन में प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान जी भय त्यागकर उस पर दौड़ कर जा चढ़े। (शिवजी कहते हैं–)"हे उमा! इसमें बानर हनुमान की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभु का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है।" पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जा सकता। अत्यन्त ऊँचा है इसके चारों ओर समुद्र है। सोने के परकोटे (चारदिवारी)का परम प्रकाश हो रहा है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में ग्यारह विषम पंक्तियाँ हैं। इनमें तीन विभिन्न भाव व्यक्त किये गये हैं :

१. समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह उड़ते हुये पक्षियों की परछायी को जल में पकड़ लेती थी। उसकी माया से ज्योंहि परछाई पकड़ी जाती थी, पक्षी उड़ नहीं सकते थे और जल में गिर पड़ते थे। तब राक्षसी उनका भक्षण करती थी। यही माया उसने हनुमान जी पर करनी चाही, परन्तु हनुमान जी ने उसे मार डाला।

२. लंका में पहुँचकर हनुमान जी ने वहाँ के वन उद्यानों की शोभा देखी।

३. इसके बाद हनुमान जी त्रिकूट पर्वत पर चढ़ गये। वहां उन्होंने रावण का बहुत बड़ा गढ़ और उसके चारों ओर सोने का परकोट देखा।

छं०– कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥१॥

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥२॥

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥

एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्ह त्यागि गति पैहहिं सही ।।३।।

भावार्थ— विचित्र मणियों से जटा हुआ परकोटा है। उसके अंदर बहुत से सुन्दर-सुन्दर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियां हैं। सुन्दर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरों के समूह, पैदल और रथों के समूह को कौन गिन सकता है? अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं। उनकी अत्यन्त बलवन्ती सेना वर्णन करते नहीं बनती। बन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और राक्षसों की कन्याएँ अपने सौन्दर्य से मुनियों के मनों को मोह लेती हैं। कहीं पर्वत के समान विशाल शरीर वाले बड़े ही बलवान मल्ल (पहलवान) गरज रहे हैं। वे अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक दूसरे को ललकारते हैं। भयंकर शरीर वाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानी से) नगर की चारों दिशाओं में (सब ओर से) रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरों को खा रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इसीलिये इनकी कथा कुछ थोड़ी सी कही है कि वे निश्चय ही रघुबीर श्री रामचन्द्र जी के बाण रूपी तीर्थ में शरीरों को त्याग कर परम गति पावेंगे।

टिप्पणी— तुलसीदास जी भावावेश में आकर या चौपाई में कहे हुये भाव को और विस्तार से व्यक्त करने के लिये छन्द का प्रयोग करते हैं। बालकाण्ड में छन्दों की संख्या सबसे अधिक है। भगवान की स्तुति या उनके विवाह के मंगलगान के लिये बालकाण्ड में उन्होंने सात स्थानों पर एक साथ चार-चार छन्दों की रचना की है। अरण्यकाण्ड में दो स्थान हैं, जहाँ क्रमशः छः और सात छन्दों का प्रयोग किया है। ऊपर पहला अवसर है जहाँ छन्दों की संख्या केवल तीन है। इन छन्दों में त्रिकूट पर्वत से हनुमान जी ने जो लंका देखी उसके वैभव और रहने वाले राक्षसों की तामसिक वृत्तिका का वर्णन है।

दो०— पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ।।३।।

भावार्थ— नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर हनुमान जी ने मन में विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ।

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ।।
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहिं निदरी ।।
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा ।।
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी ।।
पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका ।।

जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ।।
बिकल होसि तैं कपि कें मारे । तब जानेसु निसिचर संघारे ।।
तात मोर अति पुन्य बहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ।।

भावार्थ– हनुमान जी मच्छर के समान (छोटा-सा) रूप धारण कर, नररूप से लीला करने वाले भगवान श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके लंका को चले । लंका के द्वार पर लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी । वह बोली–" निरादर करके (बिना मुझ से पूछे) कहाँ चला जा रहा है । रे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना । जहाँ तक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं ।" महाकपि हनुमान जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खून की उल्टी करती हुई पृथ्वी पर लुढ़क पड़ी । वह लंकिनी फिर अपने को संभाल कर उठी और डर के मारे हाथ जोड़ कर बिनती करने लगी । (वह बोली–) ' रावण को जब ब्रह्मा जी ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसों के विनाश की यह पहचान बता दी थी कि जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाय, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना । हे तात ! यह मेरे बड़े पुण्य हैं जो मैं श्री रामचन्द्र जी के दूत (आप) को नेत्रों से देख सकी।

दो०– तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ।।४।।

भावार्थ– हे तात ! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रक्खा जाय, तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़े पर रक्खे हुए) उस सुख के बराबर नहीं हो सकते जो लव (क्षण) मात्र के सत्संग से होता है ।

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा । हृदयं राखि कोसलपुर राजा ।।
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ।।
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही । राम कृपा करि चितवा जाही ।।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ।।
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा । देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ।।
गयउ दसानन मंदिर माहीं । अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं ।।
सयन किएँ देखा कपि तेही । मंदिर महुँ न दीखि बैदेही ।।
भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ।।

भावार्थ– अयोध्यापुरी के राजा श्री रघुनाथ जी को हृदय में रक्खे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिये ।" (कागभुशुण्डि कहते हैं)– "उसके लिये विष अमृत हो जाता

है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है और हे गरुड़ जी ! सुमेरु पर्वत उसके लिये रज के समान हो जाता है, जिसे श्री रामचन्द्र जी ने एक बार कृपा करके देख लिया !" तब हनुमान जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान का स्मरण करके नगर में प्रवेशं किया । उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महल की खोज की । जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे । फिर वे रावण के महल में गये। वह अत्यन्त विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता । हनुमान जी ने उसको (रावण को)शयन किये देखा । परन्तु महल में जानकी जी नहीं दिखायी दीं । फिर एक सुन्दर महल दिखाई दिया । वहाँ (उसमें)भगवान का एक अलग मन्दिर बना हुआ था ।

लोकोक्ति— ऊपर की चौपाई की पहली पंक्ति में एक लोकोक्ति है । मच्छर के समान छोटा शरीर करके जब हनुमान जी लंका में प्रवेश करने जा रहे थे तो उसी समय नगर की रक्षा करने वाली एक शक्तिशाली राक्षसी ने भयंकर रूप से हनुमान को डाँटकर रोका । लंकिनी को हनुमान जी ने एक ऐसा घूँसा मारा कि वह खून की उल्टी करती हुई पृथ्वी पर लुढ़क पड़ी । और बोली, "रावण को जब ब्रह्मा जी ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसों के विनाश की यह पहचान बता दी थी कि जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाये, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना । यह मेरे बड़े पुण्य हैं जो मैं श्री रामचन्द्र जी के दूत (आप)को नेत्रों से देख रही हूँ ।" अब तुम निर्भीक होकर लंका में प्रवेश करो और रामचन्द्र जी का कार्य करो :

'प्रबिसि नगर कीजे सब काजा । हृदयं राखि कोसलपुर राजा ।।'

यद्यपि ऊपर की पंक्ति राक्षसी लंकिनी ने हनुमान से आशीर्वाद रूप में कही थी परन्तु यह लोकोक्ति के रूप में सर्वदा और सर्वथा ग्राह्य है । जो भी काम करो, भगवान का नाम लेकर करो । जो काम भगवान को समर्पित करके किया जायेगा उसमें मनुष्य को अवश्य सफलता मिलेगी ।

अगली दो पंक्तियों में कागभुशुण्डि ने गरुड़ को इस लोकोक्ति को विस्तार पूर्वक समझाया:

'श्री रामचन्द्र जी के कार्य हेतु कार्य करने वाले के लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु उससे मित्रता करने लगते हैं, समुद्र उसके लिये गाय के खुर के समान (गड्ठे) के समान हो जाता है; यहाँ तक कि अग्नि जिसकी प्रवृत्ति ही गरम है, उसमें भी शीतलता आ जाती है ।'

दो०– रामायुध अंकित गृह शोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ।।५।।

भावार्थ– यह महल श्री राम जी के आयुध (धनुष-बाण)के चिन्हों से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती । वहाँ नवीन तुलसी के वृक्षसमूहों को देखकर कपिराज हनुमान जी हर्षित हुए ।

लंका निसिचर निकर निवासा । इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा । तेहीं समय बिभीषनु जागा ॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा । हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी । साधु ते होइ न कारज हानी ॥
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए । सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई । बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई । मोरें हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी । आयहु मोहि करन बड़भागी ॥

भावार्थ– लंका तो राक्षसों के समूह का निवास स्थान है । यहाँ सज्जन (साधुपुरुष) का निवास कहाँ । हनुमान जी मन में इस प्रकार तर्क करने लगे । उसी समय विभीषण जी जागे । उन्होंने (विभीषण ने)राम नाम का स्मरण (उच्चारण) किया । हनुमान जी ने उन्हें सज्जन जाना और हृदय में हर्षित हुए । (हनुमान जी ने विचार किया कि)इनसे हठ करके (अपनी ओर से ही)परिचय करूँगा, क्योंकि साधु से कार्य की हानि नहीं होती (प्रत्युत लाभ ही होता है)। ब्राह्मण का रूप धर कर हनुमान जी ने उन्हें वचन सुनाये (पुकारा)। सुनते ही विभीषण जी उठकर वहाँ आये । प्रणाम करके कुशल पूछी (और कहा कि–)"हे ब्राह्मण देव! अपनी कथा समझाकर कहिये । क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं ? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदय में अत्यन्त प्रेम उमड़ रहा है । अथवा आप दीनों से प्रेम करने वाले स्वयं श्रीराम जी हैं जो मुझे बड़भागी बनाने (घर बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने)आये हैं?"

दो०– तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम ।।६।।

भावार्थ– तब हनुमान जी ने श्री रामचन्द्र जी की सारी कथा कह कर अपना नाम बताया । सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गये। और श्री राम जी के गुण समूहों को स्मरण करके दोनों के मन प्रेम और आनन्द में मग्न हो गये।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।।
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।।
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।

भावार्थ– (विभीषण जी ने कहा–) "हे पवनपुत्र ! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ जैसे दातों के बीच में बेचारी जीभ। हे तात ! मुझे अनाथ जान कर सूर्यकुल के नाथ श्री रामचन्द्र जी कभी मुझपर कृपा करेंगे ? मेरा तामसी (राक्षसी) शरीर होने से साधन तो कुछ बनता नहीं । और न मन में श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों में प्रेम ही है। परन्तु हे हनुमान ! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्री राम जी की मुझ पर कृपा है, क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिलते। जब श्री रघुबीर ने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओर से) दर्शन दिये हैं ।" हनुमान जी ने कहा– " हे विभीषण जी ! सुनिये, प्रभु की यही रीति है कि वे सेवक पर सदा ही प्रेम किया करते हैं । भला कहिये, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ। जाति का चञ्चल बानर हूँ और सब प्रकार से नीच हूँ। प्रातःकाल जो हम बन्दरों का नाम लेले तो उस दिन उसे भोजन न मिले।

दो०– अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ।।७।।

भावार्थ– हे सखा ! सुनिये, मैं ऐसा अधम हूँ ; पर रघुबीर श्री रामचन्द्र जी ने तो मुझपर भी कृपा ही की है ।" भगवान के गुणों का स्मरण करके हनुमान जी के दोनों नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया।

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी।।
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा।।
पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।।
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता।।
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ।।
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा।।
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी।।

भावार्थ–"जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्री रघुनाथ जी) को भुलाकर विषयों के पीछे भटकते फिरते हैं ; वह दुःखी क्यों न हों ?" इस प्रकार श्री राम जी के गुण समूह को कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शान्ति प्राप्त की। फिर विभीषण जी ने श्री जानकी जी जिस प्रकार वहाँ (लंका में) में रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान जी ने कहा– "हे भाई ! सुनो, मैं जानकी माता को देखना चाहता हूँ।" विभीषण जी ने माता के दर्शन की सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनायीं। तब हनुमान जी बिदा लेकर चले। फिर वही (पहले का) मशक-सरीखा रूप धर कर वहाँ गये जहाँ अशोक वन में (वन के जिस भाग में) सीता जी रहती थीं। सीता जी को देखकर हनुमान जी ने उन्हें मन ही में प्रणाम किया। उन्हें बैठे-ही बैठे रात्रि के चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है। सिर पर जटाओं की एक वेणी (लट) है। हृदय में श्री रघुनाथ जी के गुण समूहों का जाप (स्मरण) करती रहती हैं।

दो०– निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ।।८।।

भावार्थ– श्री जानकी जी नेत्रों को अपने चरणों में लगाये हुए हैं (नीचे की ओर देख रही हैं) और मन श्री राम जी के चरणकमलों में लीन है। जानकी जी को दीन (दुखी) देख कर, पवनपुत्र हनुमान जी बहुत ही दुखी हुए।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई।।
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा।।
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा।।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।।
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।।
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।

भावार्थ– हनुमान जी वृक्ष के पत्तों में छिप रहे, और विचार करने लगे कि हे भाई ! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ)। उसी समय बहुत सी स्त्रियों को साथ लिये सज-धज कर रावण वहाँ आया। उस दुष्ट ने सीता जी को बहुत प्रकार से समझाया। साम, दाम, भय और भेद दिखलाया। रावण ने कहा– "हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो। मन्दोदरी आदि सब रानियों को मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो।" अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके, जानकी जी तिनके

की आड़ (परदा) करके कहने लगीं—"हे दशमुख ! सुन, जुगनू के प्रकाशसे कभी कमलिनी खिल सकती है?" जानकी जी फिर कहती हैं—"तू (अपने लिये भी) ऐसा ही मन में समझ ले। रे दुष्ट ! तुझे श्री रघुबीर के बाण की खबर नहीं है । रे पापी ! तू मुझे सूने में हर लाया। रे अधम ! निर्लज्ज ! तुझे लज्जा नहीं आती।"

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ २१६ पर'पात्र-परिचय' में बताया गया है कि रावण को रम्भा ने शाप दिया था कि यदि वह किसी रमणी से बलात्कार करेगा तो उसका मस्तक फट जायेगा। इसी कारण रावण ने सीता के साथ कभी अभद्र व्यवहार नहीं किया। उसने सीता के समक्ष प्रणय प्रस्ताव रक्खा । और अन्त में गिड़-गिड़ाकर बोला: "सीते ! मान जाओ, मेरी प्रार्थना ठुकरायो नहीं।" रावण जब बोलना समाप्त कर चुका, तो सीता ने एक तिनका उठाकर अपने और रावण के बीच में रख लिया। उसी की ओट देखकर सीता ने रावण को तिरस्कृत किया। यहाँ तिनका आड़ अर्थात् पर्दे का प्रतीक है । तिनके से एक और आशय भी निकलता है। रावण ने अपने वैभव एवं ऐश्वर्य से सीता जी को प्रभावित करने की चेष्टा की, परन्तु जिस सीता को भौतिक सुखों का ध्यान नहीं था, उसके लिये रावण का वैभव और ऐश्वर्य किसी अर्थ के नहीं हो सकते थे। उनका मूल्य सीता जी की नजरों में एक तिनके समान था।

दो०— आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान ।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन ।।९।।

भावार्थ— अपने को जुगनू के समान और रामचन्द्र जी को सूर्य के समान सुनकर और सीता जी के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकाल कर बड़े गुस्से में आकर बोला।

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी।।
स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सो भुज कंठ कि तब असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।
चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं।।
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।।
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा।।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई।।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।।

भावार्थ—"सीता! तूने मेरा अपमान किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूँगा । नहीं तो (अब भी) जल्दी मेरी बात मान ले । हे सुमुखि ! नहीं तो जीवन से हाथ

धोना पड़ेगा ।" (सीता जी ने कहा)– " हे दशग्रीव ! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल व माला के समान सुन्दर और हाथी की सूंड के समान पुष्ट और विशाल है, या तो वह भुज ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। हे शठ ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण सीता जी कहती हैं — "हे चन्द्रहास (तलवार)! श्री रघुनाथ जी की पीड़ा से उत्पन्न मे बड़ी भारी प्रजलन को तू दूर कर दे। हे तलवार ! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती (अर्थात् तेरी धार ठंडी और तेज है)। तू मेरे दुःख के बोझ को हर ले ।" सीता जी के बचन सुनते ही वह मारने दौड़ा । तब मयदानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति कहकर उ समझाया । तब रावण ने सब राक्षसियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रका से भय दिखाओ। यदि महीने भर में यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकाल कर मा डालूँगा।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है । तिरस्कृत रावण ने जब सीता व कृपाण से मार डालने की धमकी दी, तो सीता ने उत्तर दिया –"या श्री राम की भुजा मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ।" तत्पश्चात् सीता तलवार को सम्बोधि करती हैं–"रघुनाथ की विरह-पीड़ा से उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलन को तू दूर कर दे । शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है । तू मेरे दुख के बोझ को हर ले ।" निर्भीक सीता व साहस देखकर मन्दोदरी ने मन्त्रणा दी कि सीता को उसी समय मार डालना उचित न होगा । रावण ने मन्त्रणा मान ली और सीता को एक महीने का सोचने का अवकाश दिया

दो०– भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद ।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद ।।१०।।

भावार्थ– यों कहकर रावण घर चला गया । यहाँ राक्षसियों के समूह बहुत बुरे रू धर कर सीता जी को भय दिखाने लगे।

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना।।
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी।।
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं।।

भावार्थ– उसमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान)में निपुण थी। उसने सब को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा–''सीता जी की सेवा करके अपना कल्याण कर लो। स्वप्न में मैंने देखा कि एक बंदर ने लंका जला दी। राक्षसों की सारी सेना मार डाली गयी। रावण नंगा है और गदहे पर सवार है। उसके सिर मुड़े हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं। इस प्रकार से वह दक्षिण (यमपुरी की) दिशा को जा रहा है और मानो लंका विभीषण ने पाई है। नगर में रघुबीर श्री रामचन्द्र जी की दुहाई फिर गई। तब प्रभु ने सीता जी को बुला भेजा। मैं पुकारकर (निश्चय के साथ)कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों के बाद सत्य होकर रहेगा।'' उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गयीं और जानकी जी के चरणों में गिर पड़ीं।

दो०– जहँ तहँ गई सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच ॥११॥

भावार्थ– तब (इसके बाद)वे सब जहाँ-तहाँ चली गयीं। सीता जी मन में सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा।

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

भावार्थ– सीता जी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं–''हे माता! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। विरह असह्य हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता। काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी! तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। रावण की शूल के समान दुःख

देने वाली वाणी कानों से कौन सुने।'' सीता जी के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़ क उन्हें समझाया और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया। (उसने कहा--) ''हे सुकुमा सुनो, रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी।'' ऐसा कह कर वह अपने घर चली गयी। सी जी (मन-ही-मन) कहने लगीं-- ''(क्या करूँ) विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिले न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अँगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा न आता। चन्द्रमा अग्निमय है, किन्तु वह भी मानों मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसात हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुन। मेरा शोक हर ले और अपना (अशोक) नाम सत्य क तेरे नये-नये कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं। अग्नि दे, विरह रोग का अन्त मत कर (अर्थ विरह-रोग को बढ़ाकर सीमा तक न पहुँचा)।'' सीता जी को विरह से परम व्याकुल देख वह क्षण हनुमान जी को कल्प के समान बीता।

टिप्पणी-- ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं। दोहा १० के ऊपर की अन्ति चौपाई में यह कहा गया है कि रावण सीता को एक महीने का सोचने का समय देकर च गया और यह धमकी दे गया कि यदि वह एक महीने बाद भी उससे परिणय करने के लि राज़ी न होगी तो वह उसे तलवार से मार डालेगा। इस धमकी से डरकर सीता त्रिज राक्षसी से प्रार्थना करती हैं कि उन्हें वह कहीं से अग्नि ला दे, ताकि वह उसमें भस्म होक अपने प्रति राम का प्रेम अमर कर जायें। त्रिजटा ने उत्तर दिया कि 'रात में अग्नि मिल सम्भव नहीं।' रावण का आना, सीता को धमकाना, राक्षसियों के झुंड को सीता के पहरे प लगाना, सीता का त्रिजटा से अग्नि माँगना और उसका मना करना यह सब दृश्य हनुम जी ऊपर पेड़ पर बैठे देख रहे थे। जब उनसे सीता की विरह व्यथा और नहीं देखी गई उन्होंने चुपके से राम की मुद्रिका, जो उन्हें पहचान के लिये राम ने दी थी, नीचे डाल दी सीता जी समझीं कि भगवान ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है, और आकाश से चि प्रज्ज्वलित करने के लिये एक जलता अंगारा भेजा है।

दो०-- कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ।।१२।।

भावार्थ-- तब हनुमान जी ने हृदय में विचार कर (सीता जी के सामने) अंगूठी डा दी, मानो आकाश ने अंगारा दे दिया। (यह समझकर) सीता जी ने हर्षित होकर, उठक उसे हाथ में ले लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी।।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई।।
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।

रामचन्द्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥
नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥

भावार्थ— तब उन्होंने राम नाम से अंकित अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अंगूठी को पहचान कर सीता जी आश्चर्य चकित होकर उसे देखने लगीं, और हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठीं। (वे सोचने लगीं—) श्री रघुनाथ जी तो सर्वदा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है ? और माया से ऐसी (माया के उपादान से सर्वदा रहित दिव्य, चिन्मय) अंगूठी बनायी नहीं जा सकती। सीता जी मन में अनेक प्रकार से विचार कर रहीं थीं। इसी समय हनुमान जी ने मधुर बचन बोले। वे श्री रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करने लगे, जिनको सुनते ही सीता जी का दुःख भाग गया। वे कान और मन लगा कर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान जी ने आदि से लेकर सब कथा कह सुनायी। (सीता जी बोली—)'जिसने कानों के लिये अमृतरूप यह सुन्दर कथा कही, वह हे भाई ! प्रकट क्यों नहीं होता?" तब हनुमान जी पास चले गये। उन्हें देखकर सीता जी फिरकर (मुख फेर कर)बैठ गयीं। उनके मन में आश्चर्य हुआ। (हनुमान जी ने कहा—)"हे माता जानकी ! मैं श्री रामजी का दूत हूँ। करूणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ। हे माता ! यह अंगूठी मैं ही लाया हूँ। श्री रामजी ने मुझे आपके लिये यह सहदानी (निशानी या पहिचान) दी है।" (सीता जी ने पूछा—)"नर और बानर का संग कहो कैसे हुआ।" तब हनुमान जी ने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में ११ विषम पंक्तियाँ है। पेड़ से गिरी हुई अंगूठी को देखते ही सीता जी को आश्चर्य और विस्मय हुआ और वह सन्देह करने लगीं कि यह मायावी राक्षसों की कोई चाल तो नहीं है। उनके भय और विस्मय को मिटाने के लिये हनुमान जी ने आद्यन्त कथा सुनाई। कथा सुनकर सीता जी बोलीं—"जिसने यह सुन्दर कथा कही है वह स्वयं प्रकट क्यों नहीं होता ?" तब हनुमान जी पेड़ से उतर आये और उन्होंने अपना परिचय दिया, कि वह श्री राम के दूत हैं। सीता जी ने फिर सन्देह प्रकट करते कहा—"नर और वानर का संग कैसे हो सकता है"? तब हनुमान जी ने विस्तार पूर्वक बालि—बध, सुग्रीव—मैत्री की कथा सुनाई।

दो०— कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥१३॥

भावार्थ— हनुमान जी के प्रेम युक्त बचन सुनकर सीता जी के मन में विश्वास उत्पन्न हुआ। उन्होंने जान लिया कि यह मन, बचन और कर्म से कृपासागर श्री रामचन्द्र जी का दास है।

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥
बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तब दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥

भावार्थ— भगवान का (सेवक)जानकर अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गई। नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। (सीता जी ने कहा--) "हे तात हनुमान! विरहसागर में डूबती हुई मुझको तुम जहाज़ हुए। मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित सुखधाम खरारि का कुशल मंगल कहो। श्री रघुनाथ जी तो कोमल हृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है?सेवक को सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे श्री रघुनाथ जी कभी मेरी भी याद करते हैं? हे तात! क्या कभी उनके कोमल साँवले अंगों को देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे।" मुख से वचन नहीं निकलता नेत्रों में (विरह के आँसुओं का)जल भर आया। (बड़े दुःख से वे बोलीं--)"हा नाथ! आपने मुझे बिलकुल भुला दिया।" सीता जी को विरह से परम व्याकुल देखकर हनुमान जी कोमल और विनीत बचन बोले --"हे माता! सुन्दर कृपा के धाम प्रभु छोटे भाई सहित शरीर में कुशल हैं, परन्तु आपके दुःख से दुखी हैं। हे माता! मन में न्यूनता न मानिये (मन छोटा करके दुःख न कीजिये)। श्री रामचन्द्र के हृदय में आपसे दूना प्रेम है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में १० सम पंक्तियाँ हैं। सीता जी अब आश्वस्त हो गयीं कि हनुमान कोई मायावी राक्षस नहीं है, श्री रामका सेवक है, तब उन्होंने हनुमान से राम-लक्ष्मण का कुशल मंगल पूछा। हनुमान उत्तर दे नहीं पाये कि सीता जी राम के प्रति

उलहना दे बैठीं :'आपने मुझे बिलकुल भुला दिया'। इस पर हनुमान जी ने सीता जी को आश्वासन दिया कि जितनी उनकी राम के प्रति प्रीति है, उससे दुगुनी प्रीति राम की उनके प्रति है।

दो०– रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर ।।१४।।

भावार्थ– हे माता ! अब धीरज धर कर श्री रघुनाथ जी का सन्देश सुनिये।" ऐसा कहकर हनुमान जी प्रेम से गद्गद् हो गये। उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का)जलभर आया।

कहेउ राम बियोग तब सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता ।।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू ।।
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ।।
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ।।
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ।।
कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता ।।
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई ।।

भावार्थ– (हनुमान बोले–)"श्री रामचन्द्र जी ने कहा है कि हे सीते ! तुम्हारे वियोग में मेरे लिये सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गये हैं। वृक्षों के नये-नये कोमल पत्ते मानो अग्नि के समान, रात्रि काल के समान, चन्द्रमा सूर्य के समान। और कमलों के बन भालों के बन के समान हो गये हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करते वाले थे वही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिबिध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) पवन साँप के स्वास के समान (जहरीली और गर्म) हो गयी है। मन का दुःख कह डालने से भी कुछ घट जाता है, पर कहूँ किससे? यह दुख कोई जानता नहीं। हे प्रिये ! मेरे और तेरे प्रेम का तत्व एक मेरा मन ही जानता है। और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ ले।" प्रभु का सन्देश सुनते ही जानकी जी प्रेम में मग्न हो गयीं। उन्हें शरीर की सुध नहीं रही। हनुमान जी ने कहा–"हे माता ! हृदय में धैर्य धारण करो, और सेवकों को सुख देने वाले श्री राम जी का स्मरण करो। श्री रघुनाथ जी की प्रभुता को हृदय में लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १० सम पंक्तियाँ हैं। श्रृंगार के दो स्वरूप होते हैं--संयोग और वियोग। तुलसीदास के समय कलावादी कवि वियोग श्रृंगार वर्णन में अधिक रुचि रखते थे। कहीं विरह ताप से सुलगते हुए शरीर से उठे धुँए के कारण ही आकाश नीला दिखाई पड़ता था। कौवे काले हो जाते थे। कहीं रक्त के आँसुओं की बूँदे टेसू के फूलों, नई कोपलों और गुंजा के दौनों के रूप में बिखरी दिखाई पड़ती थीं। कहीं जगत को डुबानेवाले अश्रुप्रवाह के खारेपन से समुद्र खारे हो जाते थे। कहीं भस्मीभूत शरीर की राख का एक-एक कण हवा के साथ उड़ता हुआ प्रिय के चरणों में लिपटना चाहता था।

परन्तु तुलसीदास कोरे कवि नहीं थे, वह धर्मोपदेष्टा और नीतिकार थे। केवल दो एक जगह उन्होंने कवियों की अतिरंजित या प्रलपित उक्तियों का अनुकरण किया है। ऊपर की चौपाई इस का एक उदाहरण है। सीता के विरह में राम को वृक्षों के नये-नये कोमल पत्ते अग्नि के समान लगते हैं, रात्रि काल के समान, चन्द्रमा सूर्य के समान, और कमलों के वन भालों के समान। त्रिविध समीर साँप के स्वास समान जहरीली लगती है और जब वृष्टि होती है तो ऐसा लगता है कि मेघ खौलता हुआ तेल बरसा रहे हैं। इस प्रकार के उद्दीपन विभाव को सूरदास ने बहुत सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है :

बिनु गुपाल बैरिनि भई कुंजै।

तब वै लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल-फूलननि अलि-गुजैं।
पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भई भुंजैं।
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग-जोवत अँखियाँ भई छुंजैं।।*

दो०– निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु।।१५।।

भावार्थ– राक्षसों के समूह पतंगों के समान और श्री रघुनाथ जी के बाण अग्नि के समान हैं। हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और राक्षसों को जला ही समझो।

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई।।
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की।।

---

* सूरसागर, दशमस्कंध, पद १७७०

अबहि मातु मैं जाउँ लवाई । प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं । तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं ॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना । जातुधान अति भट बलवाना ॥
मोरें हृदय परम संदेहा । सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ॥
कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अतिबल बीरा ॥
सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ ॥

भावार्थ– रघुबीर श्री रामचन्द्र जी ने यदि खबर पायी होती तो वे विलम्ब नहीं करते । हे जानकी जी ! रामबाण रूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेना रूपी अन्धकार कहाँ रह सकता है । हे माता ! मैं आपको अभी यहाँ से लिवा जाऊँ; पर श्री रामचन्द्र जी की शपथ है ; मुझे प्रभु (उन)की आज्ञा नहीं है । हे माता ! कुछ दिन और धीरज धरो । रघुबीर श्री रामचन्द्र जी बानरों सहित यहाँ आयेंगे और राक्षसों को मार कर आपको ले जायेंगे । नारद आदि ऋषि मुनि तीनों लोकों में यश गायेंगे।" सीता जी ने कहा–"हे पुत्र ! सब बानर तुम्हारे ही समान (नन्हे-नन्हे से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान योद्धा हैं । अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी सन्देह होता है (कि तुम जैसे बन्दर राक्षसों को कैसे जीतेंगे) ।" यह सुनकर हनुमान जी ने अपना शरीर प्रकट किया । सोने के पर्वत (सुमेरु) के आकार का (अत्यन्त विशाल)शरीर था जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाला, अत्यन्त बलवान और वीर था। तब (उसे देखकर) सीता जी के मन में विश्वास हुआ । हनुमान जी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ ८३१ पर बताया गया है कि नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर हनुमान जी ने विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ । अशोक वाटिका में जब उनका सीता जी से साक्षात्कार हुआ तो सीता जी को सन्देह हुआ कि, राक्षस तो बड़े बलवान योद्धा हैं, राम छोटे-छोटे बानरों की सेना लेकर इन राक्षसों के ऊपर कैसे विजय प्राप्त करेंगे । शंका निवारण के लिये हनुमान जी ने शीघ्र अपना वास्तविक स्वरूप सीता जी के सम्मुख प्रकट किया । वह सुमेरु पर्वत के समान विशाल हो गये । उनका बलवान और ओजस्वी शरीर देखकर सीता जी की आशंका दूर हुई और उन्हें सांत्वना मिली।

दो०– सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल ।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल ।।१६।।

भावार्थ– हे माता ! सुनो, बानरों में बहुत बल , बुद्धि नहीं होती परन्तु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है (अत्यन्त निर्बल भी महा बलवान को मार सकता है)।

मन संतोष सुनत कपि बानी । भगति प्रताप तेज बल सानी ॥

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना । होहु तात बल सील निधाना ॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहू । करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥

बार बार नाएसि पद सीसा । बोला बचन जोरि कर कीसा ॥

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता । आसिष तव अमोघ बिख्याता ॥

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुंदर फल रूखा ॥

सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी ॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं । जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ॥

भावार्थ– भक्ति, प्रताप, तेज और बल से सनी हुई हनुमान जी की वाणी सुनकर सीता जी के मन में सन्तोष हुआ। उन्होंने, श्री राम जी के प्रिय जानकर, हनुमान जी को आशीर्वाद दिया कि "हे तात ! तुम बल और शील के निधान होओ। हे पुत्र ! तुम अजर (बुढ़ापे से रहित), अमर और गुणों के खजाने होओ। श्री रघुनाथ जी तुम पर कृपा करें।" 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानों से सुनते ही हनुमान जी पूर्ण प्रेम में मग्न हो गये। हनुमान जी ने बार-बार सीता जी के चरणों में सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा–"हे माता ! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक)है, यह बात प्रसिद्ध है। हे माता! सुनो। सुन्दर, फलवाले वृक्षों को देखकर मुझे बड़ी भूख लग आयी है।" सीता जी ने कहा–"हे बेटा ! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वन की रखवाली करते हैं।" (हनुमान जी ने कहा–) "हे माता! यदि आप मन में सुख मानें (प्रसन्न होकर आज्ञा दें)तो मुझे उनका भय तो बिलकुल नहीं है।"

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं, जिनमें एक लोकप्रिय पद है :

'सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा'

बच्चे लाड़ में आकर कहते हैं 'माँ ! भूख लगी है।' माँ उत्तर देती है'बस एक मिनट' और तुरन्त बच्चे के सामने लाकर भोजन रख देती है।

उपर और पिछले पृष्ठ की चौपाइयों में सीता ने हनुमान को'सुत' कह कर सम्बोधित किया। एक बार जब बेटा मान लिया, तो बेटे का मनुहार भी माँ को मानना पड़ेगा। महाबीर और महापराक्रमी हनुमान सीता के सामने बिलकुल छोटे बालक बन गए और पेड़ में लगे फल खाने की ज़िद करने लगे। सीता ने समझाया की बगीचे की बड़ें बलवान राक्षस चौकीदारी कर रहे हैं। उनके सामने फल तोड़ना सम्भव नहीं होगा। हनुमान ने तुरन्त उत्तर दिया कि वह राक्षसों से डरते नहीं हैं। केवल सीता माता की अनुमति चाहते हैं। बच्चे की ज़िद को माँ कैसे टाल सकती है। अगले दोहे में तुरन्त अनुमति दे दी :

'जाहु ।......... तात मधुर फल खाहु ।।'

दो०— देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु ।।१७।।

भावार्थ— हनुमान जी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जानकी जी ने कहा—'जाओ। हे तात ! श्री रघुनाथ जी के चरणों को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ।'

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । फल खाएसि तरु तोरैं लागा ।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ।।
नाथ एक आवा कपि भारी । तेहिं असोक बाटिका उजारी ।।
खाएसि फल अरु बिटप उपारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ।।
सुनि रावन पठए भट नाना । तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना ।।
सब रजनीचर कपि संघारे । गए पुकारत कछु अधमारे ।।
पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा । चला संग लै सुभट अपारा ।।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा । ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ।।

भावार्थ— वे सीता जी को सिर नवाकर चले और बाग में घुस गये । फल खाए और वृक्षों को तोड़ने लगे । वहाँ बहुत से योद्धा रखवाले थे । उनमें से कुछ को तो मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से पुकार की । (और कहा—) "हे नाथ! एक बड़ा भारी बन्दर आया है । उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली । फल खाये , वृक्षों को उखाड़ डाला और रखवालों को मसल मसल कर ज़मीन पर डाल दिया ।" यह सुनकर रावण ने बहुत से योद्धा भेजे । उन्हें देखकर हनुमान जी ने गर्जना की । हनुमान जी ने सब राक्षसों को मार डाला । कुछ जो अधमरे थे चिल्लाते हुए गए । फिर रावण ने अक्षय कुमार को भेजा । वह अत्यन्त श्रेष्ठ योद्धाओं को साथ लेकर चला । उसे आते देखकर हनुमान जी ने एक वृक्ष (हाथ में) लेकर ललकारा और उसे मार कर महाध्वनि से (बड़े ज़ोर से)गर्जना की ।

दो०— कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि ।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ।।१८।।

भावार्थ— उन्होंने सेना में से कुछ को मार डाला, कुछ को मसल डाला और कुछ को पकड़-पकड़ कर धूल में मिला दिया । कुछ ने फिर जाकर पुकार की कि "हे प्रभु ! बन्दर बहुत बलवान है ।"

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना । पठएसि मेघनाद बलवाना ।।
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही । देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ।।
चला इंद्रजित अतुलित जोधा । बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा ।।
कपि देखा दारुन भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा ।।

अति बिसाल तरु एक उपारा । बिरत कीन्ह लंकेस कुमारा ॥
रहे महाभट ताके संगा । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ॥
तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा । भिरे जुगल मानहुँ गजराजा ॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई । ताहि एक छ्न मुरछा आई ॥
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया । जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥

भावार्थ– पुत्र का वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने बलवान मेघनाद को भेजा। (उसे कहा कि–) "हे पुत्र ! मारना नहीं, उसे बाँध लाना। उस बंदर को देखा जाय कि कहाँ का है।" इन्द्र को जीतने वाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। भाई का मारा जाना सुन उसे क्रोध उत्पन्न हो आया। हनुमान जी ने देखा कि अब की भयानक योद्धा आया है। तब वे कटकटा कर गर्जे और दौड़े। उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उसके प्रहार से लंकेश्वर रावण के पुत्र मेघनाद को बिना रथ का कर दिया (रथ को तोड़कर उसे नीचे पटक दिया)। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़ कर हनुमान जी अपने शरीर से मसलने लगे। सब को मारकर फिर मेघनाद से लड़ने लगे। (लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे)मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गये हों। हनुमान जी उसे एक घूँसा मारकर वृक्ष पर जा चढ़े। उसको क्षणभर की मूर्च्छा आ गयी। फिर उठकर उसने बहुत माया रची। परन्तु पवन पुत्र उससे जीते नहीं जाते।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है। हनुमान ने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उस को मेघनाद के रथ पर पटक दिया, जिसके प्रहार से मेघनाद का रथ टूट गया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब मेघनाद की मूर्च्छा टूटी तब वह उठकर खड़ा हो गया और हनुमान जी को परास्त करने के लिये उसने नाना प्रकार के प्रयोग किये। जो प्रयोम मेघनाद हनुमान जी को पकड़ने के लिये करता था वह सब निष्फल हो जाते थे। इसका सब से महान कारण यह था कि मेघनाद पिता की आज्ञा का पालन करना चाहता था। वह हनुमान को मारना नहीं चाहता था। उन्हें जिन्दा बन्दी बनाना चाहता था। दूसरे, उसे अपने भाई के मरने का भी क्रोध था। तीसरे, उसके अनेकों योद्धाओं को उसी के सामने हनुमान जी ने मसल मसल कर ही मार दिया था। चौथे, उसे रथ विहीन भी कर दिया था। पाँचवे, एक घूँसा मारकर क्षण भर को मूर्छित कर दिया था। इतनी सारी बातों से मेघनाद जी से तो हनुमान के बल और चतुरता का अनुमान लगा ही चुका था ; साथ में अपना सन्तुलन भी खो बैठा जिससे उसका कोई भी प्रयोग सफल नहीं हो पा रहा था।

पात्र परिचय–मेघनाद लंकापति रावण (देखिए पृष्ठ २१६-१७) का ज्येष्ठ पुत्र था। जब यह गरजता था तो सुनने वालों को ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश में बादल गरज रहे हैं। इसी कारण इसका नाम मेघनाद पड़ा। देवराज इन्द्र को युद्ध में पराजित करने के कारण यह इंद्रजीत नाम से भी प्रसिद्ध था। इसने लंका के युद्ध में दो बार लक्ष्मण को हराया

था। अनंतर भयंकर युद्ध होने पर यह लक्ष्मण के हाथ से मारा गया।

दो०— ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार।।१९।।

भावार्थ— अन्त में उसने ब्रह्मास्त्र का सन्धान (प्रयोग) किया। तब हनुमान जी ने मन में विचार किया कि यदि मैं ब्रह्मास्त्र का आदर नहीं करता हूँ तो उसकी सारी महिमा समाप्त हो जायेगी।

टिप्पणी— हनुमान जी को ब्रह्मा का वरदान था कि उनका कोई भी अस्त्र हनुमान जी को कोई भी क्षति नहीं पहुँचा सकेगा। जब मेघनाद ने हनुमान जी पर ब्रह्मास्त्र साधा तो हनुमान जी असमंजस में पड़ गये। यदि ब्रह्मास्त्र का वह सामना करते हैं और उसको चुनौती देते हैं, तो अनुशासन और मर्यादा का भंग होता है। हनुमान जी जब इस उधेड़ बुन में लगे थे, इतने में ही मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोगकर डाला और हनुमान जी मूर्च्छित होकर वृक्ष से नीचे गिर पड़े।

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा।।
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ।।
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी।।
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा।।
कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए।।
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।।
कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका।।

भावार्थ— (हनुमान जी अभी उसी उधेड़ बुन में पड़े ही थे कि) मेघनाद ने उन पर ब्रह्मास्त्र चला ही तो दिया, जिसके लगते ही वे वृक्ष से नीचे गिर पड़े। परन्तु गिरते समय भी उन्होंने बहुत सी सेना मार डाली। जब उसने देखा कि हनुमान जी मूर्च्छित हो गये हैं, तब वह उनको नागपाश से बाँधकर ले गया। (शिव जी कहते हैं–) "हे भवानी ! सुनो, जिनका नाम जपकर ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बन्धन काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बन्धन में आ सकता है। किन्तु प्रभु के कार्य के लिए हनुमान जी ने स्वयं अपने को बँधा लिया।" बन्दर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुक के लिये (तमाशा देखने के लिये) सब सभा में आए। हनुमान जी ने जाकर रावण की सभा देखी। उसकी अत्यन्त प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती। देवता और दिग्पाल हाथ जोड़े बड़ी

नम्रता के साथ भयभीत हुए सब रावण की भौं ताक रहे हैं (उसका रुख देख रहे हैं)। उसका ऐसा प्रताप देखकर हनुमान जी के मन में ज़रा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशंक खड़े रहे जैसे सर्पों के समूह में गरुड़ निःशंक (निर्भय) रहते हैं।

दो०— कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद ।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद ।।२०।।

भावार्थ— हनुमान जी को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा। फिर पुत्र वध का स्मरण किया तो उसके हृदय में विषाद उत्पन्न हो गया।

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा ।।
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही ।।
मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा ।।
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया ।।
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा ।।
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन ।।
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता ।।
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा ।।
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली ।।

भावार्थ— लंकापति रावण ने कहा—"रे बानर ! तू कौन है ? किसके बल पर तूने वन को उजाड़कर नष्ट कर डाला ? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानों से नहीं सुना ? रे शठ ! मैं तुझे अत्यन्त निःशंक देख रहा हूँ। तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख ! बता, क्या तुझे प्राण जाने का भय नहीं है ?" (हनुमान जी ने कहा—) "हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के समूहों की रचना करती है। जिसके बल से हे दसशीश ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्रमशः सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं। जिनके बल से सहस्र मुख (फणों) वाले शेष जी पर्वत और बन सहित समस्त ब्रह्माण्ड को सिर पर धारण करते हैं। जो देवताओं की रक्षा के लिए नाना प्रकार की देह धारण करते हैं। और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले हैं। जिन्होंने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ डाला और उसी के साथ राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण कर दिया। जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि को मार डाला, जो सब के सब अतुलनीय बलवान थे।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है। मेघनाद हनुमान को नागपाश में बाँधकर जब अपने पिता रावण के सामने बन्दी बनाकर लाया, तो रावण ने उससे पूछा कि किस बल पर उसने सारी अशोक वाटिका उजाड़ दी और राक्षसों को मार डाला। हनुमान जी ने उत्तर दिया कि वह बल भगवान राम का था। भगवान राम की महिमा बताते हुए

हनुमान ने कहा कि "उन्हीं राम के बल पर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करती है। उसी बल पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश क्रमशः सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं।

दो०— जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि।।२१।।

भावार्थ— जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत को जीत लिया, और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम (चोरी से)हर लाये हो,मैं उन्हीं का दूत हूँ।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।।
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा।।
खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।।
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी।।
जिन्ह मोहि ‍ रा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे।।
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभुकर काजा।।
बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी।।
जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।।
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै।।

भावार्थ— मैं तुम्हारी प्रभुता को खूब जानता हूँ। सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालि से युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था।" हनुमान जी के (मार्मिक)बचन सुनकर रावण ने हँसकर बात टाल दी। "हे (राक्षसों के) स्वामी ! मुझे भूख लगी थी, इसलिये मैंने फल खाये, और बानर- स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े। हे (निश्चरों के)स्वामी ! देह सब को परम प्रिय है। कुमार्ग पर चलने वाले (दुष्ट)राक्षस जब मुझे मारने लगे , तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझ को बाँध लिया। मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य किया चाहता हूँ। हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे बिनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुल का विचार करके देखो और भ्रम को छोड़ कर भक्त भय-हारी भगवान को भजो। जो देवता, राक्षस और समस्त चराचरों को खा जाता है, वह काल भी जिनके डर से अत्यन्त डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहने से जानकी जी को दे दो।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है। दोहा २१ के ऊपर की चौपाई में बताया जा चुका है कि रावण के प्रश्न के उत्तर में हनुमान जी ने बताया कि उन्होंने राम के बल पर अशोक वाटिका को उजाड़ा। अपने को निर्दोष साबित करने के लिये उन्होंने रावण को फिर बताया कि वह भूखे थे, और केवल वाटिका के फल खाना चाहते थे, परन्तु

बानर के सहज स्वभाव के कारण उन्होंने वृक्ष भी तोड़ डाले। राक्षसों ने उनपर पहले प्रहार किया। और अपनी आत्मरक्षा (self-defence) के लिये उन्होंने राक्षसों को मारा। अन्त में उन्होंने रावण को चेतावनी दी कि वह अपने पवित्र कुल का विचार करके राम से बैर न करे। और तुरन्त जानकी जी को लौटा दे। यदि वह सीता को लौटा देगा, तो प्रणतपाल रघुनाथ जी शरण में आये हुये का अपराध क्षमा कर देंगे।

दो०— प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि ।।२२।।

भावार्थ— खर के शत्रु श्री रघुनाथ जी, शरणागतों के रक्षक और दया के समुद्र हैं, शरण जाने पर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में रख लेंगे।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू।।
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका।।
राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी।।
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।।
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं।।
सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी।।
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही।।

भावार्थ— तुम श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों को हृदय में धारण करो और लंका का अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्य जी का यश निर्मल चन्द्रमा के समान है। उस चन्द्रमा में तुम कलंक मत बनो। रामनाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोह को छोड़, विचार कर देखो। हे देवताओं के शत्रु! सब गहनों से सजी हुई सुन्दरी स्त्री कपड़े के बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती। राम-विमुख पुरुष की तो सम्पत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है, और उसका पाना न पाने के समान है। जिन नदियों के मूल में कोई जल स्रोत नहीं है (अर्थात जिन्हें केवल बरसात का ही आसरा है) वे वर्षा बीत जाने पर तुरन्त ही सूख जाती हैं। हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि राम विमुख की रक्षा करने वाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्री रामजी के साथ द्रोह करने वाले तुमको नहीं बचा सकते।

दो०— मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान ।।२३।।

भावार्थ— मोह ही जिसका मूल है ऐसे (अज्ञान जनित) बहुत पीड़ा देने वाले अभिमान

का तुम त्याग कर दो और रघुकुल के स्वामी, कृपा के समुद्र भगवान श्री रामचन्द्र जी का भजन करो।"

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥
सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥
सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥

भावार्थ– यद्यपि हनुमान जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की बाणी कही, तो भी वह महान अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंग से)बोला कि "हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला। रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गयी, है। अधम मुझे शिक्षा देने चला है।" हनुमान जी ने कहा–"इससे उल्टा ही होगा (अर्थात मृत्यु तुम्हारी निकट आ गयी है, मेरी नहीं)। यह तेरा मति- भ्रम है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है।" हनुमान जी के बचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया (और बोला–)"अरे! इस मूर्ख का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हरण कर लेते?" सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े। उसी समय मन्त्रियों के साथ विभीषण जी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि "दूत को मारना नहीं चाहिये, यह नीति के विरुद्ध है। हे गोसाई! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय।" सबने कहा 'भाई! यह सलाह उत्तम है।' यह सुन रावण हँस कर बोला– "अच्छा तो, बन्दर को अंग-भंग करके भेज (लौटा)दिया जाय।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। जब हनुमान ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति की बातें कहीं तो अभिमानी रावण हँसकर बोला "हमें यह बन्दर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला है। इसकी मृत्यु निकट आ गयी है। यह अधम मुझे शिक्षा देने चला है।" इतने में रावण के छोटे भाई विभीषण आ गये और उन्होने बीच-बचाव करते हुये मन्त्रणा दी: "दूत को मारना नहीं चाहिये, यह नीति के विरुद्ध है। कोई दूसरे प्रकार का दण्ड देना उचित होगा।" विभीषण की सलाह सबको उत्तम लगी। रावण ने प्रस्ताव किया कि हनुमान का कोई अंग-भंग करके छोड़ दिया जाये। नीचे के दोहो में रावण कहता है कि "बन्दर को अपनी पूँछ से बहुत प्रेम होता है। इसलिये इसकी पूँछ जला देनी चाहिये।"

दो०– कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ।।२४।।

भावार्थ– मैं सब को समझाकर कहता हूँ कि बंदर की ममता पूँछ पर होती है। अतः तेल में कपड़ा डुबोकर, उसे इसकी पूँछ में बाँध कर, फिर आग लगा दो।

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना ॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना ॥
रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता ॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं ॥

भावार्थ– जब बिना पूँछ का यह बन्दर वहाँ (अपने स्वामी के पास जायेगा) तब यह मूर्ख अपने मालिक को साथ ले आयेगा। जिसकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं ज़रा उनकी प्रभुता तो देखूं।'' (पूँछ लपेटने से इतना कपड़ा और घी तेल लगा कि)नगर में कपड़ा, घी, और तेल नहीं रह गया। हनुमान जी ने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गयी (लंबी हो गयी)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आये। वे हनुमान जी को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी बड़ी हँसी करते हैं। ढोल बजाते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान जी को नगर में फिराकर फिर पूँछ में आग लगा दी। अग्नि को जलते हुये देखकर हनुमान जी तुरन्त ही बहुत छोटे रूप में हो गये। बन्धन से निकलकर वे सोने की अटारियों पर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गयीं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। जब रावण ने आदेश दिया कि हनुमान जी की पूँछ में कपड़ा बाँधकर, तेल में डुबोकर, आग लगा दी जाय, तो हनुमान जी ने अपनी पूँछ इतनी लम्बी कर ली कि उसको बाँधने और भिगोने में नगर का समस्त कपड़ा और तेल लग गया। अग्नि में आग लगते ही हनुमान जी तुरन्त छोटे हो गये। बंधन से निकलकर सोने की अटारियों पर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गयीं।

दो०– हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ।।२५।।

भावार्थ— इस समय भगवान की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान जी ाट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाश से जा लगे।

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥
तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥
साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥
ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

भावार्थ— देह बड़ी विशाल, परन्तु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है। वे दौड़कर, एक महल दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गये हैं। आग की करोड़ों यंकर लपटें झपट रही हैं। "हाय बप्पा! हाय मैया! इस अवसर पर हमें कौन बचायेगा?" ारों ओर यही पुकार सुनाई पड़ रही है।"हमने तो पहले ही कहा था कि यह बानर नहीं , वानर का रूप धरे कोई देवता है। साधु के अपमान का यह फल है कि नगर अनाथ की रह जल रहा है।" हनुमान जी ने एक ही निमेष में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण ा घर नहीं जलाया। (शिवजी कहते हैं--)"हे पार्वती! जिन्होंने अग्नि को बनाया, हनुमान ो उन्हीं के दूत हैं, इसी कारण वे अग्नि से नहीं जले। हनुमान जी ने उलट-पलट कर सारी का जला दी। फिर वे समुद्र में कूद पड़े।"

टिप्पणी- ऊपर जो लंका दहन का वर्णन किया गया है, उससे कहीं अधिक रोमाञ्चकारी र्णन तुलसीदास जी ने 'कवितावली' के सुन्दरकाण्ड के पाँचवे कवित्त में किया है :

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस चाप, कैधों दामिनी कलाप,
कैधों चली मेरू तें कृसानु-सरि भारी है॥
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
'कानन उजारयौ अब नगर प्रजारी हैं'॥

दो०— पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥२६॥

भावार्थ– पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण कर श्री जानकी जी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥
कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥
तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥

भावार्थ– (हनुमान जी ने कहा)–"हे माता! मुझे कोई चिन्ह (पहचान) दीजिये, जैसे श्री रघुनाथ जी ने मुझे दिया था।" तब सीता जी ने चूड़ामणि उतार कर दी। हनुमान जी ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया। (जानकी जी ने कहा–) 'हे तात! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना–'हे प्रभु! यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्ण काम हैं (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुखियों) पर दया करना आपका विरद है (और मैं दीन हूँ)। अतः उस विरद को याद करके, हे नाथ! मेरे भारी संकट को दूर कीजिये।' हे तात! इन्द्रपुत्र जयन्त की कथा (घटना) सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना (स्मरण कराना)। यदि महीने भर में नाथ न आये तो फिर मुझे जीवित न पाएंगे। हे हनुमान! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँ। हे तात! तुम भी अब जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। फिर मुझे वही दिन, वही रात!" हनुमान जी ने जानकी जी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया, और उनके चरण कमलों में सिर नवाकर श्री राम जी के पास गमन किया।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है :-

'दीन दयाल बिरिदु सँभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥'

अर्थात्, दीनों पर दया करना आपकी बान है। इसी कारण आप मेरे भारी संकट को दूर कीजिये।

यद्यपि यह प्रार्थना सीता जी ने हनुमान के द्वारा रामचन्द्र जी से की, परन्तु यह प्रार्थना सभी भक्तों पर लागू है। भक्त सदा भगवान से कहते हैं कि दीन दुखियों पर दया करना आपकी रीति है। और उस रीति के नाते हम आपके द्वारा अपने संकटों का मोचन चाहते हैं।

यह लोकोक्ति इतनी प्रचलित हुई कि कहीं-कहीं जब रामायण का अखण्ड पाठ होता है, तो इस पंक्ति को सम्पुट मानकर हर चौपाई के बाद बार-बार दोहराया जाता है।

दो०— जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ।।२७।।

भावार्थ— हनुमान जी ने जानकी जी को समझाकर बहुत प्रकार धीरज दिया, और उनके चरण कमलों में सिर नवाकर श्री राम जी के पास गमन किया।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी ।।
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा । सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा ।।
हरषे सब बिलोकि हनुमाना । नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ।।
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा । कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा ।।
मिले सकल अति भए सुखारी । तलफत मीन पाव जिमि बारी ।।
चले हरषि रघुनायक पासा । पूँछत कहत नवल इतिहासा ।।
तब मधुबन भीतर सब आए । अंगद संमत मधु फल खाए ।।
रखवारे जब बरजन लागे । मुष्टि प्रहार हनत सब भागे ।।

भावार्थ— चलते समय उन्होंने महाध्वनि से भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघ कर वे इस पार आये, और उन्होंने वानरों को केलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया। हनुमान जी को देखकर सब हर्षित हो गये, और तब वानरों ने अपना नया जन्म समझा। हनुमान जी का मुख प्रसन्न है और शरीर में तेज विराजमान है, जिससे उन्होंने समझ लिया कि ये श्री रामचन्द्र जी का कार्य कर आये हैं। तब हनुमान जी से मिले और बहुत ही सुखी हुए। जैसे तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नये-नये इतिहास (वृत्तान्त) कहते हुए श्री रघुनाथ जी के पास चले। तदनन्तर सब मधुबन के भीतर आये, और अंगद की सम्मति पाकर सब ने मधुर फल (या मधु और फल) खाये। जब रखवाले उन्हें बरजने लगे, तब घूँसों की मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे।

दो०— जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज ।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज ।।२८।।

भावार्थ— उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद बन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभु का कार्य कर आये हैं।

जौं न होति सीता सुधि पाई । मधुबन के फल सकहिं कि खाई ।।
एहि बिधि मन बिचार कर राजा । आइ गए कपि सहित समाजा ।।

आइ सबन्हि नावा पद सीसा । मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा ॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी । राम कृपाँ भा काजु बिसेषी ॥
नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना । राखे सकल कपिन्ह के प्राना ॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ । कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा । किएँ काजु मन हरष बिसेषा ॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई ॥

भावार्थ– यदि सीता जी की खबर न पायी होती तो क्या ये मधुबन के फल खा सकते? इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर ही रहे थे कि समाज सहित बानर आ गये । सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया । कपिराज सुग्रीव सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले। उन्होंने कुशल पूछी । (कपि बानरों ने उत्तर दिया–) 'आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है । श्री राम जी की कृपा से विशेष कार्य हुआ (कार्य में विशेष सफलता हुई)। हे नाथ! हनुमान ने ही सब कार्य किया और सब वानरों के प्राण बचा लिये । यह सुनकर सुग्रीव जी हनुमान जी से फिर मिले और सब बानरों सहित श्री रघुनाथ जी के पास चले । श्री रामजी ने जब वानरों को कार्य किए हुए आते देखा तब उनके मन में विशेष हर्ष हुआ । दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे । सब बानर जाकर चरणों पर गिर पड़े ।

दो०– प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज ।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ।।२९।।

भावार्थ– दया की राशि श्री रघुनाथ जी सब से प्रेम सहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी । (वानरों ने कहा–) 'हे नाथ ! आपके चरण कमलों के दर्शन पाने से सब कुशल है ।''

जामवंत कह सुनु रघुराया । जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥
सोइ बिजई बिनई गुन सागर । तासु सुजसु त्रैलोक उजागर ॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू । जन्म हमार सुफल भा आजू ॥
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी । सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ॥
पवनतनय के चरित सुहाए । जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाए । पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी । रहति करति रच्छा स्वप्रान की ॥

भावार्थ– जामवन्त ने कहा–''हे रघुनाथ जी ! सुनिये। हे नाथ ! जिसपर आप दया करते हैं, उसका सदा कल्याण और निरन्तर कुशल है । देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं । वही विजयी है, और वही गुणों का समुद्र बन जाता है । उसी का सुन्दर यश तीनों

लोकों में प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया। हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान ने जो करनी की उसका हज़ार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता।" तब जाम्बवान् ने हनुमान जी के सुन्दर चरित्र (कार्य) श्री रघुनाथ जी को सुनाये। सुनते ही कृपानिधि श्री रामचन्द्र जी मन में बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान जी को फिर हृदय से लगा लिया और कहा—"हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहतीं और अपने प्राणों की रक्षा करती हैं।"

दो०— नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ।।३०।।

भावार्थ— (हनुमान जी ने कहा)—"आपका नाम रात दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही किवाड़, नेत्रों को अपने चरणों में लगाये रखती हैं, यही ताला लगा है, फिर प्राण जाये तो किस मार्ग से ?

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही ।।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी ।।
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना ।।
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी ।।
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ।।
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ।।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा ।।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी ।।
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला ।।

भावार्थ— चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि (उतार कर) दी।" श्री रघुनाथ जी ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। (हनुमान जी ने फिर कहा—) "हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जानकी जी ने मुझ से कुछ बचन कहे।'छोटे भाई सहित प्रभु के चरण पकड़ना और कहना कि आप दीनबन्धु हैं, शरणागत के दुःखों को हरने वाले हैं। और मैं मन, वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिनी हूँ। फिर स्वामी (आप)ने मुझे किस अपराध से त्याग दिया? एक दोष मैं अपना अवश्य मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गये। किन्तु हे नाथ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं। विरह अग्नि है, शरीर रुई है और स्वास पवन है, इस प्रकार अग्नि और पवन का संयोग होने से यह शरीर क्षण मात्र में जल सकता है, परन्तु नेत्र अपने हित के लिये (प्रभु का स्वरूप देखकर सुखी होने के लिये)जल (आँसू)बरसाते हैं, जिससे विरह की अग्नि से भी देह जलने नहीं पाती।' सीता जी की विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयाल! वह बिना कहे ही अच्छी है (कहने से आपको बड़ा क्लेश होगा)'।

टिप्पणी - ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। दोहा १४ के नीचे की चौपाई में (पृष्ठ ८४३)तुलसीदास ने राम के वियोग श्रृंगार का वर्णन किया है। उसी प्रकार ऊपर की चौपाई में सीता का विरह वर्णन है। विरह अग्नि है, शरीर रूई है और स्वास पवन है, इस प्रकार अग्नि और पवन का संयोग होने से यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है, परन्तु नेत्र अपने हित के लिये (प्रभु स्वरूप देखकर सुखी होने के लिये)आँसू बरसाते हैं, जिससे विरह की अग्नि से देह जलने नहीं पाती।

दो०– निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति ।।३१।।

भावार्थ– हे करूणानिधान ! उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है। अतः हे प्रभु ! तुरंत चलिये और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीतकर सीता जी को ले आइये।''

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना ।।
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही ।।
कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई ।।
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी ।।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं ।।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता ।।

भावार्थ– सीता जी का दुख सुनकर सुख के धाम प्रभु के कमल नेत्रों में जल भर आया। (और वे बोले–)'मन, वचन और शरीर से जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है, उसे क्या स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है?'' हनुमान जी ने कहा–''हे प्रभु! विपत्ति तो वहीं (तभी)है जब आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो! राक्षसों की बात ही कितनी है?आप शत्रु को जीतकर जानकी जी को ले आवेंगे।'' (भगवान कहने लगे–)'हे हनुमान सुन तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदले में उपकार)तो क्या करूँ! मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता। हे पुत्र ! सुन, मैंने मन में खूब विचार करके देख लिया है कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता।'' देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान जी को देख रहे हैं। नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यन्त पुलकित है।

दो — सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत ।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत ।।३२।।

भावार्थ— प्रभु के वचन सुनकर और उनका प्रसन्न मुख तथा पुलकित शरीर देखकर हनुमान जी हर्षित हो गये । और प्रेम में विकल होकर 'हे भगवान मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्री राम जी के चरणों में गिर पडे ।

बार बार प्रभु चहइ उठावा । प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ।।
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ।।
सावधान मन करि पुनि संकर । लागे कहन कथा अति सुंदर ।।
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा । कर गहि परम निकट बैठावा ।।
कहु कपि रावन पालित लंका । केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका ।।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला बचन बिगत अभिमाना ।।
साखामृग कै बड़ि मनुसाई । साखा तें साखा पर जाई ।।
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ।।
सो सब तब प्रताप रघुराई । नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ।।

भावार्थ— प्रभु उनको बार-बार उठना चाहते हैं । परन्तु प्रेम में डूबे हुए हनुमान जी को चरणों से उठना सुहाता नहीं । प्रभु का कर कमल हनुमान जी के सिर पर है । उस स्थिति का स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गये । फिर मन को सावधान करके शंकर जी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे—"हनुमान जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठा लिया ।" (राम ने पूछा)—"हे हनुमान ! बताओ तो, रावण के द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किले को तुमने किस तरह जलाया?" हनुमान जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना और वे अभिमान रहित वचन बोले—"बन्दर का बस यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर चला जाता है । मैंने जो समुद्र लाँघ कर सोने का नगर जलाया और राक्षस गण को मारकर अशोक वन को उजाड़ डाला , यह सब तो हे श्री रघुनाथ जी! आप ही का प्रताप है । हे नाथ ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई)कुछ भी नहीं है ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । इसमें तीन वक्ता हैं । पहले शिवजी कहते हैं कि "हनुमान जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठा लिया ।" फिर राम हनुमान से पूछते हैं–'रावण के द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किले को तुमने किस तरह जलाया?" हनुमान बड़ी विनम्रता से उत्तर देते हैं–"बन्दर का स्वभाव है कि वह एक डाल से कूद कर दूसरी डाल पर चला जाता है ।

इसी प्रकार कूद-कूद कर मैंने सारी लंका को जलाया। यह सब तो आपका प्रताप है। इसमें मेरी कुछ भी बड़ाई नहीं।"

दो०— ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तब प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल ।।३३।।

भावार्थ— हे प्रभु! जिस पर आप प्रसन्न हैं उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं है। आपके प्रभाव से रूई (जो स्वयं बहुत जल्दी जल जाने वाली वस्तु है) बड़वानल को निश्चय ही जला सकती है (अर्थात असम्भव भी सम्भव हो सकता है)।

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी ।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी ।।
उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना ।।
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा ।।
सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा ।।
तब रघुबति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा ।।
अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे ।।
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी ।।

भावार्थ— हे नाथ ! मुझे अत्यन्त सुख देने वाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिये।" हनुमान जी की अत्यन्त सरल वाणी सुनकर, हे भवानी ! तब प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने,'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)कहा। हे उमा ! जिसने श्री रामचन्द्र जी का स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात कभी नहीं सुहाती। यह स्वामी-सेवक का संवाद जिसके हृदय में आया, वही रघुनाथ जी के चरणों की भक्ति पा गया। प्रभु के वचन सुनकर बानर गण कहने लगे—"कृपालु आनन्द-कंद श्री रामचन्द्र जी की जय हो,जय हो, जय हो।" तब श्री रघुनाथ जी ने कपिराज सुग्रीव को बुलाया और कहा—"चलने की तैयारी करो। अब विलम्ब किस कारण किया जाय ? बानरों को तुरन्त आज्ञा दो।" भगवान की यह लीला (रावण वध का उपक्रम)देखकर, बहुत से फूल बरसा कर और हर्षित होकर देवता आकश से अपने-अपने लोक को चले।

दो०— कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ।।३४।।

भावार्थ– वानर राज सुग्रीव ने शीघ्र ही बानरों को बुलाया। सेनापतियों के समूह आ गए। बानर-भालुओं के झुंड अनेक रंगों के हैं और उनमें अतुलनीय बल है।

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥
राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥
जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥
नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

भावार्थ– वे प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाते हैं। महान् बलवान रीछ और बानर गरज रहे हैं। श्री राम चन्द्र जी ने बानरों की सारी सेना देखी। तब कमल नेत्रों से कृपा पूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली। राम कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ बानर मानो पंख वाले बड़े पर्वत हो गये। तब श्री राम चन्द्र जी ने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए। जिनकी कीर्ति सब मंगलों से ओत प्रोत है, उनके प्रस्थान के समय शकुन होना, यह नीति है (लीला की मर्यादा है)। प्रभु का प्रस्थान जानकी जी ने भी जान लिया। उनके बायें अंग फड़क-फड़क कर मानों कहे देते हैं कि श्री राम चन्द्र जी आ रहे हैं। जानकी जी को जो-जो शकुन हुए, वही-वही रावण के लिये अपशकुन हुए। सेना चली। उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य बानर व भालू अपार गर्जना कर रहे हैं। नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार चलने वाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षों को धारण किये, कोई आकाशमार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले आ रहे हैं। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। उनके चलने व गर्जने से दिशाओं के हाथी विचलित होकर चिंग्घाड़ रहे हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। इसमें राम का लंका-विजय के लिये प्रस्थान है। पारेन्द्रिय ज्ञान (Telepathy) द्वारा सीता जी को भी रामागमन की सूचना मिल गई। उनके बायें अंग फड़कने लगे और मंगल शगुन होने लगे। उधर रावण के लिए अपशकुन होने लगे। वानरों और रीछों की अपार सेना का सिंहनाद सुनकर, दिग्पाल हाथी भी चिंग्घाड़ने लगे। जब राम ने अपनी सेना-सहित लंका की ओर प्रयाण किया, तो समस्त लोक की वैसी ही दशा हुई, जैसी राम के धनुर्भंग के समय हुई थी। देखिए अगला छन्द, दोहा ३५ के ऊपर।

छं ०– चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे ।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे ।।
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं ।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं ।।१।।

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई ।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ट कठोर सो किमि सोहई ।।
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी ।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी ।।२।।

भावार्थ– दिशाओं के हाथी चिंग्घाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चंचल हो गये (कांपने लगे)और समुद्र खलबला उठे। गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब के मन में हर्ष हुआ कि अब हमारे दुःख टल गये। अनेकों करोड़ भयानक योद्धा कटकटा रहे हैं, और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं।'प्रबल प्रताप कौसलनाथ श्री रामचन्द्र जी की जय हो' ऐसा कहते हुए वे उनके गुण समूहों को गा रहे हैं। उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान) सर्पराज शेष जी भी सेना का बोझ नहीं सह सकते। वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते)हैं और पुनः पुनः कच्छप की कठोर पीठ को दातों से पकड़ते हैं। ऐसा करते हुए वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानों रघुबीर श्रीरामचन्द्र जी की प्रस्थान यात्रा को परम सुहावनी जानकर, उसकी अचल पवित्र कथा को सर्पराज शेष जी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हैं।

टिप्पणी– जैसा कि पिछ्ले पृष्ठ पर संकेत किया गया है, श्री राम ने जब लंका की ओर प्रस्थान किया, तो समस्त लोक में हलचल मच गई। इस हलचल का जो ऊपर के दो छंदों में वर्णन किया गया है, उसमें बहुत कुछ बालकाण्ड के दोहे २६१ के ऊपर के छंद की पुनरोक्ति है।* जब राम ने प्रत्यञ्चा चढ़ाने के लिए शिव-धनुष उठाया, तो लक्ष्मण ने सबको सावधान कर दिया :

"दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला ।।
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा ।।"

यद्यपि दिशाओं के हाथियों को, पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग, वाराह और कच्छप को लक्ष्मण ने 'सजग' कर दिया था, तब भी धनुर्भंग के घोर नाद से 'अहि, कोल, कूरुम' कलमला उठे, दिग्गज चिंग्घाड़ने लगे, और रवि के घोड़े अपने मार्ग से विचलति हो गए।

---

* देखिए भाग १, पृष्ठ ३०१।

दूसरे छंद में तुलसीदास जी ने एक विचित्र उत्प्रेक्षा की है। जब मनुष्य असह्य वेदना में होता है, तो दांतों के बीच होठ या जिह्वा दबा लेता है। इसी प्रकार शेष नाग ने अपने दाँत कमठ की पीठ में गड़ा दिये। मानों, रामचन्द्र जी की प्रस्थान-यात्रा की अमर कथा को शेषनाग जी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हों। काल सब कथानकों को समाप्त और लुप्त कर देता है। परन्तु कमठ की कठोर पीठ पर राम-कथा को अंकित करके, शेष-नाग ने उसे चिरस्थायी कर दिया।

दो०— एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ।।३५।।

भावार्थ— इस प्रकार कृपानिधान श्री राम जी समुद्र तट पर जा उतरे। अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ तहाँ फल खाने लगे।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका ।।
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा ।।
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई ।।
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी ।।
रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी ।।
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू ।।
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ।।
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई ।।
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई ।।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ।।

भावार्थ— वहाँ (लंका में) जब से हनुमान जी लंका को जला कर गये, तब से राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुल का बचाव नहीं है। जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगर में आने पर कौन भलाई है ? हम लोगों की बड़ी बुरी दशा होगी। दूतियों से नगरवासियों का वचन सुनकर मन्दोदरी बहुत व्याकुल हो गई। वह एकान्त में हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीति रस में पगी हुई वाणी बोली-"हे प्रियतम ! श्रीहरि से विरोध छोड़ दीजिये। मेरे कहने को अत्यन्त ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिये। जिसके दूत की करनी का विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी ! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मंत्री को बुला कर उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिये। सीता आपके कुल रूपी कमलों के बन को दुःख देने वाली जाड़े की रात्रि के

ामान आयी है । हे नाथ ! सुनिये, सीता के दिये (लौटाये) बिना शंभु और ब्रह्मा के किये
ी आपका भला नहीं हो सकता ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है । अपनी दूती के द्वारा मन्दोदरी को
ामाचार मिला कि राम सेना-सहित रामेश्वरम् पहुँच गए हैं । उनके और लंका के बीच
वल समुद्र रह गया है । यह समाचार पाकर मन्दोदरी बहुत चिन्तित हो गई । उसने रावण
ो समझाया कि जिसका दूत सारी लंका का संहार कर गया, वह स्वयं कितना वीर और
राक्रमी होगा । उससे वैर करना उचित नहीं । सीता सारे राक्षस कुल का संहार करने
ाई है । अभीष्ट इसी में है कि किसी मन्त्री को बुलाकर उसके साथ आदर सहित सीता को
सके स्वामी के पास वापस भेज दिया जाए ।

दो०– राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर मेक ।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक ।।३६।।

भावार्थ– श्री राम जी के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और राक्षसों के समूह मेंढक
समान । जब तक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते)तब तक हठ छोड़कर उपाय
र लीजिंये ।''

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी । बिहसा जगत बिदित अभिमानी ॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा । मंगल महुँ भय मन अति काचा ॥
जौं आवइ मर्कट कटकाई । जिअहिं बिचारे निसिचर खाई ॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा । तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥
अस कहि बिहसि ताहि उर लाई । चलेउ सभाँ ममता अधिकाई ॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता । भयउ कंत पर बिधि बिपरीता ॥
बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई । सिंधु पार सेना सब आई ॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सब हँसे मष्ट करि रहहू ॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं । नर बानर केहि लेखे माहीं ॥

भावार्थ– मुर्ख और जगत प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानों से उसकी वाणी सुनकर
ा हँसा (और बोला–) ''सचमुच ही स्त्रियों का स्वभाव बहुत डरपोक होता है । मंगल
भी भय करती हैं । तुम्हारा मन (हृदय)बहुत ही कच्चा (कमजोर) है । यदि वानरों
सेना आयेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे । लोक पाल भी
सके डर से काँपते हैं उसकी स्त्री डरती है । यह बड़ी हँसी की बात है ।'' रावण ने ऐसा
कर, हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और ममता (स्नेह)बढ़ाकर वह सभा में चला
ा । मन्दगोदरी हृदय में चिन्ता करने लगी कि पति पर विधाता प्रतिकूल हो गये हैं । ज्यों

ही वह सभा में जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पायी कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गयी है। तथा उसने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह कहिए (अब क्या करना चाहिये)। तब वे सब हँसे और बोले कि "चुप किये रहिये (इसमें सलाह की कौन सी बात है?)। आपने देवताओं और दानवों को जीत लिया। तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और बानर किस गिनती में हैं।"

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ ८६५-६६ पर मन्दोदरी ने रावण को जो मन्त्रणा दी, उसे उसने हँस कर टाल दिया और बोला कि स्त्रियाँ तो स्वभाव से डरपोक होती हैं। ऐसा कहकर, रावण राजसभा में चला गया।

दो०– सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ।।३७।।

भावार्थ मन्त्री, वैद्य और गुरू, ये तीनों यदि (अप्रसन्नता के)भय या (लाभ की) आशा से, (हित की बात न कहकर)प्रिय बोलते हैं (ठकुर सुहाती कहने लगते हैं) तो क्रमशः राज्य, शरीर और धर्म, इन तीन का शीघ्र नाश हो जाता है।

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ।।
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ।।
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन ।।
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता ।।
जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ।।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं ।।
चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई ।।
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ।।

भावार्थ– रावण के लिये भी वही सहायता (संजोग)आ बनी है। मन्त्री उसे सुना-सुनाकर (मुँह पर) स्तुति करते हैं। (इसी समय)अवसर जानकर विभीषण जी आये। उन्होंने बड़े भाई के चरणों में सिर नवाया। फिर वे सिर नवाकर आसन पर बैठे। और आज्ञा पाकर वे वचन बोले–"हे कृपालु ! जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे तात ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित की बात कहता हूँ। जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी ! परस्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की तरह त्याग दे (अर्थात् जैसे लोग चौथ के चन्द्रमा को नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्री का मुख ही न देखे) चौदह भुवनों का एक ही स्वामी हो, वह भी

जीवों से वैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है)। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता।

दो०– काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ।।३८।।

भावार्थ– हे नाथ ! काम, क्रोध, और लोभ ये सब नरक के रास्ते हैं। इन सब को छोड़कर श्री रामचन्द्र जी को भजिये, जिन्हें संत (सत्पुरुष)भजते हैं।

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला ।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता ।।
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी ।।
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ।।
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा ।।
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही ।।
सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ।।
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन ।।

भावार्थ– हे तात! राम मनुष्यों के ही राजा नहीं है। वे समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं। वे (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म एवं ज्ञान के भण्डार) भगवान हैं, वे निरामय (विकार रहित), अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं। उन कृपा के समुद्र भगवान ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं का हित करने के लिये ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई ! सुनिये, वे सेवकों को आनन्द देने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले और वेद तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं। वैर त्याग कर उन्हें मस्तक नवाइये। वे श्री रघुनाथ जी शरणागत का दुःख नाश करने वाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानकी जी दे दीजिये और बिना ही कारण स्नेह करने वाले श्री राम जी को भजिये। जिसे सम्पूर्ण विश्व से द्रोह करने का पाप लगा है, शरण जाने पर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिसका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है, वे ही प्रभु (भगवान)मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं। हे रावण ! हृदय में यह समझ लीजिये।

दो०– बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ।।३९(क)।।

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात ।।३९(ख)।।

भावार्थ– हे दसशीश ! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मद को त्यागकर, आप कोशलपति श्री रामचन्द्र जी का भजन कीजिये। मुनि पुलस्त्य जी ने अपने शिष्य के हाथ यह बात कहला भेजी है । हे तात ! सुन्दर अवसर पाकर मैंने तुरन्त ही यह बात प्रभु (आप)से कह दी ।''

माल्यवंत अति सचिव सयाना । तासु बचन सुनि अति सुख माना ॥
तात अनुज तब नीति बिभूषन । सो उर धरहु जो कहत बिभीषन ॥
रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ । दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी । कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी ॥
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥
तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥

भावार्थ–माल्यवंत नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान मन्त्री था । उसने उनके (विभीषण के) वचन सुनकर बहुत सुख माना (और कहा)''हे तात ! आपके छोटे भाई नीति-विभूषण (नीति को भूषण रूप में धारण करने वाले अर्थात् नीतिवान)विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदय में धारण कर लीजिये ।'' (रावण ने कहा–)'ये दोनों मूर्ख शत्रु की महिमा बखान रहे हैं । यहाँ कोई है ? इन्हें दूर करो न !' माल्यवन्त तो घर लौट गया और विभीषण जी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे–''हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि)और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सब के हृदय में रहती है । जहाँ सुबुद्धि है वहाँ नाना प्रकार की सम्पदाएं (सुख की स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि हैं वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है । आपके हृदय में उलटी बुद्धि आ बसी है । इसी से आप हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हैं । जो राक्षस कुल के लिये कालरात्रि (के समान)है, उन सीता पर आपकी बड़ी प्रीति है।

दो०– तात चरन गहि मागऊँ राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुं अहित न होइ तुम्हार ।।४०।।

भावार्थ– हे तात ! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार रखिये (मुझ बालक के आग्रह को स्नेह पूर्वक स्वीकार कीजिये)। श्री राम जी को सीता जी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो ।''

बुध पुरान श्रुति संमत बानी । कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥
जिअसि सदा सठ मोर जिआवा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जग माहीं । भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं ॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥
उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा । रामु भजें हित नाथ तुम्हारा ॥
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ । सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ ॥

भावार्थ– विभीषण ने पण्डितों, पुराणों और वेदों के द्वारा ही सम्मत (अनुमोदित) वाणी से नीति बखान कर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला - "रे दुष्ट ! अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है। अरे मूर्ख ! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे ही अन्न से पल रहा है)। पर हे मूढ़ ! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट ! बता ऐसा जगत में कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो। मेरे नगर में रहकर प्रेम करता है तपस्वियों पर। मूर्ख उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति बता।" ऐसा कहकर रावण ने उन्हें लात मारी। परन्तु छोटे भाई विभीषण ने (मारने पर भी) बार-बार उसके चरण ही पकड़े। शिवजी कहते हैं "हे उमा ! संत की यही बड़ाई (महिमा) है कि वे बुराई करने पर भी (बुराई करने वाले की) भलाई ही करते हैं।" (विभीषण जी ने कहा) "आप मेरे पिता के समान हैं। मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया, परन्तु हे नाथ ! आपका भला श्री रामजी को भजने में ही है।" (इतना कहकर) विभीषण अपने मन्त्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में गये और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे–

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है। मन्दोदरी की भाँति विभीषण ने भी रावण को मन्त्रणा दी कि सीता को लौटा दे और राम की शरण में जाये। परन्तु रावण तो अपने प्रारब्ध कर्म के वश में था (देखिए भाग १, पृष्ठ २१६-१७)। उसे तो राम के हाथों मरना ही था। जब विभीषण ने उसे नीति समझाई, तो रावण ने उल्टा उसे लात से मारा। मारने पर भी विभीषण ने उसके चरण ही पकड़े और कहा "आप मेरे पिता के समान हैं। मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया। परन्तु आपका भला श्री राम को भजने ही में है।"

दो०– रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि ।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥४१॥

भावार्थ–"श्री रामजी सत्यसंकल्प एवं (सर्वसमर्थ)प्रभु हैं और (हे रावण) तुम्हारी सभा काल के वश है। अतः मैं अब श्री रघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना।"

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥

भावार्थ– ऐसा कहकर विभीषण जी ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गये (उनकी मृत्यु निश्चित हो गयी)। (शिवजी कहते हैं)–"हे भवानी! साधु का अपमान तुरन्त ही सम्पूर्ण कल्याण की हानि (नाश)कर देता है। रावण ने जिस क्षण विभीषण को त्यागा उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य)से हीन हो गया।" विभीषण जी हर्षित होकर मन में अनेकों मनोरथ करते हुए श्री रघुनाथ जी के पास चले। (वे सोचते जाते हैं)"मैं जाकर भगवान के कोमल और लाल वर्ण के सुन्दर चरण कमलों के दर्शन करूँगा। जो सेवकों को सुख देने वाले हैं, जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषि पत्नी अहिल्या तर गयी और जो दण्डक बन को पवित्र करने वाले हैं। जिन चरणों को जानकी जी ने हृदय में धारण कर रखा है, जो कपटमृग के साथ पृथ्वी पर (उसे पकड़ने को) दौड़े थे, जो चरण कमल शिवजी के हृदयरूपी सरोवर में विराजते हैं मेरे अहोभाग्य हैं कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा।

दो०– जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥४२॥

भावार्थ– जिन चरणों की पादुकाओं में भरत जी ने अपना मन लगा रक्खा है। आज मैं उन्हीं चरणों को अभी जाकर इन नेत्रों से देखूँगा।"

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा । कहइ कपीस सुनहु नरनाहा ॥

जानि न जाइ निसाचर माया । कामरूप केहि कारन आया ॥

भेद हमार लेन सठ आवा । राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी । मम पन सरनागत भयहारी ॥

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना । सरनागत बच्छल भगवाना ॥

भावार्थ– इस प्रकार प्रेम सहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्र के इस पार (जिधर श्री रामचन्द्र जी की सेना थी)आ गये । बानरों ने विभीषण को आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रु का कोई ख़ास दूत है । उन्हें (पहरे पर)ठहराकर, वे सुग्रीव के पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाये । सुग्रीव ने (श्री राम जी के पास जाकर)कहा-"हे रघुनाथ जी सुनिये, रावण का भाई (आप से)मिलने आया है ।" प्रभु श्री राम जी ने कहा--"हे मित्र ! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है) ?" बानरराज सुग्रीव ने कहा --"हे महाराज! सुनिये, राक्षसों की माया जानी नहीं जाती । यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला (छ्ली) न जाने किस कारण आया है । (जान पड़ता है)यह हमारा कोई भेद लेने आया है । इसलिये मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध कर रक्खा जाय ।" श्री राम जी ने कहा–"हे मित्र। तुमने नीति तो अच्छी विचारी परन्तु मेरा प्रण तो है शरणागत के भय को हर लेना ।" प्रभु के वचन सुनकर हनुमान जी हर्षित हुए (और मन ही मन कहने लगे कि)भगवान कैसे शरणागत वत्सल (शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करने वाले)हैं ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । हनुमान न केवल बल अपितु बुद्धि के प्रतीक हैं । विभीषण जब राम की शरण में आए, तब वानरों ने उन्हें बाहर ही रोक लिया और सुग्रीव को अन्दर जाकर खबर दी । सुग्रीव ने राम को मन्त्रणा दी कि "राक्षसों की माया जानी नहीं जाती । यह इच्छानुसार रूप बदलने वाले हैं । यह रावण का गुप्तचर हमारा कोई भेद लेने आया है । इसे बाँध कर रखना चाहिये ।" राम ने उत्तर दिया– "मेरा प्रण शरणागत के भय को दूर करना है ।" राम का उत्तर सुन कर हनुमान प्रसन्न हुए । हनुमान तो विभीषण को पहले ही पहचान गए थे । उनसे उनकी लंका में भेट हो चुकी थी। वह जानते थे कि विभीषण हरिभक्त है । जब राम ने उनको अभयदान दिया तो हनुमान के मुख से अनायास साधुवाद निकल गया :'भगवान शरण में आये हुए पर पिता की भाँति प्रेम करने वाले हैं ।"

दो०– सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ।।४३।।

भावार्थ– (श्री राम जी फिर बोले--) "जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र)हैं, पापमय हैं, उन्हें देखने में भी

हानि है (पाप लगता है)।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई । मोरें सनमुख आव कि सोई ॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा । तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥
जग महुँ सखा निसाचर जेते । लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ॥
जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहउँ ताहि प्रान की नाई ॥

भावार्थ– जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता । जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्योंही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं । पापी का यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता । यदि वह (रावण का भाई)निश्चय ही दुष्ट हृदय का होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था । जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है । मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसको रावण ने भेद लेने को भेजा है, तब भी हे सुग्रीव ! अपने को कुछ भी भय या हानि नहीं है । क्यों कि हे सखे ! जगत में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं । और यदि यह भयभीत होकर मेरे शरण मे आया है तो मैं उसे प्राणों की तरह रक्खूँगा ।"

दो०– उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत ।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत ।।४४।।

भावार्थ– कृपा के धाम श्रीराम जी ने हंस कर कहा–" दोनों ही स्थितियों में उसे ले आओ ।" तब अंगद और हनुमान सहित सुग्रीव जी "कृपालु श्री राम की जय हो" कहते हुए चले ।

सादर तेहि आगें करि बानर । चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता । नयनानंद दान के दाता ॥
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी । रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन । स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥
सिंघ कंध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन मन मोहा ॥

नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता । निसिचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥

भावार्थ– विभीषण को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहीं चले जहाँ करुणा की खान श्री रघुनाथ जी थे । नेत्रों को आनन्द का दान देने वाले (अत्यन्त सुखद) दोनों भाइयों को विभीषण जी ने दूर ही से देखा । फिर शोभा के धाम श्री राम जी को देख कर वे पलक (मारना) रोकर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एक टक देखते रहे । भगवान की विशाल भुजाएं हैं, लाल कमल के समान नेत्र हैं, और शरणागत के भय का नाश करने वाला सांवला शरीर है । सिंह के से कंधे हैं, विशाल वक्षस्थल (चौड़ी छाती) अत्यन्त शोभा दे रहा है । असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला मुख है । भगवान के स्वरूप को देखकर विभीषण जी के नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया । फिर मन में धीरज धर कर उन्होंने कोमल वचन कहे–" नाथ ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ । हे देवताओं के रक्षक ! मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है । मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय है, जैसे उल्लू को अन्धकार पर सहज स्नेह होता है ।

दो०– श्रवन सुजसु सुनु आयउँ प्रभु भजंन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ।।४५।।

भावार्थ– मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु (जन्म-मरण के) भय का नाश करने वाले हैं । हे दुखियों के दुःख दूर करने वाले श्री रघुवीर ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए ।"

अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत भयहारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
खल मंडलीं बसहु दिनु राती । सखा धरम निबहइ केहि भाँती ॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती । अति नय निपुन न भाव अनीती ॥
बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ॥
अब पद देखि कुसल रघुराया । जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया ॥

भावार्थ– प्रभु ने उसे ऐसा कहकर दण्डवत करते देखा तो वे अत्यन्त हर्षित होकर तुरंत उठे । विभीषण जी के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को बहुत ही भाये । उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उनको हृदय से लगा लिया । छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित

गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर, श्री रामजी भक्तों के भय को हरने वाले वचन बोले–'हे लंकेश ! परिवार सहित अपनी कुशल कहो । तुम्हारा निवास बुरी जगह पर है । दिन रात दुष्टों की मण्डली में बसते हो । (ऐसी दशा में) हे सखे ! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है ? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ । तुम अत्यन्त नीति-निपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती । हे तात ! नरक में रहना वरन् अच्छा है, परन्तु विधाता दुष्ट का संग (कभी) न दे ।" (विभीषण जी ने कहा–) " हे रघुनाथ जी ! आपके चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है ।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई में एक बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित लोकोक्ति तुलसीदास जी ने श्री राम के मुख से कहलाई है :

'बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ विधाता ।।'

रामचन्द्र जी को आश्चर्य हुआ कि सात्विक वृत्ति का, धर्मपरायण और नीति निपुण विभीषण राक्षसों के बीच कैसे रहता है । अपने आश्चर्य को राम ने एक लोकोक्ति द्वारा प्रकट किया–" भगवान भले ही नरक में वास देदे, परन्तु दुष्ट का साथ कभी भी न दे ।"

दो०– तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ।।४६।।

भावार्थ– तब तक जीव का कुशल नहीं और न स्वप्न में भी उसके मन को शान्ति है, जब तक वह शोक के घर काम (विषय-वासना) को छोडकर श्री राम जी को नहीं भजता।

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ।।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरें चाप सायक कटि भाथा ।।
ममता तरुन तमी अँधिआरी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ।।
तब लगि बसति जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ।।
अब मैं कुसल मिटे भय भारे । देखि राम पद कमल तुम्हारे ।।
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला । ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला ।।
मैं निसचर अति अधम सुभाऊ । सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ ।।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा । तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा ।।

भावार्थ– लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं जब तक कि धनुष-बाण कमर में तरकस धारण किये हुए श्री रघुनाथ जी हृदय में नहीं बसते । ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है। वह (ममता रूपी रात्रि) तभी तक जीव के मन में बसती है, जब तक प्रभु (आप) का प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता है । मेरे भारी भय मिट गये । हे कृपालु ! आप जिस पर

अनुकूल रहते हैं, उसे तीनों प्रकार के भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते। मैं अत्यन्त नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियों के ध्यान में भी नहीं आता, उन प्रभु ने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया।

दो०— अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज ।।४७।।

भावार्थ— हे कृपा और सुख के पुंज श्री राम जी ! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के द्वारा सेवित युगल चरण कमलों को अपने नेत्रों से देखा।"

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।।
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही ।।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना ।।
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ।।
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं ।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ।।
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें ।।

भावार्थ— (श्री राम जी ने कहा—) "हे सखा ! सुनों मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ जिसे कागभुशुण्डि, शिवजी और पार्वती भी जानते हैं। कोई मनुष्य (सम्पूर्ण) जड़ चेतन जगत का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण आ जाय और मद, मोह तथा नाना प्रकार के छल-कपट त्याग दे, तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ। माता-पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार इन सबके ममत्वरूपी तागों को बटोरकर और उन सबको एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है (सारे सांसारिक सम्बन्धों का केन्द्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है, ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है। तुम सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं किसी और के निहोरे से (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता।

दो०— सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ।।४८।।

भावार्थ– जो सगुण (साकार) भगवान के उपासक हैं, दूसरे के हित में लगे रहते हैं,नीति और नियमों में दृढ़ हैं, और जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं।

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अबुंज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

भावार्थ– हे लंकापति ! सुनो, तुम्हारे अन्दर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय हो।" श्री रामजी के वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे– "कृपा के समूह श्री रामजी की जय हो।" प्रभु की वाणी सुनते हैं और उसे कानों के लिये अमृत जानकर विभीषण जी अघाते नहीं हैं। वे बार-बार श्री रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं। अपार प्रेम है, हृदय में समाता नहीं है। (विभीषण जी ने कहा–) "हे देव ! हे चराचर जगत के स्वामी! हे शरणागत के रक्षक ! हे सब के हृदय के भीतर की जानने वाले ! सुनिये, मेरे हृदय में पहले कुछ वासना थी। वह प्रभु के चरणों की प्रीति रूपी नदी में बह गयी। अब तो हे कृपालु ! शिवजी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये।" 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)कहकर रणधीर प्रभु श्री राम जी ने तुरन्त ही समुद्र का जल माँगा। (और कहा)–"हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है। पर जगत में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता)" ऐसा कहकर श्री राम जी ने उनको राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है। विभीषण ने केवल 'पावन भक्ति' का वरदान माँगा था। और यह वरदान प्रभु ने 'एवमस्तु' कहकर तुरन्त दे भी दिया था। फिर भी श्री राम ने पहली पंक्ति में 'लंकेश' कहकर विभीषण को सम्बोधित किया था। अपने मुख से निकले हुए इस शब्द को भगवान सत्यापित करना चाहते थे। राज्याभिषेक तो समस्त तीर्थों और पावन नदियों के जल को लाकर किया जाता है। ऐसे जल के अभाव में समुद्र के

खारी पानी से ही राम ने विभीषण का राजतिलक कर दिया। तिलक करते समय राम कहते हैं : 'जदपि सखा तव इच्छा नाहीं'– यद्यपि तुमने केवल मेरी विमल भक्ति का ही वरदान माँगा है, मैं अपनी ओर से तुम्हें राजतिलक भी दे रहा हूँ। यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। लंका का राजसिंहासन रिक्त नहीं हुआ था, रावण अभी जीवित था। ऐसी परिस्थिति में औपचारिक रूप से विभीषण का राज्याभिषेक हो ही नहीं सकता था। राम ने तिलक करके विभीषण को लंका का 'युवराज' घोषित किया, ताकि उनकी सेना उसे 'शरणार्थी' न समझे, उचित सम्मान और सेनानायक समझे।

दो०– रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड ।।४९(क)।।
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।४९(ख)।।

भावार्थ– श्री राम जी ने रावण के क्रोध रूपी अग्नि में, जो अपनी (विभीषण को) स्वास (वचन) रूपी पवन से प्रचण्ड हो रही थी, जलते हुए विभीषण को बचा दिया और उसे अखण्ड राज्य दिया। शिवजी ने जो रावण को दशों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही सम्पत्ति श्री रघुनाथ जी ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी।

टिप्पणी– दोहा ४९ (ख) हनुमन्नाटक के निम्न श्लोक का अनुवाद है :

'या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्च्छेदेऽपि शंकरात्।
दर्शानाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणो ।।'

अनुवाद करने में, गोस्वामी जी ने उक्ति को अधिक व्यञ्जक बनाकर और चमका दिया है। 'दस माथ दिएँ' के जोड़ में 'दरसन ही तें' न रखने से, याचक के बिना प्रयास प्राप्त करने का जोर तो निकल गया, पर 'सकुचि' पद लाने से दाता के असीम औदार्य की भावना से उक्ति परिपूर्ण हो गई है। 'सकुचि' शब्द की व्यञ्जना यह है कि इतनी बड़ी सम्पत्ति भी देते समय, राम को बहुत कम जान पड़ी।

अन्तर्कथा– रावण शिव जी का उपासक था। एक बार हवन करते समय, रावण ने अपने दसों सिरों की ही बलि दे दी। रावण की इस बलि से प्रसन्न होकर शिव जी ने उसे लंका का राजा बनने की शक्ति दी। वह कुबेर के सेवकों (यक्षों) को लंका से भगा कर, वहाँ का स्वामी बन गया। वही सम्पत्ति श्री राम ने विभीषण को बिना मांगे, बहुत सकुचाते हुए दी।

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना । ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥
निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा ॥
पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी । सर्बरूप सब रहित उदासी ॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक । कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥
सुनु कपीस लंकापति बीरा । केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ।
संकुल मकर उरग झष जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥
कह लंकेस सुनहु रघुनायक । कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई । बिनय करिअ सागर सन जाई ॥

भावार्थ– ऐसे परम कृपालु प्रभु को छोड़ कर, जो मनुष्य दूसरे को भजते हैं, वे बिना सींग-पूँछ के पशु हैं । अपना सेवक जानकर विभीषण को श्री राम जी ने अपना लिया । प्रभु का स्वभाव वानरकुल के मन को (बहुत)भाया । फिर सब कुछ जानने वाले, सबके हृदय में बसने वाले, सर्वरूप (सब रूपों में प्रकट) , सब से रहित, उदासीन, कारण से (भक्तों पर कृपा करने के लिये)मनुष्य बने हुए तथा राक्षसों के कुल का नाश करने वाले, श्री रामजी नीति की रक्षा करने वाले वचन बोले–" हे वीर बानरराज सुग्रीव और लंकापति विभीषण ! सुनो, इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जाय । अनेक जाति के मगर, साँप और मछलियों से भरा हुआ यह अत्यन्त अथाह समुद्र पार करने में सब प्रकार से कठिन है ।" विभीषण जी ने कहा–" हे रघुनाथ जी ! यद्यपि आपका बाण ही करोणों समुद्रों को सोखने वाला है (सोख सकता है) तथापि नीति ऐसी कही गयी है (उचित यह होगा)कि (पहले)जाकर समुद्र से प्रार्थना की जाय ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई की पहली पंक्ति संस्कृत की निम्न सूक्ति का भावानुवाद है:

साहित्य, संगीत, कला विहीनः ।
साक्षात् पशु, पुच्छ विषाण हीनः ।।

तुलसीदास ने जो संस्कृत उक्तियाँ ली हैं, उन्हें भाषा पर अपने अद्वितीय अधिकार के बल से एकदम मूल हिन्दी की रचना के रूप में कर डाला है । संस्कृत में तो उस मनुष्य को जिसे साहित्य, संगीत और ललित कला--इन तीनों में से कुछ भी नहीं आता--बिना दुम और सींग का पशु कहा है । तुलसीदास जी ऐसे 'पशु' की संज्ञा उस मनुष्य को देते हैं जो भक्तवत्सल राम को छोड़कर किसी अन्य को भजता है ।

दो०— प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि ।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि ।।५०।।

भावार्थ— हे प्रभु ! समुद्र आपके के कुल में बड़े (पूर्वज)हैं । वे विचार कर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और बानरों की सारी सेना बिना ही परिश्रम के समुद्र के पार उतर जायेगी ।"

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई । करिअ दैव जौं होइ सहाई ।।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा । राम बचन सुनि अति दुख पावा ।।
नाथ दैव कर कवन भरोसा । सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ।।
कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।।
सुनत बिहसि बोले रघुबीरा । ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा ।।
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई । सिंधु समीप गए रघुराई ।।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई । बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ।।
जबहिं बिभीषनु प्रभु पहिं आए । पाछें रावन दूत पठाए ।।

भावार्थ— (श्री राम जी ने कहा—"हे सखा ! तुमने अच्छा उपाय बताया है । यही किया जाय । यदि दैव सहायक हों ।" यह सलाह लक्ष्मण जी के मन को अच्छी नहीं लगी । श्री राम जी के वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया । (लक्ष्मण जी ने कहा—) 'हे नाथ ! दैव का कौन भरोसा । मन में क्रोध कीजिये (ले आइये)और समुद्र को सुखा डालिये। यह दैव तो कायर के मन को एक आधार (तसल्ली देने का उपाय) है । आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं ।' यह सुनकर श्री रघुवीर हँसकर बोले -'ऐसा ही करेंगे । मन में धीरज रक्खो ।' ऐसा कहकर, छोटे भाई को समझाकर, श्री रघुनाथ जी समुद्र के समीप गये । उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया । फिर कुश बिछाकर बैठ गये । इधर ज्यों ही विभीषण जी प्रभु के पास आये, त्यों ही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे ।

टिप्पणी— राम ने विभीषण से पूछा कि अगाध समुद्र को उनकी सेना किस तरह पार कर सकती है । विभीषण ने उनको परामर्श दिया कि यद्यपि 'कोटि सिंधु सोषक तव सायक,' तथापि 'बिनय करिअ सागर सन जाई' । अर्थात, यद्यपि आप अपने बाण से सारे समुद्र को सुखा सकते हैं, तथापि यह उचित होगा कि आप समुद्र से विनय करें । समुद्र आपके पूर्वजों में से हैं और आपको कोई उपाय अवश्य बतला देगा । लक्ष्मण को विभीषण की यह मन्त्रणा नहीं भायी। उन्होंने कहा कि दैव पर कायर और आलसी लोग भरोसा करते हैं। जो कुछ लक्ष्मण ने कहा वह एक संस्कृत सूक्ति का भावार्थ है । सूक्ति इस प्रकार है :

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी ।
दैवम् देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।।
दैवम् निहत्य कुरु पौरुषमात्म शक्त्या ।
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ।।'

अर्थात्, वह उत्तम पुरुष जो उद्योग करते हैं,उन्हीं को लक्ष्मी प्राप्त होती है । कायर नित्य कहते रहते हैं कि हमको सबकुछ दैव देगा । दैव को मार करके मनुष्य को अपनी शक्ति अनुसार पौरुष करना चाहिये । यत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध नहीं होता तो इसमें किसका दोष है । इस सूक्ति में कर्म और भाग्य दोनों का समिश्रण है । गीता में कहा गया है–

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः ।'

अर्थात्, मनुष्य को केवल अपने कर्म पर अधिकार है नाकि उसके फल पर । मनुष्य को निरन्तर कार्य करता रहना चाहिये उसका क्या परिणाम होगा यह उसे अपने भाग्य पर छोड़ देना चाहिये । हमारा आज का कर्म हमारे भविष्य का भाग्य बन जाता है । बालकाण्ड में तुलसीदास जी ने शिव के मुख से कहलाया है कि

'होइहि सोई जो राम रचि राखा ।'*

तुलसीदास जी को आशंका हुई कि कहीं जनता में अकर्मण्यता न फैल जाये, इसलिये ऊपर की चौपाई में तुलसीदास जी लक्ष्मण के मुख से कहलाते हैं–

'कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।।'

इस प्रकार तुलसीदास जी भाग्य और कर्म के बीच समन्वय स्थापित करना चाहते हैं। यहाँ एक बात और ध्यान में देने योग्य है । सीता के स्वयंवर में राम और लक्ष्मण के स्वभाव में जो पार्थक्य दिखाई पड़ता है, उसका निर्वाह हम अन्त तक पाते हैं । राम का स्वभाव धीर और गम्भीर था और लक्ष्मण का उग्र और चपल :

१. जनक के परितापवचन–'बीर बिहीन मही मैं जानी'–सुनकर लक्ष्मण तमतमा उठे और बोले :

'रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई । तेहिं समाज अस कहइ न कोई ।।'

राम ने इशारे से लक्ष्मण को मना कर दिया और प्रेम से अपने पास बुलाकर बिठा लिया–

---

* देखिए पृष्ठ ९२-९३ ।

'सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे।।'

(पृष्ठ २९४)

२. जब परशुराम ने बड़े गुस्से में आकर जनक से पूछा—

'कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा,'

तो लक्ष्मण ने बड़ी चपलता से उत्तर दिया—

'का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें।।
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू।।'

फिर परशुराम का मजाक उड़ाते हुए कहा—

टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने।।
जौं अति प्रिय तौं करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई।।'

राम को फिर बीच-बचाव करना पड़ा—

'सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम।।'

(पृष्ठ ३१७)

३. जब सुमन्त्र ने राम, लक्ष्मण और सीता से अयोध्या लौट चलने का प्रस्ताव रक्खा, तब लक्ष्मण ने दशरथ जी के स्त्रैण होने पर कटाक्ष किया। राम ने फिर लक्ष्मण को रोका और सुमन्त्र को शपथ दिलाई कि लक्ष्मण की बात वह दशरथ से जाकर न कहें—

'पुनि कछु लषन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी।।
सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन संदेसु कहिअ जनि जाई।।'

(पृष्ठ ४८१)

४. भरत को सेना सहित चित्रकूट की ओर आते देखकर, लक्ष्मण बड़े आवेश में बोले—

'आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ।।
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई।।'

राम ने लक्ष्मण को समझाया कि भरत के प्रति उनकी आशंका निर्मूल है—

'भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ।।'

(पृष्ठ ६०८)

५. जब राम समुद्र से रास्ता देने के लिये विनय करने बैठे, तो लक्ष्मण को यह मत नहीं भाया । उन्होंने राम से स्पष्ट कह दिया कि कायर दैव पर भरोसा करते हैं । राम ने लक्ष्मण की बात हसकर टाल दी—

'सुनत बिहसि बोले रघुबीरा । ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा ।।'

(पृष्ठ ८८०)

जब राम ने समुद्र को सोखने के लिए लक्ष्मण से धनुष और वाण माँगा, तो लक्ष्मण को यह मत पसन्द आया—

'अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लछिमन के मन भावा ।।'

(पृष्ठ ८९१)

दो०— सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह ।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह ।।५१।।

भावार्थ— कपट से बानर का शरीर धारण कर उन्होंने सब लीलाऐं देखीं । वे अपने हृदय में प्रभु के गुणों की और शरणागत पर उनके स्नेह की सराहना करने लगे ।

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ । अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ ।।
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने । सकल बाँधि कपीस पहिं आने ।।
कह सुग्रीव सुनहु सब बानर । अंग भंग करि पठवहु निसिचर ।।
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए । बाँधि कटक चहु पास फिराए ।।
बहु प्रकार मारन कपि लागे । दीन पुकारत तदपि न त्यागे ।।
जो हमार हर नासा काना । तेहि कोसलाधीस कै आना ।।
सुनि लछिमन सब निकट बोलाए । दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए ।।
रावन कर दीजहु यह पाती । लछिमन बचन बाचु कुलघाती ।।

भावार्थ— फिर वे प्रकटरूप में भी अत्यन्त प्रेम के साथ श्री राम जी के स्वभाव की बड़ाई करने लगे । उन्हें दुराव (कपट वेष)भूल गया । तब बानरों ने जाना कि ये शत्रु के दूत हैं और वे उन सबको बांधकर सुग्रीव के पास ले आये । सुग्रीव ने कहा—'सब बानरों !

सुनो, राक्षसों के अंग-भंग करके भेज दो ।' सुग्रीव के वचन सुनकर बानर दौड़े । दूतों को बाँधकर उन्होंने सेना के चारों ओर घुमाया । बानर उन्हें बहुत तरीके से मारने लगे । वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा । (तब दूतों ने पुकारकर कहा–) 'जो हमारे नाक कान काटेगा, उसे कौशलाधीश रामचन्द्रजी की सौगन्ध है ।' यह सुनकर लक्ष्मण जी ने सब को निकट बुलाया । उन्हें बड़ी दया लगी । इससे हँसकर उन्होंने राक्षसों को तुरन्त ही छुड़ा दिया । (और उनसे कहा–) ''रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना और कहना 'हे कुलघातक ! लक्ष्मण के शब्दों (संदेश) को बाँचो ।'

दो०– कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार ।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार ।।५२।।

भावार्थ– फिर उस मूर्ख से जबानी मेरा यह उदार (कृपा से भरा हुआ) सन्देश कहना कि सीता जी को देकर उनसे (श्री राम जी से) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया (समझो)।''

तुरत नाइ लछिमन पद माथा । चले दूत बरनत गुन गाथा ।।
कहत राम जसु लंकाँ आए । रावन चरन सीस तिन्ह नाए ।।
बिहसि दसानन पूँछी बाता । कहसि न सुक आपनि कुसलाता ।।
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी । जाहि मृत्यु आई अति नेरी ।।
करत राज लंका सठ त्यागी । होइहि जव कर कीट अभागी ।।
पुनि कहु भालु कीस कटकाई । कठिन काल प्रेरित चलि आई ।।
जिन्ह के जीवन कर रखवारा । भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा ।।
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी । जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी ।।

भावार्थ– लक्ष्मण जी के चरणों में मस्तक नवाकर, श्री राम जी के गुणों की कथा वर्णन करते हुए, दूत तुरन्त ही चल दिये । श्री राम जी का यश कहते हुए वे लंका में आये और उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाया । दसमुख रावण ने हँसकर बात पूछी ''अरे शुक अपनी कुशल क्यों नहीं कहता ? फिर उस विभीषण का समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यन्त निकट आ गयी है । मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका को त्याग दिया । अभागा अब कीड़ा घुन बनेगा (जौ के साथ जैसे घुन भी पिस जाता है वैसे ही नर-वानरों के साथ वह भी मारा जायेगा) । फिर भालू और बानरों की सेना का हाल कह, जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आयी है । और जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्तवाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात् उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गये होते)। फिर उन तपस्वियों की बात बता, जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है।

दो०— की भइ भेंट कि फिर गए श्रवन सुजसु सुनि मोर ।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ।।५३।।

भावार्थ— उनसे तेरी भेंट हुई, या वे मेरा कानों से सुयश सुनकर ही लौट गये । शत्रु सेना का तेज और बल कहता नहीं ? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौचक्का-सा)हो रहा है।"

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें । मानहु कहा क्रोध तजि तैसें ।।
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहिं राम तिलक तेहि सारा ।।
रावन दूत हमहि सुनि काना । कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना ।।
श्रवन नासिका काटैं लागे । राम सपथ दीन्हें हम त्यागे ।।
पूँछिहु नाथ राम कटकाई । बदन कोटि सत बरनि न जाई ।।
नाना बरन भालु कपि धारी । बिकटानन बिसाल भयकारी ।।
जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा । सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा ।।
अमित नाम भट कठिन कराला । अमित नाग बल बिपुल बिसाला ।।

भावार्थ— दूत ने कहा—"हे नाथ आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये (मेरी बात पर विश्वास कीजिये)। जब आपका छोटा भाई श्री राम जी से जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्री राम जी ने उनको राजतिलक कर दिया । हम रावण के दूत हैं, यह कानों से सुनकर वानरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिये, यहाँ तक हमारे नाक-कान काटने लगे । श्री राम जी की शपथ दिलाने पर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा। हे नाथ ! आपने श्री रामजी की सेना पूछी सो वह तो सौ करोड़ मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती । अनेकों रंगों के भालू और बानरों की सेना है, जो भयंकर मुख वाले, विशाल शरीर वाले और भयानक हैं । जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र अक्षय कुमार को मारा, उसका बल तो बानरों में थोड़ा है । असंख्य नामों वाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं । उनमें असंख्य हाथियों का बल है । और बड़े ही विशाल हैं ।

दो०— द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि ।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि ।।५४।।

भावार्थ— द्विविद, मयंद, नील, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख,केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान, वे सभी बल की राशि हैं ।

ए कपि सब सुग्रीव समाना । इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ।।
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं । तृन समान त्रैलोकहि गनहीं ।।
अस मैं सुना श्रवन दसकंधर । पदुम अठारह जूथप बंदर ।।

नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं ॥
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा । आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला । पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला ॥
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा । ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा ॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका । मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका ॥

भावार्थ— ये सब वानर बल में सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे (एक दो नहीं) करोड़ों हैं। उन बहुत-सों को गिन ही कौन सकता है ? श्री रामजी की कृपा से उनमें अतुलनीय बल है । वे तीनों लोकों को तृण के समान (तुच्छ)समझते हैं । हे दशग्रीव ! मैंने कानों से सुना है । अठारह पद्म तो अकेले बानरों के सेनापति हैं । हे नाथ ! उस सेना में ऐसा कोई बानर नहीं है जो आपको रण में न जीत सकें । सब के सब अत्यन्त क्रोध से हाथ मीजते हैं, पर श्री रघुनाथ जी उन्हें आज्ञा नहीं देते । हम मछलियों और सर्पों सहित समुद्र को सोख लेंगे । नहीं तो बड़े-बड़े पर्वतों से भर कर उसे पूर (पाट)देंगे । और रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे ।' सब बानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं । सब सहज ही निडर हैं । इस प्रकार गरजते और डपटते हैं, मानों लंका को निगल ही जाना चाहते हों ।

दो०— सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम ।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम ॥५५॥

भावार्थ— सब बानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं, फिर उनके सिर पर प्रभु (सर्वेश्वर) श्री रामजी हैं । हे रावण ! वे संग्राम में करोणों कालों को जीत सकते हैं ।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई । सेष सहस सत सकहिं न गाई ॥
सक सर एक सोषि सत सागर । तब भ्रातहि पूँछेउ नय नागर ॥
तासु बचन सुनि सागर पाहीं । मागत पंथ कृपा मन माहीं ॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा । जौं असि मति सहाय कृत कीसा ॥
सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई । सागर सन ठानी मचलाई ॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई । रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई ॥
सचिव सभीत बिभीषन जाकें । बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें ॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी । समय बिचारि पत्रिका काढ़ी ॥
रामानुज दीन्ही यह पाती । नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती ॥
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन । सचिव बोलि सठ लाग बचावन ॥

भावार्थ— श्री रामचन्द्रजी के तेज (सामर्थ्य)बल की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते । वे एक ही बाण से सैकड़ों समुद्रों को सोख सकते हैं । परन्तु नीति निपुण श्री राम

जी ने (नीति की रक्षा के लिये)आपके भाई से उपाय पूछा। उनके (आपके भाई के)वचन सुनकर वे (श्री राम जी)समुद्र से राह माँग रहे हैं। उनके मन में कृपा भरी है (इसलिये वे उसे सोखते नहीं)।'' दूत के ये वचन सुनकर रावण खूब हंसा (और बोला–) ''जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरों को सहायक बनाया है। स्वाभाविक ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण करके उन्होंने समुद्र से मचलना (बाल हठ)ठाना है। रे मूर्ख ! झूठी बड़ाई क्या करता है ? बस मैंने शत्रु (राम)के बल और बुद्धि की थाह पा ली। जिसके विभीषण जैसा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत में विजय और विभूति (ऐश्वर्य)कहाँ ?'' दुष्ट रावण के वचन सुनकर दूत को क्रोध बढ़ आया। उसने मौका समझकर पत्रिका निकाली। (और कहा)'श्री राम जी के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्रिका दी है। हे नाथ ! इसे बँचवाकर छाती ठण्डी कीजिये।' रावण ने हँसकर उसे बायें हाथ से लिया और मन्त्री को बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। दोहा १७३, पृष्ठ २१४ में स्पष्ट बता दिया गया है कि रावण पहले जन्म का शापग्रस्त राजा प्रतापभानु था। राम के हाथों ही उसकी राक्षसयोनि से मुक्ति हो सकती थी। इसी लिए वह राम को बार बार ललकार रहा है। पत्नी मन्दोदरी, भाई विभीषण, दूत शुक की मन्त्रणा की अवहेलना कर रहा है। वह कहता है–'मैंने शत्रु के बल और बुद्धि की थाह पाली।' यह व्यंग है या वास्तविकता इसका उत्तर अगले दोहे ५६ और उसके नीचे की चौपाई में दिया गया है। लक्ष्मण की भेजी हुई पत्रिका को सुनकर रावण भयभीत हो गया, परन्तु ऊपर से मुसकराता हुआ वह सभासदों से बोला–'लक्ष्मण तो डींग हाकता है।'

दो०– बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस ॥५६(क)॥
की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग ॥५६(ख)॥

भावार्थ– (पत्रिका में लिखा था–) ''अरे मूर्ख ! केवल बातों से ही मन को रिझाकर अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट न कर ! श्री रामजी से विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेश की शरण जाने पर भी नहीं बचेगा। या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति प्रभु के चरण-कमलों का भ्रमर बन जा। अथवा, रे दुष्ट ! श्री रामजी के बाण रूपी अग्नि में परिवार सहित पतिंगा हो जा (दोनों में से जो अच्छा लगे सो कर)। ''

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥
कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥

सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहु बिरोधा ।।
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ । जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ।।
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं । उर अपराध न एकउ धरिहीं ।।
जनकसुता रघुनाथहि दीजे । एतना कहा मोर प्रभु कीजे ।।
जब तेहिं कहा देन बैदेही । चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही ।।
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ । कृपासिंधु रघुनायक जहाँ ।।
करि प्रनामु निज कथा सुनाई । राम कृपाँ आपनि गति पाई ।।
रिषि अगस्ति कीं साप भवानी । राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी ।।
बंदि राम पद बारहिं बारा । मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा ।।

भावार्थ– पत्रिका सुनते ही रावण मन में भयभीत हो गया, परन्तु मुख से (ऊपर से) मुस्कराता हुआ वह सब को सुनाकर कहने लगा– ''जैसे कोई पृथ्वी पर पड़ा हुआ हाथ से आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता है, वैसे ही वह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है)।'' शुक दूत ने कहा–''हे नाथ ! अभिमानी स्वभाव को छोड़कर (इस पत्र में लिखी)सब बातों को सत्य समझिये क्रोधछोड़करमेरा वचन सुनिये । हे नाथ ! श्री रामजी से वैर त्याग दीजिये । यद्यपि श्री रघुवीर समस्त लोकों के स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है । मिलते ही प्रभु आप पर कृपा करेंगे और वे आपका एक भी अपराध हृदय में नहीं रक्खेंगे । जानकी जी श्री रघुनाथ जी को दीजिये । हे प्रभु ! इतना कहना मेरा कीजिये ।'' जब उसने (दूत ने) जानकी जी को देने के लिये कहा तब दुष्ट रावण ने उसको लात मारी । वह भी (विभीषण की भाँति) चरणों में सिर नवाकर वहीं चला जहाँ कृपासागर, श्री रघुनाथ जी थे । प्रणाम करके उसने अपनी व्यथा सुनायी और श्री रामजी की कृपा से अपनी गति (मुनि का स्वरूप)पायी । (शिवजी कहते हैं–) 'हे भवानी ! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषि के श्राप से राक्षस हो गया था । बार-बार श्री राम जी के चरणों की वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया ।'

अन्तर्कथा– ऊपर की चौपाई में १२ सम पंक्तियाँ हैं । इसमें एक अन्तर्कथा है । रावण लंका के पार समुद्रतट पर गुप्तचर भेजे थे ताकि वह राम की सेना का अन्दाजा लगाएं । उनमें से एक शुक था । वह राम के तेज से बहुत प्रभावित हुआ । उसने लौटकर रावण के सामने राम की बहुत प्रशंसा की और भालू-वानर की सेना के अतुल बल का बखान किया। जानकी जी को लौटा देने का परामर्श दिया । इसको रावण सह न सका और उसने शुक के लात मारी । विभीषण की तरह, लात खाते ही वह राम से जा मिला । शुक एक ज्ञानी मुनि था । अगस्त्य ऋषि के श्राप से वह राक्षस हो गया था । राम की कृपा से वह अपने असली रूप में आ गया और राम के चरणों की वन्दना करके, अपने आश्रम चला गया ।

दो०– बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ।।५७।।

भावार्थ– इधर तीन दिन बीत गये, किन्तु जड़ समुद्र विनय नहीं मानता । तब श्री राम जी क्रोध सहित बोले–''बिना भय के प्रीति नहीं होती ।

लोकोक्ति– ऊपर के दोहे में एक लोकोक्ति है :
'भय बिनु होइ न प्रीति ।'

संस्कृत में एक शब्द के कई अर्थ (nuance) होते हैं'मेघदूत' के पूर्वमेघ के सोलहवें श्लोक में कालीदास ने'प्रीति' शब्द का प्रयोग'आदर' के अर्थ में किया है :

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भूविलासानभिज्ञैः ।
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधुचनैः पीयमानः।।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं ।
किंचित्पश्चाद् व्रजलघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।।

अर्थात्, खेती का होना न होना तुम्हारे ही भरोसे है । इसलिये किसानों की वे भोली-भाली स्त्रियाँ तुम्हें बड़े प्रेम और आदर से देखेंगी, जिन्हें भौंह चलाकर रिझाना नहीं आता है । वहां तुम मालदेश में उन खेतों पर बरस जाना जहाँ अभी जोते जाने के कारण सोंधी-सोंधी सुगन्ध निकल रही हो । वहाँ से थोड़ा पश्चिम की ओर घूमकर फिर झटपट उत्तर की ओर बढ़ जाना ।

रेखांकित शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि'प्रेम' के लिए कालीदास ने'स्निग्ध' शब्द का प्रयोग किया और'आदर' के लिए'प्रीति' का । ऊपर की लोकोक्ति में तुलसीदास जी ने भी 'प्रीति' शब्द का प्रयोग'आदर' के अर्थ में किया है ।

यूँ तो माता पुत्र से, बहिन भाई से, पत्नी पति से प्रेम करती है । यह प्रेम स्वाभाविक और प्राकृत है । इसमें भय का कोई स्थान नहीं है । किन्तु किसी भी प्रकार की सत्ता अपने भय से आदर उत्पन्न करती है, प्रेम नहीं । आदिम समाज में प्राकृतिक शक्तियों की उपासना या आदर का कारण उनकी शक्ति था । राजसत्ता का भय ही प्रजा के मन में आदर का भाव जाग्रत करता है ।

राजा को प्रजा ने सर्वदा और सर्वथा सम्पूर्ण प्रभुत्त्व सम्पन्न माना है और उसका आदर किया है । इसी प्रभुता और आदर को महाकवि शेक्सपियर ने बहुत सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है :

"His sceptre shows the force of temporal power;

The attribute to awe and majesty,

Wherein doth sit the dread and fear of Kings;"*

अब रही लोकोक्ति की बात । तुलसीदास जी कहते हैं कि निम्न श्रेणी के लोग उच्च वर्ग के लोगों के प्रति भय के कारण उनका आदर करते हैं । इस बात को अगले दोहो में तुलसीदास ने और स्पष्ट किया है :

'काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच ।

विनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पइ नव नीच ।।'

अर्थात्, कितना ही सींचों, तो भी केला फल नहीं देता, जब तक कि उसे काटा न जाये। इसी प्रकार नीच आदमी विनय से नहीं मानता । वह डाँटने से ही झुकता है और रास्ते पर आता है ।

राम ने समुद्र तट पर बैठकर तीन दिन समुद्र की आराधना की, फिर भी उसने लंका जाने के लिये मार्ग नहीं दिया । इस पर राम को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा--

'भय बिनु होइ न प्रीति ।'

राम ने यह कहकर ज्योंहि धनुष का अनुसन्धान किया, समुद्र तुरन्त डर के मारे प्रकट हो गया और उसने अपने मुख से स्वयं स्वीकार किया :

'ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।।'**

और राम को समुद्र पार करने का उपाय बताया ।

आजकल के सन्दर्भ में तुलसीदास की इस लोकोक्ति का और भी अधिक महत्व है । समाज चाहे किसी ढंग का हो, उसमें छोटा काम करने वाले तथा अपनी स्थिति के अनुसार अल्प विद्या, बुद्धि, शील और शक्ति रखने वाले कुछ न कुछ रहेंगे ही । ऊँची स्थिति वालों के लिये जिस प्रकार इन छोटी स्थिति के लोगों की रक्षा और सहायता करना तथा उनके साथ कोमल व्यवहार करना आवश्यक है, उसी प्रकार इन छोटी स्थितिवालों के लिये बड़ी स्थितिवालों के प्रति आदर और सम्मान प्रदर्शित करना भी । नीची श्रेणी के लोग अहंकार से उन्मत्त होकर ऊँची श्रेणी के लोगों का अपमान करने पर उद्यत हों, तो व्यावहारिक दृष्टि से उच्चता किसी काम की न रह जाय । विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम, शील और वैभव यदि अकारण अपमान से कुछ अधिक रक्षा न कर सकें तो उनका सामाजिक मूल्य कुछ भी नहीं।

---

* Merchant of Venice, Act IV, Scene 1.

** व्याख्या के लिए देखिये पृष्ठ ८९२-९३ ।

स्वतन्त्रता के बाद लोग अपने अधिकारों का बहुत अधिक ध्यान रखते हैं, परन्तु अपने कर्तव्यों को भूल गये हैं। शासन के प्रति उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं रह गया है। स्वाधीनता के माने आजकल स्वच्छंदता हो गया है। जो जैसा चाहता वैसा ही करता है। आए दिन विद्यार्थी अपने आचार्यों और कुलपतियों का घिराव करते हैं, रेलगाड़ियाँ रोकते हैं, बस जलाते हैं। आतंक वाद का बोल-बाला है। दिन प्रतिदिन निर्दोष लोग मारे जा रहे हैं। बैंक लूटे जा रहे हैं। डकैती और बलात्कार साधारण घटना हैं। इन सब का एक ही कारण है। प्रजा में शासन के प्रति भय उठ गया है और इसी कारण वह शासन का आदर नहीं करती। साथ में शासन में प्रजा पर अंकुश लगाने की शक्ति जाती रही है।

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥

भावार्थ– हे लक्ष्मण धनुष बाण लाओ, मैं अग्नि बाण से समुद्र को सोख डालूँ। मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीती, स्वाभाविक ही कंजूस से सुन्दर नीति (उदारता का उपदेश), ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से सम (शान्ति) की बात और कामी से भगवान की कथा इनका वैसा ही फल होता है, जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ हो जाता है)।" ऐसा कहकर रघुनाथ जी ने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मण जी के मन को बहुत अच्छा लगा। प्रभु ने भयानक (अग्नि) बाण सन्धान किया, जिससे समुद्र के हृदय के अंदर अग्नि की ज्वाला उठी। मकर, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो गये। जब समुद्र ने जीवों को जलते जाना, तब सोने के थाल में अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मण के रूप में आया।

दो०— काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥५८॥

भावार्थ– (कागभुशुण्डि जी कहते हैं–) 'हे गरुड़ जी ! सुनिये, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटनें पर ही झुकता है (रास्ते पर आता है)।'

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥
तव प्रेरित मायाँ उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहें सुख लहई ॥
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही । मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही ॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई । करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥

भावार्थ– समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के चरण पकड़ कर कहा–''हे नाथ ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिये । हे नाथ ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी– इन सब की करनी स्वभाव से ही जड़ है । आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिये उत्पन्न किया है । सब ग्रन्थों ने यही गाया है । जिसके लिये स्वामी की जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकार से रहने में सुख पाता है । प्रभु ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दण्ड) दी । किन्तु मर्यादा (जीवों का स्वभाव) भी आपकी ही बनाई हुई वस्तु है । ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री, ये सब दण्ड के अधिकारी हैं । प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जायेगी । इसमे मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी) तथापि प्रभु की आज्ञा अमेट है (अर्थात् आपकी आज्ञा का उलंघन नहीं हो सकता) । ऐसा बेद गाते हैं । अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरन्त वही करूँगा'' ।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई में 'मानस' की सबसे अधिक विवादास्पद लोकोक्ति है । राम ने जब अग्नि बाण का सन्धान किया, तब समुद्र के अन्दर अग्नि की ज्वाला उठी और वह व्याकुल होकर, ब्राह्मण के रूप में राम के सामने प्रकट हो गया । उसने क्षमा माँगी और पृष्ठ ८८९ पर कही गई लोकोक्ति की अपने शब्दों में पुष्टि की :

'ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।।'

इस लोकोक्ति में 'ताड़न' शब्द 'ढोल' शब्द के योग में आलंकारिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिये लाया गया है । वस्तुतः पाँच अधिकारियों के परिप्रेक्ष में 'ताड़न' शब्द को विभिन्न अर्थों में प्रयोग करना होगा ।

१. **ढोल** के सन्दर्भ में 'ताड़न' का सामान्य अर्थ लेना चाहिए । ढोल, नगाड़ा, ढोलक, तबला, पखावज, ढपली इत्यादि (percussion instruments) मार करने (strike) पर ही बजते हैं ।

२. **पशु** को नियंत्रित करने के लिये उसपर अंकुश लगाना आवश्यक है । पीलवान हाथी को लोहे के अंकुश से ही चलाता और वश में रखता है । बैल और ऊँट की नाक में नकेल डाली जाती है । घोड़ा रास से चलता है ।

३. **शूद्र, गँवार**— ऊँची-नीची श्रेणियाँ समाज में बराबर थीं और बराबर रहेंगी। अतः शूद्र शब्द को नीची श्रेणी के मनुष्य का— कुल, शील, विद्या, बुद्धि, शक्ति आदि सब में अत्यन्त न्यून का— बोधक मानना चाहिए। इतनी न्यूनताओं को अलग-अलग न लिखकर वर्ण विभाग के आधार पर उन सबके लिये एक शब्द का व्यवहार कर दिया गया है। इस बात को मनुष्य जातियों का अनुसंधान करने वाले आधुनिक लेखकों ने भीं स्वीकार किया है कि वन्य और असभ्य जातियाँ उन्हीं का आदर सम्मान करती हैं, जो उनमें भय उत्पन्न कर सकते हैं। यही दशा गँवारों की है। गँवार और शूद्र के परिपेक्ष में 'ताड़न' शब्द का अर्थ होगा 'फटकार, डाँट-डपट, अनुशासन।'

४. **नारी**— पशु, शूद्र और गँवार के साथ 'स्त्री' का समावेश सुरुचि विरुद्ध लगता है। नारी का इस सूची में उल्लेख करने के कारण प्रायः तुलसीदास की कड़ी आलोचना की जाती है। वास्तव में इस कथन के मर्म को समझने के लिये हमें आधुनिक मानदण्ड त्यागकर, तुलसीदास के युग के सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखना चाहिये और उसी सन्दर्भ में इस कथन का स्पष्टीकरण करना चाहिये। मध्ययुगीन समाज में अशिक्षित नारी की मानसिकता गवाँर या शूद्र से भिन्न नहीं थीं। उस पुरुष प्रधान समाज में वैसे ही नारी की स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से हीन थी, अशिक्षा ने उसे विद्या-बुद्धि, व्यवहार-कुशलता से वंचित रखा। अतः उसे मर्यादा में रखने के लिये नियंत्रण आवश्यक समझा जाता था। यह भी ध्यान देने की बात है कि उस युग की इस सामान्य मान्यता का उल्लेख 'जलधि जड़' ने किया है, राम या किसी अन्य आदरणीय पात्र ने नहीं। शूद्र, गँवार या नारी को 'ताड़ना' या अनुशासन का पात्र मानना तुलसीदास का अपना चिन्तन नहीं है, अपितु मध्ययुग की प्रचलित मान्यता थीं जिसका उल्लेख यहाँ समुद्र ने किया है।

भारत वर्ष में ही नहीं, अपितु मध्यकालीन योरोप में भी स्त्री की ऐसी ही दशा थी। इसका प्रमाण शेक्सपियर के Taming of the Shrew में मिलता है।

दो०— सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ।।५९।।

भावार्थ— समुद्र के अत्यन्त विनीत वचन सुनकर कृपालु श्री राम जी ने मुस्कराकर कहा—'हे तात! जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर जाय, वह उपाय बताओ।'

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई।।
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई।।
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ।।
एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी।।
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा।।

देखि राम बल पौरुष भारी । हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा । चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥

भावार्थ– (समुद्र ने कहा–) "हे नाथ ! नील और नल दो बानर भाई हैं । उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था । उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रताप से तैर जायेंगे । मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर अपने बल के अनुसार (जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा)सहायता करूँगा । हे नाथ ! इस प्रकार समुद्र को बँधाइये, जिससे तीनों लोकों में आपका यश गाया जाय । इस बाण से मेरे तट पर रहने वाले पाप के राशि दुष्ट मनुष्यों का बध कीजिये ।" कृपालु और रणधीर श्रीराम जी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर उसे तुरन्त ही हर लिया (अर्थात् बाण से उन दुष्टों का बध कर दिया)। श्री रामजी का भारी बल और पौरूष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया । उसने उन दुष्टों का सारा चरित्र प्रभु को कह सुनाया । फिर चरणों की बन्दना करके समुद्र चला गया।

पात्र परिचय– जब सिन्धु अभिमान छोड़कर, सोने के थाल में अनेक मणि भरकर, राम के सामने ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुआ, तब राम ने मुस्करा कर उससे कहा–'हे तात ! जिस प्रकार बानरों की सेना पार उतर जाय, वह उपाय बताओ । इस पर समुद्र ने राम से नील और नल का परिचय कराया । वह परिचय इस प्रकार था । '

नील और नल विश्वकर्मा के पुत्र थे । ये दोनों भाई अपने लड़कपन में ऋषियों की शालग्राम मूर्तियों को लेकर जल में डाल दिया करते थे । एक बार इन्होंने ऋषि का स्नान करने वाला पत्थर भी डुबो दिया । त्रिकालज्ञ महर्षि ने बालकों को शाप नहीं दिया । वरन् अपना प्रयोजन साधक शाप के व्याज से वरदान दिया कि उनके स्पर्श से जल में पाषाण न डूबेगा । यह वर न तो ऋषि ने प्रसन्न होकर दिया और न बालकों के सामने । परोक्ष में कह दिया कि उनके स्पर्श से पत्थर न डूबे । यह आशीर्वाद ऋषि की सेवा करके नहीं प्राप्त किया गया, अकस्मात् ही नील और नल को प्राप्त हो गया । यहाँ चार बात ध्यान में रखने योग्य हैं ;

१. बात बालपने की है । नील-नल को भी स्मरण नहीं । और भी कोई नहीं जानता। केवल समुद्र जानता है, क्योंकि वह जल-स्वरूप है और मुनि ने जल ही में पाषाण न डूबने का आशीर्वाद दिया था ।

२. तुलसीदास जी ने 'शाप' पद न देकर, 'आशिष' का प्रयोग किया, क्योंकि शापित वस्तु ग्राह्य नहीं है ।

३. यहाँ शंका होती है कि जब नील और नल के स्पर्श से गिरिसमूह तैरेंगे, तब प्रभु की इसमें बड़ाई और प्रताप क्या ? समाधान यह है कि नील और नल के स्पर्श से समुद्र में पर्वत तैरेंगे और प्रभु प्रताप से जहाँ वे जल में डालेंगे वहीं स्थिर रहेंगे । उनपर से अपार सेना चलेगी, डूबेगी नहीं । ऋषि का आशीष ऐसा नहीं है कि एक जगह स्थिर रहेंगे, हिलें

डोलेंगे नहीं और सब पुल-सरीखे एकत्र रहेंगे। यह प्रभु प्रताप है।

४. अध्यात्म रामायण में केवल नल को वर की प्राप्ति कही है :

'नलः सेतु करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः ।
सुतो धीमन् समर्थोऽस्मिन्कार्ये लब्धवरो हरिः ।'

अर्थात्, विश्वकर्मा का पुत्र चतुर नल वर के प्रभाव से मेरे जल पर सेतु का निर्माण करें।

छं०— निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ ।।
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना ।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना ।।

भावार्थ— समुद्र अपने घर चला गया। श्री रघुनाथ जी को यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुग के पापों को हरने वाला है। इसे तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है। श्री रघुनाथ जी के गुण समूह सुख के धाम, सन्देह का नाश करने वाले और विषाद का दमन करने वाले हैं। अरे मूर्ख मन ! तू संसार का सब आशा-भरोसा त्याग कर निरन्तर इन्हें गा और सुन। श्री रघुनाथ जी का गुण-गान सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज़ के ही भवसागर को तर जायेंगे।

टिप्पणी— 'मानस' के सभी काण्ड छन्द से समाप्त होते हैं। यह दूसरी बात है कि अन्तिम छन्द के बाद, तुलसीदास जी ने कहीं सोरठा, कहीं दोहा, और कहीं दोनों डाल दिये हैं (जैसे किष्किन्धा के अन्त में)। बालकाण्ड के अन्तिम छन्द में गोसाई जी कहते हैं कि जो मनुष्य राम के विवाहोत्सव को प्रेमपूर्वक गाते और सुनते हैं, वह सदा सुख पाते हैं और उनका जीवन मंगलमय होता है। अयोध्याकाण्ड के अन्त में भरत-चरित का भी ऐसा ही महात्म बताया है। अरण्यकाण्ड के अन्त में नारद को विश्वमोहिनी के वियोग से जो मोह हो रहा था, राम ने उसको दूर किया, इसीलिए उनके 'भक्त-वत्सल' रूप का गान किया गया है। किष्किन्धा के अन्त में निशिचरों का संहार करके राम जब सीता को वापस लायेंगे, उस 'सुयश' का गान किया गया है। और अब सुन्दरकाण्ड के अन्त में तुलसीदास कहते हैं कि जिस सुगमता से कपि सेना समुद्र के पार उतरी, उसी सुगमता से बिना किसी जलयान के मनुष्य भवसागर से पार हो सकता है यदि वह सब 'आस-भरोस' छोड़कर केवल रघुनाथ का 'गुणगान' करे।

दो०— सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान ।।६०।।

भावार्थ— श्री रघुनाथ जी का गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज़ के ही भवसागर को तर जायेंगे।

षष्ठ सोपान
(लंकाकाण्ड)

श्लोक

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दें कन्दावदासरसिजनयनंदेवमुर्वीशरूपम्।।१।।

शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम् ।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरम् ।।२।।

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु मे ।।३।।

भावार्थ– कामदेव के शत्रु शिव जी के सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु)के भय को हरने वाले, कामरूपी मतवाले हाथी कें लिए सिंह के समान, योगियों के स्वामी (योगीश्वर), ज्ञान के द्वारा जानने योग्य, गुणों की निधि, अजेय, निर्गुण, निर्विकार, माया से परे, देवताओं के स्वामी, दुष्टों के बध में तत्पर, ब्राह्मण वृन्द के एक मात्र देवता (रक्षक), जलवाले मेघ के समान सुन्दर श्याम, कमल के से नेत्रवाले, पृथ्वीपति (राजा)के रूप में परमदेव श्री राम जी की मैं वन्दना करता हूँ। शंख और चन्द्रमा की सी कान्ति के अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, शार्दूल (व्याघ्र)चर्म के वस्त्र वाले, काल के समान भयानक सर्पों का भूषणधारण करने वाले, गंगा और चन्द्रमा के प्रेमी, काशीपति, कलियुग के पाप-समूह का नाश करने वाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणनिधि और कामदेव को भस्म करने वाले पार्वतीपति वन्दनीय श्री शंकर जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो शंभु जी सत्पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ कैवल्यमुक्ति तक दे डालते हैं और जो दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं, वे शंकर मेरे कल्याण का विस्तार करें।

टिप्पणी– ऊपर के तीन श्लोकों में पहले श्लोक में राम की वन्दना की गई है और शेष दो श्लोकों में शिव की। राम के साथ शिव की वन्दना का उद्देश नीचे दोहा २ और उसके ऊपर की चौपाई की टिप्पणी में विस्तार पूर्वक बताया गया है। यहाँ केवल राम और शिव के गुणों का तुलसीदास ने जो विवेचन किया है, उसकी सूची इस प्रकार है :-

राम–

१. शिव जी के सेव्य हैं।

२. जन्म-मृत्यु के भय को हरने वाले हैं।

३. पाप का नाश करने वाले हैं।

४. योगियों के स्वामी हैं।

५. ज्ञान के द्वारा जानने योग्य हैं।

६. गुणों के निधि हैं।

७. अज्ञेय हैं।

८. निर्गुण हैं।

९. निर्विकार हैं।

११. देवताओ के स्वामी हैं।

१२. दुष्टों के वध में तत्पर रहते हैं।

१३. ब्राह्मणों के रक्षक हैं।

१४. नीलाभ्र के समान उनका सुन्दर श्याम शरीर है।

१५. कमल के समान उनके सुन्दर नेत्र हैं।

१६. पृथ्वीपति हैं।

शिव–

१. शंख और चन्द्रमा की कान्ति से अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले हैं।

२. व्याघ्र चर्म का वस्त्र धारण करते हैं।

३. काल के समान भयानक सर्पों का भूषण धारण करते हैं।

४. गंगा और चन्द्रमा उनको प्रिय हैं।

५. काशी-पति हैं।

६. क़लियुग के पाप का नाश करने वाले हैं।

७. कल्याण करने वाले हैं।

८. गुण के निधि हैं।

९. कामदेव को भस्म करने वाले हैं।

१०. पार्वती के पति हैं।

११. सत्पुरुषों को कैवल्य-मुक्ति दायक हैं।

१२. दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं।

दो०—लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड ।।

भावार्थ— लव, निमेष, परमाणु, युग और कल्प जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, हे मन ! तू उन श्रीराम जी को क्यों नहीं भजता?

सो०—सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु ।।
सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं ।।

भावार्थ— समुद्र के वचन सुनकर, प्रभु श्री राम जी ने मन्त्रियों को बुलाकर ऐसा कहा– "अब बिलम्ब का क्या प्रयोजन है, सेतु तैयार करो, जिसमें सेना उतरे।" जामवान् ने हाथ जोड़कर कहा "हे सूर्यकुल के ध्वजा श्रीराम जी ! सुनिये। हे नाथ! सब से बड़ा सेतु तो आपका नाम ही है, जिसपर चढ़कर मनुष्य भवसागर से पार हो जाते हैं।

टिप्पणी— जब समुद्र ने उसे पार करने का उपाय बताया, तब श्री रामचन्द्र जी ने अपने मंत्रियों से कहा कि अब विलम्ब नहीं करनी चाहिये और तुरन्त सेतु तैयार करना चाहिए, जिससे सेना पार जा सके। इस पर जामवंत ने हाथ जोड़कर कहा कि सबसे बड़ा सेतु तो आपका "नाम" है, जिस पर चढ़कर मनुष्य भवसागर पार हो जाते हैं। बात को आगे-बढ़ाते हुये अगली चौपाई में जामवंत कहते हैं कि भारत और लंका के बीच इस छोटे समुद्र को पार करने में फिर भला क्या देर लग सकती है। ऐसा ही भाव निषादराज गुह ने अयोध्या काण्ड में प्रकट किया था। जब गूह ने राम को गंगापार उतारा था तो राम उसको पारिश्रमिक देने लगे। उस समय गूह ने कहा था कि आपका और मेरा एक ही व्यवसाय है। मैं नदी के पार ले जाता हूँ, आप संसार के पार ले जाते हैं। एक ही व्यवसाय के लोगों में आपस में कैसी लेन-देन? मैं जब भव सागर से पार उतरने के लिये आऊँ, तो आप कृपया मुझे तार दीजियेगा (देखिए भाग १, पृष्ठ ४९०)।

यह लघु जलधि तरत कति बारा । अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी । सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥
तव रिपु नारि रुदन जल धारा । भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा ॥
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी । हरषे कपि रघुपति तन हेरी ॥
जामवंत बोले दोउ भाई । नल नीलहिं सब कथा सुनाई ॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं । करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ॥
बोलि लिए कपि निकर बहोरी । सकल सुनहु बिनती कछु मोरी ॥
राम चरन पकंज उर धरहू । कौतुक एक भालु कपि करहू ॥
धावहु मर्कट बिकट बरूथा । आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा । जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥

भावार्थ— फिर यह छोटा-सा समुद्र पार करने में कितनी देर लगेगी?" ऐसा सुनकर फिर पवनकुमार श्री हनुमान जी ने कहा—"प्रभु का प्रताप भारी (महान्) बड़वानल (समुद्र की आग)के समान है । इसने पहले समुद्र के जल को सोख लिया था । परन्तु आपके शत्रुओं की स्त्रियों के रोने की जलधारा से वह फिर भर गया और उसी से खारा भी हो गया। " हनुमान जी की यह अत्युक्ति (अलंकारपूर्ण उक्ति) सुनकर बानर श्री रघुनाथ जी की ओर देखकर हर्षित हो गये । जामवंत ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनायी। और कहा—(मन में) "श्री रामजी का प्रताप स्मरण करके सेतु तैयार करो । रामप्रताप से कुछ भी परिश्रम नहीं होगा । " फिर बानर के समूह को बुला लिया (और कहा—) "आप सब मेरी कुछ विनती सुनिये । अपने हृदय में श्री रामजी के चरण कमलों को धारण कर लीजिये और सब भालू और वानर एक खेल कीजिये । विकट वानरों के समूह (आप)दौड़ जायें और वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों को उखाड़ लाइये ।" यह सुनकर बानर और भालू हूँ-हूँ (हुंकार) करके और श्री राम जी के प्रताप समूह की जय पुकारते हुए चले।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ ८९४ पर यह बताया गया है कि नील और नल को ऋषियों का वरदान था कि जिस पत्थर को वे छुयेंगे, उसका अपेक्षित घनत्व इतना कम हो जायेगा कि वह पानी में डूबने की बजाए तैरने लगेगा । ऊपर की चौपाई में और उसके बाद के दोहे और चौपाई में इसी बात का संकेत है कि बन्दर और भालू बड़े-बड़े पत्थरों और वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर नल और नील को लाकर दे रहे हैं । यह दोनो भाई पत्थरों को गेंद की तरह उछाल कर समुद्र में फेंक रहे हैं—

'सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कंदुक इव नल नील ते लेहीं ।।

इस प्रकार सेतु का शीघ्र निर्माण हो गया ।

दो०—अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ ।।१।।

भावार्थ— बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षों को खेल की तरह ही उखाड़कर उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं । वे अच्छी तरह गढ़कर सुन्दर सेतु बनाते हैं ।

सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कंदुक इव नल नील ते लेहीं ।।
देखि सेतु अति सुंदर रचना । बिहसि कृपानिधि बोले बचना ।।
परम रम्य उत्तम यह धरनी । महिमा अमित जाइ नहिं बरनी ।।
करिहउँ इहाँ संभु थापना । मोरे हृदयँ परम कलपना ।।
सुनि कपीस बहु दूत पठाए । मुनिबर सकल बोलि लै आए ।।
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ।।
सिव द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ।।
संकर बिमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ।।

भावार्थ— बानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं, और नल-नील उन्हें गेंद की तरह ले लेते हैं । सेतु की अत्यन्त सुन्दर रचना देखकर कृपासिंधु श्री राम जी हँसकर बचन बोले- ‘‘यह (यहाँ की)पृथ्वी परम रमणीय है और उत्तम है । इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती । मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा । मेरे हृदय में यह महान संकल्प है । ’’ श्री राम जी के वचन सुनकर, वानरराज सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आये । शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उनका पूजन किया । (फिर भगवान बोले—) ‘‘शिव जी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है । जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता । शंकर जी से विमुख होकर (विरोध करके)जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्प बुद्धि है।

टिप्पणी— जब भारत से लंका तक के ऊपर सेतु का निर्माण हो गया तब राम ने कहा कि यह स्थान रमणीक है । मैं यहाँ पर शिवलिंग की स्थापना करूँगा । इसका नाम उन्होंने रामेश्वर रखा । रामेश्वरम् द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है । शेष ग्यारह इस प्रकार हैं—उत्तर प्रदेश में विश्वनाथ और केदारनाथ, मध्यप्रदेश में महाकालेश्वर और ओंकाररेश्वर, गुजरात में सोमनाथ और नागेश्वर, महाराष्ट्र में भीमशंकर और घम्बक, आन्ध्रप्रदेश में वैद्यनाथ और घुरमेश्वर, तामिलनाडु में मल्लिकार्जुन ।

रामेश्वर को यदि षष्ठीं तत्पुरुष समास समझें तो इस के अर्थ निकलते हैं राम के ईश्वर, अर्थात ‘‘शिव ’’ । और यदि इसे बहुब्रीहि समास समझें तो इसके अर्थ निकलते हैं

कि राम ही हैं ईश्वर जिसके, अर्थात् ''शिव''। यद्यपि दोनों प्रकार से अर्थ ''शिव'' ही निकलता है, तथापि इस शब्द में एक महान तथ्य है। शिव राम के उपास्य हैं और राम शिव के उपास्य।

भारत में सम्प्रदायों के परस्पर विरोध की परम्परा बहुत पुरानी है। दक्षिण भारत में तो शैवों और वैष्णवों का विरोध इस सीमा तक पहुँच गया था कि कांचीनगर शैवों और वैष्णवों में विभक्त हो गया। एक ओर शिवकौंची था और दूसरी विष्णुकाँची। तुलसीदास उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भेद नहीं अपितु सम्प्रदायों के बीच समन्वय पर बल देता था। रामचरितमानस की रचना लोकभाषा में की गयी थी, अतः सामान्य जन में विभिन्न सम्प्रदायों के आराध्य देवताओं के एकत्व का भाव प्रतिष्ठित हुआ। इसी का परिणाम है कि हम रामनवमी और शिवरात्रि दोनों पर्व बड़े उल्लास से मनाते हैं। वास्तव में जब तक रामचरितमानस का पठन-पाठन होता रहेगा तब तक हिन्दू समाज में यह समन्वयात्मक प्रवृत्ति बनी रहेगी।

''स्रुति संमत हरि भक्ति'' की ओर जनता को आकर्षित करने के लिए तुलसीदास ने रामचरित का आश्रय लिया। तुलसीदास यद्यपि राम के अनन्य भक्त थे पर लोकरीति के अनुसार बालकाण्ड के प्रारम्भ में, पहले गणेश वन्दना करके, तब वे आगे चले हैं।

शैवों और वैष्णवों के विरोध के परिहार का प्रयत्न रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर लक्षित होता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणेशखंड में शिव हरिमंत्र के जापक कहे गए हैं। उसके अनुसार तुलसीदास ने शिव को राम का सबसे अधिकारी भक्त बनाया, पर साथ ही राम को शिव का उपासक बनाकर, गोस्वामी जी ने दोनों का महत्व प्रतिपादित किया। राम के मुखारविन्द से उन्होंने स्पष्ट कहला दिया कि–

'शिवद्रोही मम दास कहावै। सो नर सपनेहु मोहिं न भावैं।'

नीचे के दोहे में राम पुनः कहते हैं कि

'संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।'

ऐसा नर घोर नरक में कल्प तक वास करता है।

इस प्रकार गोस्वामी जी ने उपासना या भक्ति का केवल कर्म और ज्ञान के साथ ही सामंजस्य स्थापित नहीं किया, बल्कि भिन्न-भिन्न उपास्य देवों के कारण जो भेद दिखाई पड़ते हैं, उनका भी एक में पर्यवसान किया।

दो०– संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥२॥

भावार्थ– जिनको शंकर जी प्रिय हैं, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं, एवं जो शिव जी के द्रोही

हैं और मेरे दास (बनना चाहते)हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में निवास करते हैं।

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं । ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ।।
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि । सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि ।।
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि । भगति मोरि तेहि संकर देइहि ।।
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही । सो बिनु श्रम भवसागर तरिही ।।
राम बचन सब के जिय भाए । मुनिबर निज निज आश्रम आए ।।
गिरिजा रघुपति कै यह रीती । संतत करहिं प्रनत पर प्रीती ।।
बाँधा सेतु नील नल नागर । राम कृपाँ जसु भयउ उजागर ।।
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई । भए उपल बोहित सम तेई ।।
महिमा यह न जलधि कइ बरनी । पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी ।।

भावार्थ– जो मनुष्य मेरे स्थापित किये हुए इन रामेश्वर जी का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोक को जायेंगे। और जो गंगाजल लाकर इनपर चढ़ायेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पावेगा (अर्थात मेरे साथ एक हो जायेगा)। जो छल छोड़कर और निष्काम होकर रामेश्वर जी की सेवा करेंगे, उन्हें शंकर जी मेरी भक्ति देंगे। और जो मेरे बनाये सेतु का दर्शन करेगा, वह बिना ही परिश्रम भवसागर से तर जायगा। श्री रामजी के वचन सबके मनको अच्छे लगे ! तदनन्दर वे श्रेष्ठ मुनि अपने-अपने आश्रमों को लौट आये। (शिवजी कहते हैं) ''हे पार्वती! श्री रघुनाथ जी की यह रीति है कि वे शरणागत पर सदा प्रीति करते हैं। चतुर नल और नील ने सेतु बाँधा। श्री राम जी की कृपा से उनका यह उज्ज्वल यश सर्वत्र फैल गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरों को डुबा देते हैं, वे ही जहाज़ के समान हो गए। यह न तो समुद्र की महिमा वर्णन की गयी है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की ही कोई करामात है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ ९०० पर द्वादश ज्योतिर्लिंगों की गणना की गई है। इन द्वादश ज्योतिर्लिंगों में रामेश्वरम् का सबसे अधिक महत्व है। इसका महत्व स्वयं श्री राम अपने मुख से वर्णन करते हैं–

'जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं । ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ।।
जो गंगा जलु आनि चढ़ाइहि । सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि ।।

राम कहते हैं कि जो रामेश्वर पर गंगा जल लाकर चढ़ायेगा, सायुज्य मुक्ति पाएगा, अर्थात् भगवान में लीन हो जायेगा। यह मान्यता आज तक चली आ रही है। सुदूर उत्तर में गंगा के स्रोत गंगोत्री से जल लाकर सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् के शिवलिंग पर चढ़ाया जाता है। इस प्रकार तुलसीदास ने दक्षिण-उत्तर को एक सूत्र में बाँध दिया। तुलसीदास से लगभग

सात सौ वर्ष पूर्व इसी प्रकार शंकराचार्य ने पूर्व में द्वारकाधीश, पश्चिम में जगन्नाथपुरी, उत्तर में बद्रीनाथ और दक्षिण में रामेश्वरम् - इन चार धामों की स्थापना करके भारत को एक सूत्र में बाँधा।

दो०–श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन।।३।।

भावार्थ– श्री रघुबीर जी के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गये। ऐसे श्री राम जी को छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं, वे मन्दबुद्धि हैं।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा।।
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई।।
सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई।।
देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा।।
मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला।।
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं।।
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हर्षित सब भए सुखारे।।
तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी।।
चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई।।

भावार्थ– नल-नील ने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया। देखने पर वह कृपानिधि श्री राम जी के मन को बहुत अच्छा लगा। सेना चली, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। योद्धा बानरों के समुदाय गरज रहे हैं। कृपालु श्री रघुनाथ जी सेतुबन्ध के तटपर चढ़कर समुद्र का विस्तार देखने लगे। करूणाकन्द प्रभु के दर्शन के लिये सब जलचरों के समूह प्रकट हो गये (जल के ऊपर निकल आये)। बहुत तरह के मगर, नाक, मच्छ और सर्प थे, जिनके सौ-सौ योजन के विशाल शरीर थे। कुछ ऐसे भी जन्तु थे जो उनको भी खा जायँ। किसी-किसी के डर से तो वे भी डर रहे थे। वे सब (बैर-बिरोध भूलकर) प्रभु के दर्शन कर रहे हैं, हटाने से भी नहीं हटते। सब के मन हर्षित हैं। सब सुखी हो गये। उनकी आड़ के कारण जल नहीं दिखायी पड़ता। वे सब भगवान का रूप देखकर मग्न हो गये। प्रभु श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर सेना चली। वानर सेना की विपुलता (अत्यधिक संख्या)को कौन कह सकता है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। जब रामचन्द्र जी सेतु पर पहुँचे, तब नाना प्रकार के जल-जन्तु उनके दर्शनार्थ प्रकट हो गए। मगर, नाक, घढ़ियाल और सर्पो के समूह के मारे सागर का जल कहीं नहीं दिखाई पड़ा। बड़ी मछली छोटी मछली को खा

जाती है। परन्तु भगवान के दर्शन में लीन सभी जल-जन्तु पारस्परिक बैर-विरोध भूल गए।

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ।।४।।

भावार्थ— सेतुबन्ध पर बहुत ही भीड़ हो गई, इससे कुछ वानर आकाश मार्ग से उड़ने लगे। और दूसरे कितने ही जलचरों पर चढ़ चढ़ कर पार जा रहे हैं।

अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई ।।
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ।।
सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा ।।
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए ।।
सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ।।
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलावहिं ।।
जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं ।।
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना ।।
जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता ।।
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दस मुख बोलि उठा अकुलाना ।।

भावार्थ— कृपालु रघुनाथ जी दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसते हुए चले। श्री रघुबीर जी सेना सहित समुद्र के पार उतरे। बानरों और उनके सेनापतियों की भीड़ कही नहीं जा सकती। प्रभु ने समुद्र के पार डेरा डाला और सब बानरों को आज्ञा दी कि तुम जाकर सुन्दर फल-मूल खाओ। यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े। श्री रामजी के हित (सेवा) के लिये सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु समय की गति को छोड़कर फल उठे। वानर-भालू मीठे-मीठे फ़ल खा रहे हैं, वृक्षों को हिला रहे हैं, और पर्वतों के शिखरों को लंका की ओर फेंक रहे हैं। घूमते फिरते जहाँ कहीं किसी राक्षस को पा जाते हैं तो सब उसे घेर कर खूब नाच नचाते हैं। और दाँतों से उसके नाक-कान काट कर प्रभु का सुयश कहकर (अथवा कहलाकर) तब उसे जाने देते है। जिन राक्षसों के नाक और कान काट डाले गये, उन्होंने रावण से सब बातें कहीं। समुद्र पर सेतु का बाँधा जाना कानों से सुनकर, रावण घबराकर दसों मुखों से बोल उठा।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। जिन राक्षसों के नाक-कान बन्दरों ने काट खाये थे, उन्होंने आकर रावण को सूचना दी की राम की सेना समुद्र पार करके लंका पहुँच गई है। समुद्र पर सेतु का बाँधा जाना सुनकर रावण घबरा गया। अपने दस मुखों में से एक-एक मुख से समुद्र के दस पर्यायवाची शब्द कहे—वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु,

वारीश, तोयनिधि, कंपित, उदधि, पयोधि, नदीश। समुद्र के पर्यायवाची शब्द कहने के उपरान्त वह विस्मय से बोल उठा–"क्या सचमुच राम ने समुद्र को बाँध लिया है?" रावण समुद्र पर सेतु बाँधना श्री राम, उनकी सेना या किसी अन्य के लिये असम्भव ही समझता था। श्री राम के पास जलयान का प्रबन्ध नहीं था और न आकाश मार्ग से इतनी विशाल सेना ही लंका आ सकती थी। सौ योजन समुद्र पर सेतु कभी बनाया नहीं गया था। रावण की दृष्टि में यह कार्य असम्भव था, परन्तु जिसे वह असम्भव समझता था वही सम्भव होते सुनकर रावण को नर-बानर से अपनी पराजय या मृत्यु, जिसे आज तक वह असम्भव ही समझता था, सम्भव प्रतीत होने लगी।

दो०–बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥५॥

भावार्थ– वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपित, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच ही बाँध लिया।

निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी॥
मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥
कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥
नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥
अतिबल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥
तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥

भावार्थ– फिर अपनी व्याकुलता को समझकर, ऊपर से हँसता हुआ, भय को भुलाकर, रावण महल को गया। जब मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु श्री राम आ गये हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बँधवा लिया है, तब वह हाथ पकड़कर, पति को अपने महल में लाकर परम मनोहर वाणी बोली। चरणों में सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा– "हे प्रियतम! क्रोध त्याग कर मेरा वचन सुनिये। हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिये जिसे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सके। आप में और रघुनाथ जी में निश्चय ही कैसा अन्तर है, जैसा जुगनू और सूर्य में। जिन्होंने विष्णुरूप से अत्यन्त बलवान मधु और कैटभ दैत्य मार, और बाराह और नृसिंहरूप से महान शूरवीर दिति के पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया, जिन्होंने वामन रूप में बलि को बाँधा और परशुराम रूप से सहसबाहु को मारा, वे ही भगवान पृथ्वी का भार हरण करने के लिये रामरूप में अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं। हे नाथ! उनका विरोध न कीजिये जिसके हाथ में काल, कर्म और जीव सभी हैं।

पात्र-परिचय— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। जब मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु श्री राम आ गए हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बाँध लिया है, तो उसने रावण से विनय की कि वह "राम से वैर छोड़ दे। बैर उसी के साथ करना चाहिये जिसे बल और बुद्धि के द्वारा जीत सकें। राम तो स्वयं विष्णुभगवान के अवतार हैं। उन्हें कौन जीत सकता है?" इतना कहकर मन्दोदरी ने रावण को विष्णु के पूर्वावतरों और उनके द्वारा समय समय पर मारे गये दैत्यों का स्मरण कराया :

(१) **मधु और कैटभ**— पुराने समय में ब्रह्मा ने दो असुरों की सृष्टि की थी। ये दोनों असुर पहले योगनिद्रामय भगवान विष्णु के कर्णमल से उत्पन्न हुए थे। उत्पन्न होने के समय ये अचेतन थे। इससे ब्रह्मा ने इनके शरीर में प्राणों का संचार किया। इनके जीवित होने पर ब्रह्मा ने जब इनके शरीर को स्पर्श किया तब एक का शरीर कोमल था, अतएव उसका नाम मधु और दूसरे का शरीर कड़ा था, इस कारण उसका नाम कैटभ रखा। ये दोनों अपने शारीरिक बल के घमंड से एकार्णव सागर में घूमने लगे। इनके भय से ब्रह्मा ने विष्णु के नाभिकमल में अपना वासस्थान बना लिया। बहुत दिनों के बाद इन दोनों ने ब्रह्मा को देखकर उनसे लड़ना प्रारम्भ किया। तब ब्रह्मा ने इनसे त्राण पाने के लिए, विष्णु को जगाया। निद्रा से उठकर विष्णु युद्ध करने लगे। बहुत दिनों तक युद्ध होने पर भी कैटभ क्लान्त न हुआ। अनन्तर इन असुरों ने विष्णु से कहा 'हम तुम्हारी युद्ध कला से प्रसन्न हैं, तुम वर माँगो।" विष्णु ने कहा—

'भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि।
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया।।'

यदि तुम प्रसन्न हो, तो तुम दोनों मेरे हाथों मारे जाओ, मैं यही वर माँगता हूँ। अनंतर विष्णु ने उन का वध किया।

(२) **हिरणयाक्ष और हिरण्यकशिपु** — हिरण्यकशिपु के लिए देखिए पृष्ठ ५७ और ११८। हिरण्याक्ष के लिए देखिए पृष्ठ १६५-६६।

(३) **बलि**— देखिए पृष्ठ ४२२-२३।

(४) **परशुराम और सहस्त्रबाहु**— देखिए पृष्ठ ३०७-०८ और ३११-१२।

दो०—रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ।।६।।

भावार्थ—श्री रामजी के चरणकमलों में सिर नवाकर (उनकी शरण में जाकर) उनको जानकी जी सौंप दीजिये और आप पुत्र को राज्य देकर बन में जाकर श्री रघुनाथ जी का भजन कीजिये।

नाथ दीनदयाल रघुराई । बाघउ सनमुख गएँ न खाई ॥
चाहिअ करन सो सब करि बीते । तुम्ह सुर असुर चराचर जीते ॥
संत कहहिं असि नीति दसानन । चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥
तासु भजन कीजिअ तहँ भर्ता । जो कर्ता पालक संहर्ता ॥
सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी । भजहु नाथ ममता सब त्यागी ॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी । भूप राजु तजि होहिं बिरागी ॥
सोइ कोसलाधीस रघुराया । आयउ करन तोहि पर दाया ॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन । सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन ॥

भावार्थ– हे नाथ! श्री रघुनाथ जी तो दीनदयालु हैं । सम्मुख (शरण)जाने पर तो बाघ भी नहीं खाता । आपको जो कुछ करना चाहिये था, आप वह सब कर चुके । आपने देवता, राक्षस तथा चर अचर सभी को जीत लिया । हे दशमुख! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन (बुढापे में) राजा को बन में चला जाना चाहिये । हे भर्ता ! वहाँ (वन में) आप उनका भजन कीजिये जो सृष्टि के रचने वाले, पालने वाले और संहार करने वाले हैं । हे नाथ ! आप विषयों की सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागत पर प्रेम करने वाले भगवान का भजन कीजिये, जिनके लिए श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं ; और राजा राज्य छोड़ कर वैरागी हो जाते हैं । वही कोसलाधीस श्री रघुनाथ जी आपपर दया करने आये हैं । हे प्रियतम! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यन्त पवित्र और सुन्दर यश तीनों लोकों में फैल जायेगा । ''

दो०– अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात ।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात ।।७।।

भावार्थ– ऐसा कहकर, नेत्रों में (करूणा का) जल भरकर और पति के चरण पकड़कर, काँपते हुए शरीर से मन्दोदरी ने कहा ''हे नाथ ! श्री रघुनाथ जी का भजन कीजिये, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाय ।''

तब रावन मयसुता उठाई । कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना । जग जोधा को मोहि समाना ॥
बरुन कुबेर पवन जम काला । भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला ॥
देव दनुज नर सब बस मोरें । कवन हेतु उपजा भय तोरें ॥
नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई । सभाँ बहोरि बैठ सो जाई ॥
मंदोदरीं हृदयँ अस जाना । काल बस्य उपजा अभिमाना ॥
सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा । करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा ॥

कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा । बार बार प्रभु पूछहु काहा ॥
कहहु कवन भय करिअ बिचारा । नर कपि भालु अहार हमारा ॥

भावार्थ– तब रावण ने मन्दोदरी को उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा–" हे प्रिये! सुन, तू व्यर्थ ही भय मान रही है । बता तो जगत में मेरे समान योद्धा है कौन ? वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालों को तथा काल को भी मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत लिया । देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वश में हैं । फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया ? " उसने बहुत तरह से उसे समझाकर कहा और फिर वह सभा में जाकर बैठ गया । मन्दोदरी ने हृदय में ऐसा जान लिया कि काल के वश होने से पति को अभिमान उत्पन्न हो गया है । सभा में आकर उसने मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा ? मन्त्री कहने लगे– "हे राक्षसों के नाथ ! प्रभु ! सुनिये । आप बार-बार क्या पूछते हैं? कहिये तो, कौन से बड़े भय का विचार किया जाय? (भय की बात ही क्या है)? मनुष्य, बानर और भालू तो हमारे आहार हैं ।"

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । मन्दोदरी के परामर्श की अवहेलना करता हुआ, रावण राजसभा में जा बैठा और मन्त्रियों से रणनीति के विषय में मन्त्रणा करने लगा । चाटुकार मन्त्रियों ने यह कहकर बात टाल दी कि "मनुष्य, बानर और भालू तो हमारे नित्य के आहार हैं। उनसे युद्ध करने के विषय में क्या सोचना?" परन्तु रावण के पुत्र प्रहस्त ने ठकुर सुहाती कहने वाले मन्त्रियों से रावण को सावधान किया । "हमारे मन्त्रियों में तो बहुत थोड़ी बुद्धि है, क्योंकि उनमें से किसी ने तनिक भी नीति की बात नहीं की । आपके प्रश्न को बहुत ही साधारण समझा और बड़ा ही परिहास पूर्ण उत्तर दिया क्योंकि इन्होंने अवसर के महत्व और परिस्थिति की जटिलता को समझने की चेष्टा तक नहीं की । नर, बानर, एवं भालु जब इतने बड़े सागर पर सेतु बनाकर सेना सहित आये हैं तो क्या अपना भक्षण कराने के लिये ? उन्होंने अपनी रणनीति पर भली प्रकार विचार कर लिया होगा और जब उन्हें अपनी विजय का निश्चय या विश्वास हो गया है तभी यहाँ आये हैं । संसार में अपने प्राण सब को प्यारे होते हैं । व्यर्थ में प्राण गँवाने कोई नहीं जाता । क्या हमारे मन्त्रियों ने इस साधारण सी नीति पर विचार किया है ?"

दो०– सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि ।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि ।।८।।

भावार्थ– कानों से सब के बचन सुनकर रावण का पुत्र प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा– "हे प्रभु ! नीति के प्रतिकूल कुछ भी नहीं करना चाहिये, मन्त्रियों में बहुत थोड़ी बुद्धि है ।

कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती । नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा । तासु चरित मन महुँ सबु गावा ॥
छुधा न रही तुम्हहि तब काहू । जारत नगरु कस न धरि खाहू ॥
सुनत नीक आगें दुख पावा । सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा ॥
जेहिं बारीस बँधायउ हेला । उतरेउ सेन समेत सुबेला ॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई । बचन कहहिं सब गाल फुलाई ॥
तात बचन मम सुनु अति आदर । जनि मन गुनहु मोहि करि कादर ॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती । सीता देइ करहु पुनि प्रीती ॥

भावार्थ– वे सभी मूर्ख (खुशामदी) मन्त्री ठकुर सुहाती (मुँहदेखी)कह रहे हैं। हे नाथ ! इस प्रकार की बातों से पूरा नहीं पड़ेगा । एक ही बन्दर समुद्र लाँघकर आया था । उसका चरित्र सब लोग अब भी मन ही मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते हैं)। उस समय तुम लोगों में से किसी को भूख न थी ?(बन्दर तो तुम्हारा भोजन ही है, फिर)नगर जलाते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया ? इन मन्त्रियों ने स्वामी (आप)को ऐसी सम्मति सुनाई है जो सुनने में अच्छी है, पर जिससे आगे चलकर दुःख पाना होगा । जिसने खेल-ही-खेल में समुद्र बँधा लिया और जो सेना सहित सुबेल पर्वत पर आ उतरा ! हे भाई ! कहो वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे ? सब गाल फुलाकर-फुलाकर (पागलों की तरह)बचन कह रहे हैं । हे तात ! मेरे वचनों को बहुत आदर से (बड़े गौर से)सुनिये । मुझे मन में कायर न समझ लीजियेगा । जगत में ऐसे मनुष्य झुंड-के-झुंड (बुहत अधिक)हैं, जो प्यारी (मुँह पर मीठी लगने वाली) बात ही कहते हैं और सुनते हैं । हे प्रभो ! सुनने में कठोर परन्तु (परिणाम में)परम हितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं । नीति सुनिये, (उसके अनुसार)पहले दूत भेजिये, और (फिर)सीता को देकर श्री राम जी से प्रीति (मेल)कर लीजिये ।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । इसमें एक लोकोक्ति है:

'प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ।
बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ।।'

इस संसार में ऐसे मनुष्य बहुत अधिक हैं, जो केवल प्यारी अथवा मीठी लगने वाली बात ही कहते और सुनते हैं । यह बातें सत्यता से दूर होने के कारण हानिकारक होती हैं और प्राय: अंधेरे में रखकर ठीक प्रकार से विचार करने का अवसर तक नहीं देतीं । सुनने में कठोर अर्थात अच्छे न लगने वाले परन्तु परिणाम में परम हितकारी बचन जो सुनते हैं

और कहते भी हैं, ऐसे मनुष्य इस संसार में बहुत थोड़े ही होते हैं क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों में आत्मनियन्त्रण और हृदय की स्वच्छता की परम आवश्यकता होती है।

ऊपर की लोकोक्ति में जो भाव है, उसका एक और पहलू शेक्सपियर ने अपने "Hamlet" में रखा है। लियर्टिस जब विदेश यात्रा के लिए रवाना होता है, तब उसका पिता पोलोनियस उसको कुछ नीति की बातें समझाता हुआ कहता है :

"Give every man thine ear, but few thy voice :
Take each man's censure, but reserve thy judgment."*

अर्थात्, सुनो सबकी, परन्तु करो अपने विवेक के अनुसार।

दो०– नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि ।।९।।

भावार्थ– यदि वे स्त्री पाकर लौट जायँ, तब तो (व्यर्थ) झगड़ा न बढ़ाइये। नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात! सम्मुख युद्ध भूमि में उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिये।

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ।।
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई ।।
अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई ।।
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा ।।
हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुँ भेषज जैसें ।।
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा ।।
लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा ।।
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन ।।
बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।।

भावार्थ– हे प्रभो! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत में दोनों ही प्रकार आपका सुयश होगा।" रावण ने गुस्से में भर कर पुत्र से कहा–"अरे मूर्ख! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखायी। अभी से हृदय में सन्देह (भय) हो रहा है ? हे पुत्र! तू तो बाँस की जड़ में घमोई (कांटेदार झाड़ी) हुआ (तू तो वंश के अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ)।" पिता की अत्यन्त घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त कड़े वचन कहता हुआ घर को चला गया-"हित की सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आप पर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्यु के वश हुए (रोगी) को दवा नहीं लगती।" सन्ध्या का समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओं को देखता हुआ महल चला। लंका की चोटी पर एक अत्यन्त विचित्र महल

* Hamlet, Act II, Scene 3.

था। वहाँ नाचगान का अखाड़ा जमता था। रावण उस महल में जाकर बैठ गया। किन्नर उसके गुणसमूहों को गाने लगे। ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और वीणा बज रहे हैं। नृत्य में प्रवीण अप्सराएँ नाच रहीं हैं।

टिप्पणी-- ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है। अपनी पत्नी मन्दोदरी और अपने पुत्र प्रहस्त की मन्त्रणा को रावण ने तिरस्कृत कर दिया, और आने वाली विपत्ति की र से, शुतुरमुर्ग की तरह, उसने अपनी आँखे बन्द कर लीं। मन बहलाव के लिये लंका की चोटी पर जो एक विचित्र महल था उसमें चला गया। वहाँ किन्नर उसके गुण समूह का गान कर रहे थे। करताल, मृदंग और वीणा बज रहे थे। नृत्य में प्रवीण अप्सराएँ नाच रही थीं।

दो०--सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास ।।१०।।

भावार्थ-- वह निरन्तर सैकड़ों इन्द्रों के समान भोग-विलास करता रहता था। यद्यपि (श्री रामजी-सरीखा)अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है, फिर भी न तो उसको चिन्ता है और न डर ही है।

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा ।।
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी ।।
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए ।।
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला ।।
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा ।।
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना ।।
बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना ।।
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन ।।

भावार्थ-- यहाँ श्री रघुबीर सुबेल पर्वत पर सेना की बड़ी भीड़ (बड़े समूह)के साथ उतरे। पर्वत का एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय समतल और विशेषरूप से उज्ज्वल शिखर देखकर, वहाँ लक्ष्मण जी ने वृक्षों के कोमल पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथों से सजा कर बिछा दिये। उस पर सुन्दर और कोमल मृगछाला बिछा दी। उसी आसन पर कृपालु श्री रामजी विराजमान थे। प्रभु श्री राम जी बानरराज सुग्रीव की गोद में अपना सिर रक्खे हैं। उनके बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस (रक्खा है)। वे अपने दोनों कर कमलों से बाण सुधार रहे हैं। विभीषण जी कानों से लगकर सलाह कर रहे हैं। परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान अनेकों प्रकार से प्रभु के चरण कमलों को दबा रहे हैं। लक्ष्मण जी कमर में तरकस कसे और हाथों में धनुष-बाण लिये वीरासन से प्रभु के पीछे सुशोभित हैं।

दो०—एहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन ।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन ।।११(क)।।

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक ।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक ।।११(ख)।।

भावार्थ— इस प्रकार कृपा, रूप (सौन्दर्य) और गुणों के धाम श्री राम जी बिराजमान हैं। वे मनुष्य धन्य हैं जो सदा इस ध्यान में लौ लगाये रखते हैं। पूर्व दिशा की ओर देखकर प्रभु श्री रामजी ने चन्द्रमा को उदय हुआ देखा। तब वे सबसे कहने लगे—"चन्द्रमा को तो देखो। कैसा सिंह के समान निडर है।

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी ।।
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी ।।
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा ।।
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई ।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई ।।
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर मह परी स्यामता सोई ।।
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ।।
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं ।।
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ।।
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी ।।

भावार्थ— पूर्व दिशारूपी पर्वत की गुफा में रहने वाला, अत्यन्त प्रताप, तेज और बल की राशि यह चन्द्रमा रूपी सिंह अन्धकार रूपी मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके, आकाश रूपी बन में निर्भय विचर रहा है। आकाश में बिखरे हुए तारे मोतियों के समान हैं, जो रात्रि रूपी सुन्दर स्त्री के श्रृंगार हैं।" प्रभु ने कहा—"भाइयों! चन्द्रमा में जो कालापन है वह क्या है? अपनी बुद्धि के अनुसार कहो।" सुग्रीव ने कहा — "हे रघुनाथ जी! सुनिये चन्द्रमा में पृथ्वी की छाया दिखायी दे रही है।" किसी ने कहा—"चन्द्रमा को राहु ने मारा था। वही (चोट का) काला दाग हृदय पर पड़ा हुआ है।" कोई कहता है—"जब ब्रह्मा ने (कामदेव की स्त्री) रति का मुख बनाया, तब उसने चन्द्रमा का सार (सर्वश्रेष्ठ भाग निकाल लिया) जिससे रति का मुख तो परम सुंदर बन गया, परन्तु चन्द्रमा के हृदय में छेद हो गया। वही छेद चन्द्रमा के हृदय में वर्तमान है, जिसकी राह से आकाश की काली छाया उसमें दिखायी पड़ती है। श्री राम जी ने कहा—"विष चन्द्रमा का बहुत प्यारा भाई है। इसी से उसने विष को अपने हृदय में स्थान दे रक्खा है। विषयुक्त अपने किरण समूहों को फैला कर

वह वियोगी नर-नारियों को जलाता रहता है।''

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। बालकाण्ड में पृष्ठ २८०-८१ पर बताया गया है कि राम-लक्ष्मण जब धनुष यज्ञ में पधारे तो दर्शकों ने जिसकी जैसी भावना थी, उसने भगवान को उसी के अनुसार देखा। कुछ ऐसा ही भाव ऊपर की चौपाई में व्यक्त किया गया है। लंका में सुबेल पर्वत पर जब सेना पहुँच गयी तो राम सुग्रीव की गोद से सिर रखे हुए विश्राम कर रहे हैं। रात हो गयी है। चन्द्रमा निकल आया। चन्द्रमा को देख कर राम ने कहा—''चन्द्रमा में काला धब्बा क्यों है ? अपनी बुद्धि के अनुसार कहो।'' अलग-अलग लोगों ने चन्द्रमा में धब्बे के अलग-अलग कारण बताये।

१— सुग्रीव ने कहा— चन्द्रमा में पृथ्वी की छाया दिखायी दे रही है।

२— औरों ने कहा— चन्द्रमा को राहु ने मारा था। उसी चोट का काला दाग हृदय पर पड़ा हुआ है। अन्तर्कथा के लिये देखिये पृष्ठ २१।

३— अन्य व्यक्तियों ने कहा—ब्रह्मा ने जब रति का मुख बनाया तब उसने चन्द्रमा का सर्वश्रेष्ठ भाग निकाल लिया, जिससे रति का मुख तो सुन्दर बन गया, परन्तु चन्द्रमा के हृदय में छेद हो गया।

४— राम ने कहा— विष चन्द्रमा का बहुत प्यारा भाई है। इसी से उसने विष को अपने हृदय में स्थान दे रक्खा है।

५— हनुमान ने कहा—चन्द्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुन्दर, श्याममूर्ति चन्द्रमा के हृदय में बसती है। वही श्यामलता की झलक चन्द्रमा में है।

हनुमान की उत्प्रेक्षा सबसे सुन्दर थी, जिसको सुनकर श्री राम हँसे।

दो०—कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तब मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥१२(क)॥
पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान ॥१२(ख)॥

भावार्थ—हनुमान जी ने कहा—''हे प्रभो! सुनिये, चन्द्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुन्दर श्याम मूर्ति चन्द्रमा के हृदय में बसती है, वही श्यामता की झलक चन्द्रमा में है।'' पवनपुत्र हनुमान जी के वचन सुनकर सुजान श्री राम जी हँसे। फिर दक्षिण की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले—

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला । होई न तड़ित न बारिद माला ॥
लंका सिखर उपर आगारा । तहँ दसकंधर देख अखारा ॥
छत्र मेघडंबर सिर धारी । सोइ जनु जलद घटा अति कारी ॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा । सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना ॥

भावार्थ– ''हे विभीषण दक्षिण दिशा की ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है, और बिजली चमक रही है । भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के)स्वर से गरज रहा है । कहीं कठोर ओलों की वर्षा न हो ।'' विभीषण बोले- ''हे कृपालु ! सुनिये! यह न तो बिजली है, न बादलों की घटा । लंका की चोटी पर एक महल है । दशग्रीव रावण वहाँ (नाच-गान का)अखाड़ा देख रहा है । रावण ने सिर पर मेघडंबर (बादलों के डंबर जैसा विशाल और काला)छत्र धारण कर रक्खा है । वही मानों बादलों की अत्यन्त काली घटा है । मन्दोदरी के कानों में जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो ! वही मानो बिजली चमक रही है । हे देवताओं के सम्राट ! सुनिये, अनुपम ताल और मृदंग बज रहे हैं । वही मधुर ध्वनि गर्जन है ।'' रावण का अभिमान समझकर प्रभु मुस्कराये । उन्होंने धनुष चढ़ाकर उस पर बाण का सन्धान किया।

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान ।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ।।१३(क)।।
अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग ।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग ।।१३(ख)।।

भावार्थ– और एक ही बाण से (रावण के)छत्र-मुकुट और (मन्दोदरी के)कर्ण फूल काट गिराये । सब के देखते-देखते वे जमीन पर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसी ने नहीं जाना । ऐसा चमत्कार करके श्री राम जी का बाण (वापस) आकर (फिर)तरकस में जा घुसा । यह महान रस-भंग (रंग में भंग)देखकर रावण की सारी सभा भयभीत हो गयी।

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा । अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा ॥
सोचहिं सब निज हृदय मझारी । असगुनि भयउ भयंकर भारी ॥
दसमुख देखि सभा भय पाई । बिहसि बचन कह जुगुति बनाई ॥
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही । मुकुट परे कस असगुन ताही ॥
सयन करहु निज निज गृह जाई । गवने भवन सकल सिर नाई ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ । जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ ॥

सजल नयन कह जुग कर जोरी । सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ।।

कंत राम बिरोध परिहरहू । जानि मनुज जनि हठ मन धरहू ।।

भावार्थ– न भूकम्प हुआ, न बहुत जोर की हवा (आँधी)चली, न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रों से देखे (फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल कैसे कटकर गिर पड़े)? सभी अपने-अपने हृदय में सोच रहे हैं कि यह बड़ा भयंकर अपशकुन हुआ । सभा को भयभीत देख कर रावण ने हँसकर युक्ति रचकर ये बचन कहे–''सिरों का गिरना भी जिसके लिए निरन्तर शुभ होता रहा है, उसके लिये मुकुट का गिरना अपशकुन कैसा ? अपने-अपने घर जाकर सो रहो (डरने की कोई बात नहीं है)।'' तब सब लोग सिर नवाकर घर गये । जब से कर्णफूल पृथ्वीपर गिरा, तब से मन्दोदरी के हृदय में सोच बस गया । नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से)कहने लगी– ''हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिये । हे प्रियतम! श्री राम से विरोध छोड़ दीजिये । उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिये ।

दो०–बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु ।

लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ।।१४।।

भावार्थ– मेरे इन बचनों पर विश्वास कीजिये कि वे रघुकुल के शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी विश्वरूप हैं (यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है), वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं,

पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ।।

भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घन माला ।।

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।

श्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ।।

अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।।

आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।।

रोम राजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।।

उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कलपना ।।

भावार्थ– पाताल (जिन विश्व रूप भगवान का)चरण है, ब्रह्म लोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति)जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर है । भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौहों का चलाना)है । सूर्य नेत्र हैं, बादलों का समूह बाल हैं । अश्विनी कुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना या खोलना)हैं । दसो दिशाएं कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं । वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है । लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत हैं । माया हँसी है,

दिगपाल भुजाए हैं, अग्नि मुख है, वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है। अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ है, नदियाँ नसों का जाल हैं, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं। अधिक कल्पना (अहापोह)क्या की जाय?

दो०–अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ॥१५(क)॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ ॥१५(ख)॥

भावार्थ– शिव जिनका अहंकार है, ब्रह्मा बुद्धि है, चन्द्रमा मन है और महान (विष्णु) ही चित्त है। वही चराचर रूप साकार सर्वेश्वर (अर्थात् जिसमें साक्षात् यह सब गुण हैं) मानव रूप में श्री राम जी होकर निवास कर रहे हैं। हे प्राणपति ! सुनिये, ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर श्री रघुबीर के चरणों में प्रेम कीजिये, जिससे मेरा सुहाग न जाय।"

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥
सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा प्रसाद अब तोरें॥
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥
तब बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मंदोदरी मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मतिभ्रम भयऊ॥

भावार्थ– पत्नी के वचन कानों से सुनकर रावण खूब हँसा (और बोला–) "अहो! मोह (आज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान है। स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं। साहस, झूठ बोलना, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन), अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का समग्र (विराट)रूप गाया और उसका मुझे बड़ा भारी भय सुनाया। हे प्रिये ! यह सब (यह चराचर विश्व तो)स्वभाव से ही मेरे वश में है। तेरी कृपा से मुझे यह अब समझ पड़ा। हे प्रिये ! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने)मेरी प्रभुता का बखान कर रही है। हे मृगनयनी ! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यभरी)हैं, समझने पर सुख देने वाली और सुनने से भ्रम छुड़ाने वाली हैं।" मन्दोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को काल वश मतिभ्रम हो गया है।

टिप्पणी– जब सुबेल पर्वत से छोड़ा हुआ राम-बाण रावण का मुकुट और छत्र और मन्दोदरी का कर्णफूल भेद कर पुनः तरकस में लौट आया, तब मन्दोदरी ने इसे अपशकुन समझकर रावण को बहुत समझाया कि वह राम को साधारण पुरुष न समझे। राम स्वयं सच्चिदानन्द भगवान हैं। उनसे बैर करना काल को निमन्त्रण देना है। पर रावण कब मानने वाला था (देखिये पृष्ठ ८८७)। उसने मन्दोदरी की विनती को अनसुनि कर दिया क्योंकि स्त्रियों की कही हुई बात पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। रावण ने स्त्रियों में आठ अवगुण गिनाए–साहस, झूठ बोलना, चंचलता, छल, कायरता, अविवेक, अपवित्रता और निर्दयता।

न केवल रावण के मुख से, अपितु राम के मुख से भी तुलसीदास जी ने स्त्रियों की निंदा कराई है (देखिये अरण्यकाण्ड, दोहा ४३ -४४ और उनके बीच की चौपाई-पृष्ठ ७७५-७७)। सबसे खेद की बात तो यह है कि स्थान-स्थान पर गोस्वामी जी ने स्त्रियों की निंदा स्त्रियों से ही करायी है–

१. **पार्वती द्वारा**– "जदपि जोषिता नहिं अधिकारी "–बालकाण्ड, पृष्ठ १५२

२. **अहल्या द्वारा** – "मैं नारि अपावन "–बालकाण्ड, पृष्ठ २५२

३. **अनुसुइया द्वारा**–"सहज अपाविनि नारि "– अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ७१०

तुलसीदास जी पर स्त्रियों की इस प्रकार निंदा का महापातक लगाया जाता है;पर यह अपराध उन्होंने अपनी विरति की पुष्टि के लिये किया है। उसे उनका वैरागीपन समझना चाहिए। सब रूपों में स्त्रियों की निंदा उन्होंने नहीं की है। केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में दांपत्य रति के आलंबन के रूप में की है--माता, पुत्री, भगिनी आदि के रूप में नहीं। इससे सिद्ध होता है कि स्त्री जाति के प्रति उन्हें कोई द्वेष नहीं था। अतः उक्त रूप में स्त्रियों की जो निंदा उन्होंने की है, वह अधिकतर तो अपने ऐसे और विरक्तों के वैराग्य को दृढ़ करने के लिये, और कुछ लोक की अत्यंत आसक्ति को कम करने के विचार से। उन्होंने प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों के लिये कुछ न कुछ कहा है। उनकी कुछ बाते तो विरक्त साधुओं के लिये हैं, कुछ साधारण गृहस्थों के लिये, कुछ विद्वानों और पंडितों के लिये। अतः स्त्रियों को जो स्थान-स्थान पर बुरा कहा है, उसका ठीक तात्पर्य यह नहीं कि वे सचमुच वैसी ही होती हैं, बल्कि यह मतलब है कि उनमें आसक्त होने से बचने के लिये उन्हें वैसा ही मान लेना चाहिए। किसी वस्तु से विरक्त करना जिसका उद्देश्य है वह अपने उद्देश्य का साधन उसे बुरा कहकर ही कर सकता है। अतः स्त्रियों के संबंध में गोस्वामी जी ने जो कहा है, वह सिद्धान्त वाक्य नहीं है, अर्थवाद मात्र है। स्त्रियों से काम उत्पन्न होता है, धन से लोभ उत्पन्न होता है, प्रभुता से मद उत्पन्न होता है, इसलिये काम, मद, लोभ आदि से बचने की उत्तेजना उत्पन्न करने के लिये वैराग्य का उपदेश देने वाले कंचन, कामिनी और प्रभुत्व की निंदा कर दिया करते हैं। बस इसी रीति का पालन बाबा जी ने भी किया है। वे थे तो बैरागी ही। यदि कोई

सन्यासिनी अपनी बहिनों को काम, क्रोध आदि से बचने का उपदेश देने बैठे तो पुरुषों को इसी प्रकार ''अपावन'' और ''सब अवगुणों की खान'' कह सकती है। पुरुषपतंगों के लिये गोस्वामी जी ने स्त्रियों को जिस प्रकार दीपशिखा कहा है, उसी प्रकार स्त्री पतंगियों के लिये वह पुरुषों को भाड़ कहेगी।

तुलसीदास कट्टर मर्यादावादी थे, कार्यक्षेत्रों के प्राचीन विभाग के पूरे समर्थक थे। पुरुषों की अधीनता में रहकर गृहस्थी कार्य सँभलना ही वे स्त्रियों के लिये बहुत समझते थे। उन्हें घर के बाहर निकालने वाली स्वतन्त्रता को वे बुरा समझते थे। पर यह भी समझ रखना चाहिए कि ''जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी'' कहते समय उनका ध्यान ऐसी ही स्त्रियों पर था जैसी कि साधारणतः पाई जाती हैं, गार्गी और मैत्रेयी की ओर नहीं। उन्हें गार्गी और मैत्रेयी बनाने की चिन्ता उन्होंने कहीं प्रकट नहीं की है। स्त्रियों के लिये साधारण उपदेश उनका वही समझना चाहिये जो ''ऋषिवधू'' ने ''सरल मृदुबानी'' से सीता जी को दिया था।

दो०—एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध ।।१६(क)।।

सो०—फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ।।१६(ख)।।

भावार्थ— इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत से विनोद करते हुए रावण को सवेरा हो गया। तब स्वभाव से ही निडर और घमण्ड में अंध लंकापति सभा में गया। यद्यपि बादल अमृत सा जल बरसाते हैं, तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्ख के हृदय में चेत ज्ञान नहीं होता।

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई।।
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई।।
सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी।।
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालिकुमारा।।
नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना।।
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा।।
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ।।
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई।।

भावार्थ– यहाँ (सुबेल पर्वत पर) प्रातःकाल श्री रघुनाथ जी जागे और उन्होंने सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइये, अब क्या उपाय करना चाहिये? जाम्बवान् ने श्री राम जी के चरणों में सिर नवाकर कहा–"हे सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले)! हे सब के हृदय में बसने वाले (अन्तर्यामी)! बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणों की राशि! सुनिये, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर भेजा जाये।" यह अच्छी सलाह सब के मन में जँच गयी। कृपा के निधान श्री राम जी ने अंगद से कहा–"हे बल, बुद्धि और गुणों के धाम बालि पुत्र! हे तात! तुम मेरे काम के लिये लंका जाओ। तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ? मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो। शत्रु से वही बात-चीत करना जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो।"

सो०–प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन सागर ईस राम कृपा जा पर करहु ॥१७(क)॥
स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ ॥
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ ॥१७(ख)॥

भावार्थ– प्रभु की आज्ञा सिर चढ़ाकर और उनके चरणों की वन्दना करके, अंगद जी उठे (और बोले–) "हे भगवान् श्री राम जी! आप जिस पर कृपा करें, वही गुणों का समुद्र हो जाता है। स्वामी के सब कार्य अपने आप सिद्ध हैं, यह तो प्रभु ने मुझको आदर दिया है (जो मुझे अपने कार्य पर भेज रहे हैं)।" ऐसा विचार कर युवराज अंगद का हृदय हर्षित और शरीर पुलकित हो गया।

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका ॥
पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गै भेटा ॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥
तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई ॥
निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥
एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी ॥
अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा ॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई ॥

भावार्थ– चरणों की वन्दना करके और भगवान् की प्रभुता हृदय में धरकर, अंगद सबको सिर नवाकर चले। प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण किये हुए रणबाँकुरे वीर बालिपुत्र

स्वाभाविक ही निर्भय हैं। लंका में प्रवेश करते ही रावण के पुत्र से भेंट हो गयी, जो वहाँ खेल रहा था। बातों-ही-बातों में दोनों में झगड़ा बढ़ गया (क्योंकि)दोनों ही अतुलनीय बलवान थे, और फिर दोनों की युवावस्था थी। उसने अंगद पर लात उठायी। अंगद ने (वही) पैर पकड़कर उसे घुमाकर जमीन पर दे पटका (मार गिराया)। राक्षस के समूह भारी योद्धा देखकर जहाँ-तहाँ भाग चले। वे डर के मारे पुकार भी न मचा सके। एक दूसरे से मर्म (असली बात)नहीं बतलाते। उसका (रावण के पुत्र का)वध समझकर सब चुपचाप मार कर रह जाते हैं। (रावण-पुत्र की मृत्यु जानकर और राक्षसों को भय के मारे भागते देखकर) नगर भर में कोलाहल मच गया कि जिसने लंका जलाई थी, वही वानर फिर आ गया है। सब अत्यन्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा। वे बिना पूछे ही अंगद को (रावण के दरबार की)राह बता देते हैं। जिसे ही वे देखते हैं, वही डर के मारे सूख जाता है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है। रामचन्द्र जी ने सन्धि-प्रस्ताव लेकर अंगद को अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजा। लंका में प्रवेश करते ही अंगद की भेट रावण के एक पुत्र से हो गयी। उस पुत्र ने अंगद को लात मारी। अंगद ने उसी लात को पकड़ के रावण-पुत्र को धर पटका और उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु का समाचार पाते ही सारे राक्षस भयभीत हो गये। और उनमें हलचल मच गयी। वे समझे की हनुमान फिर लंका का संहार करने आ गये हैं। मारे डर के बिना पूछे ही उन्होंने अंगद को रावण के दरबार की राह बता दी।

दो०– गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज।।१८।।

भावार्थ– श्री राम के चरण कमलों का स्मरण करके अंगद रावण की सभा के द्वार पर गये। और वे धीर, वीर और बल की राशि अंगद सिंह की सी ऐड़ (शान)से इधर-उधर देखने लगे।

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा।।
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा।।
आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए।।
अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें।।
भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना।।
गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा।।
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी।।

भावार्थ— तुरंत ही उन्होंने एक राक्षस को भेजा और रावण को अपने आने का समाचार सूचित किया। सुनते ही रावण हँसकर बोला—"बुला लाओ, (देखे)कहाँ का बंदर है।" आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौड़े और वानरों में हाथी के समान अंगद को बुला लाये। अंगद ने रावण को ऐसे बैठे हुए देखा जैसे कोई प्राणयुक्त (सजीव) काजल का पहाड़ हो। भुजाएँ वृक्षों और सिर पर्वतों के शिखरों के समान हैं। रोमावली मानों बहुत सी लताएँ हैं। मुँह, नाक, नेत्र और कान पर्वत की कन्दराओं और खोहों के बराबर हैं। अत्यन्त बलवान बाँके वीर बालिपुत्र अंगद सभा में गये। वे मन में जरा भी नहीं झिझके। अंगद को देखते ही सब सभासद उठ खड़े हुए। यह देखकर रावण के हृदय में बड़ा क्रोध हुआ।

दो०— जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ ।।१९।।

भावार्थ— जैसे मतवाले हाथियों के झुंड में सिंह निःशंक होकर चला जाता है, वैसे ही रामजी के प्रताप का हृदय में स्मरण करके वे निर्भय सभा में सिर नवाकर बैठ गये।

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर ।।
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तब हित कारन आयउँ भाई ।।
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ।।
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा ।।
नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा ।।
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ।।
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी ।।
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें ।।

भावार्थ— रावण ने कहा—"अरे बंदर! तू कौन है?" (अंगद ने कहा) "हे दशग्रीव! मैं रघुबीर का दूत हूँ। मेरे पिता से और तुमसे मित्रता थी। इसलिये हे भाई! मैं तुम्हारी भलाई के लिये ही आया हूँ। तुम्हारा उत्तम कुल है, तुम पुलस्त्य ऋषि के पौत्र हो। शिवजी और ब्रह्मा जी की तुमने बहुत प्रकार से पूजा की है। उनसे वर पाये हैं और सब काम सिद्ध किये हैं। लोकपालों और सब राजाओं को जीत लिया है। राजमद से या मोहवश तुम जगज्जननी सीता को हर लाये हो। अब तुम मेरे शुभ वचन (मेरी हित भरी सलाह) सुनो। (उसके अनुसार चलने से) प्रभु श्री राम जी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे। दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियों सहित अपनी स्त्रियों को साथ लेकर, आदर पूर्वक जानकी जी को आगे करके, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो।

दो०—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि ।।२०।।

भावार्थ–और 'हे शरणागत के पालन करने वाले रघुवंशमणि श्री राम जी ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये -' इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो । आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे ।''

रे कपिपोत बोलु संभारी । मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ।।
कहु निज नाम जनक कर भाई । केहि नातें मानिऐ मिताई ।।
अंगद नाम बालि कर बेटा । तासों कबहुँ भई ही भेटा ।।
अंगद बचन सुनत सकुचाना । रहा बालि बानर मैं जाना ।।
अंगद तहीं बालि कर बालक । उपजेहु बंस अनल कुल घालक ।।
गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु । निज मुख तापस दूत कहायहु ।।
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचन तब अंगद कहई ।।
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई । बूझेहु कुसल सखा उर लाई ।।
राम बिरोध कुसल जसि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई ।।
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें । श्री रघुबीर हृदय नहिं जाकें ।।

भावार्थ– (रावण ने कहा–) ''अरे बंदर के बच्चे सँभल कर बोल । मूर्ख ! मुझ देवताओं के शत्रु को तूने जाना नहीं । अरे भाई ! अपना और अपने बाप का नाम तो बता । किस नीति से मित्रता मानता है ? (अंगद ने कहा–) ''मेरा नाम अंगद है, मैं बालि का पुत्र हूँ । उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी ।'' अंगद का वचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया (और बोला–) ''हाँ मैं जान गया (याद आया)। बालि नाम का एक बन्दर था । अरे अंगद! तू ही बालि का लड़का है । अरे कुलनाशक ! तू तो अपने कुल रूपी बाँस के लिये अग्नि रूप ही पैदा हुआ । गर्भ में ही क्यों नहीं नष्ट हो गया ? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँह से तपस्वियों का दूत कहलाया । अब बालि की कुशल तो बता, वह (आजकल) कहाँ है ?'' तब अंगद ने हँस कर कहा–''दस (कुछ) दिन बीतने पर स्वयं ही बालि के पास जाकर, अपने मित्र को हृदय से लगाकर, उसी से कुशल पूछ लेना । श्री राम जी से विरोध करने पर जैसी कुशल होती है, वह सब तुमको वे सुनायेंगे । हे मूर्ख ! सुन, भेद उसी के मन में पड़ सकता है, जिसके हृदय में श्री रघुबीर न हों ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । रावण ने अंगद से जब उसके पिता बालि की कुशल पूछी, तो अंगद ने व्यंग से कहा–''दस दिन बीतने पर तुम स्वयम् ही बालि के पास जाकर अपने मित्र को हृदय से लगाकर, उसी से कुशल पूछ लेना ।'' इस व्यंग का बड़ा गूढ़ आशय है । बालि तो राम के हाथों मारा गया था । अंगद ने रावण को सावधान कर दिया कि दस दिन के अन्दर वह भी मारा जायेगा और फिर उसकी स्वर्ग में बालि से भेंट होगी ।

दो०–हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तब बीस ।।२१।।

भावार्थ– सच है, मैं तो कुल का नाश करने वाला हूँ और हे रावण ! तुम कुल के रक्षक हो (तुम्हारी भेद नीति यहाँ काम नहीं कर सकती)। अंधे-बहरे भी ऐसी बात नहीं करते, तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान है।

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई ।।
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा ।।
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी ।।
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ।।
कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी ।।
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी ।।
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। क्षमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी ।।
धर्मसीलता तब जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी ।।

भावार्थ– शिव, ब्रह्मा, देवता और मुनियों के समुदाय जिनके चरणों की सेवा करना चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुल को डुबा दिया ! अरे ऐसी बुद्धि होने पर भी तुम्हारा हृदय विदीर्ण नहीं हो जाता ?'' वानर (अंगद)की कठोर वाणी सुनकर रावण आँखे तरेर कर बोला –''अरे दुष्ट ! मैं तेरे सब कठोर वचन इसलिये सह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्म को जानता हूँ (उन्हीं की रक्षा कर रहा हूँ) ।'' अंगद ने कहा–''तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है कि तुमने परायी स्त्री की चोरी की है। और दूत की रक्षा की बात तो अपनी आँखों से देख ली। ऐसे धर्मव्रत को धारण करने वाले तुम डूबकर मर नहीं जाते। नाक, कान से रहित बहिन को देखकर तुमने धर्म विचार कर ही तो क्षमा कर दिया था। तुम्हारी धर्मशीलता जग-जाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया।''

दो०– जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु ।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु ।।२२(क)।।
पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ।।२२(ख)।।

भावार्थ– (रावण ने कहा–) ''अरे जड़-जन्तु वानर ! व्यर्थ बक-बक न कर। अरे मूर्ख!मेरी भुजाएँ तो देख। ये सब लोकपालों के विशाल बल रूपी चन्द्रमाओं को ग्रसने के लिये राहु हैं। फिर (तुने सुना ही होगा कि)आकाश रूपी तालाब में मेरे भुजाओं रूपी कमलों पर वास करके शिवजी सहित कैलाश हंस के समान सुशोभित हुआ था।

तुम्हरें कटक माझ सुनु अंगद । मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥
सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला । है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा । सुनत बचन कह बालिकुमारा ॥
सत्य बचन कहु निसिचर नाहा । साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अल्प कपि दहई । सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

भावार्थ– अरे अंगद ! सुन, तेरी सेना में बता, ऐसा कौन योद्धा है, जो मुझसे भिड़ेगा । तेरा मालिक तो स्त्री के विरह में बलहीन हो रहा है और उसका छोटा भाई उसी के दुःख से दुःखी और उदास है । तुम और सुग्रीव, दोनों नदी तट के वृक्ष हो । रहा मेरा छोटा भाई विभीषण, सो वह भी बड़ा डरपोक है । मंत्री जामवन्त बहुत बूढ़ा है । अब वह लड़ाई में क्या उद्यत हो सकता है ? नल-नील तो शिला कर्म जानते हैं (वह लड़ना क्या जानें) । हाँ, एक बानर जरूर महान् बलवान है, जो पहले आया था और जिसने लंका जलाई थी ।'' यह वचन सुनते ही बालि पुत्र अंगद ने कहा–''राक्षस राज ! सच्ची बात कहो । क्या उस बानर ने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया ? रावण (जैसे जगद्विजयी योद्धा) का नगर एक छोटे से बानर ने जला दिया । ऐसे वचन सुनकर उन्हें सत्य कौन कहेगा । हे रावण ! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कह कर सराहा है, वह तो सुग्रीव का एक छोटा-सा दौड़कर चलने वाला हरकारा है । जो बहुत चलता है, वह वीर नहीं होता । उसको तो हमने केवल खबर लेने के लिये भेजा था ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई दस सम पंक्तियों की है । रावण ने राम की सेना का परिहास उड़ाना शुरु किया–अंगद और सुग्रीव नदी तट के वृक्ष हैं ; विभीषण डरपोक है; जामवंत बूढ़ा है ; नलनील शिला कर्म जानते हैं, वह लड़ना क्या जानें । हाँ, एक बानर बलवान है, जो पहले आया था और जिसने लंका जलाई थी । रावण के मुख से हनुमान की प्रशंसा सुनकर अंगद ने कहा–''आप जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं । वह तो केवल सुग्रीव का वाहक है।''

दो०– सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ ।।२३(क)।।

सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह ।।२३(ख)।।

प्रीति बिरोध समान सन करि नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि।।२३(ग)

जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष ।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष ।।२३(घ)।।

बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस ।।२३(ङ)।।

हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक ।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ।।२३(च)।।

भावार्थ– क्या सचमुच ही उस बानर ने प्रभु की आज्ञा पाये बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला ? मालूम होता है इसी डर से वह लौटकर सुग्रीव के पास नहीं गया । और कहीं छिप रहा । हे रावण तुम सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है । सचमुच हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुमसे लड़ने में शोभा पाये । प्रीति और वैर बराबरी वाले से ही करना चाहिये । नीति ऐसी ही है । सिंह यदि मेढक को मारे तो क्या उसे कोई भला कहेगा । यद्यपि तुम्हें मारने में श्री रामजी की लघुता है और बड़ा दोष है, तथापि हे रावण ! सुनो, क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है ।'' वक्रोक्ति रूपी धनुष से वचन रूपी बाण मारकर अंगद ने शत्रु का हृदय जला दिया । वीर रावण उन वाणों को मानो प्रत्युत्तर रूपी संसियों से निकाल रहा है । तब रावण हँसकर बोला ''बंदर में यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायों से भला करने की चेष्टा करता है ।

टिप्पणी– समस्त मानस दोहा-चौपाई शैली में लिखी गयी है । चार चौपाइयों के बाद एक दोहे का प्रयोग किया गया है । यह पहला स्थान है जबकि तुलसीदासजी नें चौपाई के बाद एक साथ छः दोहों का प्रयोग किया है । रावण ने जब अंगद से कहा कि राम की सेना में कोई भी वीर बलवान नहीं है, तो अंगद ने वक्रोक्ति में उत्तर दिया–''सचमुच हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है जो तुमसे लड़ने में शोभा पाये । प्रीति और बैर बराबरी वाली के साथ ही करना चाहिये । तुम्हें मारने में श्री राम जी की लघुता है ।'' अंगद की वक्रोक्ति के बाणों को रावण ने प्रत्युत्तर रूपी संसी से निकालते हुये कहा ''बंदर में एक बड़ा गुण यह होता है कि वह अपने पालने वाले का अनेकों उपायों से भला करने की चेष्टा करता है ।''

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई । पति हित करइ धर्म निपुनाई ॥
अंगद स्वामिभक्त तव जाती । प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती ॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना । तव कटु रटनि करउँ नहिं काना ॥
कह कपि तव गुन गाहकताई । सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा । तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा ॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई । दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई ॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा । तुम्हरें लाज न रोष न माखा ॥
जौं असि मति पितु खाए कीसा । कहि अस बचन हँसा दससीसा ॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही । अबहीं समुझि परा कछु मोही ॥
बालि बिमल जस भाजन जानी । हतउँ न तोहि अधम अभिमानी ॥
कहु रावन रावन जग केते । मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते ॥
बलिहि जितन एक गयउ पताला । राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥
एक बहोरि सहसभुज देखा । धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा । सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥

भावार्थ– बंदर को धन्य है, जो अपने मालिक के कार्य के लिये लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है । नाचकूद कर, लोगों को रिझाकर, मालिक का हित करता है । यह उसके धर्म की निपुणता है । हे अंगद ! तेरी जाति स्वामिभक्त है । फिर, भला तू अपने मालिक का गुण इस प्रकार कैसे न कहे ? मैं गुण ग्राहक परम सुजान हूँ, इसी से तेरी जली-कटी बक-बक पर कान (ध्यान)नहीं देता ।'' अंगद ने कहा ''तुम्हारी सच्ची गुणग्राहकता तो मुझे हनुमान ने सुनायी थी । उसने अशोकवन को विध्वंस करके, तुम्हारे पुत्र को मारकर, नगर को जला दिया था । तो भी तुमने (अपनी गुण ग्राहकता के कारण)यही समझा कि उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया । तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव विचारकर, हे दशग्रीव! मैंने कुछ धृष्टता की है । हनुमान ने कुछ कहा था उसे आकर मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें न लज्जा है, न क्रोध है और न चिढ़ है ।'' (रावण बोला)– ''अरे बानर ! जब तेरी ऐसी बुद्धि है, तभी तो तू बाप को खा गया ।'' ऐसा वचन कह कहकर रावण हंसा । अंगद ने कहा–''पिता को खाकर फिर तुझको भी खा डालता, परन्तु अभी तुरन्त कुछ और ही बात मेरी समझ में आ गयी । अरे नीच अभिमानी ! बालि के निर्मल यश का पात्र (कारण) जानकर मैं तुम्हे नहीं मारता । रावण ! यह तो बता कि जगत मे कितने रावण हैं ? मैंने जितने रावण अपने कानों से सुन रक्खे हैं, उन्हें सुन । एक रावण तो बालि को जीतने पाताल में गया था । तब बच्चों

ने उसे घुड़साल में बाँध रक्खा । बालक खेलते थे और जा जाकर उसे मारते थे। बालि को दया लगी, तब उन्होंने उसे छुड़ा दिया। फिर एक रावण को सहस्रबाहु ने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकार के (विचित्र)जन्तु की तरह समझ-कर पकड़ लिया। तमाशे के लिये वह उसे घर ले गया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया।

टिप्पणी— ऊपर लंकाकाण्ड की सबसे लम्बी चौपाई है। इसमें सोलह सम पंक्तियाँ हैं। रावण ने अंगद से कहा—''जब तेरी ऐसी बुद्धि है, तभी तो तू अपने बाप को खा गया।'' अंगद ने तुरन्त उत्तर दिया—''हाँ, पिता को खाकर, मैं तुमको भी खा डालता। परन्तु पता नहीं तुम कौन से रावण हो ?''ऐसा कहकर अंगद रावण की भूतपूर्व पराजयों की विवरणी देने लगा—

१— एक रावण बालि को जीतने पाताल गया था। बच्चों ने उसे घुड़साल में बाँध रक्खा। बालि को दया आ गई, तब उन्होंने उसे छुड़ा दिया।

२— बालि पूजा कर रहा था। रावण वहाँ उपद्रव करने पहुँच गया। बालि ने उसे पकड़कर अपनी बगल में दबा लिया। जब पूजा समाप्त हो गई, तभी उसे छोड़ा (दोहा २४)।

३— एक रावण को सहस्रबाहु ने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विचित्र प्रकार के जन्तु की तरह समझकर पकड़ लिया। तमाशे के लिये वह उसे घर ले गया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया।

दो०— एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ।।२४।।

भावार्थ—एक रावण की बात कहने में तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। वह बहुत दिनों तक बालि की काँख में रहा था। इनमें से तुम कौन से रावण हो? खीजना छोड़कर सच-सच बताओ।"

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला ।।
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ।।
सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ।।
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्ह कें उर साला ।।
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरिआई ।।
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे ।।
जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ।।
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी ।।

भावार्थ– (रावण ने कहा–) ''अरे मूर्ख ! सुन, मैं वहीं बलवान रावण हूँ जिसके भुजाओं की लीला (करामात) कैलाश पर्वत जानता है। जिसकी शूरता उमापति महादेव जी जानते हैं, जिन्हें अपने सिर रूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर मैंने पूजा था। सिररूपी कमलों को अपने हाथों से उतारकर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिवजी की पूजा की है। मेरी भुजाओं का पराक्रम दिग्पाल जानते हैं, जिनके हृदय में वह आज भी चुभ रहा है। दिग्गज (दिशाओं के हाथी) मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं, जिनके भयानक दाँत, जब-जब मैं जाकर उनसे जबरदस्ती भिड़ा, मेरी छाती में कभी नहीं टूटे (अपना चिन्ह भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छाती से लगते ही वे मूली की तरह टूट गये। जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है, जैसे मतवाले हाथी के चढ़ते समय छोटी नाव। मैं वही जगत प्रसिद्ध रावण हूँ। अरे झूठी बकवास करने वाले ! क्या तूने मूझको कानों से नहीं सुना।

दो०– तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान ।।२५।।

भावार्थ– उस (महान प्रतापी और जगत्प्रसिद्ध) रावण को (मुझे) छोटा कहता है और मनुष्य की बड़ाई करता है ? अरे दुष्ट, असत्य, तुच्छ बंदर ! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया।''

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी ।।
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा ।।
जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा ।।
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा ।।
राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ।।
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा ।।
बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन ।।
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा ।।

भावार्थ– रावण के ये वचन सुनकर अंगद ने क्रोध सहित वचन बोले–'' अरे नीच अभिमानी ! संभाल कर (सोच समझकर) बोल। जिनका फरसा सहस्रबाहु की भुजाओं रूपी अपार वन को जलाने के लिये अग्नि के समान था, जिनके फरसारूपी समुद्र की तीव्र धारा में अगणित राज्य अनेकों बार डूब गये, उन परशुराम जी का गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, अरे अभागे दसशीस ! वे मनुष्य क्यों कर हैं ? क्यों रे मूर्ख उद्दण्ड ! श्री रामचन्द्र जी मनुष्य हैं ? कामदेव भी क्या धनुर्धारी है ? और गंगा भी क्या नदी है ? कामधेनु क्या पशु है ? और कल्पवृक्ष क्या पेड़ है ? अन्न भी क्या दान है ? और अमृत क्या रस है ? गरुड़

टिप्पणी– दोहा २५ में रावण ने अंगद को ललकार कर कहा कि "तू मुझे छोटा समझता है और मेरे सामने एक मनुष्य की बड़ाई करता है।" इस पर अंगद ने जवाब दिया कि, "तू श्री राम चन्द्र जी को साधारण मनुष्य समझता है। इनको मनुष्य समझना इतनी ही बड़ी भूल है जितनी कि–

१. **कामदेव** को साधारण धनुर्धारी समझना।

२. **गंगा** को साधारण नदी समझना।

३. **कामधेनु** को साधारण पशु समझना।

४. **कल्पवृक्ष** को साधारण पेड़ समझना।

५. **अन्नदान** को साधारण दान समझना।

६. **अमृत** को साधारण रस समझना।

७. **गरुड़** को साधारण पक्षी समझना।

८. **शेष नाग** को साधारण सर्प समझना।

९. **चिन्तामणि** को साधारण पत्थर समझना।

१०. **बैकुण्ठ** को साधारण लोक समझना।

११. रघुनाथ की **अखण्डभक्ति** को साधारण लाभ समझना।

१२. **हनुमान** को साधारण बंदर समझना।"

दो०–सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि।।२६।।

भावार्थ–सेना समेत तेरा मान मथकर, अशोकवन को उजाड़कर, नगर को जलाकर और तेरे पुत्र को मारकर जो लौट गये, (तू उनका कुछ भी न बिगाड़ सका) क्यों रे दुष्ट! वे हनुमान जी क्या बानर हैं?

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई।।
जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।।
मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला।।
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि राम सर लागें।।
ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना।।
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक।।
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा।।

सुनत बचन रावन परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ॥

भावार्थ– अरे रावण ! चतुराई (कपट) छोड़कर सुन । कृपा के समुद्र श्री रघुनाथ जी का तू भजन क्यों नहीं करता ? अरे दुष्ट ! यदि तू श्री राम जी का बैरी हुआ तो तुझे ब्रह्मा और रूद्र भी नही बचा सकेंगे । हे मूढ़ ! व्यर्थ गाल न मार (डींग न हांक) । श्री राम जी से वैर करने पर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर समूह बाण लगते ही बानरों के आगे पृथ्वी पर पड़ेंगे ! और रीछ बानर तेरे उन गेंद के समान अनेकों सिरों से चौगान खेलेंगे । जब श्री रघुनाथ जी युद्ध में कोप करेंगे और उनके अत्यन्त तीक्ष्ण बहुत से बाण छूटेंगे, तब क्या तेरा ऐसा गाल चलेगा ? ऐसा विचार कर उदार (कृपालु) श्री राम जी को भज ।'' अंगद के ये वचन सुनकर रावण बहुत अधिक जल उठा मानों जलती हुई प्रचण्ड अग्नि में घी पड़ गया हो ।

दो०—कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि ।।२७।।

भावार्थ– (वह बोला—) ''अरे मूर्ख ! कुम्भकर्ण ऐसा मेरा भाई है, इन्द्र का शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है । और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नहीं है कि मैंने सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत को जीत लिया है ।

सठ साखामृग जोरि सहाई । बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा । सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा ॥
मम भुज सागर बल जल पूरा । जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस बीर जो पाइहि पारा ॥
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा । भूप सुजस खल मोहि सुनावा ॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा । पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा ॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा । रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू । पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥

भावार्थ– रे दुष्ट ! बानरों की सहायता जोड़कर राम ने समुद्र बाँध लिया, बस यही उनकी प्रभुता है ? समुद्र को तो अनेकों पक्षी भी लाँघ जाते हैं । पर इसी से वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते । अरे मूर्ख बंदर ! सुन। मेरी एक-एक भुजा-रूपी समुद्र बल-रूपी जल से पूर्ण है, जिसमें बहुत से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चुके हैं । बता, कौन ऐसा शूरवीर है जो मेरे अथाह और अपार बीस समुद्रों का पार पा जायेगा । अरे दुष्ट ! मैंने दिक्पालों तक से जल भरवाया, और तू एक राजा का मुझे सुयश सुनाता है ? यदि तेरा मालिक, जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कह रहा है, संग्राम में लड़ने वाला योद्धा है तो फिर वह दूत किस लिये भेजता है? शत्रु से प्रीति (सन्धि) करते उसे लाज नहीं आती ? पहले कैलाश का मथन करने वाली

दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस ।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ।।२८।।

भावार्थ— रावण के समान शूरवीर कौन है ? जिसने अपने ही हाथों से सिर काट-काट कर अत्यन्त हर्ष के साथ बहुत बार उन्हें अग्नि में होम दिया । स्वयं गौरीपति शिवजी इस बात के साक्षी हैं ।

जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । बिधि के लिखे अंक निज भाला ।।
नर कें कर आपन बध बाँची । हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची ।।
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें । लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें ।।
आन बीर बल सठ मम आगें । पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें ।।
कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ।।
लाजवंत तव सहज सुभाऊ । निज मुख निज गुन कहसि न काऊ ।।
सिर अरु सैल कथा चित रही । ताते वार बीस तैं कही ।।
सो भुजबल राखेहु उर घाली । जीतेहु सहसबाहु बलि बाली ।।
सुनु मतिमंद देहि अब पूरा । काटें सीस कि होइअ सूरा ।।
इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा । काटइ निज कर सकल सरीरा ।।

भावार्थ— मस्तकों के जलते समय जब मैंने अपने ललाटों पर विधाता के अक्षर देखे, तब मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु होना बाँचकर, विधाता की वाणी (लेख को) असत्य जानकर मैं हँसा । उस बात को समझकर (स्मरण करके) भी मेरे मन में डर नहीं है । क्योंकि मैं समझता हूँ कि बूढ़े ब्रह्मा ने बुद्धि भ्रम में ऐसा लिख दिया है । अरे मूर्ख ! तू लज्जा और मर्यादा को छोड़कर मेरे आगे बार-बार दूसरे वीर का बल कहता है ।'' अंगद ने कहा—''अरे रावण ! तेरे समान लज्जावान् जगत में कोई नहीं है । लज्जा शीलता तो तेरा सहज स्वभाव है । तू अपने मुँह से अपना गुण कभी नहीं कहता । सिर काटने और कैलाश उठाने की कथा चित्त में चढ़ी हुई थी, इससे तून उसे बीसों बार कहा । भुजाओं के उस बल को तो तूने हृदय में ही छाल (छिपा) रक्खा है, जिससे तूने सहस्रबाहू, बलि और बालि को जीता था । अरे मन्द बुद्धि ! सुन । अब उत्तर दे कि सिर काटने से भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है ? इन्द्रजाल रचने वाले को वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है । दोहा २८ में रावण ने डींग मारते हुए कहा कि, ''मेरे समान कौन शूरवीर हो सकता है जिसने अपने ही हाथों से सिर काट-काटकर अत्यन्त हर्ष के साथ शिवजी को चढ़ाये ।'' इस बात पर अंगद ने व्यंगात्मक उत्तर दिया—''अपना सिर काटने से कोई शूर वीर नहीं बन जाता । इन्द्रजाल रचने वाला (जादूगरी का तमाशा दिखाने वाला) इतना निपुण होता है कि यद्यपि वह अपने ही हाथों से

अपना सारा शरीर दर्शकों के सामने काट डालता है तो भी, शूरवीर तो बड़ी बात है, उसे कोई वीर तक नहीं कहता । उसे तो केवल दूसरों (दर्शकों)का मनोरंजन कर अपना तथा अपने कुटुम्ब का भरण पोषण करने हेतु दर्शकों से उसे जो भी धन या वस्तु मिल जाय उसी पर निर्भर रहना पड़ता है, और यह शूरवीर के लक्षण कदापि नहीं कहे जा सकते । तुम इतने से साधारण कार्य के लिये अपने को महान शूरवीर कहकर केवल अपने को भ्रम में ही डाल रहे हो ।''

दो०—जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद ।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद ।।२९।।

भावार्थ— अरे मन्दबुद्धि, समझकर देख । पतंग मोहवश आग में जल मरते हैं, गदहों के झुंड बोझ लाद कर चलते हैं, पर इस कारण वे शूरवीर नहीं कहलाते ।

अब जनि बतबढ़ाव खल करही । सुनु मम बचन मान परिहरही ।।
दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ । अस बिचारि रघुबीर पठायउँ ।।
बार बार अस कहइ कृपाला । नहिं गजारि जसु बधें सृकाला ।।
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे । सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ।।
नाहिं त करि मुख भंजन तोरा । लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ।।
जानेउँ तव बल अधम सुरारी । सूनें हरि आनिहि परनारी ।।
तैं निसिचर पति गर्ब बहूता । मैं रघुपति सेवक कर दूता ।।
जौं न राम अपमानहि डरऊँ । तोहि देखत अस कौतुक करऊँ ।।

भावार्थ— अरे दुष्ट! अब बत-बढ़ाव मत कर, मेरा वचन सुन और अभिमान त्याग दे। हे दसमुख ! मैं दूत की तरह (सन्धि करने)नहीं आया हूँ । श्री रघुबीर ने ऐसा विचार कर मुझे भेजा है । कृपालु श्री राम जी बार-बार ऐसा कहते हैं कि स्यार के मारने से सिंह को यश नहीं मिलता । अरे मूर्ख ! प्रभु के (उन) वचनों को मन में समझकर (याद करके)ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं । नहीं तो, तेरा मुँह तोड़कर मैं सीता जी को ज़बरदस्ती ले जाता । अरे अधम ! देवताओं के शत्रु तेरा बल तो मैंने तभी जान लिया जब तू सूने में परायी स्त्री को हर (चुरा) लाया । तू राक्षसों का राजा और बड़ा अभिमानी है । परन्तु मैं तो श्री रघुनाथ जी के सेवक (सुग्रीव का दूत हूँ)सेवक का भी सेवक हूँ । यदि मैं श्री राम के अपमान से न डरूँ तो तेरे देखते-देखते ऐसा तमाशा करूँ कि--

दो०—तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ ।।३०।।

भावार्थ— तुझे ज़मीन पर पटक कर तेरी सेना का संहार कर और तेरे गाँव को चौपट (नष्ट-भ्रष्ट)करके, अरे मूर्ख ! तेरी युवती स्त्रियों सहित जानकी जी को ले जाऊँ ।

जौं अस करौं तदपि न बड़ाई । मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई ॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी । बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी ॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी । जीवत सव सम चौदह प्रानी ॥
अस बिचारि खल बधउँ न तोही । अब जनि रिस उपजावसि मोही ॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा । अधर दसन दसि मीजत हाथा ॥
रे कपि अधम मरन अब चहसी । छोटे बदन बात बड़ि कहसी ॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें । बल प्रताप बुधि तेज न ताकें ॥

भावार्थ– यदि ऐसा करूँ, तो भी इसमें कोई बड़ाई नहीं है । मरे हुए को मारने में कुछ भी पुरुषत्व (बहादुरी)नहीं है । वाममार्गी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा, नित्य का रोगी, निरन्तर क्रोधयुक्त रहने वाला, भगवान् विष्णु से विमुख, वेद और संतों का विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करने वाला, परायी निन्दा करने वाला और पाप की खान (महापापी) ये चौदह प्राणी जीते ही मुरदे के समान हैं । अरे दुष्ट ! ऐसा विचार कर मैं तुझे नहीं मारता । अब तू मुझ में क्रोध पैदा न कर (मुझे गुस्सा न दिला)।" अंगद के वचन सुनकर राक्षसराज रावण दाँतों से होंठ काटकर (क्रोधित होकर), हाथ मलता हुआ बोला–"अरे नीच बंदर ! अब तू मरना ही चाहता है । इसी से छोटे मुँह बड़ी बात करता है । अरे मूर्ख बंदर ! तू जिसके बल पर कडुए बचन बक रहा है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है।

दो०–अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास ।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास।।३१(क)।

जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक ।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक ।।३१(ख)।।

भावार्थ– उसे गुणहीन और मानहीन समझकर ही तो पिता ने वनवास दे दिया । उसे एक तो वह (उसका)दुःख, उसपर युवती स्त्री का विरह, और फिर रात दिन मेरा डर बना रहता है । जिनके बल का तुझे गर्व है, ऐसे अनेकों मनुष्यों को तो राक्षस रात-दिन खाया करते हैं । अरे मूढ़ ज़िद छोड़कर समझ (विचार कर)।"

जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा । क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा ॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना । होइ पाप गोघात समाना ॥
कटकटान कपिकुंजर भारी । दुहु भुजदंड तमकि महि मारी ॥
डोलत धरनि सभासद खसे । चले भाजि भय मारुत ग्रसे ॥
गिरत सँभारि उठा दसकंधर । भूतल परे मुकुट अति सुंदर ॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे । कछु अंगद प्रभु पास पबारे ॥

आवत मुकुट देखि कपि भागे । दिनहीं लूक परन बिधि लागे ।।
की रावन करि कोप चलाए । कुलिस चारि आवत अति धाए ।।
कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू । लूक न असनि केतु नहिं राहू ।।
ए किरीट दसकंधर केरे । आवत बालितनय के प्रेरे ।।

भावार्थ– जब उसने श्री राम जी की निन्दा की, तब तो कपि श्रेष्ठ अंगद अति क्रोधित हुए क्योंकि (शास्त्र ऐसा कहते हैं कि)जो अपने कानों से भगवान विष्णु और शिव की निन्दा सुनता है, उसे गो-वध के समान पाप होता है । बानर श्रेष्ठ अंगद बहुत ज़ोर से कटकटाये (शब्द किया)और उन्होंने तमककर (ज़ोर से) अपने दोनों भुजदण्डों को पृथ्वी पर दे मारा। पृथ्वी हिलने लगी, (जिससे बैठे हुए)सभासद गिर पड़े और भयरूपी पवन (भूत)से ग्रस्त होकर भाग चले । रावण गिरते गिरते संभल कर उठा । उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट पृथ्वी पर गिर गये । कुछ को तो उसने उठाकर अपने सिरों पर सुधार कर रख लिया और कुछ अंगद ने उठाकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी के पास फेंक दिये । मुकुटों को आते देखकर बानर भागे । (सोचने लगे) विधाता ! क्या दिन में ही उल्का पात होने लगा (तारे टूट कर गिरने लगे) अथवा क्या रावण ने क्रोध करके चार बज्र चलाये हैं, जो बड़े धाये के साथ (वेग से)आ रहे हैं ? प्रभु ने (उनसे) हँसकर कहा– ''मन में डरो नहीं । ये न उल्का हैं, न बज्र हैं और न केतु या राहु ही हैं । अरे भाई ! ये तो रावण के मुकुट हैं जो बालिपुत्र अंगद के फेंके हुए आ रहे हैं ।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । रावण के मुख से अंगद श्री राम की निन्दा नहीं सुन सका । क्रोध में आकर उसने अपनी दोनों भुजाएं कस कर पृथ्वी पर पटाकीं । इस अघात से भूकम्प आ गया । रावण के सारे सभासद मारे डर के सभा छोड़ कर भाग गये । रावण ने बड़ी मुश्किल से अपने को सम्भाला । कुछ गिरे हुये मुकुटों को उठाकर फिर अपने सिरों पर रख लिया । शेष मुकुटों को अंगद ने राम की ओर फेंक दिया । आते हुये मुकुटों को देखकर वानर-भालू की सेना भयभीत हो गयी । वह समझे कि उल्का पात हो रहा है । राम ने उनका ढाड़स बँधाया और हँस कर कहा–''डरो नहीं । यह न उल्का है, न बज्र है और न केतु, न राहु । यह तो रावण के मुकुट हैं, जो बालि पुत्र अंगद के फेंके हुये आ रहे हैं ।''

दो०– तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास ।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास ।।३२(क)।।

उहाँ सकोपि दसानन सब सन कहत रिसाइ ।।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ ।।३२(ख)।।

भावार्थ – पवनपुत्र श्री हनुमान जी ने उछलकर उनको हाथ से पकड़ लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया । रीछ और बानर तमाशा देखने लगे । उनका प्रकाश सूर्य के समान था । वहाँ (सभा में)क्रोधयुक्त रावण सब से क्रोधित होकर कहने लगा कि –''बंदर को पकड़ लो और पकड़कर मार डालो ।'' अंगद यह सुनकर मुस्कराने लगे ।

दो०— तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास ।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास ।।३२(क)।।

उहाँ सकोपि दसानन सब सन कहत रिसाइ ।।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ ।।३२(ख)।।

भावार्थ — पवनपुत्र श्री हनुमान जी ने उछलकर उनको हाथ से पकड़ लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। रीछ और बानर तमाशा देखने लगे। उनका प्रकाश सूर्य के समान था। वहाँ (सभा में)क्रोधयुक्त रावण सब से क्रोधित होकर कहने लगा कि-'बंदर को पकड़ लो और पकड़कर मार डालो।'' अंगद यह सुनकर मुस्कराने लगे।

एहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु ।।
मर्कटहीन करहु महि जाई । जिअत धरहु तापस द्वौ भाई ।।
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा । गाल बजावत तोहि न लाजा ।।
मरु गर काटि निलज कुलघाती । बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती ।।
रे त्रिय चोर कुमारग गामी । खल मल रासि मंदमति कामी ।।
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा । भएसि कालबस खल मनुजादा ।।
याको फलु पावहिगो आगें । बानर भालु चपेटन्हि लागें ।।
रामु मनुज बोलत असि बानी । गिरहिं न तव रसना अभिमानी ।।
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं । सिरन्हि समेत समर महि माहीं ।।

भावार्थ — (रावण फिर बोला—) ''इसे मार कर सब योद्धा तुरंत दौड़ो और जहाँ कहीं रीछ-बानरों को पाओ, वहीं खा डालो। पृथ्वी को बंदरों से रहित कर दो और जाकर दोनों तपस्वी भाइयों (राम-लक्ष्मण)को जीते जी पकड़ लो।'' (रावण के कोप भरे वचन सुनकर)तब युवराज अंगद क्रोधित होकर बोले —''तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती ? अरे निर्लज्ज ! अरे कुलघातक ! गला काटकर (आत्महत्या करके) मर जा। मर जा। मेरा बल देखकर भी क्या तेरी छाती नहीं फटती ! अरे स्त्री के चोर ! अरे कुमार्ग पर चलने वाले अरे दुष्ट ! पाप की रासि! मन्दबुद्धि और कामी ! तू सन्निपात में क्या दुर्बचन बक रहा है ? अरे दुष्ट ! तू काल के वश हो गया है। इसका फल तू बानर और भालुओं के चपेट लगने पर पायेगा। राम मनुष्य हैं, ऐसा वचन बोलते ही, अरे अभिमानी ! तेरी जीभें नहीं गिर पड़तीं। इसमें सन्देह नहीं है कि तेरी जीभें (अकेले नहीं वरन्)सिरों के साथ रणभूमि में गिरेंगी।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है। जब रावण ने भगवान् राम के विरुद्ध अपशब्द बोले तो अंगद ने कहा—''ऐसा वचन बोलते ही तेरी जीभे क्यों नहीं गिर पड़ीं?'' और फिर तुरन्त स्वयं उत्तर दिया—''जीभें इस लिये नहीं गिरी क्योंकि वह तो समस्त सिरों के साथ रणभूमि में गिरेंगी।''

सो०–सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर ।
बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ।।३३(क)।।
तव सोनित कीं प्यास तृषित राम सायक निकर ।
तजउँ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम ।।(ख)।।

भावार्थ – हे दशकन्ध! जिसने एक ही बाण से बालि को मार डाला वह मनुष्य कैसे हैं ? अरे कुजाति, अरे जड़ ! बीस आँखे होनें पर भी तू अंधा है । तेरे जन्म को धिक्कार है। श्री रामचन्द्र जी के बाण समूह तेरे रक्त की प्यास के प्यासे है । (वे प्यासे ही रह जायेंगे) इस डर से, अरे कड़वी बकवास करने वाले नीच राक्षस मैं तूझे छोड़ता हूँ ।

मैं तव दसन तोरिबे लायक । आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ।।
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं । लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ।।
गूलरि फल समान तव लंका । बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका ।।
मैं बानर फल खात न बारा । आयसु दीन्ह न राम उदारा ।।
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई । मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई ।।
बालि न कबहुँ गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा ।।
साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा । जौं न उपारिउँ तव दस जीहा ।।
समुझि राम प्रताप कपि कोपा । सभा माझ पन करि पद रोपा ।।
जौं मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं रामु सीता मैं हारी ।।
सुनहु सुभट सब कह दससीसा । पद गहि धरनि पछारहु कीसा ।।
इंद्रजीत आदिक बलवाना । हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ।।
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई ।।
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती । टरइ न कीस चरन एहि भाँती ।।
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ।।

भावार्थ – मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ । पर क्या करूँ? श्री राम रघुनाथ जी ने मुझे आज्ञा नहीं दी । ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और (तेरी) लंका को पकड़ कर समुद्र में डुबा दूँ । तेरी लंका गूलर के फल के समान है । तुम सब कीड़े उसके भीतर (अज्ञानवश) निडर होकर बस रहे हो । मैं बंदर हूँ । मुझे इस फल को खाते क्या देर थी? पर उदार (कृपालु) श्री रामचन्द्र जी ने वैसी आज्ञा नहीं दी ।'' अंगद की उक्ति सुनकर रावण मुस्कराया (और बोला–) ''अरे मूर्ख ! बहुत झूठ बोलना तूने कहाँ सीखा? बालि ने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा । जान पड़ता है तू तपस्वियों से मिलकर लबार हो गया है ।'' (अंगद ने कहा)–''अरे बीस भुजा वाले! यदि मैंने तेरी दसों जीभें नहीं उखाड़ लीं तो

सचमुच मैं लबार ही हूँ।'' श्री रामचन्द्र जी के प्रताप को समझ कर (स्मरण करके)अंगद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावण की सभा में प्रण करके (दृढ़ता के साथ)पैर रोप दिया। (और कहा–) ''अरे मूर्ख ! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्री राम लौट जायेंगे, मैं सीता जी को हार गया।'' रावण ने कहा–''सब वीरों ! सुनो। पैर पकड़ कर बंदर को पृथ्वी पर पछाड़ दो। '' इन्द्रजीत (मेघनाद)आदि अनेकों बलवान् योद्धा जहाँ तहाँ से हर्षित होकर उठे। वे पूरे बल, से बहुत से उपाय कर झपटते हैं। पर पैर टलता नहीं, तब सिर नीचा करके फिर अपने-अपने स्थान पर जा बैठ जाते हैं। (कागभुशुण्डि जी कहते हैं–) ''वे देवताओं के शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं। परन्तु हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी ! अंगद का चरण उनसे वैसे ही नही टलता जैसे कुयोगी (विषयी) पुरुष मोह रूपी वृक्ष को नहीं उखाड़ सकते।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में चौदह सम पंक्तियाँ हैं। अंगद ने रावण की सभा में प्रण करके दृढ़ता के साथ पैर रोप दिया। और रावण को चुनौती दी कि ''यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्री रामचन्द्र जी लौट जायेंगे और मैं सीता जी को हार गया।'' जो रावण-अंगद संवाद पृष्ट ९२१ में शुरू हुआ था, वह यहाँ आकर समाप्त हुआ है। इस संवाद के पूर्ण रसास्वादन के लिए, देखिए केशव के'रामचन्द्रिका'' के लंकाकाण्ड के छंद १६ से ४५ तक।

दो०–कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ ।।३४(क)।।
भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ।।३४ (ख)।।

भावार्थ – करोड़ों वीर योद्धा जो बल में मेघनाद के समान थे, हर्षित हो उठे। वे बार-बार झपटते हैं। पर बानर का चरण नहीं उठता, तब लज्जा के मारे सिर नवाकर बैठ जाते हैं। जैसे करोडों विघ्न आने पर भी संत का मन नीति को नहीं छोड़ता, वैसे ही बानर (अंगद) का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया।''

कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे ।।
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा ।।
गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई ।।
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ।।
सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई ।।
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा ।।
उमा राम की भकटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ।।

तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई । तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना । मान न ताहि कालु निअराना ॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो । यह कहि चल्यो बालि नृप जायो ॥
हतौं न खेत खेलाइ खेलाई । तोहि अबहिं का करौं बड़ाई ॥
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा । सो सुनि रावन भयउ दुखारा ॥
जातुधान अंगद पन देखी । भय ब्याकुल सब भए बिसेषी ॥

भावार्थ— अंगद का बल देखकर सब हृदय में हार गये । तब अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं उठा । जब वह अंगद के चरण पकड़ने लगा तब बालिकुमार अंगद ने कहा –''अरे मूर्ख ! तू जाकर श्री राम जी के चरण क्यों नहीं पकड़ता ?'' यह सुनकर वह मन में बहुत ही सकुचाकर लौट गया । उसकी सारी श्री जाती रही । वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्न में चन्द्रमा दिखाई देता है । वह सिंहासन पर सिर नीचा करके जा बैठा । मानो सारी सम्पत्ति गवाँ कर बैठा हो । श्री रामचन्द्र जी जगत् भरके आत्मा हैं, और प्राणों के स्वामी हैं । उनसे विमुख रहने वाला शान्ति कैसे पा सकता है । (शिव जी कहते हैं–) ''उमा! जिन श्री रामचन्द्र जी के भ्रूविलास (भौंहों के इशारे)से विश्व उत्पन्न होता है और फिर नाश को प्राप्त होता है, जो तृण को बज्र और बज्र को तृण बना देते हैं (अत्यन्त निर्बल को महान प्रबल और महान प्रबल को अत्यन्त निर्बल कर देते हैं), उनके दूत का प्रण, कहो, कैसे टल सकता है ?'' फिर अंगद ने अनेकों प्रकार से नीति कही । पर रावण ने नहीं माना, क्योंकि उसका काल निकट आ गया था । शत्रु के गर्व को चूर करके अंगद ने उसको प्रभु श्री रामचन्द्र जी का सुयश सुनाया और फिर वह राजा बालि का पुत्र यह कह कर चल दिया–''रणभूमि में तुझे खिला-खिला न मारूँ, तब तक अभी (पहले से) क्या बड़ाई करूँ ।'' अंगद ने पहले ही (सभा में आने से पूर्व ही) उसके पुत्र को मार डाला था । यह संवाद सुनकर रावण दुखी हो गया । अंगद का प्रण (सफल) देखकर सब राक्षस भय से अत्यन्त व्याकुल हो गये ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं । जब मेघनाद आदि अनेक बलवान राक्षस अंगद का पैर टस से मस न कर सके, तब रावण स्वयं उठा । जब वह अंगद का पैर पकड़ने लगा, तो बालिकुमार ने कटाक्ष करते हुए कहा–''अरे मूर्ख ! तू जाकर श्री राम जी के चरण क्यों नहीं पकड़ता?''

दो०–रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज ।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज ।। ३५(क)।।
साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ ।
मंदोदरीं रावनहि बहुरि कहा समुझाइ ।। ३५ (ख)।।

भावार्थ— शत्रु के बल का मर्दन कर, बल की राशि बालिपुत्र अंगद जी ने हर्षित होकर आकर श्री रामचन्द्र जी के चरण कमल पकड़ लिये । उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों में

(आनन्दाश्रुओं का)जल भरा है। सन्ध्या हो गई जानकर दसशीश बिलखता हुआ (उदास होकर)महल में गया। मन्दोदरी ने रावण को समझा कर कहा–

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥
पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका॥
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥
अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥
बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहि मानेहि नीचा॥
जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥
भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥
सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी॥

भावार्थ – "हे कान्त! मन में समझकर (विचारकर) कुबुद्धि को छोड़ दो। आपका श्री रघुनाथ जी से युद्ध शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाई ने एक ज़रा सी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं लांघ सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है। हे प्रियतम! आप उन्हें संग्राम में जीत पायेंगे, जिनके दूत का ऐसा काम है ? खेल से ही समुद्र लाँघकर वह वानरों में सिंह (हनुमान)आपकी लंका में निर्भय चला आया। रखवालों को मार कर उसने अशोकवन उजाड़ डाला। आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमार को मार डाला, और सम्पूर्ण नगर को जला कर राख कर दिया। उस समय आपके बल का गर्व कहाँ चला गया था? अब हे स्वामी! झूठ (व्यर्थ)गाल न मारिये (डींग न हाँकिये)। मेरे कहने पर हृदय में कुछ विचार कीजिये। हे पति ! आप श्री रघुनाथ को (निरा)राजा मत समझिये, बल्कि अग-जग-नाथ (चराचर के स्वामी)और अतुलनीय बलवान जानिये। श्री राम जी के बाण का प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था। परन्तु आपने उसका कहना भी नहीं माना। जनक की सभा में अगणित राजागण थे। वहाँ विशाल और अतुलनीय बलवाले आप भी थे। वहाँ शिवजी का धनुष तोड़कर श्री राम जी ने जानकी को ब्याहा। तब आपने उनको संग्राम में क्यों नहीं जीता? इन्द्रपुत्र जयन्त उनके बल को कुछ-कुछ जानता है। श्री रामजी ने पकड़कर, केवल उसकी एक आँख ही फोड़ दी और उसे जीवित ही छोड़ दिया। सूर्पनखा की दशा तो आपने देख ही ली। तो भी आपके हृदय में (उनसे लड़ने की बात सोचके)विशेष (कुछ भी)लज्जा नहीं आती।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं। यह चौथी बार है जब मन्दोदरी रावण को सावधान कर रही है कि राम कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। उनसे बैर करना अपनी मृत्यु को आवाहन देना है। पहली बार मन्दोदरी ने रावण को सुन्दरकाण्ड में ३५ दोहे के नीचे की चौपाई में समझाया (पृष्ठ ८६५)। दोबारा उसने लंका काण्ड के पाचवें दोहे के नीचे की चौपाई में समझाया (पृष्ठ ९०५)। और तीसरी बार तेरहवें दोहे चौपाई से लेकर पन्द्रहवें दोहे तक (पृष्ठ ९१५-१६)।

चौथी बार समझाते हुये मन्दोदरी ने कई दृष्टांत दिये जिससे रावण को स्पष्ट हो जाये कि राम कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। यह दृष्टांत तुलसीदास जी ने ऊपर नीचे लिख दिये हैं। समयानुसार नहीं हैं। दोहा, ३५ से ३७ तक और उनके बीच की चौपाइयों में राम के हाथ रावण की निरन्तर पराजय के जो मन्दोदरी ने दृष्टान्त दिये हैं, उनका नीचे समयानुसार चयन कर दिया गया है :—

१. सीता स्वयंवर में रावण भी था। वहाँ शिव जी का धनुष तोड़कर जब श्री राम जी ने जानकी को ब्याहा तब रावण ने उनको संग्राम में क्यों नहीं जीता? (पृष्ठ २८८-९१)?

२. इन्द्र पुत्र जयंत को पकड़कर राम ने केवल उसकी एक ही आँख फोड़ी और उसे जीवित छोड़ दिया (पृष्ठ ७०२)।

३. लक्ष्मण ने सूर्पनखा के नाक-कान काट डाले ; फिर भी रावण कुछ नहीं कर पाया (पृष्ठ ७३१)।

४. लक्ष्मण ने सीता जी के चारों ओर ज़रा सी रेखा खींच दी थी;उसे रावण नहीं लाँघ सका (पृष्ठ ७५१- ५२)।

५. विराध, खरदूषण, कबन्ध और बालि को राम ने एक ही बाण से मार डाला। इससे उनका महत्व और बल स्पष्ट होता है (पृष्ठ ७१४, ७३१-३७, ७६०, ७९४)।

६. राम के बाण का प्रताप मारीच भी जानता था, परन्तु रावण ने उसका कहना नहीं माना (पृष्ठ २५१, ७४६-४७)।

७. राम के दूत हनुमान ने खेल में ही समुद्र लाँघ लिया और लंका में निर्भय चला आया। अशोकवन के रखवालों और रावण के पुत्र अक्षयकुमार को मार डाला। और सम्पूर्ण नगर को जलाकर राख कर दिया (पृष्ठ ८२७-५६)।

८. राम ने खेल में ही समुद्र को लाँघ लिया और सेना सहित सुबेल पर्वत पर आ उतरे। (पृष्ठ ९०३-०५)।

९. उनके दूसरे दूत अंगद ने सभा में आकर रावण के बल को उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियों के झुंड को सिंह छिन्न-भिन्न कर डालता है। अंगद ने तो रावण के दूसरे पुत्र को भी मार डाला (पृष्ठ ९२०-३८)।

१०. रावण के दो पुत्र मारे गये और नगर जल गया, तब भी वह अपनी भूलकी समाप्ति नहीं करता (पृष्ठ८४७,९१९)।

दो०—बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध ।
बालि एक सर मारयो तेहि जानहु दसकंध ।। ३६ ।।

भावार्थ – जिन्होंने बिराध और खर-दूषण को मारकर लीला से ही कबन्ध को भी मार डाला, और जिन्होंने बालि को एक ही बाण से मार दिया, हे दशकन्ध! आप उन्हें (उनके महत्व को)समझिये ।

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला । उतरे प्रभु दल सहित सुबेला ।।
कारुनीक दिनकर कुल केतू । दूत पठायउ तव हित हेतू ।।
सभा माझ जेहिं तव बल मथा । करि बरूथ महुँ मृगपति जथा ।।
अंगद हनुमत अनुचर जाके । रन बाँकुरे बीर अति बाँके ।।
तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू । मुदा मान ममता मद बहहू ।।
अहह कंत कृत राम बिरोधा । काल बिबस मन उपज न बोधा ।।
काल दंड गहि काहु न मारा । हरइ धरम बल बुद्धि बिचारा ।।
निकट काल जेहि आवत साईं । तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ।।

भावार्थ– जिन्होंने खेल से ही समुद्र को बधा लिया और जो प्रभु सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतर पड़े, उन सूर्यकुल के ध्वजा स्वरूप (कीर्तिको बढ़ाने वाले) करुणामय भगवान ने आप ही के हित के लिये दूत भेजा । जिसने बीच सभा में आकर आपके बल को उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियों के झुंड में आकर सिंह (उसे छिन्न भिन्न कर डालता है)। रण में बाँके अत्यन्त विकट वीर अंगद और हनुमान जिनके सेवक हैं, हे पति ! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं । आप व्यर्थ ही मान, ममता और मद का बोझ ढो रहे हैं । हा प्रियतम ! आपने श्री रामजी से विरोध कर लिया । और काल के विशेष वश होने से आपके मन में अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता । काल दण्ड (लाठी)लेकर किसी को नहीं मारता । वह धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है । हे स्वामी! जिसका काल (मरण समय)निकट आ जाता है, उसे आप ही की तरह भ्रम हो जाता है ।

दो०– दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु ।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु ।। ३७ ।।

भावार्थ – आपके दो पुत्र मारे गये और नगर जल गया । (जो हुआ सो हुआ) हे प्रियतम! अब भी (इस भूल की) पूर्ति (समाप्ति)कर दीजिये । (श्री राम जी से वैर त्याग

दीजिये) और हे नाथ ! कृपा के समुद्र श्री रघुनाथ जी को भजकर निर्मल यश लीजिये।"

नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभाँ गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥
इहाँ राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी॥
बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहु पूछउँ तोही॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥
सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥
साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए॥

भावार्थ – स्त्री के बाण के समान वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभा में चला गया, और सारा भय भुलाकर अत्यन्त अभिमान में फूल कर सिंहासन पर जा बैठा।

यहाँ (सुबेल पर्वत पर) श्री राम जी ने अंगद को बुलाया। उन्होंने आकर चरण कमलों में सिर नवाया। बड़े आदर से उन्हें पास बिठाकर खर के शत्रु कृपालु श्री राम जी हँसकर बोले– "हे बालि के पुत्र!मुझे बड़ा कौतूहल है। हे तात! इसी से मैं तुम से पूछता हूँ, सत्य कहना। जो रावण राक्षसों के कुल का तिलक है, और जिसके अतुलनीय बाहुबल की जगतभर में धाक है, उसके चार मुकुट तुमने फेंके। हे तात ! बताओ तुमने उनको किस प्रकार से पाया?" (अंगद ने कहा–) "हे सर्वज्ञ ! हे शरणागत को सुख देने वाले ! सुनिये ! वे मुकुट नहीं हैं, वे तो राजा के चार गुण हैं। नाथ ! वेद कहते हैं कि साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों राजा के हृदय में बसते हैं। यह नीति धर्म के चार सुन्दर चरण हैं। (किन्तु रावण में धर्म का अभाव है) ऐसा जी में जानकर ये नाथ के पास आ गये हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। अंगद के लौटने पर, श्री राम ने उनसे पूछा कि "तुमने रावण के चार मुकुट सुबेल पर्वत पर कैसे भेजे"। अंगद ने तुरन्त उत्तर दिया– "यह मुकुट नहीं हैं। यह तो राजा के चार गुण हैं–साम, दाम, दण्ड, भेद। किन्तु रावण में धर्म का अभाव है। अतएव यह चारों गुण उसे छोड़ कर, आपके पास आए हैं।"

दो०–धर्महीन प्रभु पद बिमुख काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस॥ ३८ (क)॥
परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥ ३८ (ख)॥

भावार्थ – दशशीश रावण धर्महीन, प्रभु के पद से विमुख और काल के वश में है। इसलिये हे कोसलराज ! सुनिए, ये गुण रावण को छोड़कर आपके पास आ गए हैं।'' अंगद की परम चतुरता (पूर्ण उक्ति) कानों से सुनकर उदार श्री रामचन्द्र जी हँसने लगे। फिर बालिपुत्र ने किले के (लंका के) सब समाचार कहे।

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए ॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ॥
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदयँ दिनकर कुल भूषन ॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए ॥
हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं ॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा ॥
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहिं निसान बजावहिं भेरी ॥

भावार्थ – जब शत्रु के समाचार प्राप्त हो गये, तब श्री रामचन्द्र जी ने सब मन्त्रियों को पास बुलाया (और कहा--) ''लंका के चार बड़े विकट दरवाज़े हैं। उनपर किस तरह आक्रमण किया जाय, इस पर विचार करो।'' तब बानरराज सुग्रीव, ऋक्षपति जाम्बवान् और विभीषण ने हृदय में सूर्यकुल के भूषण श्री रघुनाथ जी का स्मरण किया और विचार करके उन्होंने कर्तव्य निश्चित किया। बानरों की सेना के चार दल बनाये। और उनके लिये यथायोग्य (जैसे चाहिये वैसे) सेनापति नियुक्त किये। फिर सब यूथ पतियों को बुला लिया और प्रभु का प्रताप कह कर सब को समझाया, जिसे सुनकर वानर सिंह के समान गर्जना करके दौड़े। वे हर्षित होकर श्री रामजी के चरणों में सिर नवाते हैं, और पर्वतों के शिखर ले-लेकर सब वीर दौड़ते हैं। ''कोसल राज श्री रघुबीर जी की जय हो,'' पुकारते हुए भालू और बानर गरजते और ललकारते हैं। लंका को अत्यन्त श्रेष्ठ (अजेय) किला जानते हुए भी वानर प्रभु श्री रामचन्द्र जी के प्रताप से निडर होकर चले। चारों ओर से घिरी हुई बादलों की घटा की तरह लंका को चारों दिशाओं से घेर कर वे मुँह से ही डंके और भेरी बजाने लगे।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस समपंक्तियाँ हैं। जब राम ने अपने मंत्रियों से परामर्श करते हुये कहा कि– ''लंका के दुर्ग के चार विकट दरवाज़े हैं। उनपर किस तरह आक्रमण किया जाये।'' यह सुनते ही सुग्रीव, जामवंत और विभीषण ने वानरों की सेना के चार दल बना दिये और हर दल का एक सेनापति नियुक्त कर दिया। वह चारों दल अपने-अपने सेनापति के आधिपत्य में लंका पर चारों ओर से आक्रमण करने चले।

दो०— जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव ।
गर्जहिं सिंघनाद कपि भालु महा बल सींव ।। ३९ ।।

भावार्थ — महान बल की सीमा वे वानर-भालू सिंह के समान ऊँचे स्वर से "श्री राम की जय, लक्ष्मण जी की जय, वानर राज सुग्रीव की जय" ऐसी गर्जना करने लगे ।

लंका भयउ कोलाहल भारी । सुना दसानन अति अहँकारी ।।
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई । बिहँसि निसाचर सेन बोलाई ।।
आए कीस काल के प्रेरे । छुधावंत सब निसिचर मेरे ।।
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा । गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा ।।
सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू । धरि धरि भालु कीस सब खाहू ।।
उमा रावनहि अस अभिमाना । जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ।।
चले निसाचर आयसु मागी । गहि कर भिंडिपाल बर साँगी ।।
तोमर मुग्दर परसु प्रचंडा । सूल कृपान परिघ गिरिखंडा ।।
जिमि अरुनोपल निकर निहारी । धावहिं सठ खग मांस अहारी ।।
चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा । तिमि धाए मनुजाद अबूझा ।।

भावार्थ — लंका में बड़ा भारी कोलाहल (कोहराम)मच गया । अत्यन्त अहंकारी ...ण ने उसे सुनकर कहा—"बानरों की ढिठाई तो देखो !" यह कहते हुए हँसकर उसने ...सों की सेना बुलाई । "बंदर काल की प्रेरणा से चले आये हैं । मेरे राक्षस सभी भूखे हैं। ...ाता ने इन्हें घर बैठे भोजन भेज दिया—" ऐसा कहकर उस मूर्ख ने अट्टहास किया (वह ... जोर से ठहाका मारकर हँसा और बोला—)"हे वीरों ! सब लोग चारों दिशाओं में जाओ ...र रीछ-बानर सबको पकड़-पकड़ कर खाओ ।" (शिवजी कहते हैं—) "हे उमा ! रावण ... ऐसा अभिमान था जैसे टिटिहरी पक्षी पैर ऊपर की ओर करके सोता है (मानो आकाश ... थाम लेगा)।" आज्ञा पाकर और हाथों में उत्तम भिंदिपाल, साँगी, तोमर, मुग्दर, प्रचण्ड ...से, शूल, कृपान, परिध और पहाड़ों के टुकड़े लेकरराक्षस चले । जैसे मूर्ख माँसाहारी पक्षी ...न पत्थरों का समूह देखकर उस पर टूट पड़ते हैं । (पत्थरों पर लगने से) चोंच टूटने का ...ख उन्हें नहीं सूझता, वैसे ही ये बेसमझ राक्षस दौड़े ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । जब वानर-सेना ने लंका के दुर्ग ... चारों ओर से हमला कर दिया, तो राक्षस नाना प्रकार के अस्त्र - शस्त्र लेकर उसकी ...ा के लिए दौड़े । अस्त्र-शस्त्र की सूची इस प्रकार है :—

१. भिंदिपाल— एक प्रकार का शस्त्र जिसमें एक बाँस के डंडे के अग्र भाग में थोड़ा ...वदार धातु का धारदार मुड़ा फलका लगा होता है ।

२. **साँगी**— बरछी ।

३. **तोमर**— भाला ।

४. **मुग्दर**— पूरे काष्ठ का ही बना हुआ मूठ सहित अन्त तक गोलाकर में ही बढ़ता हुआ दण्ड जो पहलवान कसरत में प्रायः प्रयोग करते हैं ।

५. **फरसा**— पैनी धार वाला शस्त्र ।

६. **शूल**— नुकीला शस्त्र ।

७. **कृपान**— दुधारी तलवार-दोनों किनारों पर धार ।

८. **परिघ**— गोलाकार फेंक कर प्रहार करने वाला अस्त्र ।

९. **गिरिखण्ड**— पहाड़ों के टुकड़े ।

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बल बीर ।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर ।। ४० ।।

भावार्थ — अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण किये करोड़ों बलवान और रणधीर राक्षस वीर परकोटे के कँगूरों पर चढ़ गये ।

कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे । मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ।।
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ । सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ ।।
बाजहिं भेरि नफीरि अपारा । सुनि कादर उर जाहिं दरारा ।।
देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा । अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा ।।
धावहिं गनहिं न अवघट घाटा । पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा ।।
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं । दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं ।।
उत रावन इत राम दोहाई । जयति जयति जय परी लराई ।।
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं । कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं ।।

भावार्थ — वे परकोट के कंगूरों पर कैसे शोभित हो रहे हैं, मानों सुमेरु पर्वत के शिखरों पर बादल बैठें हों । जुझाऊ ढोल और डंके आदि बज रहे हैं, (जिसकी) ध्वनि सुनकर योद्धाओं के मन में (लड़ने का) चाव होता है । अगणित नफ़ीरी और भेरी बज रही हैं, (जिन्हें) सुनकर क़ायरों के हृदय में दरारें पड़ जाती हैं । उन्होंने जाकर अत्यन्त विशाल शरीर वाले महान योद्धा और भालुओं के ठट्ट (समूह) देखें । (देखा कि) वे रीछ-बानर दौड़ते हैं, औघट (ऊँची-नीची, विकट) घाटियों को कुछ नहीं गिनते । पकड़ कर पहाड़ों को फोड़कर रास्ता

बना लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाते और गर्जते हैं। दाँतों से होंठ काटते और खूब डपटते हैं। उधर रावण की और इधर श्री राम जी की दोहाई बोली जा रही है। "जय, जय, जय" ध्वनि होते ही लड़ाई छिड़ गई। राक्षस पहाड़ों के ढेर के ढेर शिखरों को फेकते हैं। बानर कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं, और वापस उन्हीं की ओर चलाते हैं।

छं०— धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं।।
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए।।

दो०— एकु एकु निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ।। ४१।।

भावार्थ — प्रचण्ड बानर और भालू पर्वतों के टुकड़े ले लेकर किले पर डालते हैं। वे झपटते हैं और राक्षसों के पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर पटक कर भाग चलते हैं और फिर ललकारते हैं। बहुत ही चञ्चल और बड़े तेजस्वी बानर-भालू बड़ी फुर्ती से उछलकर किले पर चढ़-चढ़ कर गये और जहाँ तहाँ महलों में घुसकर श्री राम जी का यश गाने लगे। फिर एक-एक राक्षस को पकड़कर वे वानर भाग चले। ऊपर आप और नीचे (राक्षस)योद्धा। इस प्रकार वे (किले पर से)धरती पर आ गिरते हैं।

राम प्रताप प्रबल कपिजूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा।।
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर।।
चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई।।
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी।।
सब मिलि देहिं रावनहि गारी। राज करत एहिं मृत्यु हँकारी।।
निज दल बिचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना।।
जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना।।
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना।।
उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने।।
सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा।।

भावार्थ—श्री राम जी के प्रताप से प्रबल वानरों के झुंड राक्षस योद्धाओं के समूह-के-समूह को मसल रहे हैं। वानर फिर जहाँ-तहाँ किले पर चढ़ गये और प्रताप में सूर्य के समान श्री रघुबीर की जय बोलने लगे। राक्षसों के झुंड वैसे ही भाग चले जैसे जोर हवा चलने पर बादलों के समूह तितर-बितर हो जाते है। लंका नगरी में बड़ा भारी हाहाकार मच गया।

बालक, स्त्रियाँ और रोगी (असमर्थता के कारण) रोने लगे। सब मिलकर रावण को गालियाँ देने लगे कि राज्य करते हुए इसने मृत्यु को बुला लिया। रावण ने जब अपनी सेना का विचलित होना कानों से सुना, तब (भागते हुए)योद्धाओं को लौटाकर वह क्रोधित होकर बोला। मैं जिसे रण से पीठ देकर भागा हुआ अपने कानो से सुनूँगा, उसे स्वयं भयानक दुधारी तलवार से मारूँगा। मेरा सब कुछ खाया, भाँति-भाँति के भोग किये और अब रणभूमि में प्राण प्यारे हो गए। रावण के उग्र (कठोर) वचन सुनकर, सब वीर डर गये और लज्जित होकर क्रोध करके युद्ध के लिये लौट चले। रण में (शत्रु के)सम्मुख (युद्ध करते हुए) मरने में ही वीर की शोभा है (यह सोचकर)तब उन्होंने प्राणों का लोभ छोड़ दिया।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। जब वानर सेना राक्षसों के झुण्ड के झुण्ड मसलने लगी, तो राक्षस-समूह इधर-उधर तितर-बितर होकर भागने लगा। अपनी सेना का इस प्रकार पलायन देखकर, रावण ने सबको चेतावनी दी–"मैं रण में पीठ दिखाकर भागते हुए जिसे देखूँगा, उसे मैं स्वयं अपनी कृपाण से मार डालूँगा।" दोनों ओर मृत्यु देखकर, राक्षस-योद्धा लज्जित होकर, युद्ध के लिये लौट आए। "सम्मुख युद्ध करते हुए, मरने में ही वीर की शोभा है" – यह सोचकर उन्होंने प्राणों का लोभ छोड़ दिया।

दो०– बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥ ४२॥

भावार्थ – बहुत से अस्त्र-शस्त्र धारण किये सब वीर ललकार-ललकार कर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलों से मार-मारकर सब रीछ वानरों को व्याकुल कर दिया।

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता॥
निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥
पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥
भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥

भावार्थ – (शिवजी कहते हैं–) वानर भयातुर होकर (डर के मारे घबराकर) भागने लगे, यद्यपि हे उमा! आगे चलकर (वे ही) जीतेंगे। कोई कहता है– अंगद हनुमान कहाँ हैं? बलवान नल-नील और द्विविद कहाँ हैं? हनुमान जी ने जब अपने दल को विकल (भयभीत) हुआ सुना, उस समय वे बलवान पश्चिम द्वार पर थे। वहाँ उनसे मेघनाद युद्ध कर रहा था। वह द्वार टूटता न था, बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी। तब पवन पुत्र हनुमान

जी के मन में बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे काल के समान योद्धा बड़े जोर से गरजे और कूद कर लंका के किले पर आ गये और पहाड़ लेकर मेघनाद की ओर दौड़े। रथ तोड़ डाला, सारथी को मार गिराया और मेघनाद की छाती में लात मारी। दूसरा सारथी मेघनाद को व्याकुल जानकर, उसे रथ में डालकर, तुरन्त घर ले गया।

पात्र-परिचय– द्विविद– यह वानर नरकासुर का मित्र था। अतएव नरकासुर के मारे जाने पर इसने उत्पात करना प्रारम्भ किया। यह नगर आदि को नष्ट-भ्रष्ट कर उच्छृंखलों के समान घूमने लगा। एक दिन बलभद्र रैवत उद्यान में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। द्विविद वहाँ पहुँचा और उपद्रव करने लगा। तब बलदेव जी ने इसे मार डाला। यह उन ग्यारह बलवान बन्दरों में से एक था जिनकी महिमा रावण के दूत ने रावण के सम्मुख बयान की थी (देखिए सुन्दरकाण्ड, दोहा ५४, पृष्ठ ८८५)

दो०– अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल ।।४३ ।।

भावार्थ – इधर अंगद ने सुना कि पवनपुत्र हनुमान किले पर अकेले ही गये हैं, तो रण में बाँके बालिपुत्र बानर खेल की तरह उछल कर किले पर चढ़ गये।

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर ।।
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई ।।
कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा ।।
नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती ।।
कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं ।।
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा ।।
गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी ।।
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फल लेहू ।।

भावार्थ – युद्ध में शत्रु के विरुद्ध दोनों बानर क्रुद्ध हो गये। हृदय में श्री राम जी के प्रताप का स्मरण करके दोनों दौड़कर रावण के महल पर जा चढ़े और कोसलराज श्री राम जी की दुहाई देने लगे। उन्होंने कलससहित महल को पकड़ कर ढहा दिया। यह देख कर राक्षस राज रावण डर गया। सब स्त्रियाँ हाथों से छाती पीटने लगीं (और कहने लगीं–) 'अबकी बार दो उत्पाती बानर (एक साथ) आ गये।'' बानरलीला करके (घुड़की देकर) दोनों उनको डराते हैं और श्री रामचन्द्र जी का सुन्दर यश सुनाते हैं। सोने के खंभों को हाथों से पकड़कर उन्होंने (परस्पर) कहा कि अब उत्पात आरम्भ किया जाय। वे गर्जकर शत्रु की सेना के बीच में कूद पड़े और अपने भारी भुजबल से उसका मर्दन करने लगे। किसी

की लात से और किसी की थप्पड़ से खबर लेते हैं। (और कहते हैं कि) "तुम श्री राम जी को नहीं भजते, उसका यह फल लो।"

दो०– एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुंड ।।४४ ।।

भावार्थ – एक दूसरे से (रगड़कर) मसल डालते हैं और सिरों को तोड़ कर फेंकते हैं। वे सिर जाकर रावण के सामने गिरते हैं और ऐसे फूटते हैं मानों दही के कूंडे फूट रहे हों।

महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ।।
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा ।।
खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी ।।
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ।।
देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी ।।
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी ।।
अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ।।
लंकाँ द्वौ कपि सोहहिं कैसें। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसें ।।

भावार्थ – जिन बड़े-बड़े मुखियों (प्रधान सेनापतियों) को पकड़ पाते हैं, उनके पैर पकड़ कर उन्हें प्रभु के पास फेंक देते हैं। विभीषण जी उनके नाम बतलाते हैं और श्री राम जी उन्हें भी अपना धाम (परम पद) दे देते हैं। ब्राह्मणों का मांस खाने वाले वे नर भोजी दुष्ट राक्षस भी वह परम गति पाते हैं जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं (परन्तु सहज में नहीं पाते)। (शिवजी कहते हैं–) "हे उमा! श्री राम जी बड़े ही कोमल हृदय और करुणा की खान हैं। (वो सोचते हैं कि) राक्षस मुझे वैर भाव से ही सही, स्मरण तो करते हैं ऐसा हृदय में जानकर वे उन्हें परम गति (मोक्ष) देते हैं। हे भवानी! कहो तो ऐसे कृपालु (और) कौन है ? प्रभु का ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्यागकर उनका भजन नहीं करते, वे अत्यन्त अल्पबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं।" श्री राम जी ने कहा कि "अंगद और हनुमान किले में घुस गये हैं। दोनों बानर लंका (विध्वंस करते कैसे) शोभा देते हैं, जैसे दो मन्दराचल समुद्र को मथ रहे हैं।"

दो०-- भुज बल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत श्रम आए जहँ भगवंत ।। ४५ ।।

भावार्थ – भुजाओं के बल से शत्रु की सेना को कुचलकर और मसलकर फिर दिन का अन्त होता देखकर हनुमान और अंगद दोनों कूद पड़े और श्रम (थकावट) रहित होकर वहाँ आ गये जहाँ भगवान श्री राम जी थे।

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतश्रम परम सुखारे॥
गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥
निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाई भट भिरे॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी॥
महाबीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥
प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥
भयउ निमिष महँ अति अँधिआरा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥

भावार्थ – उन्होंने प्रभु के चरणकमलों में सिर नवाये। उत्तम योद्धाओं को देखकर श्री रघुनाथ जी मन में बहुत प्रसन्न हुए। श्री राम जी ने कृपा करके दोनों को देखा जिससे वे श्रमरहित और परमसुखी हो गये। अंगद और हनुमान को गये जानकर सभी भालु और बानर वीर लौट पड़े। राक्षसों ने प्रदोष (सायं) काल का बल पाकर रावण की दुहाई देते हुए बानरों पर धावा किया। राक्षसों की सेना आती देखकर बानर लौट पड़े और वे योद्धा जहाँ तहाँ कटकटाकर भिड़ गये। दोनों ही दल बड़े बलवान् हैं। योद्धा ललकार-ललकार कर लड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते। सभी राक्षस महान् वीर और अत्यन्त काले और बानर विशाल काय तथा अनेकों रंगों के हैं। दोनों ही दल बलवान हैं। और समान बलवाले योद्धा हैं। वे क्रोध करके लड़ते हैं और खेल करते हैं (वीरता दिखलाते हैं)। (राक्षस और बानर युद्ध करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं) मानों क्रमशः वर्षा और शरदऋतु के बहुत से बादल पवन से प्रेरित होकर लड़ रहे हों। अंकपन और अतिकाय सेनापतियों ने अपनी सेना को विचलित होते देखकर माया की। पल भर में अत्यन्त अन्धकार हो गया। खून, पत्थर और राख की वर्षा होने लगी।

पात्र-परिचय– ऊपर की चौपाई में ११ विषम पंक्तियाँ हैं। इसमें दो नए पात्र आए हैं। उनका परिचय इस प्रकार है :-

(१) **अकम्पन**– यह लंकापति रावण का मामा और उसका एक सेनापति था। इसके पेता का नाम सुमाली और माता का नाम केतुमाली था। रावण की माता केकसी इसकी बहिन थी। और इसकी दूसरी बहिन का नाम कुम्भीनसी था। लंका के युद्ध में यह महावीर हनुमान के हाथ मारा गया था। इसके दो भाई थे, जिनके नाम प्रहस्त और धूम्राक्ष थे।

(२) **अतिकाय**– यह लंकेश्वर रावण का पुत्र था। ब्रह्मा ने इसपर प्रसन्न होकर इसे

एक कवच दिया था। इस कवच के प्रभाव से वह देवताओं से भी अवध्य हो गया था। इसका लक्ष्मण के साथ घोर युद्ध हुआ था, और उसी युद्ध में यह मारा भी गया था।

दो०— देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार।
एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार ।।४६ ।।

भावार्थ — दसों दिशाओं में अत्यन्त घना अन्धकार देखकर बानरों की सेना में खलबली पड़ गयी। एक को एक (दूसरा) नहीं देख सकता और सब जहाँ-तहाँ पुकार कर रहे हैं।

सकलमरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना ॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥
पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ॥
भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरष बिगत श्रम त्रासा ॥
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥
भागत भट-पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्‌भुत करनी ॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग छष धरि धरि खाहीं ॥

भावार्थ — श्री रघुनाथ जी सब रहस्य जान गये। उन्होंने अंगद और हनुमान को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही वे दोनों कपि श्रेष्ठ क्रोध करके दौड़े। फिर कृपालु श्री राम जी ने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरन्त ही अग्निबाण चलाया, जिससे प्रकाश हो गया, कहीं अंधेरा नहीं रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने पर (सब प्रकार के) सन्देह दूर हो जाते हैं। भालू और बानर प्रकाश पाकर श्रम और भय से रहित तथा प्रसन्न होकर दौड़े। हनुमान और अंगद रण में गरज उठे। उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग चले। भागते हुए राक्षस योद्धाओं को बानर और भालू पकड़कर पृथ्वी पर दे मारते हैं और अद्‌भुत (आश्चर्य जनक) करनी करते हैं (युद्ध कौशल दिखलाते हैं)। पैर पकड़ कर उन्हें समुद्र में डाल देते हैं। वहाँ मगर, साँप, मच्छ उन्हें पकड़-पकड़कर खा डालते हैं।

दो०— कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख रिपु दल बल बिचलाइ ।। ४७ ।।

भावार्थ — कुछ मारे गये, कुछ घायल हुए, कुछ भाग कर गढ़ पर चढ़ गये। अपने बल से शत्रुदल को विचलित करके रीछ और बानर (वीर) गरज रहे हैं।

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसला धनी ॥
राम कृपा करि चितवा सबही। भए बिगतश्रम बानर तबही ॥
उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥

आधा कटकु कपिन्ह संघारा । कहहु बेगि का करिअ बिचारा ॥
माल्यवंत अति जरठ निसाचर । रावन मातु पिता मंत्री बर ॥
बोला बचन नीति अति पावन । सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥
जब ते तुम्ह सीता हरि आनी । असगुन होहिं न जाहिं बखानी ॥
बेद पुरान जासु जसु गायो । राम बिमुख काहुँ न सुख पायो ॥

भावार्थ – रात हुई जानकर, वानरों की चारों सेनाएँ (टुकड़ियाँ) वहाँ आयी जहाँ कोसलपति श्री राम जी थे। श्री राम जी ने ज्योंही सब को कृपा करके देखा त्योंही ये बानर श्रम रहित हो गये। वहाँ लंका में रावण ने मंत्रियों को बुलाया और जो योद्धा मारे गये थे उन सब को सब से बताया। (उसने कहा–) ''बानरों ने आधी सेना का संहार कर दिया। अब शीघ्र बताओ, क्या विचार (उपाय) करना चाहिये?'' माल्यवंत (नाम का एक) अत्यन्त बूढ़ा राक्षस था वह रावण की माता का पिता (अर्थात् उसका नाना) और श्रेष्ठ मन्त्री था। वह अत्यन्त पवित्र नीति के वचन बोला–''हे तात! कुछ मेरी भी सीख सुनो। जब से तुम सीता को हर लाये हो, तब से इतने अपशकुन हो रहे हैं कि जो वर्णन नहीं किये जा सकते। वेद पुराण ने जिसका यश गाया है, उस श्री राम से विमुख होकर किसी ने सुख नहीं पाया।

दो०–हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान ।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥ ४८ (क)॥
कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध ।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ॥ ४८ (ख)॥

भावार्थ– भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष को और बलवान मधु-कैटभ को जिन्होंने मारा था, वे ही कृपा के समुद्र भगवान (रामरूप से) अवतरित हुए हैं, जो कालस्वरूप है, दुष्टों के समूह रूपी बन को भस्म करने वाले (अग्नि) हैं, गुणों के धाम और ज्ञानवान हैं। एवं शिव जी और ब्रह्मा जी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे बैर कैसा ?

परिहरि बयरु देहु बैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
ताके बचन बान सम लागे । करिआ मुह करि जाहि अभागे ॥
बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही । अब जनि नयन देखावसि मोही ॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना । बध्यो चहत एहि कृपानिधाना ॥
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा । तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा । करिहउँ बहुत कहौं का थोरा ॥
सुनि सुत बचन भरोसा आवा । प्रीति समेत अंक बैठावा ॥
करत बिचार भयउ भिनुसारा । लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ॥

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा । नगर कोलाहलु भयउ घनेरा ॥
बिबिधायुध धर निसिचर धाए । गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए ॥

भावार्थ– (अतः) वैर छोड़कर उन्हें जानकी जी को दे दो और कृपानिधान परम सनेही श्री राम जी का भजन करो।'' रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। (वह बोला–) ''अरे अभागे ! मुँह काला करके (यहाँ से) निकल जा। तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुजे मार डालता ! अब मेरी आँखों को अपना मुँह न दिखला।'' रावण के ये वचन सुनकर उसने (माल्यावन्त ने) अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्री राम जी अब मारना ही चाहते हैं। वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला–''सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा)।'' पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा आ गया। उसने प्रेम के साथ उसे गोद में बैठा लिया। विचार करते-करते ही सवेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजों पर जा लगे। बानरों ने क्रोध करके दुर्गम किले को घेर लिया। नगर में बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किले पर से पहाड़ों के शिखर ढहाये।

छं०–ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले ।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले ॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए ।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए ॥

दो०– मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ ।
उतरयो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ ॥ ४९ ॥

भावार्थ– उन्होंने पर्वतों के करोड़ों शिखर ढहाये, अनेक प्रकार से गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे बज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो), और योद्धा ऐसे गरजते हैं मानों प्रलय काल के बादल हों। विकट बानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं)। उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते)। वे पहाड़ उठाकर उसे किले पर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ-के-तहाँ (जो जहाँ होते हैं वहीं) मारे जाते हैं। मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि बानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला।

कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता । धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा । अंगद हनूमंत बल सींवा ॥
कहाँ बिभीषनु भ्राताद्रोही । आजु सबहि हठि मारउँ ओही ॥

अस कहि कठिन बान संधाने । अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने ॥
सर समूह सो छाड़ै लागा । जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर । सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर ॥
जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा । बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा ॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा ॥

भावार्थ– (मेघनाद ने पुकार कर कहा–) "समस्त लोकों के प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं ? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान कहाँ हैं ? भाई से द्रोह करने वाला विभीषण कहाँ हैं ? आज मैं सब को और उस दुष्ट को तो हठपूर्वक (अवश्य ही)मारूँगा ।" ऐसा कहकर उसने धनुष पर कठिन बाणों का सन्धान किया और अत्यन्त क्रोध करके उसे कान तक खींचा । वह बाणों के समूह छोड़ने लगा । मानों बहुत से पंख वाले साँप दौड़े जा रहे हों । जहाँ-तहाँ बानर गिरते दिखाई पड़ने लगे । उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके । रीछ-बानर जहाँ तहाँ भाग चले । सब को युद्ध की इच्छा भूल गयी । रणभूमि में ऐसा एक भी बानर या भालू नहीं दिखायी पड़ा जिसको उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात् जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हो;बल, पुरूषार्थ सारा जाता रहा हो)।

दो०–दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर ।
सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर ॥५०॥

भावार्थ– फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे, बानर वीर पृथ्वी पर गिर पड़े । बलवान और धीर मेघनाद सिंह के समान नाद करके गरजने लगा ।

देखि पवनसुत कटक बिहाला । क्रोधवंत जनु धायउ काला ॥
महासैल एक तुरत उपारा । अति रिस मेघनाद पर डारा ॥
आवत देखि गयउ नभ सोई । रथ सारथी तुरग सब खोई ॥
बार बार पचार हनुमाना । निकट न आव मरमु सो जाना ॥
रघुपति निकट गयउ घननादा । नाना भाँति करेसि दुर्बादा ॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे । कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे ॥
देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना । करै लाग माया बिधि नाना ॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला । डरपावै गहि स्वल्प सपेला ॥

भावार्थ– सारी सेना को बेहाल (ब्याकुल) देखकर पवन पुत्र हनुमान क्रोध करके ऐसे दौड़े मानों स्वयं काल दौड़ा आता है । उन्होंने तुरन्त एक बड़ाभारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोध के साथ उसे मेघनाद पर छोड़ा । पहाड़ को आता देखकर वह आकाश में उड़

गया। (उसके) रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गये (चूर-चूर हो गये)। हनुमान जी उसे बार-बार ललकारते हैं। पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बल का मर्म जानता है। (तब) मेघनाद श्री रघुनाथ जी के पास गया और उसने (उनके प्रति) अनेक प्रकार के दुर्वचनों का प्रयोग किया। फिर उसने उन पर अस्त्र, शस्त्र तथा और सब हथियार चलाये। प्रभु ने खेल में ही सब को काट कर अलग कर दिया। श्री राम जी का प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लज्जित हो गया और अनेकों प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा सा साँप का बच्चा लेकर गरुड़ को डराये और उससे खेल करे।

दो०—जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट ।। ५१ ।।

भावार्थ— शिव जी और ब्रह्माजी तक बड़े—छोटे (सभी) जिनकी अत्यन्त बलवान माया के वश में हैं, नीच बुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है।

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा ।।
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ।।
बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा ।।
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथ पसारा ।।
कपि अकुलाने माया देखें। सबकर मरन बना एहिं लेखें ।।
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने ।।
एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया ।।
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके ।।

भावार्थ— आकाश में (ऊँचे) चढ़कर वह बहुत से अँगारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जल की धाराएँ प्रकट होने लगी। अनेक प्रकार के पिशाच तथा पिशाचिनियाँ नाच-नाचकर "मारो, काटो" की आवाज़ करने लगीं। वह कभी तो विष्टा, पीप, खून, बाल और हड्डियाँ बरसाता था, और कभी बहुत से पत्थर फेंक देता था। फिर उसने धूल बरसा कर ऐसा अन्धेरा कर दिया कि अपना ही पसारा हुआ हाथ नहीं सूझता था। माया देखकर बानर अकुला उठे। वे सोचने लगे कि इस हिसाब से (इसी तरह रहा) तो सब का मरण आ बना। यह कौतुक देखकर श्री राम जी मुस्कराये। उन्होंने जान लिया कि बानर भयभीत हो गये हैं। तब श्री राम जी ने एक ही बाण से सारी माया काट डाली, जैसे सूर्य अन्धकार के समूह को हर लेता है। तदनन्तर उन्होंने कृपा भरी दृष्टि से बानर-भालुओं की ओर देखा, (जिससे) वे ऐसे प्रबल हो गये कि रण में रोकने पर भी नहीं रुकते थे।

दो०— आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ ।। ५२ ।।

भावार्थ— श्री राम जी से आज्ञा माँगकर, अंगद आदि बानरों के साथ हाथों में धनुष-बाण लिये हुए श्री लक्ष्मण जी क्रुद्ध हो कर चले ।

छतज नयन उर बाहु बिसाला । हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला ।।
इहाँ दसानन सुभट पठाए । नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए ।।
भूधर नख बिटपायुध धारी । धाए कपि जय राम पुकारी ।।
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी । इत उत जय इच्छा नहिं थोरी ।।
मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं । कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं ।।
मारु मारु धरु धरु धरु मारू । सीस तोरि गहि भुजा उपारू ।।
असि रव पूरि रही नव खंडा । धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा ।।
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा । कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा ।।

भावार्थ— उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और विशाल भुजाएँ हैं । हिमाचल पर्वत के समान उज्ज्वल (गौरवर्ण) शरीर कुछ लालाई लिये हुए है । इधर रावण ने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे जो अनेकों अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े । पर्वत, नख और वृक्ष रूपी हथियार धारण किये हुए बानर 'श्री रामचन्द्र जी की जय' पुकार कर दौड़े । बानर और राक्षस सब जोड़ी-से-जोड़ी भिड़ गये । इधर और उधर दोनों ओर जय की इच्छा कम न थी (अर्थात प्रबल थी)। बानर उनको घूँसों और लातों से मारते हैं, दातों से काटते हैं । विजयशील बानर उन्हें मारकर फिर डाँटते भी हैं । ''मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, सिर तोड़ दो और भुजाएँ पकड़कर उखाड़ लो—'' नवों खण्डों में ऐसी आवाज भर रही है । प्रचण्ड रुण्ड (धड़)जहाँ-तहाँ दौड़ रहे हैं । आकाश में देवता गण यह कौतुक देख रहे हैं । उन्हें कभी खेद होता है और कभी आनन्द ।

दो०— रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ ।
जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ ।। ५३ ।।

भावार्थ— खून गड्ढों में भर-भरकर जम गया है, और उस पर धूल उड़कर पड़ रही है । (वह दृश्य ऐसा है) मानों अंगारों के ढेरों पर राख छा रही हो ।

घायल बीर बिराजहिं कैसे । कुसुमित किंसुक के तरु जैसे ।।
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा । भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ।।
एकहि एक सकइ नहिं जीती । निसिचर छल बल करइ अनीती ।।

क्रोधवंत तब भयउ अनंता । भंजेउ रथ सारथी तुरंता ॥
नाना बिधि प्रहार कर सेषा । राच्छस भयउ प्रान अवसेषा ॥
रावन सुत निज मन अनुमाना । संकठ भयउ हरिहि मम प्राना ॥
बीरघातिनी छाड़िसी साँगी । तेज पुंज लछिमन उर लागी ॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें । तब चलि गयउ निकट भय त्यागें ॥

भावार्थ– घायल वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पलास के पेड़ । लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध करके एक दूसरे से भिड़ते हैं । एक दूसरे को (कोई किसी को) जीत नहीं सकता । राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है । तब भगवान अनन्त जी (लक्ष्मण जी) क्रोधित हुए और उन्होंने तुरन्त उसके रथ को तोड़ डाला और सारथी के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । शेष जी (लक्ष्मण जी) उस पर अनेक प्रकार से प्रहार करने लगे । राक्षस के प्राण मात्र शेष रह गये । रावण पुत्र मेघनाद ने मन में अनुमान किया कि अब तो प्राणसंकट आ बना, ये मेरे प्राणहर लेंगे । तब उसने वीर घातिनी शक्ति चलायी। वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मण जी की छाती में लगी । शक्ति के लगने से उन्हें मूर्च्छा आ गयी । तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया ।

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ ।। ५४ ।।

भावार्थ– मेघनाद के समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं । परन्तु जगत के आधार श्री शेष जी (लक्ष्मण जी) उनसे कैसे उठते ? तब वे लजाकर चले गये ।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू । जारइ भुवन चारिदस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही । सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥
यह कौतूहल जानइ सोई । जा पर कृपा राम कै होई ॥
संध्या भइ फिरि द्वौ बाहनी । लगे सँभारन निज निज अनी ॥
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना । अनुज दीख प्रभु अति दुख माना ॥
जामवंत कह बैद सुषेना । लंकाँ रहइ को पठई लेना ॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता । आनेउ भवन समेत तुरंता ॥

भावार्थ– (शिव जी कहते हैं–) ''हे गिरजे ! सुनो, (प्रलयकाल में) जिन (शेषनाग) के क्रोध की अग्नि चौदहों भुवनों को तुरन्त ही जला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर (जीव) जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राम में कौन जीत सकता है । इस लीला को वही जान सकता है जिस पर श्री राम जी की कृपा हो । सन्ध्या होने पर दोनों ओर की

सेनाएँ लौट पड़ीं, सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ सँभालने लगे।' व्यापक, ब्रह्म, अजेय, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के ईश्वर और करुणा की खान श्री रामचन्द्र जी ने पूछा--''लक्ष्मण कहा हैं?'' तब तक हनुमान उन्हें ले आये। छोटे भाई को (इस दशा में) देख कर प्रभु ने बहुत ही दुःख माना। जाम्यवान् ने कहा--''लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे ले आने के लिये किसी को भेजा जाय।'' हनुमान जी छोटा रूप धर कर गये और सुषेण को उसके घर समेत तुरन्त ही उठा लायें।

दो०--राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन।। ५५।।

भावार्थ-- सुषेण ने आकर श्री राम जी के चरणारविन्दों में सिर नवाया। उसनें पर्वत और औषध का नाम बताया, (और कहा कि--) ''हे पवन पुत्र! औषधि लेनें जाओ।''

राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी।।
उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा।।
दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना।।
देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा।।
भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना।।
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा।।
मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू।।
काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई।।

भावार्थ-- श्री राम जी के चरण कमलों को हृदय में रखकर, पवनपुत्र हनुमान जी अपना बल बखानकर (अर्थात् मैं अभी लिये आता हूँ, ऐसा कहकर) चले। उधर एक गुप्तचर ने रावण को इस रहस्य की खबर दी। तब रावण कालनेमि के घर आया। रावण ने उसको सारा मर्म (हाल) बताया। कालनेमि ने सुना और बार-बार सिर पीटा (खेद प्रकट किया)। (उसने कहा--) ''तुम्हारे देखते-देखते जिसने नगर जला डाला, उसका मार्ग कौन रोक सकता है। श्री रघुनाथ जी का भजन करके तुम अपना कल्याण करो। हे नाथ! झूठी बकवाद छोड़ दो। नेत्रों को आनन्द देने वाले नीलकमल के समान सुन्दर श्याम शरीर को अपने हृदय में रक्खो। मैं-तू (भेद-भाव) और ममता रूपी मूढ़ता को त्याग दो। महामोह (अज्ञान) रूपी रात्रि में सो रहे हो तो जाग उठो। जो काल रूपी सर्प का भी भक्षक है, कहीं स्वप्न में भी वह रण में जीता जा सकता है।''

दो०--सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु यह खल रत मल भार।। ५६।।

भावार्थ– उसकी ये बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ। तब कालनेमि ने मन में विचार किया कि (इसके हाथ मरने की अपेक्षा) श्री राम के दूत के हाथ से ही मरूँ तो अच्छा है। यह दुष्ट तो पाप समूह में रत है।

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥
मारुतसुत देखा सुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम॥
राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥
होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं॥
इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकाई॥
मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु॥

भावार्थ– वह मन ही मन ऐसा कह कर चला और उसने मार्ग में माया रची। तालाब, मन्दिर और सुन्दर बाग बनाया। हनुमान जी ने सुन्दर आश्रम देखकर सोचा कि मुनि से पूछ कर जल पी लूँ, जिससे थकावट दूर हो जाये। राक्षस वहाँ कपट (से मुनि) का वेष बनाये विराजमान था। वह मूर्ख अपनी माया से मायापति के दूत को मोहित करना चाहता था। मारुति ने उसके पास जाकर मस्तक नवाया। वह श्री राम जी के गुणों की कथा कहने लगा। (वह बोला–) ''रावण और राम में महान् युद्ध हो रहा है। राम जी जीतेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। भाई मैं यहाँ रहता हुआ भी सब देख रहा हूँ। मुझे ज्ञान दृष्टि का बहुत बड़ा बल है।'' हनुमान जी ने उससे जल माँगा, तो उसने कमण्डल दे दिया। हनुमान जी ने कहा–''थोड़े से जल से मैं तृप्त नहीं होने का।'' तब वह बोला–''तालाब में स्नान करके तुरन्त लौट आओ तो मैं तुम्हें दीक्षा दूँ, जिससे तुम ज्ञान प्राप्त करो।''

दो०–सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥ ५७॥

भावार्थ– तालाब में प्रवेश करते ही एक मगरी ने अकुलाकर उसी समय हनुमान जी का पैर पकड़ लिया। हनुमान जी ने उसे मार डाला। तब वह दिव्य देह धारण करके विमान पर चढ़कर आकाश को चली।

अन्तर्कथा– सुषेण वैद्य द्वारा बताई गई सञ्जीवनी बूटी लेने जब हनुमान जी हिमालय की ओर चले, तब गुप्तचर ने आकर रावण को यह समाचार दिया। हनुमान के मार्ग में पथ-बाधा डालने के लिए रावण कालनेमि के पास गया। कालनेमि ने समझाया–''तुम्हारे देखते-देखते जिसने सारा नगर जला डाला, उसका मार्ग कौन रोक सकता है?'' इस पर

रावण ने क्रोधित होकर उसे मार डालने की धमकी दी । तब कालनेमि ने विचार किया–''इसके हाथ मरने की अपेक्षा, श्री राम के दूत के हाथ से ही मरूँ तो अच्छा है '' मन में ऐसा सोचकर कालनेमि चला । मार्ग में उसने माया रची । तालाब, मन्दिर और बाग बनाया । हनुमान जी ने सुन्दर आश्रम देखकर सोचा कि मुनि से पूछ कर जल पीलूँ, जिससे थकावट दूर हो जाये । हनुमान जी ने जब जल माँगा, तो कपटी-मुनि (कालनेमि) ने उन्हें अपना कमण्डल दे दिया । हनुमान जी ने कहा–''थोड़े से जल से मैं तृप्त नहीं होने का।'' तब मुनि ने एक तालाब की ओर संकेत किया । तालाब में प्रवेश करते ही, एक मकरी ने अकुलाकर उसी समय हनुमान जी का पैर पकड़ लिया । हनुमान जी ने उसे मार डाला । मरते समय मकरी ने हनुमान को कपटी-मुनि से सावधान किया और अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाई । अन्तर्कथा इस प्रकार है :-

कालनेमि और मगरी अपने पूर्व जन्म में गन्धर्ब और अप्सरा थे । इन्द्र की सभा में जब अप्सरा ने नृत्य किया और उसके साथी गन्धर्ब ने गाना गाया, तब सभी दर्शकों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, परन्तु मुनि दुर्बासा चुप रहे । इस पर यह विचार कर कि उन्हें नृत्य एवं संगीत कला का ज्ञान नहीं है, उन दोनों को हँसी आ गई । इस धृष्टता पर क्रोधित होकर मुनि दुर्वासा ने श्राप दिया, जिसके फलस्वरूप अप्सरा मगरी और गंधर्व कालनेमि राक्षस हुआ । जब उन्होंने दुर्वासा जी से पछताते हुए क्षमा याचना की, तब दुर्वासा ने कहा था कि श्री राम दूत के संहार करने पर तुम दोनों श्राप से मुक्त हो जाओगे ।

पात्र-परिचय के लिए देखिए भाग १, पृष्ठ २१ ।

कपि तव दरस भइउँ निष्पापा । मिटा तात मुनिबर कर सापा ॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानहु सत्य बचन कपि मोरा ॥
अस कहि गई अपछरा जबहीं । निसिचर निकट गय कपि तबहीं ॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू । पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू ॥
सिर लंगूर लपेटि पछारा । निज तनु प्रगटेसि मरती बारा ॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना । सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना ॥
देखा सैल न औषध चीन्हा । सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ । अवधपुरी पर कपि गयऊ ॥

भावार्थ– (उसने कहा–) ''हे बानर ! मैं तुम्हारे दर्शन से पाप रहित हो गई । हे तात! श्रेष्ठ मुनि का श्राप मिट गया । हे कपि ! यह मुनि नहीं है । घोर निशाचर है। मेरा वचन सत्य मानो ।'' ऐसा कह कर ज्यों ही वह अप्सरा गई, त्यों ही हनुमान जी निशाचर के पास गये । हनुमान जी ने कहा– ''हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा ले ले लीजिये । पीछे आप मुझे मन्त्र दीजियेगा ।'' हनुमान जी ने उसके सिर को पूँछ में लपेट कर पछाड़ दिया । मरते

समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया। उसने राम-राम कह कर प्राण छोड़ा। यह (उसके मुँह से राम-नाम का उच्चारण) सुनकर, हनुमान जी मन में हर्षित होकर चले। उन्होंने पर्वत को देखा, पर औषध न पहचान सके। तब हनुमान जी ने एक दम से पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लेकर हनुमान जी रात ही में आकाश मार्ग से दौड़ चले और अयोध्या पुरी के ऊपर पहुँच गये।

दो०– देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि।। ५८।।

भावार्थ– भरत जी ने आकाश में अत्यन्त विशाल स्वरूप देखा, तब मन में अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष को खींचकर बिना फल का एक बाण मारा।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक।।
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए।।
बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा।।
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी।।
जेहि बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा।।
जौं मोरें मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।।
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला।।
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा।।

भावार्थ– बाण लगते ही हनुमान जी "राम, राम, रघुपति" का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। प्रिय वचन (राम-नाम) सुनकर भरत जी उठकर दौड़े और बड़ी उतावली से हनुमान जी के पास आये। हनुमान जी को व्याकुल देखकर उन्होंने हृदय से लगा लिया। बहुत तरह से जगाया, पर वे जागते न थे। तब भरत जी का मुख उदास हो गया। वे मन में बड़े दुःखी हुए, और नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भर कर ये बचन बोले–"जिस विधाता ने मुझे श्री राम से विमुख किया, उसी ने फिर यह भयानक दुःख भी दिया। यदि मन, बचन और शरीर से श्री राम जी के चरण कमलों में मेरा निष्कपट प्रेम हो, और श्री रघुनाथ जी मुझ पर प्रसन्न हों तो यह बानर थकावट और पीड़ा से रहित हो जाय।" यह वचन सुनते ही कपिराज हनुमान जी "कोसलपति श्री रामचन्द्र की जय हो, जय हो," कहते हुए उठ बैठे।

दो०–लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक।। ५९।।

भावार्थ– भरत जी ने बानर (हनुमान जी) को हृदय से लगा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनन्द तथा प्रेम के आँसुओं का)जल भर आया। रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके भरत जी के हृदय में प्रीति समाती न थी।

तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥
अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥
तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥
सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥

भावार्थ– (भरत जी बोले–) "हे तात! छोटे भाई लक्ष्मण तथा माता जानकी सहित सुख निधान श्री राम जी का कुशल कहो।" बानर (हनुमान जी)ने संक्षेप में सब कथा कही। सुनकर भरत जी दुखी हुए और मन में पछ्ताने लगे। "हा देव! मैं जगत् में क्यों जन्मा? प्रभु के एक भी काम न आया।" फिर कुअवसर (विपरीत समय)जानकर मन में धीरज धर कर, बलबीर भरत जी हनुमान जी से बोले–"हे तात! तुमको जाने में देर होगी। और सबेरा होते ही काम बिगड़ जायेगा। (अतः)तुम पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ। मैं तुमको वहाँ भेज दूँ जहाँ कृपा के धाम श्री राम जी हैं।" भरत जी की यह बात सुनकर (एक बार तो)हनुमान जी के मन में अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा? (किन्तु)फिर श्री रामचन्द्र जी के प्रभाव का विचार करके वे भरत जी के चरणों की वन्दना करके हाथ जोड़ कर बोले–

दो०–तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥ ६० (क)॥
भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँजात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥ ६० (ख)॥

भावार्थ– "हे नाथ! हे प्रभो! मैं आपका प्रताप हृदय में रखकर तुरन्त चला जाऊँगा।" ऐसा कहकर, आज्ञा पाकर और भरत जी के चरणों की वन्दना करके हनुमान जी चले। भरत जी के बाहुबल, शील (सुन्दर स्वभाव), गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रेम की मन-ही-मन बारंबार सराहना करते हुए, मारुति श्री हनुमान जी चले जा रहे हैं।

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्धराति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ । बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता । सहेहु बिपिन हिम आतप बाता ॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई । उठहु न सुनि मम बच बिकलाई ॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥
सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना । मनि बिनु फनि करिबर कर हीना ॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही । जौं जड़ दैव जिआवै मोही ॥
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं । नारि हानि बिसेष छति नाहीं ॥
अब अपलोकु सोकु सुत तोरा । सहिहि निठुर कठोर उर मोरा ॥
निज जननी के एक कुमारा । तात तासु तुम्ह प्रान अधारा ॥
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी । सब बिधि सुखद परम हित जानी ॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई । उठि किन मोहि सिखावहु भाई ॥
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन । स्रवत सलिल राजिव दल लोचन ॥
उमा एक अखंड रघुराई । नर गति भगत कृपाल देखाई ॥

भावार्थ– वहाँ लक्ष्मण जी को देखकर श्री राम जी साधारण मनुष्यों के अनुसार (समान) वचन बोले–''आधी रात बीत चुकी, हनुमान नहीं आये।'' यह कहकर श्री राम जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को उठाकर हृदय से लगा लिया। (और बोले–) ''हे भाई! तुम मुझे कभी दुखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लियें तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा, गर्मी और हवा सब सहन किया। हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुल वचन सुनकर क्यों नहीं उठते?यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता के उस वचन को भी न मानता (जिसका मानना मेरा परम कर्तव्य था)। पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार, ये जगत में बार-बार होते और जाते हैं। परन्तु जगत में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदय में ऐसा विचार कर हे तात! जागो। जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूंड बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यन्त दीन हो जाते हैं, हे भाई! यदि कहीं जड़ देव मुझे जीवित रक्खे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा। स्त्री के लिये प्यारे भाई को खोकर, मैं कौन सा मुँह लेकर अवध जाउँगा। मैं जगत में अपयश भले ही सहता (कि राम में कुछ वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे)। स्त्री की हानि से इस हानि को देखते कोई विशेष क्षति नहीं थी। अब तो हे पुत्र! मेरा निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी

माता के एक ही पुत्र और उसके प्राणधार हो। सब प्रकार से सुख देने वाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा। हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (बताते) क्यों नहीं?'' सोच से छुड़ाने वाले श्री राम जी बहुत प्रकार से सोच कर रहे हैं। उनके कमलदल के समान नेत्रों से (विषाद के आँसुओं का)जल बह रहा है। (शिव जी कहते हैं–)''हे उमा! श्री रघुनाथ जी एक (अद्वितीय)और अखण्ड (वियोगरहित) हैं। भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान ने लीला करके मनुष्य की दशा दिखलाई है।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १८ सम पंक्तियाँ हैं। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान संजीवनी लेने भेजे गये थे। आधी रात तक वे नहीं लौटे। यदि रात बीतने तक संजीवनी नहीं आती तो लक्ष्मण का मरण अवश्य था। यह बात को सोचकर राम साधारण मनुष्यों के समान विलाप करने लगे–'पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार ये जगत में बार-बार होते और जाते हैं। परन्तु जगत में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हे तात! तुम अपनी माता के एक पुत्र और उसके प्राणधार हो। सब प्रकार से सुख देने वाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा।''

सो०–प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस ॥ ६१ ॥

भावार्थ– प्रभु के (लीला के लिये किये गये) प्रलाप को कानों से सुनकर वानरों के समूह व्याकुल हो गये। इतने में ही हनुमान जी आ गये, जैसे करुणरस में वीर रस आ गया हो।

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥
हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा॥
यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥
जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥
कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥
दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥

भावार्थ– श्री राम जी हर्षित होकर हनुमान जी से गले मिले। प्रभु परम सुजान (चतुर) और अत्यन्त ही कृतज्ञ हैं। तब वैद्य ने तुरन्त उपाय किया, जिससे लक्ष्मण जी हर्षित होकर उठ बैठे। प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले। भालू बानरों के समूह में सब हर्षित हो गये। फिर हनुमान जी ने वैद्य को उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया जिस प्रकार पहले उसे लाये थे। यह समाचार जब रावण ने सुना तब उसने अत्यन्त विषाद से बार-बार सिर पीटा। वह ब्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत से उपाय करके उसने उसको जगाया। कुम्भकर्ण जागा (उठ बैठा)। वह कैसा दिखाई देता है मानों स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो। कुम्भकर्ण ने पूछा– "हे भाई! कहो तो, तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं।" उस अभिमानी (रावण) ने उससे, जिस प्रकार से वह सीता को हर लाया था (तब से अब तक की) सारी कथा कही। (फिर कहा) "हे तात! बानरों ने सब राक्षस मार डाले। बड़े-बड़े योद्धाओं को भी संहार कर डाला। दुर्मुख, देवशत्रु (देवान्तक), मनुष्यभक्षक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिशय और अकम्पन तथा महोदर आदि दूसरे सभी रणधीर बीर रणभूमि में मारे गये।"

पात्र-परिचय– ऊपर की चौपाई में बारह सम पंक्तियाँ हैं। जब रावण को यह समाचार मिला कि हनुमान सञ्जीवनी बूटी ले आये और उसके प्रयोग से लक्ष्मण की मूर्छा जाती रही, तब वह व्याकुल होकर कुम्भकरण* के पास सहायता माँगने गया। उसने कुम्भकरण को जगा कर बताया कि वानरों द्वारा उसकी सेना के कई वीर राक्षस योद्धा मारे गये। जिन जगत विख्यात योद्धाओं की रावण ने गणना की, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

१-२ **अकम्पन और अतिकाय**–** देखिए पृष्ठ ८५०-५१।

३. **दुर्मुख**–** ये धृतराष्ट्र के पुत्रों में से एक था। दुर्जय को मारकर, भीमसेन ने जब कर्ण का रथ तोड़ कर उसे विवश कर दिया था, तब दुर्योधन ने दुर्मुख को कर्ण की सहायता के लिए भेजा था। परन्तु वह बेचारा रणभूमि में उपस्थित होते ही भीमसेन के द्वारा मारा गया। पता नहीं तुलसीदास ने इसे त्रेता युग में कैसे दिखा दिया। सम्भवतः यह किसी राक्षस-विशेष का नाम हो।

४. **सुररिपु–** इसका असली नाम "देवान्तक" था। नाम का तुलसीदास ने हिन्दी अनुवाद कर दिया।

५. **मनुज अहारी–** इसका असली नाम "नरान्तक" था। नाम का तुलसीदास ने हिन्दी अनुवाद कर दिया।

६. **महोदर–** सम्भवतः रावण का पुत्र था, जिसे अंगद ने मारा। देखिए पृष्ठ ९१९।

---

* पात्र-परिचय के लिए, देखिए पृष्ठ १६।

** इन तीनो राक्षसों की गणना, प्रारम्भ में ही बालकाण्ड के दोहे १८० में कर दी गई थी। देखिए भाग १, पृष्ठ २२०।

दो०– सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान ।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान ।। ६२ ।।

भावार्थ– तब रावण के वचन सुनकर कुम्भकर्ण विलखकर (दुःखी होकर) बोला–''अरे मूर्ख । जगज्जननी को हर लाकर अब तू कल्याण चाहता है ।

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा । अब मोहि आइ जगाएहि काहा ।।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना ।।
हैं दससीस मनुज रघुनायक । जाके हनुमान से पायक ।।
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई । प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई ।।
कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक । सिव बिरंचि सुर जाके सेवक ।।
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा । कहतेउँ तोहि समय निरबहा ।।
अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ।।
स्याम गात सरसीरुह लोचन । देखौं जाइ ताप त्रय मोचन ।।

भावार्थ– हे राक्षस राज ! तूने अच्छा नहीं किया । अब आकर मुझे जगाया । हे तात! अब भी अभिमान छोड़कर श्री रामजी को भजो तो कल्याण होगा । हे रावण! जिनके हनुमान सरीखे सेवक हैं, वे श्री रघुनाथ जी क्या मनुष्य हैं? हाय भाई! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया । हे स्वामी ! तुमने उस परम देवता का विरोध किया, जिनके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं । नारद ऋषि ने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुझसे कहता, पर अब तो समय जाता रहा । हे भाई!अब तो अन्तिम बार अँकवार भर कर मुझसे मिल ले, मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ । तीनों तापों को छुड़ाने वाले श्याम शरीर कमलनेत्र श्री राम जी के जाकर दर्शन करूँ ।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई के निम्न पद को समझने के लिये ''अध्यात्म्य रामायण'' का अध्ययन आवश्यक है–

नारदमुनि मोहि ग्यान जो कहा । कहतेउँ तोहि समय निरबहा ।

आध्यात्म रामायण के युद्ध काण्ड के सातवें सर्ग के श्लोक ५९-६५ उद्धृत हैं ।

एकदाहं वने सानौ विशालायां स्थितो निशि ।
दृष्टो मया मुनिः साक्षान्नारदो दिव्यदर्शनः ।। ५९ ।।

तमब्रुवं महाभाग कुतो गन्तासि मे वद ।
इत्युक्तो नारदः प्राह देवानां मन्त्रणे स्थितः ।। ६० ।।

तत्रोत्पन्नमुदन्तं ते वक्ष्यामि श्रृणु तत्त्वतः ।
युवाभ्यां पीडिता देवाः सर्वे विष्णुमुपागताः ।। ६१ ।।

तथेत्याह महाविष्णुः सत्य संकल्प ईश्वरः ।
जातो रघुकुले देवो राम इत्याभिविश्रुतः ।। ६४ ।।

सह हनिष्यति वः सर्वानित्युक्त्वा प्रययौ मुनिः ।
अतो जानीहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।। ६५ ।।

अर्थात, एक बार मैं विशाला नामक नगर में रात में ठहरा हुआ था। उस समय दिव्य दर्शन साक्षात् नारद मुनि दिखायी दिये। मैंने पूछा कि हे महाभाग ! आप कहाँ से आ रहे हैं, कहिये। नारद जी, जो देवताओं की सलाहवाली सभा में उपस्थित थे और वहीं से आ रहे थे, बोले कि "उस देव-समाज में जो वृत्तान्त उत्पन्न हुआ वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ! तुम दोनों से पीड़ित होकर देवता विष्णु के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि आप रावण का वध, मनुष्य रूप धारण करके कीजिये। तब सत्यसंकल्प भगवान् विष्णु ने 'बहुत अच्छा' कहा। अब वे रघुकुल में अवतीर्ण होकर रामनाम से विख्यात हुये हैं। वे राक्षसों का वध करेंगे।" यह कहकर नारद चले गये। अतएव हे रावण ! तुम राम को परब्रह्म सनातन जानो।

दो०—राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक ।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक ।। ६४ ।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी के रूप और गुणों को स्मरण करके वह एक क्षण के लिए प्रेम में मग्न हो गया। फिर रावण ने करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मंगवाये।

महिष खाइ करि मदिरा पाना । गर्जा बज्राघात समाना ।।
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा । चला दुर्ग तजि सेन न संगा ।।
देखि बिभीषनु आगें आयउ । परेउ चरन निज नाम सुनायउ ।।
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो । रघुपति भक्त जानि मन भायो ।।
तात लात रावन मोहि मारा । कहत परम हित मंत्र बिचारा ।।
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ । देखि दीन प्रभु के मन भायउँ ।।
सुनु सुत भयउ कालबस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ।।
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन । भयहु तात निसिचर कुल भूषन ।।
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर । भजेहु राम सोभा सुख सागर ।।

भावार्थ— भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह बज्रपात (बिजली गिरने) के समान गर्जा। मद से चूर (रण के उत्साह से पूर्ण) कुम्भकर्ण किला छोड़कर चला। सेना भी साथ नहीं ली। उसे देखकर विभीषण आगे आये और उसके चरणों पर गिरकर अपना नाम सुनाया। छोटे भाई को उठाकर उसने हृदय से लगा लिया और श्री रघुनाथ जी का भक्त जानकर वे उसके

मन को प्रिये लगे। (विभीषण ने कहा–) "हे तात ! परम हित करने वाली सलाह की बात कहने पर रावण ने मुझे लात मारी। उसी ग्लानि के मारे मैं श्री रघुनाथ जी के पास चला आया। दीन देखकर प्रभु के मन में मैं बहुत प्रिय लगा।" (कुम्भकर्ण ने कहा–) "हे पुत्र! सुन, रावण तो कालवश हो गया है। वह भला अब उत्तम शिक्षा मान सकता है ? तू धन्य है, धन्य है, धन्य है। हे तात ! तू राक्षस कुल का भूषण हुआ। वास्तव में हे तात ! राम को जो शोभा और सुख के सागर है, उन्हें भजकर तूने ही अकेले राक्षस कुल को उजागर किया है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। यहाँ पे कुम्भकरण और विभीषण की बात है। कुम्भकरण ने विभीषण को साधुवाद देते हुये कहा– "रावण तो कालवश हो गया है, वह अब उत्तम शिक्षा भला क्यों मानने लगा ? विभीषण तू धन्य है जो शोभा और सुख के सागर राम को भजता है। तू राक्षस कुल का भूषण है। और तूने ही अकेले राक्षस कुल को उजागर किया है।

दो०–बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर।। ६४ ।।

भावार्थ– मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर श्री राम जी का भजन करना। हे भाई! मैं कालवश हो गया हूँ, मुझे अपना पराया नहीं सूझता। इसलिये अब तुम जाओ।"

टिप्पणी– कुम्भकरण ने विभीषण को साधुवाद और आशीर्वाद देते हुये कहा कि 'मैं कालवश हो गया हूँ, मुझे अपना पराया नहीं सूझता। इसलिये तुम जाओ।" कुम्भकरण अपने को कालवश क्यों समझता था ? इस प्रश्न का उत्तर श्री देवतीर्थ स्वामी काष्ठजिह्वा जी कृत रामायण परिचर्चा में मिलता है। नारद मुनि ने कुम्भकरण को जो ज्ञान दिया था उसकी चर्चा पृष्ठ ९६७ पर की जा चुकी है। साथ में नारद जी ने कुम्भकरण को यह बताया था कि "जब छः मास की नींद पूरी होने के पहले ही तुम जगाये जाओगे, तब समझ लेना कि तुम्हारा सबका नाश होगा।"

बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन।।
नाथ भूधरा कार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा।।
एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना।।
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर।।
कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा।।
मुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। जिमि गज अर्क फलनि को मारयो।।
तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो।।

पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता । घुर्मित भूतल परेउ तुरंता ॥
पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि । जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि ॥
चली बलीमुख सेन पराई । अति भय त्रसित न कोउ समुहाई ॥

भावार्थ– भाई के वचन सुनकर विभीषण लौट गये और वहाँ आये जहाँ त्रैलोक के आभूषण श्री राम जी थे। (विभीषण ने कहा–) ''हे नाथ ! पर्वत के समान देहवाला रणधीर कुम्भकर्ण आ रहा है । बानरों ने जब कानों से इतना सुना, तब वे बलवान किल-किलाकर दौड़ें । वृक्ष और पर्वत उखाड़ लिये और क्रोध से दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर डालने लगे । रीछ-बानर एक-एक बार में ही करोड़ों पहाड़ों के शिखरों से उस पर प्रहार करते हैं । परन्तु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ)और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदार के फलों की मार से हाथी पर कुछ असर नहीं होता । तब हनुमान जी ने उसे एक घूंसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा । फिर उसने उठकर हनुमान जी को मारा । हनुमान जी चक्कर खाकर तुरन्त ही पृथ्वी पर गिर पड़े । फिर उसने नल-नील को पृथ्वी पर पछाड़ दिया । और दूसरे योद्धाओं को भी जहाँ-तहाँ पटक-पटक डाल दिया । बानर सेना भाग चली । सब अत्यन्त भयभीत हो गये, कोई सामने नहीं आता ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । राम का राक्षसों से पहला युद्ध खर-दूषण से हुआ जिसका वर्णन तुलसीदास जी ने अरण्य काण्ड के दोहे १७ से २० और उनके बीच की चौपाइयों में किया है (देखिए पृष्ठ ७३१-३८)। राम का दूसरा युद्ध कुम्भकर्ण से हुआ। इस युद्ध का प्रारम्भ ऊपर की चौपाई से होता है और अन्त दोहा ७१ के ऊपर की चौपाई में ।

दो०–अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव ।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव ।। ६५ ।।

भावार्थ– सुग्रीव समेत अंगदादि बानरों को मूर्च्छित करके फिर वह अपरिमित बल की सीमा कुम्भकर्ण वानरराज सुग्रीव को काँख में दबा कर चला।

उमा करत रघुपति नरलीला । खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला ॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई । ताहि कि सोहइ ऐसि लराई ॥
जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं । गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं ॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा । सुग्रीवहि तब खोजन लागा ॥
सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती । निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती ॥
काटेसि दसन नासिका काना । गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना ॥

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा । अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना । जयतिजयति जय कृपानिधाना ॥
नाक कान काटे जियँ जानी । फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुतिनासा । देखत कपि दल उपजी त्रासा ॥

भावार्थ– (शिवजी कहते हैं–) ''हे उमा! श्री रघुनाथ जी वैसे ही नरलीला कर रहे हैं, जैसे गरुड़ सर्पों के समूह से मिलकर खेलता हो। जो केवल भ्रूभंग से (बिना परिश्रम के) काल को भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई शोभा देती है ? भगवान इसके द्वारा जगत को पवित्र करने वाली वह कीर्ति फैलायेंगे जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागर से तर जायेंगे। मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति हनुमान जी जागे और फिर वे सुग्रीव को खोजने लगे। सुग्रीव की भी मूर्च्छा दूर हो गई। तब वे (मुर्दे से होकर) खिसक गए (कोख से नीचे गिर पड़े)। कुम्भकर्ण ने उसको मृतक जाना। उन्होंने कुम्भकर्ण के नाक-कान दातों से काट लिये और फिर गरज कर आकाश की ओर चले, तब कुम्भकर्ण ने जाना। उसने सुग्रीव को पैर पकड़कर उनको पृथ्वी पर पछाड़ दिया। फिर सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती से उठकर उसको मारा। और तब बलवान सुग्रीव प्रभु के पास आये और बोले कृपानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो। नाक-कान काटे गये, ऐसा मन में जानकर बड़ी ग्लानि हुई, और वह क्रोध करके लौटा। एक तो वह स्वभाव से ही भयंकर था और फिर बिना नाक कान का होने से और भी भयानक हो गया। उसे देखते ही बानरों की सेना में भय उत्पन्न हो गया।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है। राम-कुम्भकर्ण युद्ध में पहला वार कुम्भकर्ण ने हनुमान-सुग्रीव पर किया। उसने हनुमान जी पर ऐसा प्रहार किया कि वह चक्कर खा कर पृथ्वी पर गिर पड़े। सुग्रीव को अपनी बगल में इतना कस कर दबाया कि वह मूर्छित होकर नीचे फिसल पड़े। कुम्भकर्ण ने तो उनको मृतक जाना। परन्तु उनकी जब मूर्च्छा दूर हुई, तो उन्होंने झपट कर कुम्भकर्ण के नाक-कान अपने दाँतों से काट लिए। कुम्भकर्ण स्वभाव से ही भयंकर था। नाक-कान कटने से और भी भयानक लगने लगा।

दो०– जय जय जय रघुबंश मनि धाए कपि दै हूह ।
एकहि बार तासु पर छोड़ेन्हि गिरि तरु जूह ।।६६।।

भावार्थ– ''रघुबंशमणि की जय हो, जय हो, जय हो,'' ऐसा पुकारकर बानर हूहू करके दौड़े और सब ने एक ही साथ उस पर पहाड़ और वृक्षों के समूह छोड़े।

कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा । सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरिधरि खाई । जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई ॥
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा । कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ॥

मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा । निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ॥
रन मद मत्त निसाचर दर्पा । बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिदि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे । सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे ॥
कुंभकरन कपि फौज बिडारी । सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई । रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥

भावार्थ– रण के उत्साह में कुम्भकर्ण विरुद्ध होकर उनके सामने ऐसा चला मानों क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो । वह करोड़-करोड़ बानरों को एक साथ पकड़-पकड़कर खाने लगा । वे उसके मुख में इस तरह घुसने लगे मानों पर्वत की गुफा में टिड्डियाँ समा रही हों । करोड़ों (बानरों)को पकड़कर उसने शरीर से मसल डाला । करोड़ों को हाथों से मसल कर पृथ्वी की धूल में मिला दिया । पेट में गये हुए भालू और बानरों के ठट्ट-के-ठट्ट उसके मुख, नाक और कानों की राह से निकल-निकल कर भाग रहे हैं । रण के मद में मत्त राक्षस कुम्भकर्ण इस प्रकार गर्वित हुआ, मानो विधाता ने उसको सारा विश्व अर्पण कर दिया हो, और उसे यह ग्रास कर जायगा । सब योद्धा भाग खड़े हुए, वे लौटाये भी नहीं लौटते । आँखों से सूझ नहीं पड़ता और पुकारने से सुनते नहीं । कुम्भकर्ण ने बानर सेना को तितर-बितर कर दिया । यह सुनकर निशाचर सेना भी दौड़ी । श्री रामचन्द्र जी ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आ गई है ।

दो०– सुनु सुग्रीव विभीषन अनुज सँभारेहु सैन ।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन ।।६७ ।।

भावार्थ– तब कमल नयन श्री राम जी बोले–''हे सुग्रीव । हे विभीषण ! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेना को संभालना । मैं इस दुष्ट के बल और दल को देखता हूँ ।

कर सारंग साजि कटि भाथा । अरि दलदलन चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टँकोरा । रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा ॥
सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा । कालसर्प जनु चले सपच्छा ॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा । लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥
कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा । बहुतक बीर होहिं सत खंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं । उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥
लागत बान जलद जिमि गाजहिं । बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं ॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं । धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं ॥

भावार्थ– हाथ में शारंग धनुष और कमर में तरकस श्री रघुनाथ जी शत्रु के दल का दलन करने चले । प्रभु ने पहले तो धनुष टंकार किया, जिसकी भयानक आवाज़ सुनते ही

शत्रुदल बहरा हो गया। फिर सत्यप्रतिज्ञ श्री रामजी ने एक लाख बाण छोड़े। वे ऐसे चले मानो पंख वाले काल सर्प चले हैं। जहाँ-तहाँ बहुत से बाण चले, जिनसे विकट राक्षस योद्धा कटने लगे। उनके चरण, छाती, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं। बहुत से वीरों के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वी पर पड़ रहे हैं। उत्तम योद्धा फिर सँभल कर उठते और लड़ते हैं। बाण लगते ही वे मेघ की तरह गरजते हैं। बहुत से तो कठिन बाण को देखकर ही भाग जाते हैं। बिना मुण्ड (सिर) के प्रचण्ड रूण्ड (धड़) दौड़ रहे हैं और भयानक ध्वनि के साथ "पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो" गा (पुकार) रहे हैं।

दो०— छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच ।।६८।।

भावार्थ— प्रभु के बाणों ने क्षणमात्र में भयानक राक्षसों को काट डाला। फिर वे सब बाण लौट कर श्री रघुनाथ जी के तरकस में प्रवेश कर गये।

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी ।।
भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गँभीरा ।।
कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी ।।
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे ।।
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक ।।
तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं ।।
सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे ।।
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट कपि आए ।।

भावार्थ— कुम्भकर्ण ने मन में विचार कर देखा कि श्री राम जी ने क्षण मात्र में राक्षसी सेना को मार डाला। तब वह महान् बलयुक्त वीर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने गम्भीर सिंहनाद किया। वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता है और जहाँ भारी-भारी बानर योद्धा होते हैं, वहाँ डाल देता है। बड़े-बड़े पर्वतों को आते देखकर प्रभु ने उनको बाण से काटकर धूल के समान कर डाला। फिर श्री रघुनाथ जी ने क्रोध करके धनुष को तानकर बहुत से अत्यन्त भयानक बाण छोड़े। वे बाण कुम्भकर्ण के शरीर में घुसकर निकल जाते हैं, जैसे बिजलियाँ बादल में समा जाती हैं। उसके काले शरीर से रुधिर बहता हुआ ऐसा शोभा देता है, मानों काजल के पर्वत से गेरू के पनाले से बह रहे हों। उसे व्याकुल देखकर रीछ बानर दौड़े। वे ज्यों हि निकट आये, त्यों ही वह हँसा।

दो०—महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस ।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस ।। ६९ ।।

भावार्थ— और बड़ा घोर शब्द करके गरजा । तथा करोड़-करोड़ बानरों को पकड़ कर, वह गजराज की तरह उन्हें पृथ्वी पर पटकने लगा और रावण की दुहाई देने लगा ।

भागे भालु बलीमुख जूथा । बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा ।।
चले भागि कपि भालु भवानी । बिकल पुकारत आरत बानी ।।
यह निसिचर दुकाल सम अहई । कपिकुल देस परन अब चहई ।।
कृपा बारिधर राम खरारी । पाहि पाहि प्रनतारति हारी ।।
सकरुन बचन सुनत भगवाना । चले सुधारि सरासन बाना ।।
राम सेन निज पाछें घाली । चले सकोप महा बलसाली ।।
खैंचि धनुष सर सत संधाने । छूटे तीर सरीर समाने ।।
लागत सर धावा रिस भरा । कुधर डगमगत डोलति धरा ।।
लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी । रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी ।।
धावा बाम बाहु गिरि धारी । प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी ।।
काटें भुजा सोह खल कैसा । पच्छहीन मंदर गिरि जैसा ।।
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका । ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका ।।

भावार्थ— यह देखकर रीछ-बानरों के झुन्ड ऐसे भागे जैसे भेड़िये को देखकर भेड़ों के झुंड । (शिवजी कहते है—) "हे भवानी ! बानर-भालू व्याकुल होकर आर्त्तवाणी से पुकारते हुए भाग चले । (वे कहने लगे—) 'यह राक्षस दुर्भिक्ष के समान है, जो अब बानरकुलरूपी देश में पड़ना चाहता है । हे कृपारूपी जल के धारण करने वाले मेघरूप राम ! हे खर के शत्रु! हे शरणागत के दुःख हरने वाले ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।' करुणा के भरे वचन सुनते ही भगवान धनुषबाण सुधार कर चले । महाबलशाली श्री राम जी ने सेना को अपने पीछे कर लिया । और वे क्रोधपूर्वक चले । उन्होंने धनुष को खींचकर सौ बाण सन्धान किये। बाण छूटे और उसके शरीर में समा गये । बाणों के लगते ही वह क्रोध में भर कर दौड़ा । उसके दौड़ने से पर्वत डगमगाने लगा और पृथ्वी हिलने लगी । उसने एक पर्वत उखाड़ लिया। रघुकुल तिलक श्री राम जी ने उसकी वह भुजा ही काट दी । तब बायें हाथ से पर्वत को लेकर दौड़ा । प्रभु ने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथवी पर गिरा दी । भुजाओं के कट जाने पर वह दुष्ट कैसा शोभा पाने लगा, जैसे बिना पंख का मन्दराचल पहाड़ हो । उसने उग्र दृष्टि से प्रभु को देखा । मानों तीनों लोकों को निगल जाना चाहता हो । "

किम्वदन्ति– ऊपर की चौपाई में बारह सम पंक्तियाँ हैं । राम नें जब कुम्भकर्ण की दोनों भुजाएँ काट दीं, तो वह कैसा लग रहा था ? मानो, पंखहीन मन्दराचल । 'पच्छहीन मंदर गिरि जैसा' – इस चरण में जो उदाहरण अलंकार है, उसे समझने के लिए, हमें एक किम्वदन्ति का सहारा लेना होगा ।

कहते हैं आदिकाल में पर्वतों के पंख थे ; वे उड़ा करते थे । इससे सृष्टि में पर्यावरण-संतुलन नष्ट होने का भय रहता था । इस कारण इन्द्र ने उनके पक्ष काट डाले । तब से वह अचल हो गये; उनमें विघ्न पहुँचाने और उत्पात करने की सामर्थ्य नहीं । अतः वे अब शोभित हैं।

इन्द्र जब पर्वतों के पंख काट रहे थे, तो मेनाक पर्वत निकल भागा और समुद्र में जाकर छिप गया । जब हनुमान जी आकाशमार्ग से रामेश्वरम् से लंका की ओर जा रहे थे, तब उनको बीच मार्ग में विश्राम कराने के लिए मेनाक समुद्र से थोड़ी देर के लिए बाहर निकला था । देखिए 'सुन्दरकाण्ड'' दोहा १ और उसके ऊपर की चौपाई, पृष्ठ ८२७-२८ ।

भुजा कटे हुए कुम्भकर्ण की उपमा पक्षहीन मन्दराचल से ही क्यों दी गई? अन्य किसी और पर्वत से क्यों नहीं? कारण—मन्दराचल बहुत महान और विशाल है । जब देवों और दानवों ने क्षीरसागर को मथा था, तब मन्दराचल की ही उन्होंने मथनी बनाई थी । देखिए 'बालकाण्ड', दोहा २४७ के ऊपर की चौपाई पृष्ठ २८५।

दो०—करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि ।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि ।। ७० ।।

भावार्थ– वह बड़े ज़ोर से चिंग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा । आकाश में सिद्ध और देवता डरकर 'हा ! हा ! हा !' इस प्रकार पुकार करने लगे ।

सभय देव करुनानिधि जान्यो । श्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो ।।
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ । तदपि महाबल भूमि न परेऊ ।।
सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा । काल त्रोन सजीव जनु आवा ।।
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा । धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ।।
सो सिर परेउ दसानन आगें । बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें ।।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ।।
परे भूमि जिमि नभ तें भूधर । हेठ दाबि कपि भालु निसाचर ।।
तासु तेज प्रभु बदन समाना । सुर मुनि सबहिं अचंभव माना ।।
सुर दुंदुभी बजावहिं हरषहिं । अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं ।।

करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥
गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोभत भए॥

भावार्थ– करूणानिधान भगवान ने देवताओं को भयभीत जाना। तब उन्होंने धनुष को कान तक तानकर राक्षस के मुख को बाणों के समूह से भर दिया। तो भी वह महाबली पृथ्वी पर न गिरा। मुख में बाण भरे हुए वह प्रभु के सामने दौड़ा। मानो काल रूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। वह सिर रावण के आगे जा गिरा। उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ जैसे मणि के छूट जाने पर सर्प। कुम्भकर्ण का प्रचण्ड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी। तब प्रभु ने काट कर उसके दो टुकड़े कर दिये। बानर-भालू और निशाचरों को अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वी पर ऐसे पड़े जैसे आकाश से दो पहाड़ गिरे हों। उसका तेज प्रभु श्री रामचन्द्र जी के मुख में समा गया। (यह देखकर–)देवता और मुनि सभी ने आश्चर्य माना। देवता नगाड़े बजाते, हर्षित होते और स्तुति करते हुए बहुत से फूल बरसा रहे हैं। विनती करके सब देवता चले गये। उसी समय देवर्षि नारद आए। आकाश के ऊपर से उन्होंने श्री हरि के सुन्दर वीररस संयुक्त गुण समूह का गान किया, जो प्रभु के मन को बहुत ही भाया। मुनि यह कहकर चले गये कि आप दुष्ट (रावण) को शीघ्र मारिये। तब श्री रामचन्द जी रणभूमि में आकर शोभित हुए।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में बारह सम पंक्तियाँ है। कुम्भकर्ण कितना विशाल और बलवान था, इसका आभास इस चौपाई और इसके ऊपर की चौपाइयों से मिलता है। सुग्रीव ने उसके नाक-कान काट लिए (पृष्ठ ९७०), राम ने तीरों से उसका वक्षस्थल छन्नी कर दिया (पृष्ठ ९७२), उसकी दोनों भुजाएं काट डालीं (पृष्ठ ९७३), उसके मुख में निरे तीर भर दिए, धड़ से उसका सिर अलग कर दिया (पृष्ठ ९७४)। फिर भी वह युद्ध करता रहा। अन्त में राम ने उसके रुंड के दो टुकड़े कर दिए ; तब कहीं जाकर उसका देहावसान हुआ।

छं०–संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

दो०– निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥ ७१॥

भावार्थ– अतुलनीय बलवान कोसलपति श्री रघुनाथ जी रणभूमि में सुशोभित हैं।

मुख पर पसीने की बूँदें हैं। कमल के समान नेत्र कुछ लाल हो रहे हैं। शरीर पर रक्त के कण हैं, दोनों हाथों से धनुष बाण फिरा रहे हैं। चारों ओर रीछ-बानर सुशोभित हैं। तुलसी दास जी कहते हैं कि प्रभु की इस छवि का वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते, जिनके बहुत से (हज़ार)मुख हैं। (शिव जी कहते हैं—) "हे गिरिजे ! कुम्भकर्ण जो नीच राक्षस और पाप की खान था, उसे भी श्री राम जी ने अपना परमधाम दे दिया। अतः वे मनुष्य निश्चय ही मन्द बुद्धि हैं जो उन श्री रामजी को नहीं भजते।"

दिन कें अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी ॥
राम कृपाँ कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा ॥
छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती ॥
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई ॥
रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी ॥
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ ॥
देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ॥
इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ ॥
एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना ॥
इत कपि भालु कालसम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा ॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू ॥

भावार्थ— दिन का अन्त होने पर दोनो सेनाएँ लौट पड़ीं। आज के युद्ध में योद्धाओं को बड़ी थकावट हुई। परन्तु श्री राम जी की कृपा से बानर सेना का बल उसी प्रकार बढ़ गया जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है। उधर राक्षस इस प्रकार घटते जा रहे थे जैसे अपने ही मुख से कहने पर पुण्य घट जाते हैं। रावण बहुत विलाप कर रहा है। बार-बार भाई (कुम्भकर्ण)का सिर छाती पर रखता है। स्त्रियाँ उसके बड़े भारी तेज और बल को बखान करके हाथों से छाती पीट-पीटकर रो रही हैं। उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत सी कथाएँ कहकर पिता को समझाया (और कहा—) "कल मेरा पुरुषार्थ देखियेगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ? हे तात ! मैंने इष्टदेव से जो बल और रथ पाया था, अब तक आपको नहीं दिखलाया था।" इस प्रकार डींग मारते हुए सबेरा हो गया। लंका के चारों दरवाजों पर बहुत से बानर आ डटे। इधर काल के समान वीर बानर-भालु आदि हैं और उधर अत्यन्त रणधीर राक्षस। दोनों ओर के योद्धा अपनी-अपनी जय के लिये लड़ रहे हैं। उनके युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता।

अन्तर्कथा— ऊपर की चौपाई में ग्यारह विषम पंक्तियाँ है। कुम्भकर्ण के मरने पर जब रावण विलाप करने लगा तब उसके ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद ने उसे सान्त्वना और आश्वासन

दिया कि 'आप मेरा पुरुषार्थ कल देखियेगा। मैंने इष्टदेव से जो बल और रथ पाया है, उसे तो मैंने अभी तक आपको नहीं दिखाया है। उसके "इष्टदेव" "बल" और "रथ" की अन्तर्कथा इस प्रकार है :

जिस समय रावण दिग्विजय कर रहा था, उस समय शुक्राचार्य ने मेघनाद से अग्निष्टोभ, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, वैष्णवयज्ञ और माहेश्वरयज्ञ – ये सात यज्ञ कराये, जिनसे आकाशगामी अविनाशी कामगामी दिव्यरथ और तामसी माया इसने प्राप्त की, कि जिस माया से अँधकार हो जाता है। यह माया संग्राम में छोड़ने से सुरासुर कोई इसकी गति को नहीं जान सकेगा। इसके अतिरिक्त उसने अक्षय तर्कश, अजीतधनुष और शत्रुनाशक बलवान अस्त्र भी पाये थे। जब रावण को इन्द्र ने घेर लिया और सब राक्षसों में हाहाकार मच गया, उस समय मेघनाद ने इस माया को प्रकट किया और देवसैन्य में प्रवेश करके इन्द्र के पीछे जाकर अदृश्य होकर माया से ढके हुए इन्द्र को बाणों से व्याकुल करके बाँध लिया। इस जीत से ब्रह्मा ने इसको 'इन्द्रजीत' नाम दिया। और रावण से कहा कि इन्द्र को छोड़ दो, इसके बदले में वर माँग लो। मेघनाद ने अमरत्व माँगा, पर ब्रह्मा जी बोले कि हमारी सृष्टि में कोई अमर नहीं है। तब उसने यह माँगा कि विजय के लिए युद्ध करने की इच्छा से जब हम विधिपूर्वक अग्नि में होम करें तब हमारे लिये अग्नि से रथ निकले जिसमें घोड़े जुते हों और जबतक हम उस रथ पर रहें तब तक अमर रहें। यदि वह संग्राम का यज्ञ बिना समाप्त किये हम युद्ध करें तब उसी समय हमारा नाश हो।

निकुम्भिला देवी के स्थान पर मेघनाद द्वारा किये जाते हुए यज्ञ को विध्वंस करने का विभीषण ने जो परामर्श दिया, उसका विवरण आगे दोहा ७४ के नीचे चौपाई में किया गया है (पृष्ठ ९८०)।

दो०– मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ।।७२ ।।

भावार्थ– मेघनाद उसी (पूर्वोक्त) मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में चला गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे बानरों की सेना में भय छा गया।

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ।।
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना ।।
दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ।।
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना ।।
गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं ।।
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर ।।
जाहिं कहाँ ब्याकुल भए बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर ।।

मारुतसुत अंगद नल नीला । कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ।।
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन । सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ।।
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा । सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा ।।
ब्याल पास बस भए खरारी । स्वबस अनंत एक अबिकारी ।।
नट इव कपट चरित कर नाना । सदा स्वतंत्र एक भगवाना ।।
रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो । नागपास देवन्ह भय पायो ।।

भावार्थ– वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र, शस्त्र, बज्र, बहुत से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघि, पत्थर आदि डालने और बहुत से बाणों की वृष्टि करने लगा। आकाश में दसों दिशाओं में बाण छा गए, मानो मघानक्षत्र के बादलों ने झड़ी लगा दी हो। 'पकड़ो, पकड़ो, मारो' ये शब्द कानों से सुनाई पड़ते हैं। पर जो मार रहा है उसे कोई नहीं जान पाता। पर्वत और वृक्षों को लेकर वानर आकाश में दौड़कर जाते हैं। पर उसे देख नहीं पाते, इससे दुखी होकर लौट आते हैं। मेघनाद ने माया के बल से अटपटी घाटियों, रास्तों और पर्वत कन्दराओं को बाणों के पिंजरे बना दिये (बाणों से छा दिया)। अब कहाँ जायँ, यह सोचकर (रास्ता न पाकर) वानर व्याकुल हो गए, मानो पर्वत इन्द्र की कैद में पड़े हों। मेघनाद ने हनुमान, अंगद, नल और नील आदि सभी बलवानों को व्याकुल कर दिया। फिर उसने लक्ष्मण जी, सुग्रीव और विभीषण को बाणों से मारकर उनके शरीरों को चलनी कर दिया। फिर वह श्री रघुनाथ जी से लड़ने लगा। वह जो बाण छोड़ता है, वे साँप होकर लगते हैं। जो स्वतन्त्र, अनन्त, एक (अखण्ड) और निर्विकार हैं, वे खरारि श्री राम जी लीला से नाग पाश के वश में हो गये। श्री रामचन्द्र जी सदा स्वतंत्र, एक (अद्वितीय) भगवान हैं। वे नट की तरह अनेकों प्रकार के दिखावटी चरित्र करते हैं। रण की शोभा के लिये प्रभू ने अपने को नागपाश में बँधा लिया। किन्तु उससे देवताओं को बड़ा भय हुआ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ ९७७ पर बताया जा चुका है कि शुक्राचार्य ने मेघनाद से सात महायज्ञ कराये। फल स्वरूप उसे दिव्य आकाशगामी रथ और तामसी माया प्राप्त हुई। इस तामसी माया से अँधकार हो जाता था।

मेघनाद ने इसी रथ और माया का अब प्रयोग किया। मेघनाद मायावी रथ पर चढ़कर आकाश में गया और वहाँ जाकर अदृश्य हो गया। आकाश से मेघनाद नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़ रहा है, परन्तु उसके ऊपर कोई भी प्रहार नहीं कर सकता क्योंकि वह अदृश्य है। उसने हनुमान, अंगद, नल, नील, सुग्रीव, विभीषण और लक्ष्मण के शरीरों को अपने बाणों से छन्नी कर दिया और अन्त में स्वयं राम को नाग-पाश में बाँध लिया।

दो०–गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास ।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास ।। ७३ ।।

भावार्थ– (शिवजी कहते हैं–) ''हे गिरिजे ! जिनका नाम जप कर मुनि भव (जन्म-मृत्यु) का बन्धन काट डालते हैं, वे सर्वव्यापक और विश्वनिवास (विश्व के आधार) प्रभु कहीं बन्धन में आ सकते हैं ?

चरित राम के सगुन भवानी । तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी । रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥
ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा । पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा ॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा । सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा ॥
बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही । लागेसि अधम पचारै मोही ॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो । जामवंत कर गहि सोइ धायो ॥
मारिसि मेघनाद कै छाती । परा भूमि घुर्मित सुरघाती ॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो । महि पछारि निज बल देखरायो ॥
बर प्रसाद सो मरइ न मारा । तब गहि पद लंका पर डारा ॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो । राम समीप सपदि सो आयो ॥

भावार्थ– हे भवानी ! श्री राम की इन सगुण लीलाओं के विषय में बुद्धि और बाणी के बल से तर्क (निर्णय) नहीं किया जा सकता । ऐसा विचार कर जो तत्त्व ज्ञानी और विरक्त पुरुष हैं, वे सब तर्क (शंका) छोड़कर श्री राम जी को भजते हैं ।'' मेघनाद ने सेना को व्याकुल कर दिया । फिर वह प्रकट हो गया और दुर्वचन कहने लगा । इस पर जामवन्त ने कहा–'अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह ।' यह सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढ़ा ।'अरे मूर्ख ! मैंने बूढ़ा जान कर तुझको छोड़ दिया था । अरे अधम । अब तू मुझे ललकारने लगा है ?' ऐसा कहते हुए उसने चमकता हुआ त्रिशूल चलाया । जाम्यवान् उसी त्रिशूल को हाथ में पकड़कर दौड़ा । और उसे मेघनाद की छाती में मारा । वह देवताओं का शत्रु चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । जाम्यवान् ने फिर क्रोध में भरकर पैर पकड़कर उसको घुमाया और पृथवी पर पटक कर उसे अपना बल दिखला दिया । वरदान के प्रताप से वह मारे नहीं मरता, तब जाम्बवान् ने उसका पैर पकड़कर उसे लंका पर फेंक दिया । इधर देवर्षि नारद जी ने गरुड़ को भेजा । वे तुरन्त ही श्री राम जी के पास आ पहुँचे ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । जब मेघनाद ने राम को नाग-पाश में बाँध लिया, तब नारद ने राम को पाश से मुक्त कराने के लिये गरुड़ को भेजा । सर्प तो गरुड़ का भोजन होता है । गरुड़ ने नाग-पाश के सभी सर्पों को खा डाला और राम को बन्धन से मुक्त किया ।

दो०–खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ ॥ ७४ (क)॥

गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ ।
चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ ।। ७४ (ख)।।

भावार्थ– पक्षिराज गरुड़ जी सब माया-सर्पों को पकड़कर खा गये । तब सब बानरों के झुंड माया से रहित होकर हर्षित हुए । पर्वत, वृक्ष, पत्थर और नख धारण किये वानर क्रोधित होकर दौड़े । निशाचर विशेष व्याकुल होकर भाग चले और भागकर किले पर चढ़ गये ।

मेघनाद कै मुरछा जागी । पितहि बिलोकि लाज अति लागी ।।
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा । करौं अजय मख अस मन धरा ।।
इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा । सुनहु नाथ बल अतुल उदारा ।।
मेघनाद मख करइ अपावन । खल मायावी देव सतावन ।।
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि ।।
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना । बोले अंगदादि कपि नाना ।।
लछिमन संग जाहु सब भाई । करहु बिधंस जग्य कर जाई ।।
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही । देखि सभय सुर दुख अति मोही ।।
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई । चेहिं छीजैं निसिचर सुनु भाई ।।
जामवंत सुग्रीव बिभीषन । सेन समेत रहेहु तीनिउ जन ।।
जब रघुबीर दीन्हि अनुसासन । कटि निषंग कसि साजि सरासन ।।
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा । बोले घन इव गिरा गँभीरा ।।
जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं । तौ रघुपति सेवक न कहावौं ।।
जौं सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई ।।

भावार्थ– मेघनाद की मूर्च्छा टूटी, तब पिता को देखकर उसे बड़ी लज्जा लगी । वह अजय (अजेय होने का) यज्ञ करने का मन में निश्चय करके तुरन्त श्रेष्ठ पर्वत की गुफा में चला गया । यहाँ विभीषण ने यह सलाह विचारी (और श्री रामचन्द्र जी से कहा—) 'हे अतुलनीय बलवान् उदार प्रभो ! देवताओं को सताने वाला, मूर्ख मायावी मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है । हे प्रभो ! यदि वह यज्ञ सिद्ध हो जायेगा, तो हे नाथ ! फिर मेघनाद शीघ्र जीता न जा सकेगा ।' यह सुनकर श्री रघुनाथ जी ने बहुत सुख माना और अंगदादि बहुत से बानरों को बुलाया (और कहा--) "हे भाइयों ! सब लोग लक्ष्मण के साथ जाओ, और जाकर यज्ञ को विध्वंस करो । हे लक्ष्मण ! तुम संग्राम में उसे मारना । देवताओं को भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है । हे भाई, सुनों, उसको ऐसे बल बुद्धि के उपाय से मारना, जिससे निशाचर का नाश हो । हे जाम्यवान्, सुग्रीव और विभीषन तुम तीनों जने सेना समेत साथ

रहना।'' जब श्री रघुबीर जी ने आज्ञा दी, तब कमर में तरकस कसकर और धनुष सजाकर (चढ़ाकर) रणधीर श्री लक्ष्मण जी प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण करके मेघनाद के समान गम्भीर वाणी बोले–'यदि मैं आज इसे मारे बिना आऊँ, तो श्री रघुनाथ जी का सेवक न कहलाऊँ। यदि सैकड़ों शंकर भी उसकी सहायता करें, तो भी श्री रघुबीर की दुहाई है, आज मैं उसे मार डालूँगा।'

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में चौदह सम पंक्तियाँ हैं। विभीषण राम को परामर्श देते है कि इस समय मेघनाद एक यज्ञ कर रहा है। अगर वह यज्ञ सिद्ध हो गया तो मेघनाद अपराजेय हो जायेगा। अतएव उस यज्ञ को विध्वंस करना बहुत आवश्यक है। इस कार्य के लिये लक्ष्मण, हनुमान और अंगद को नियुक्त किया जाये। परामर्श का आधार बाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के ८५वें सर्ग के श्लोक १२-१५ हैं :-

तेन वीरेण तपसा वरदानात् स्वयंभुवः . . . ।। १२ ।।
अस्त्रं ब्रह्मशिरः प्राप्तं काममाश्च तुरंगमा।
स एष सह सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् ।। १३ ।।

यद्युत्तिष्ठेत्कृतं कर्म हतान् सर्वांश्च विद्धि नः।
निकुम्भिलामसम्प्राप्तमहुताग्निं च यो रिपुः ।। १४ ।।

त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रोः स ते वधः।
वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ।। १५ ।।

अर्थात्, उस वीर ने घोर तपस्या द्वारा ब्रह्मा जी से बरदान में ब्रह्मशिर नाम अस्त्र और इच्छाचारी घोड़े प्राप्त किए हैं। इस समय निश्चय ही वह अपनी सेना सहित निकुम्भिला देवी के स्थान पर है। हे महाबाहो ! यदि कहीं वह हवन समाप्त कर उठ बैठा, तो तुम हम सब को मरा हुआ ही जानो। क्योंकि सर्व लोकेश्वर ब्रह्मा जी ने उसे वर देते समय उससे कहा था कि, हे इन्द्रशत्रो ! जिस समय तुम निकुम्भिला के स्थान में न पहुँच पाओगे, अथवा हवन समाप्त न कर सकोगे, उस समय जो शत्रु तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेगा, वही तुमको मार सकेगा।

दो०– रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत ।। ७५ ।।

भावार्थ-- श्री रघुनाथ जी के चरणों में सिर नवाकर शेषावतार श्री लक्ष्मण जी तुरन्त चले। उनके साथ अंगद, नील, नल और हनुमान आदि उत्तम योद्धा थे।

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिध्वंसा । जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा ॥
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई । लातन्हि हति हति चले पराई ॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे । आए जहँ रामानुज आगे ॥
आवा परम क्रोध कर मारा । गर्ज घोर रव बारहिं बारा ॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाए । हति त्रिसूल उर धरनि गिराए ॥
प्रभु कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा । सर हति कृत अनंत जुग खंडा ॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा । हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा ॥
फिरे बीर रिपु मरइ न मारा । तब धावा करि घोर चिकारा ॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला । लछिमन छाड़े बिसिख कराला ॥
देखेसि आवत पबि सम बाना । तुरत भयउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई । कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ॥
देखि अजय रिपु डरपे कीसा । परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ाना । एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा ॥
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ॥
छाड़ा बान माझ उर लागा । मरती बार कपटु सब त्यागा ॥

भावार्थ– वानरों ने जाकर देखा कि वह बैठा खून और भैंसे की आहुति दे रहा है। वानरों ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। फिर भी जब वह नहीं उठा, तब वे उसकी प्रशंसा करने लगे। इतने पर भी वह नहीं उठा। तब उन्होंने जाकर उसके बाल पकड़े और लातों से मार-मार कर वे भाग चले। वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, तब वानर भागे और वहाँ आ गये जहाँ आगे लक्ष्मण जी खड़े थे। वह अत्यन्त क्रोध का मारा हुआ आया और बार-बार भयंकर शब्द करके गरजने लगा। मारुति (हनुमान) और अंगद क्रोध करके दौड़े। उसने छाती में त्रिशूल मारकर दोनों को धरती पर गिरा दिया। फिर उसने प्रभु श्री लक्ष्मण जी पर प्रचण्ड त्रिशूल छोड़ा। अनन्त (श्री लक्ष्मण जी) ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। हनुमान जी और युवराज अंगद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, पर उसे चोटं नहीं लगीं। शत्रु (मेघनाद) मारे नहीं मरता, यह देखकर जब वीर लौटे तब वह घोर चिंग्घाड़ करके दौड़ा। उसे क्रुद्ध काल की तरह आता देखकर लक्ष्मण जी ने भयानक बाण छोड़े। बज्र के समान बाणों को आते देखकर वह दुष्ट तुरन्त अन्तर्धान हो गया और फिर भाँति-भाँति के रूप धारण करके युद्ध करने लगा। वह कभी प्रकट होता था और कभी छिप जाता था। शत्रु को पराजित न होता देखकर वानर डरे। तब सर्पराज शेष जी (लक्ष्मण जी) बहुत ही क्रोधित हुए। लक्ष्मण जी ने मन में यह विचार दृढ़ किया कि इस पापी को मैंने बहुत खिलाया (अब

मारना चाहिये)। कोसलपति श्री राम जी के प्रताप का स्मरण करके लक्ष्मण जी ने वीरोचित दर्प करके बाण का सन्धान किया। बाण छोड़ते ही उसकी छाती के बीच में लगा। मरते समय उसने सब कपट त्याग दिया।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं। इसमें बानरों द्वारा निकुम्भिला-यज्ञ का विध्वन्स होना और लक्ष्मण द्वारा मेघनाद वध की कथा है। अगले दोहे ७६ में कहा गया है कि मरते दम भी मेघनाद ने कहा 'लक्ष्मण कहाँ है ?राम कहाँ है?''

अपने चाचा कुम्भकर्ण के मरने पर मेघनाद संकल्प करके आया था कि प्रतिशोध में वह राम-लक्ष्मण को मारेगा। तात्पर्य यह है कि मेघनाद का ध्यान अन्त समय में भी लक्ष्मण और श्री राम पर ही केन्द्रित, जिससे उसका हृदय और किसी विचार तक को अपने में न रख सका। इसका परिणाम जो होना चाहिये अवश्य हुआ। यहाँ तक कि अंगद और हनुमान भी उसकी सराहना करने को विवश होकर कहने लगे–'हे मेघनाद! तेरी माता धन्य हैं, धन्य है।' कारण, मरते समय दोनों महान नामों का उच्चारण कर सका, जब कि बड़े-बड़े ऋषि मुनि एक नाम भी नहीं ले पाते। अतः अन्त में राम और लक्ष्मण दोनों ही को स्मरण कर सका।

दो०– रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़िसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान।। ७६ ।।

भावार्थ– ''राम का छोटा भाई लक्ष्मण कहाँ है? राम कहाँ है?'' ऐसा कहकर उसने प्राण छोड़ दिये। अंगद और हनुमान कहने लगे–"तेरी माता धन्य है, धन्य है (जो तू लक्ष्मण जी के हाथों मरा और मरते समय श्री राम-लक्ष्मण को स्मरण करके तूने उनके नामों का उच्चारण किया)।''

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो।।
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा।।
बरषि सुमन दुंदुभीं बजावहिं। श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं।।
जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा।।
अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहिं आए।।
सुत बध सुना दसानन जबहीं। मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं।।
मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी।।
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा।।

भावार्थ– हनुमान जी ने उसको बिना ही परिश्रम के उठा लिया और लंका के दरवाज़े पर रखकर वे लौट आये। उसका मरना सुनकर देवता और गन्धर्व आदि सब विमानों पर

चढ़कर आकाश में आये। वे फूल बरसा कर नगाड़े बजाते हैं और श्री रघुनाथ जी का निर्मल यश गाते हैं। 'हे अनन्त ! आपकी जय हो, हे जगदाधर आपकी जय हो। हे प्रभो ! आपने सब देवताओं का उद्धार किया।' देवता और सिद्ध स्तुति करके चले गये, तब लक्ष्मण जी कृपा के समुद्र श्री राम जी के पास आये। रावण ने ज्यों पुत्र वध का समाचार सुना, त्यों ही वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मन्दोदरी छाती पीट-पीटकर और बहुत प्रकार से पुकार-पुकार कर बड़ा भारी विलाप करने लगी। नगर के सब लोग व्याकुल हो गये। सभी रावण को नीच कहने लगे।

दो०— तब दसकंठ बिबिधि बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि॥ ७७॥

भावार्थ— तब रावण ने सब स्त्रियों को अनेकों प्रकार से समझाया कि समस्त जगत का यह (दृश्य) रूप नाश्वान है, हृदय में विचार करके देखो।

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥
निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जा कर मन डोला॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएँ न भलाई॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥
अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली॥
असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुजबल गर्ब बिसाला॥

भावार्थ— रावण ने उनको ज्ञान का उपदेश दिया। वह स्वयं तो नीच है। पर उसकी कथा (बातें) शुभ और पवित्र हैं। दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं। पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं। रात बीती, सबेरा हुआ। रीछ-वानर फिर चारों दरवाजों पर जा डटे। योद्धाओं को बुलाकर दशमुख रावण ने कहा--लड़ाई में शत्रु के सन्मुख जिसका मन डाँवाडोल हो, अच्छा है वह, अभी भाग जाय। युद्ध में जाकर विमुख होने से (भागने से) भलाई नहीं है। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर बैर बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया है, उसको मैं अपने आप ही उत्तर दे दूँगा।' ऐसा कहकर उसने पवन के समान तेज़ चलने वाला रथ सजाया। सारे जुझाऊ (लड़ाई के) बाजे बजने लगे। सब अतुलनीय बलवान वीर ऐसे चले मानों काजल की आँधी चली हो। उस समय असंख्य अशकुन होने लगे। पर अपनी भुजाओं के बल का बड़ा गर्व होने से रावण उन्हें गिनता नहीं है।

लोकोक्ति— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। पहली चौपाई में एक लोकोक्ति है :

'पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।।'

अर्थात्, दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं, पर उस उपदेश पर स्वयं आचरण करने वाले बिरले ही होते हैं।

जब मेघनाद के शव को उठाकर हनुमान जी लंका के द्वार पर रख आये, तो उसे देखकर मन्दोदरी छाती पीट-पीटकर विलाप करने लगी और नगर के लोग व्याकुल हो गए। सबको व्याकुल देखकर, रावण दृश्य जगत की नश्वरता का उपदेश देने लगा। उपदेश का प्रभाव दूसरों पर जब ही पड़ता है जब उपदेशक स्वयं उपदेश अनुकूल स्थिति में रहने का अभ्यस्थ हो। रावण में इसकी पूरी कमी थी। उसका आचरण नीच होने के कारण अनुकरणीय नहीं था, इससे उसके उपदेश का प्रभाव पड़ना भी सम्भव नहीं था।

आजकल के नेता बड़े-बड़े भाषण देते हैं। और जनता को बड़े-बड़े उपदेश देते हैं। व्यक्तिगत आचरण को देखते हुये, उनके उपदेशों का जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

छं०—अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते।।
गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने।।

दो०—ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम।। ७८।।

भावार्थ— अत्यन्त गर्व के कारण वह शकुन-अशकुन का विचार नहीं करता। हथियार हाथों से गिर रहे हैं। योद्धा रथ से गिर पड़ते हैं। घोड़े, हाथी, साथ छोड़कर चिंघाड़ते हुए भाग जाते हैं। स्यार, गीध, कौए और गदहे शब्द कर रहे हैं। बहुत अधिक कुत्ते बोल रहे हैं। उल्लू ऐसे भयानक शब्द कर रहे हैं, मानों काल के दूत हों (मृत्यु का संदेशा सुना रहे हों)। जो जीवों के द्रोह में रत है, मोहवश हैं, राम विमुख है और कामासक्त हैं, क्या उसको कभी स्वपन में भी सम्पत्ति, शुभ-शकुन और चित्त की शान्ति हो सकती है?

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा।।
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना।।
चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे।।
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया।।

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी । बीर बसंत सेन जनु साजी ॥
चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं । छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं ॥
उठी रेनु रबि गयउ छपाई । मरुत थकित बसुधा अकुलाई ॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं । प्रलय समय के घन जनु गाजहिं ॥
भेरि नफीरि बाज सहनाई । मारू राग सुभट सुखदाई ॥
केहरि नाद बीर सब करहीं । निज निज बल पौरुष उच्चरहीं ॥
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ॥
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई । अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई । धाए करि रघुबीर दोहाई ॥

भावार्थ– राक्षसों की अपार सेना चली । चतुरंगिणी सेना की बहुत सी टुकड़ियाँ हैं । अनेकों प्रकार के वाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत से रंगों की अनेकों पताकाएँ और ध्वजाएँ हैं । मतवाले हाथियों के बहुत से झुंड चले । मानो पवन से प्रेरित हुए वर्षा के बादल हों । रंग-बिरंगे बाना धारण करने वाले वीरों के समूह हैं, जो युद्ध में बड़े शूरवीर हैं, और बहुत प्रकार की माया जानते हैं । अत्यन्त विचित्र फौज शोभित है । मानो वीर बसन्त ने सेना सजायी हो । सेना के चलने से दिशाओं के हाथी डिगने लगे, समुद्र क्षुभित हो गये और पर्वत डगमगाने लगे । इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गया । फिर सहसा पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी । ढोल और नगाड़े भीषण ध्वनि से बज रहे हैं, जैसे प्रलय काल के बादल गरज रहे हों । भेरी, नफीरी (तुरही) और सहनाई में योद्धाओं को सुख देने वाला मारू राग बज रहा है । सब वीर सिंहनाद करते हैं और अपने-अपने बल-पौरुष का बखान कर रहे हैं । रावण ने कहा–हे उत्तम योद्धाओं ! सुनो । तुम रीछ वानरों के ठट्ट (समूह) को मसल डालो और मैं दोनों राजकुमार भाइयों को मारूँगा ।' ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चलाई। जब सब बानरों ने यह खबर पायी, तब वे श्री रघुनाथ जी को दुहाई देते हुए दौड़े ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं । इसमें रावण की चतुरंगिणी सेना का वर्णन है, जिसका सेनापति स्वयं रावण था ।

१. मतवाले हाथियों के झुण्ड ऐसे लग रहे हैं, **मानो** पवन से प्रेरित हुए वर्षा के बादल हों;

२. रंग-बिरंगे बाना पहने हुए वीर ऐसे लगते हैं **मानो** ऋतुराज ने सेना सजायी हो;

३. सेना के चलने से दिशाओं के हाथी डिगने लगे, समुद्र क्षुभित हो गया और पर्वत डगमगाने लगे;

४. इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गया;

५. सहसा पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी;

६. ढोल और नगाड़ों की भीषण ध्वनि ऐसी हो रही है **मानो** प्रलय के बदाल गरज रहे हों;

७. भेरी, नफ़ीरी और शहनाई मारू राग बजा रहे हैं;

८. रावण की ऐसी विशाल-काय सेना को आता हुआ देख कर, सब वानर राम की दुहाई देते हुए चुनौती के लिए आगे भागे ।

छं०— धाए बिसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते ।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते ।।
नख दसन सैल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं ।।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजसु बखानहीं ।।

दो०—दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि ।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि ।। ७९ ।।

भावार्थ— वे विशाल और काल के समान कराल वानर-भालू दौड़े । मानो पंखवाले पर्वतों के समूह उड़ रहे हों । वे अनेक वर्णों के हैं । नख, दाँत, पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके हथियार हैं । वे बड़े बलवान हैं और किसी का भी डर नहीं मानते । रावण रूपी मतवाले हाथी के लिये सिंह रूप श्री राम जी का जय-जयकार करके वे उनके सुन्दर बल का बखान करते हैं । दोनों ओर के योद्धा जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जान (चुन) कर इधर श्री रघुनाथ जी का और उधर रावण का बखान करके परस्पर भिड़ गये ।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा । देखि बिभीषन भयउ अधीरा ।।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा । बंदि चरन कह सहित सनेहा ।।
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना । केहि बिधि जितब बीर बलवाना ।।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना ।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ।।
बल बिबेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ।।
ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ।।
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।
सखा धर्मनय अस रथ जाकें । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ।।

भावार्थ– रावण को रथ पर और श्री रघुनाथ जी को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर हो गये। प्रेम अधिक होने से उनके मन में सन्देह हो गया। वे राम जी के चरणों की वन्दना करके स्नेह पूर्वक कहने लगे– ''हे नाथ! आपके न रथ है, न तन की रक्षा करने वाला कवच है, और न जूते ही हैं। उस बलवान वीर रावण को किस प्रकार जीतियेगा?'' कृपानिधान श्री राम जी ने कहा–''हे सखे! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। उस रथ के पहिये शौर्य और धैर्य हैं। सत्य और शील उसकी मज़बूत ध्वजा और पताका है। बल, विवेक, दम (इन्द्रियों का वश में होना) और परोपकार, ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ मे जुड़े हुए हैं। ईश्वर भजन चतुर सार्थी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल और अचल मन तरकस के समान है। शम (मन का वश में होना) यम और नियम, ये बहुत से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच हैं। इनके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिये जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में ग्यारह विषम पंक्तियाँ हैं। जब विभीषण को आशंका हुई की श्री रघुनाथ जी रावण का कैसे सामना करेंगे। वह रथ पर है और राम बिना रथ के हैं। उनके पास न रथ है, न तन की रक्षा के लिये कवच है और न पदत्राण हैं। विभीषण को इस तरह अधीर देखतें हुये राम ने उन्हें समझाया कि जिसके पास धर्ममय रथ हो उसके लिये जीतने को कहीं शत्रु नहीं। इस धर्ममय रथ कें–

१. शौर्य और धैर्य पहिये हैं।

२. सत्य और शील ध्वजा और पताका हैं।

३. बल, विवेक, दम और परोपकार चार घोड़े हैं।

५. क्षमा, दया और समता घोड़ों की रास हैं।

६. ईश्वर भजन चतुरसार्थी है।

७. वैराग्य ढाल हैं।

८. संतोष तलवार है।

९. दान फरसा है।

१०. बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है।

११, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है।

१२. निर्मल और अचलमन तरकस है।

१३. शंम, यम और नियम बाण हैं।

१४. ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है।

दो०— महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।। ८० (क)।।
सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज।। ८० (ख)।।
उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन।।८०(ग)।।

भावार्थ— हे धीर बुद्धि वाले सखा ! सुनो। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु)रूपी महान दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है (रावण की तो बात ही क्या है?)।'' प्रभु के वचन सुनकर विभीषण जी ने हर्षित होकर उनके चरण कमल पकड़ लिये और कहा—''हे कृपा और सुख के समूह श्री राम जी! आपने इसी बहाने मुझे महान उपदेश दिया।'' उधर से रावण ललकार रहा है, और इधर से अंगद और हनुमान। राक्षस और रीछ व वानर अपने-अपने स्वामी की दुहाई देकर लड़ रहे हैं।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना।।
हमहूं उमा रहे तेहिं संगा। देखत राम चरित रन रंगा।।
सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते।।
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं।।
मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं।।
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं।।
निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू।।
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे।।

भावार्थ— ब्रह्मा आदि देवता और अनेकों सिद्ध तथा मुनि विमानों पर चढ़े हुए युद्ध देख रहे हैं। (शिव जी कहते हैं—) 'हे उमा! मैं भी उस समाज में था और श्री राम जी के रण-रंग की लीला देख रहा था।' दोनों ओर के योद्धा रण-रस में मतवाले हो रहे हैं। वानरों को श्री राम जी का बल है, इससे वे जयशील हैं। एक दूसरे से भिड़ते और ललकारते हैं। और एक दूसरे को मसल-मसल कर पृथ्वी पर डाल देते हैं। वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ देते हैं, और सिर तोड़कर उन्हीं सिरों से दूसरों को मारते हैं। पेट फाड़ते हैं, भुजाएँ उखाड़ते हैं और योद्धाओं को पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं। राक्षस योद्धाओं को भालू पृथ्वी पर गाड़ देते हैं और ऊपर से बहुत सी बालू डाल देते हैं। युद्ध में शत्रुओं से विरुद्ध हुए वीर वानर ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो बहुत से क्रोधित काल हों।

छं०–क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं ।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं ।।
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं ।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजहीं ।।
धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं ।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं ।।
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही ।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही ।।

दो०– निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप ।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप ।। ८१ ।।

भावार्थ– क्रोधित हुए काल के समान वे वानर खून बहते शरीरों से शोभित हो रहे हैं। वे बलवान वीर राक्षसों की सेना के योद्धाओं को मसलते और मेघ की तरह गरजते हैं। डाँट कर चपेटों से मारते, दाँतों से काट कर लातों से पीस डालते हैं। वानर भालू चिंग्घाड़ते और ऐसा छल बल करते हैं जिससे दुष्ट राक्षसों का नाश हो जाय। वे राक्षसों के गाल पकड़कर फाड़ डालते हैं, छाती चीर डालते हैं, और उनकी अँतड़ियाँ निकाल कर गले में पहन लेते हैं। वे वानर ऐसे देख पड़ते हैं मानों प्रह्लाद के स्वामी श्री नृसिंह भगवान् अनेकों शरीर धारण करके रण के आँगन में क्रीड़ा कर रहे है। 'पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो' आदि घोर शब्द आकाश और पृथ्वी में भर रहे हैं। 'श्री रामचन्द्र जी की जय हो, जो सचमुच तृण से वज्र और वज्र से तृण कर देते हैं।' अपनी सेना को विचलित होते हुए देखा तब बीस भुजाओं में दस धनुष लेकर रावण रथ पर चढ़कर गर्व करके 'लौटो, लौटो' कहता हुआ चला।

धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर । सन्मुख चले हूह दै बंदर ।।
गहि कर पादप उपल पहारा । डारेन्हि ता पर एकहिं बारा ।।
लागहिं सैल बज्र तन तासू । खंड खंड होइ फूटहिं आसू ।।
चला न अचल रहा रथ रोपी । रन दुर्मद रावन अति कोपी ।।
इत उत झपटि दपटि कपि जोधा । मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा ।।
चले पराइ भालु कपि नाना । त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ।।
पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं । यह खल खाइ काल की नाईं ।।
तेहिं देखे कपि सकल पराने । दसहुँ चाप सायक संधाने ।।

भावार्थ– रावण अत्यन्त क्रोधित होकर दौड़ा। वानर हूहू करते हुए लड़ने के लिये उसके सामने चले। उन्होने हाथों से वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर रावण पर ए क ही साथ

डाले। पर्वत उसके वज्र शरीर में लगते ही तुरन्त टुकड़े-टुकड़े होकर फूट जाते हैं। अत्यन्त क्रोधी रणोन्मत्त रावण रथ रोक कर अचल खड़ा रहा, जरा भी नहीं हटा! उसे बहुत ही क्रोध हुआ। वह इधर-उधर झपटकर और डपटकर वानर योद्धाओं को मसलने लगा। अनेकों वानर-भालू 'हे अंगद! हे हनुमान रक्षा करो, रक्षा करो' पुकारते हुए भाग चले। 'हे रघुबीर! हे गोसाई! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। यह दुष्ट काल की भाँति हमें खा रहा है।' उसने देखा कि सब वानर भाग छूटे। तब दसों धनुषों पर बाण सन्धान किये।

छं०— संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रच्छक हरे॥

दो०—निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥ ८२॥

भावार्थ— उसने धनुष पर सन्धान करके बाणों के समूह छोड़े। ये बाण सर्प की तरह उड़कर जा लगते थे। पृथ्वी-आकाश और दशा-विदिशा सर्वत्र बाण भर रहे हैं। वानर भागें तो कहाँ? अत्यन्त कोलाहल मच गया। वानर-भालुओं की सेना व्याकुल होकर आर्त्त पुकार करने लगी—"हे रघुबीर! हे करूणा सागर! हे पीड़तों के बन्धु!हे सेवकों की रक्षा करके उनके दुःख हरने वाले हरि!" अपनी सेना को व्याकुल देखकर, कमर में तरकस कसकर, और हाथ में धनुष लेकर, श्री रघुनाथ जी के चरणों पर मस्तक नवाकर, लक्ष्मण जी क्रोधित होकर चले।

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥
अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥
पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥
पुनि सत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छाड़िसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥

भावार्थ— (लक्ष्मण जी ने पास जाकर कहा—)'अरे दुष्ट! वानर-भालुओं को क्या मार रहा है? मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ।' (रावण ने कहा—)'अरे मेरे पुत्र के घातक! मैं तुझको

ही ढूँढ रहा था। आज तुझे मारकर छाती ठंडी करूँगा।' ऐसा कहकर उसने प्रचण्ड बाण छोड़े। लक्ष्मण जी ने सबके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। रावण ने करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाये। लक्ष्मण जी ने उनको तिल के बराबर करके काट कर हटा दिया। फिर अपने बाणों से प्रहार किया, और उसके रथ को तोड़कर सारथी को मार डाला। राक्षस के दसों मस्तकों में सौ-सौ बाण मारे। वे सिरों में ऐसे पैठ गये मानो पहाड़ के शिखरों में सर्प प्रवेश कर रहे हैं। फिर सौ बाण उसकी छाती में मारे। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे कुछ भी होश न रहा। फिर मूर्च्छा छूटने पर वह प्रबल रावण उठा और उसने वह शक्ति चलायी जो ब्रह्मा जी ने उसे दी थी।

छं०—सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
परयो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही।।
ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी।।

दो०—देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर।।८३।।

भावार्थ— वह ब्रह्मा की दी हुई प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मण जी की ठीक छाती में लगी। वीर लक्ष्मण जी व्याकुल होकर गिर पड़े। रावण उन्हें उठाने लगा। पर उसके अतुलित बल की महिमा यों ही रह गयी (व्यर्थ हो गई, वह उन्हें उठा न सका)। जिनके एक ही सिर पर ब्रह्माण्ड रूपी भवन धूल के एक कण के समान विराजता है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है। वह तीनों लोकों के स्वामी लक्ष्मण जी को नहीं जानता। यह देखकर पवनपुत्र हनुमान जी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। हनुमान जी के आते ही रावण ने उन पर अत्यन्त भयंकर घूँसे का प्रहार किया।

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा।।
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा।।
मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा।।
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही।।
अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो।।
कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता।।
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला।।
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सन्मुख अति आतुर आए।।

भावार्थ– हनुमान जी घुटने टेककर रह गये, पृथ्वी पर गिरे नहीं और फिर क्रोध से भरे हुए सँभालकर उठे। हनुमान जी ने रावण को एक घूँसा मारा। वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्र की मार से पर्वत गिरा हो। मूर्च्छा भंग होने पर फिर वह जागा और हनुमान जी के बड़े भारी बल को सराहने लगा। (हनुमान जी ने कहा--) 'मेरे पौरूष को धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे देव द्रोही! तू अब भी जीता रह गया।' ऐसा कहकर और लक्ष्मण जी को उठाकर हनुमान जी श्री रघुनाथ जी के पास ले आये। यह देखकर रावण को आश्चर्य हुआ। श्री रघुबीर ने लक्ष्मण जी से कहा--'हे भाई! हृदय में समझो, तुम काल के भी भक्षक और देवताओं के रक्षक हो।' ये वचन सुनते ही, कृपालु लक्ष्मण जी उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश को चली गयी। लक्ष्मण जी फिर धनुष बाण लेकर दौड़े और बड़ी शीघ्रता से शत्रु के सामने आ पहुँचे।

छं०– आतुर बहोरि बिभँजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिरयो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो।।
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो।।

दो०–उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य।।८४।।

भावार्थ– फिर उन्होंने बड़ी ही शीघ्रता से रावण के रथ को चूर-चूर कर सारथी को मारकर उसे (रावण को) व्याकुल कर दिया। जिससे रावण अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब दूसरा सारथी उसे रथ में डालकर तुरन्त ही लंका को ले गया। प्रताप के समूह श्री रघुबीर के भाई ने फिर आकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। वहाँ (लंका में) रावण मूर्च्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगा। वह दुष्ट और अत्यन्त अज्ञानी है जो हठवश श्री रघुनाथ जी से विरोध करके विजय चाहता है।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई।।
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा।।
पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर।।
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए।।
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका।।
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा।।
रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा।।
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता।।

भावार्थ— यहाँ विभीषण जी ने सब खबर पायी और शीघ्र ही जाकर श्री रघुनाथ जी को कह सुनायी कि 'हे नाथ रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा। हे देव! तुरंत वानर योद्धाओं को भेजिये, जो यज्ञ का विध्वंस करें, जिससे रावण युद्ध में आये।'' प्रातःकाल होते ही प्रभु ने वीर योद्धाओं को भेजा। हनुमान और अंगद आदि सब प्रधान वीर दौड़े। वानर खेल से ही कूदकर लंका पर जा चढ़े और निर्भय रावण के महल में घुस गये। ज्यों हि उसको यज्ञ करते देखा, त्यों ही सब वानरों को बहुत क्रोध हुआ। (उन्होंने कहा—) ''अरे ओ निर्लज्ज ! रणभूमि से घर भाग आया और यहाँ आकर बगुले का सा ध्यान लगाकर बैठा है?'' ऐसा कहकर अंगद ने लात मारी। पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस मूर्ख का मन स्वार्थ में अनुरक्त था।

छं०—नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं।।
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई।।

दो०—जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस।। ८५।।

भावार्थ— जब उसने नहीं देखा, तब वानर क्रोध करके उसे दाँतों से पकड़कर, काटने और लातों से मारने लगे। रावण की स्त्रियों को बाल पकड़कर घर से बाहर घसीट लाये। वह अत्यन्त ही दीन होकर पुकारने लगीं। तब रावण काल के समान क्रोधित होकर उठा और वानरों को पैर पकड़कर पटकने लगा। इसी बीच में वानरों ने यज्ञ विध्वंस कर डाला। देखकर वह मन में हारने लगा। यज्ञ विध्वंस करके, सब चतुर वानर रघुनाथ जी के पास आ गये। तब रावण जीने की आशा छोड़कर क्रोधित होकर चला।

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर।।
भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना।।
चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा।।
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें।।
इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहिं दीन्ही।।
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही।।
देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना।।
जटा जूट दृढ़ बाँधें माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे।।
अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा।।
कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा।।

भावार्थ– चलते समय अत्यन्त भयंकर अमंगल (अपशकुन)होने लगे। गीध उड़-उड कर उसके सिरों पर बैठने लगे। किन्तु वह काल के वश था, इससे किसी भी अपशकुन को नहीं मानता था। उसने कहा–'युद्ध का डंका बाजाओ।' निशाचरों की अपार सेना चली। उसमें बहुत से हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल हैं। वे दुष्ट प्रभु के सामने कैसे दौड़े, जैसे पतंगों के समूह अग्नि की ओर जलनें के लिये दौड़ते हैं। इधर देवताओं ने स्तुति की कि ''हे श्री रामजी! इसने हमको दारुण दुख दिये हैं। अब आप इसे खिलाइये नहीं। जानकी जी बहुत ही दुःखी हो रही हैं।'' देवताओं के वचन सुनकर प्रभु मुस्कराये। फिर श्री रघुबीर ने उठकर बाण सुधारे। मस्तक पर जटाओं के जूड़े कसकर बाँधे हुए हैं, उसके बीच-बीच में पुष्प गूँधे हुए शोभित हो रहे हैं। लाल नेत्र और मेघ के समान श्याम शरीर वाले और सम्पूर्ण लोकों के नेत्रों को आनन्द देने वाले हैं। प्रभु ने कमर में फेंटा तथा तरकस कस लिया और हाथों में कठोर शारंग धनुष ले लिया।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। दोहा ७७ से लेकर दोहा १०३ तक राम-रावण युद्ध का वर्णन है। दोहा ८१ से लेकर ९९ तक एक परिपाटी चल रही है। हर चौपाई के अंत में एक छंद और एक दोहे का प्रयोग किया गया है। पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिये, अन्तिम चौपाई के अन्तिम चरण में जो भाव व्यक्त गिया गया है, उसे पुनः छन्द में उठाया गया है। दोहा ८० के बाद ८५ तक बिल्कुल एक ही शैली चली है– चार चौपाई; फिर एक छंद और छंद के बाद एक दोहा। दोहा ७५ के ऊपर की चौपाई (पृष्ठ ९८०) में बताया गया है कि विभीषण ने राम को परामर्श दिया कि'मेघनाद एक यज्ञ कर रहा है। अगर वह यज्ञ सिद्ध हो गया, तो मेघनाद अपराजेय हो जायेगा। अतएव उस यज्ञ को विध्वंस करना बहुत आवश्यक है।' इसके बाद दोहा ७५ के नीचे की चौपाई में यज्ञ विध्वंस और मेघनाद वध की कथा है। इसी प्रकार दोहा ८५ के ऊपर की चौपाई में विभीषण फिर राम को सावधान करता है कि रावण एक यज्ञ कर रहा है। उस यज्ञ को भी विध्वंस करना आवश्यक है। अन्यथा यज्ञ सिद्ध होने पर रावण सहज ही नहीं मरेगा। विभीषण का परामर्श दोहा ८५ के ऊपर की चौपाई में और यज्ञ के विध्वंस का वर्णन दोहा ८५ और उसके ऊपर के छंद में है। रावण के मरने की अभी पाठकों को प्रतीक्षा करनी होगी।

छं०–सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो।।
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे।।

दो०– सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार।। ८६।।

भावार्थ– प्रभु ने हाथ में शारंग धनुष लेकर, कमर में बाणों की खान (अक्षय) सुन्दर तरकस कस लिया। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं। और मनोहर चौड़ी छाती पर ब्राह्मण (भृगु जी) के चरण का चिन्ह शोभित है। तुलसीदास जी कहते हैं'ज्यों ही प्रभु धनुष-बाण हाथ में लेकर फिरने लगे, त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिशाओं के हाथी, कच्छप, शिवजी, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे। भगवान की शोभा देखकर देवता हर्षित होकर फूलों की अपार वर्षा करने लगे और'शोभा, शक्ति और गुणों के धाम करुणानिधान प्रभु की जय हो। जय हो। जय हो' (ऐसा पुकारने लगे)।'

अन्तर्कथा– ऊपर के छन्द में तुलसीदास ने जिसे'उर धरासुर पद लस्यो' कहा है, वह'श्रीवत्स' है। श्रीवत्स विष्णु भगवान के वक्षस्थल का चिन्ह है।*

अपने 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' में स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा ने 'श्रीवत्स' की व्याख्या करते हुए कहा है–यह अँगुष्ठ प्रमाण श्वेत बालों का दक्षिणावर्त भौरी का सा चिन्ह है। इसे भृगु के चरण प्रहार का चिन्ह बतलाते हैं।'भृगु के चरण प्रहार' की अन्तर्कथा इस प्रकार है :एक बार भृगु मुनि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन श्रेष्ठ है, इसकी परीक्षा लेने गए। सबसे पहले वे ब्रह्मा के निकट गए और उन्होंने ब्रह्मा के प्रति कुछ भी सम्मान नहीं दिखाया। इससे ब्रह्मा क्रुद्ध हुए और उन्होने भृगु का तिरस्कार किया। भृगु मुनि महादेव के निकट भी गए और भृगुने महादेव के प्रति भी कुछ भी सम्मान नहीं दिखाया। महादेव भी इन पर अप्रसन्न हुए। भृगु ने स्तुति करके महादेव का क्रोध शांत किया और वे विष्णु के यहां चले गए। उस समय विष्णु सोए हुए थे। भृगु ने विष्णु की छाती में लात मारी। इससे विष्णु जाग उठे। लात मारने से क्रोध करना तो दूर रहा, विष्णु उठकर मुनि की चरण सेवा करने लगे। हमारी कठोर छाती में लात मारने से मुनि के चरण में चोट आयी होगी, यह समझकर विष्णु बहुत ही दु:खित हुए। इस प्रकार की ब्राह्मण-भक्ति के कारण ही विष्णु सब देवों में श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

एहीं बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी।
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा॥
बहु कृपान तरवार चमंकहिं। जनु दहँ दिसि दामिनीं दमंकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥
कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भै बृष्टि अपारा॥
दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥

---

* देखिए मैथिलीशरण गुप्त का खण्ड काव्य' जयद्रथ वध', तृतीय सर्ग, पहला छन्द

'श्रीवात्सलाञ्छन विष्णु तब कह कर वचन प्रज्ञा पगे,
धीरज बँधा कर पाण्डवों को शीघ्र समझाने लगे।'

रघुपति कोपि बान झरि लाई । घायल भै निसिचर समुदाई ॥
लागत बान बीर चिक्करहीं । घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं ॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी । सोनित सरि कादर भयकारी ॥

भावार्थ– इसी बीच में निशाचरों की अत्यन्त घनी सेना कसमसाती हुई (आपस में टकराती हुई)आयी । उसे देखकर वानर योद्धा इसी प्रकार उसके सामने चले जैसे प्रलयकाल में बदालों के समूह हों । बहुत से कृपाण और तलवारें चमक रही हैं । मानो दसों दिशाओं में बिजलियां चमक रही हों । हाथी, रथ और घोड़ों का कठोर चिंग्घाड़ ऐसा लगता है मानो बादल भयंकर गर्जन कर रहे हों । वानरों की बहुत सी पूँछे आकाश में छाई हुई हैं, मानो सुन्दर इन्द्र धनुष उदय हुए हों । धूल ऐसी उड़ रही है मानो जल की धारा हो । बाण रूपी बूँदों की अपार वृष्टि हुई । दोनों ओर से योद्धा पर्वतों का प्रहार करते हैं । मानों बार-बार बज्रपात हो रहा है । श्री रघुनाथ जी ने क्रोध करके बाणों की झड़ी लगा दी, जिससे राक्षसों की सेना घायल हो गयी । बाण लगते ही वीर चीत्कार कर उठते हैं और चक्कर खा-खाकर जहाँ-तहाँ पृथवी पर गिर पड़ते हैं । उनके शरीरों में ऐसे खून बह रहा है , मानों पर्वत के भारी झरनों से जल बह रहा हो । इस प्रकार डरपोकों को डराने वाली रूधिर की नदी बह चली ।

टिप्पणी– ऊपर कीं चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । रावण की चतुरंगिणी सेना और राम के धर्मरथ का वर्णन तुलसीदास जी ने रूपकों द्वारा किया है । देखिए क्रमशः पृष्ठ ९८६ और ९८८ । इसी प्रकार राक्षसों और वानरों के युद्ध का भी वर्णन तुलसीदास जी ने एक रूपक द्वारा किया है :

१. निशाचरों से टक्कर लेने वानर योद्धा इस प्रकार चले **मानो** प्रलय काल में बादलों के समूह हों ।

२. कृपाण और तलवार ऐसी चमक रही हैं **मानो** दसो दिशाओं में बिजलियाँ चमक रही हों ।

३. हाथी, रथ और घोड़ों का कठोर चिंग्घाड़ ऐसा लगता है **मानो** बादल भयंकर गर्जना कर रहे हों ।

४. वानरों की पूँछे आकाश में ऐसी छाई हुयी हैं, **मानो** सुन्दर इन्द्रधनुष उदय हुए हों।

५. धूल ऐसी उड़ रही है **मानो** जल की धारा हो ।

६. बाण ऐसे आच्छादित हैं **मानो** बादलों से वृष्टि हो रही हो ।

७. योद्धा पर्वतों का प्रहार करते हैं **मानो** बार-बार वज्रपात हो रहा है ।

८. बाण-बिद्ध घायलों के शरीरों से खून ऐसा बह रहा है, **मानो** पर्वत के भारी झरनों से जल बह रहा हो ।

९. इस प्रकार डरपोकों को डराने वाली रूधिर की नदी बह चली।

१०. दोनों दल **मानो** रक्त-नदी के दोनों किनारे हैं।

११. रथ रेत हैं।

१२. पहिये भँवर हैं।

१३. हाथी, पैदल, घोड़े, गदहे तथा अनेकों सवारियाँ ही नदी के जल-जन्तु हैं।

१४. बाण, शक्ति और तोमर जल-सर्प हैं।

१५. धनुष तरंगे हैं।

१६. ढाल कछुए हैं।

१७. वीर पृथ्वी पर इस तरह गिर रहे हैं **मानो** नदी के किनारे के वृक्ष ढह रहे हों।

१८. बहती हुई मज्जा नदी का फेन है।

उपमा १०-१८ नीचे के छंद और दोहा ८७ में है।

छं०—कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

दो०—बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन॥ ८७॥

भावार्थ— डरपोकों को भय उपजाने वाली अत्यन्त अपवित्र रक्त नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे हैं। रथ रेत है और पहिये भँवर हैं। वह नदी बहुत भयावनी बह रही है। हाथी पैदल, घोड़े, गदहे तथा अनेकों सवारियाँ ही, जिनकी गिनती कौन करे, नदी के जलजन्तु हैं। बाण, शक्ति और तोमर सर्प हैं। धनुष तरंगे हैं और ढाल कछुए हैं। वीर पृथवी पर इस तरह गिर रहे हैं, मानों नदी-किनारे के वृक्ष ढह रहे हों। बहुत-सी मज्जा बह रही है, वही फेन है। डरपोक जहाँ इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम योद्धाओं के मन में सुख होता है।

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥
एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥

कहँरत भट घायल तट गिरे । जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे ॥
खैंचहिं गीध आँत तट भए । जनु बंसी खेलत चित दए ॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं । जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं ॥
जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं । भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं ॥
भट कपाल करताल बजावहिं । चामुंडा नाना बिधि गावहिं ॥
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं । सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥

भावार्थ– भूत पिशाच और बैताल बड़े-बड़े कालों वाले महान भयंकर प्रेत और प्रमथ (शिवगण) नदी में स्नान करते हैं । कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक दूसरे से छीन कर खा जाते हैं । एक (कोई) कहते हैं--अरे मूर्खो ! ऐसी सस्ती (बहुतायत) है, फिर भी तुम्हारी दरिद्रता नहीं जाती । घायल योद्धा तट पर पड़े कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्ध जल (वे व्यक्ति जो मरने के समय आधे जल में रक्खे जाते हैं)में पड़े हों । गीध आतें खीच रहे हैं मानो मछलीमार नदी-तट पर से चित्त लगाये हुए (ध्यानस्थ होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसी से मछली पकड़ रहे हों)। बहुत से योद्धा बहे जा रहे हैं और पक्षी उन पर चढ़े चले जा रहे हैं । मानो वे नदी में नावरि (नौका क्रीड़ा) खेल रहे हों । योगनियाँ खप्परों में भर भर कर खून जमा कर रही हैं । चामुण्डाएँ योद्धाओं की खोपड़ियों की करताल बजा रही हैं और नाना प्रकार से गा रही हैं । गीदड़ों के समूह कट-कट शब्द करते हुए मुरदों को काटते खाते,'हुआँ-हुआँ' करते और एक दूसरे को डाँटते हैं । करोड़ो धड़ बिना सिर के घूम रहे हैं । और सिर पृथ्वी पर पड़े जय जय बोल रहे हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । इनमें तुलसीदास जी ने वीभत्स रस की पराकाष्ठा कर दी है । यदि कहीं समानान्तर मिलता है तो वह है जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के'हरिश्चन्द्र' काव्य के चौथे सर्ग के प्रारम्भिक छन्द में :--

कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति बुझाई ।
एक लगाई जाति एक की राख बहाई ।।
बिबिध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति ।
कहुँ चरबी सौ चटचटाति कहुँ दह दह दहकति ।। २ ।।

कहुँ फूकन-हित धर्‌यो मृतक तुरतहिं तहँ आयो ।
परयौ अंग अधजर्‌यौ कहूँ कोऊ कर खायौ ।।
कहूँ स्वान इक अस्तिखण्ड लै चाटि चिचोरत ।
कहूँ कारी महि काक ठोर सौं ठोकि टटोरत ।। ३ ।।

कहूँ सृगाल कोउ मृतक-अंग पर ताक लगावत ।
कहूँ कोउ सव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत ।।
जहँ तहँ मज्जा माँस रुधिर लखि परत बगारे ।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे ।। ४ ।।

हरहरात इस दिसि पीपर कौ पेड़ पुरातन ।
लटकत जामै घंट घने माटी के बासन ।।
बरषा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक ।
सरिता बहति सबेग करारे गिरत अचानक ।। ५ ।।

ररत कहूँ मंडूक कहूँ झिल्ली झनकारैं ।
काक-मंडली कहूँ अमंगल मंत्र उचारैं ।। ६ ।।

० ० ० ० ०

भई आनि तब साँझ घटा आई घिरि कारी ।
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी ।
भए एकठा आनि तहाँ डाकिनि-पिसाच-गन ।
कूदत करत कलोल किलकि दौरत तोरत तन ।। १२ ।।

आकृति अति बिकराल धरे, क्वैला से कारे ।
बक्र-बदन लघु-लाल-नयन-जुत, जीभ निकारे ।।
कोउ कड़ाकड़ हाड़ नाचत दै ताली ।
कोउ पीवत रुधिर खोपरी की करि प्याली ।। १३ ।।

कोउ अंतड़िनि की पहिरि माल इतरात दिखावत ।
कोऊ चरबी लै चौप सहित निज अंगनि लगावत ।।
कोउ मुंडनि लै मानि मोद कंदुक लौ डारत ।
कोउ रूंडनि पै बैठि करेजी फारि निकारत ।। १४ ।।

करि कापालिक बेस धर्म तब तिहि ठाँ आयौ ।
बसन गेरुआ अंग भंग कैं रंग समायौ ।। १५ ।।

छूटे लाँबि केस नैन राजत रतनारे ।
सिर सेंदुर कौ तिलक भस्म सब तन मैं धारे ।।

एक हाथ खप्पर चिमटा दूँजैं कर भ्राजत ।
गरैं हाड़ के हार सहित तरिवार बिराजत ।। १६ ।।

छं०— बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं ।
खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ।।
बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए ।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए ।।

दो०—रावन हृदयँ बिचारा भा निसिचर संघार ।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार ।। ८८ ।।

भावार्थ— मुण्ड (कटे सिर)जय-जय बोलते हैं, और प्रचण्ड-रुण्ड (धड़)बिना सिर के दौड़ते हैं । पक्षी खोपड़ियों में उलझ-उलझ कर परस्पर लड़े मरते हैं । उत्तम योद्धा दूसरे योद्धाओं को ढहा रहे हैं । श्री राम जी के बल से दर्पित हुएं वानर निशाचर समूह को मसल डालते हैं । श्री राम जी के बाण-समूहों से मरे योद्धा रणांगण में सो रहे हैं । रावण ने हृदय में विचारा कि राक्षसों का नाश हो गया है । मैं अकेला हूँ और वानर-समूह बहुत हैं, इसलिये मैं अब अपार माया रचूँ ।

देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा । उपजा उर अति छोभ बिसेषा ।।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा । हरष सहित मातलि लै आवा ।।
तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा । हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा ।।
चंचल तुरग मनोहर चारी । अजर अमर मन सम गतिकारी ।।
रथारूढ़ रघुनाथहि देखी । धाए कपि बलु पाइ बिसेषी ।।
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी । तब रावन माया बिस्तारी ।।
सो माया रघुबीरहि बाँची । लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची ।।
देखी कपिन्ह निसाचर अनी । अनुज सहित बहु कोसलधनी ।।

भावार्थ— देवताओं ने प्रभु को पैदल देखा, तो उनके हृदय में बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हुआ । इन्द्र ने तुरन्त अपना रथ भेजा । मातलि हर्ष के साथ उसे ले आया । उस दिव्य, अनुपम और तेज के पुंज (तेजोमय)रथ पर कोसलपुर (अयोध्या) के राजा श्री रामचन्द्र जी हर्षित होकर चढ़े । उसमें चार चंचल, मनोहर, अजर, अमर और मन की गति के समान शीघ्र चलने वाले (देवलोक के) घोड़े जुते थे । श्री रघुनाथ को रथ पर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े । वानरों की मार सही नहीं जाती । तब रावण ने माया फैलायी । एक रघुबीर के ही वह माया नहीं लगी । सब बानरों ने और लक्ष्मण जी ने भी उस माया को सच मान लिया। वानरों ने राक्षसी सेना में भाई-लक्ष्मण सहित बहुत से रामों को देखा ।

छं०—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे ।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे ।।
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसल धनी ।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी ।।

दो०— बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर ।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर ।। ८९ ।।

भावार्थ— बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर वानर भालू मन में मिथ्या डर से बहुत ही डर गये । लक्ष्मण जी सहित वे मानो चित्रलिखे से जहाँ के तहाँ खड़े देखने लगे । अपनी सेना को आश्चर्य चकित देखकर कोसलपति भगवान हरि (दुःखों के हरने वाले श्री राम जी)ने हँसकर धनुष पर बाण चढ़ाकर पलभर में सारी माया हर ली । वानरों की सारी सेना हर्षित हो गयी। फिर श्री राम जी सबकी ओर देखकर गम्भीर वचन बोले–'हे वीरों ! तुम सब बहुत ही थक गये हो । इसलिये अब मेरा और रावण का द्वन्द्व युद्ध देखो ।'

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा । बिप्र चरन पंकज सिरु नावा ।।
तब लंकेस क्रोध उर छावा । गर्जत तर्जत सन्मुख धावा ।।
जीतेहु जे भट संजुग माहीं । सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं ।।
रावन नाम जगत जस जाना । लोकप जाकें बंदीखाना ।।
खर दूषन बिराध तुम्ह मारा । बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा ।।
निसिचर निकर सुभट संघारेहु । कुंभकरन घननादहि मारेहु ।।
आजु बयरु सबु लेउँ निबाही । जौं रन भूप भाजि नहिं जाही ।।
आजु करउँ खलु काल हवाले । परेहु कठिन रावन के पाले ।।
सुनि दुर्बचन कालबस जाना । बिहँसि बचन कह कृपानिधाना ।।
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई । जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई ।।

भावार्थ— ऐसा कहकर श्री रघुनाथ जी ने ब्राह्मणों के चरणकमलों में सिर नवाया और फिर रथ चलाया । तब रावण के हृदय में क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा (उसने कहा–)'अरे तपस्वी! सुनो, तुमने युद्ध में जिन योद्धाओं को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ । मेरा नाम रावण है, जिसके कैदखाने में लोकपाल तक पड़े हैं । तुमने खर-दूषण और विराध को मारा । बेचारे बालि का व्याध की तरह वध किया । बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओं के समूह का संहार किया । और कुम्भकर्ण तथा मेघनाद को भी मारा । अरे राजा ! यदि तुम रण से भाग न गये तो आज मैं सारा वैर निकाल लूँगा । आज मैं निश्चय ही तुमको काल के हवाले कर दूँगा । तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो ।' रावण के दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान श्री रामजी ने हँस कर यह बचन कहा–'तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है । पर अब व्यर्थ है बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ।

पात्र-परिचय— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। जब इन्द्र के भेजे हुए रथ पर चढ़कर राम रावण का सामना करने आये तो रावण को बड़ा क्रोध आया। उसने ललकार कर गरजते हुए कहा।'अरे तपस्वी ! तुमने खर-दूषण, विराध, बालि, कुम्भकर्ण और मेघनाद को मारा। परन्तु आज तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो।'

१. खर-दूषण - देखिए पृष्ठ ७३३-३८।

२. विराध - देखिए पृष्ठ ७१४।

३. बालि - देखिए पृष्ठ ७९३-९५।

४. कुम्भकर्ण - देखिए पृष्ठ ९६८-७५।

५. मेघनाद - देखिए पृष्ठ ९७६-८३।

छं०—जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा।।
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं।।

भावार्थ— व्यर्थ बकवाद करके अपने सुन्दर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो। संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं— गुलाब, आम और कटहल के समान। एक (गुलाब)फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं। और एक (कटहल)में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार पुरुषों में एक कहते हैं, करते नहीं;दूसरे कहते और करते भी हैं ; और एक (तीसरे)केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नहीं।

लोकोक्ति— ऊपर का पूरा छन्द एक लोकोक्ति है। उसका मूल पद है—

'संसार मँह पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा।।'

जब रावण ने राम के प्रति दुर्वचन कहे तब राम ने उसे समझाया कि संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। जिनकी प्रकृति गुलाब, आम और कटहल के वृक्षों के समान होती है। इनमें से प्रथम गुलाब (पाटल)केवल पुष्प ही संसार को देता है, दूसरा आम जो फूल और फल दोनों ही देता है , तीसरा कटहल (पनस) केवल फल ही देता है। इसी प्रकार कुछ पुरुष संसार में ऐसे होते हैं जो अपना बखान तो बहुत करते हैं परन्तु अवसर आने पर कुछ भी नहीं करते। दूसरे प्रकार के वे पुरुष हैं जो कहते भी हैं और करते भी हैं। और तीसरे वे हैं जो केवल करते हैं, कुछ भी कहते नहीं। राम का संकेत था कि रावण पहले प्रकार का पुरुष है जो अपना बखान तो बहुत कर रहा है, परन्तु अवसर आने पर कुछ भी नहीं कर पायेगा।

दो०—राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान ।। ९० ।।

भावार्थ— श्री राम जी के वचन सुनकर वह हँसा (और बोला—) 'मुझे ज्ञान सिखाते हो? उस समय वैर करते तो नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं।'

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर ।।
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए ।।
पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा ।।
छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई ।।
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै ।।
निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसें ।।
तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ।।
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा ।।

भावार्थ— दुर्वचन कह कर रावण क्रुद्ध होकर बज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेकों आकार के बाण छोड़े जो दिसा, विदिशा तथा आकाश और पृथ्वी में सब जगह छा गये। श्री रघुबीर ने अग्निबाण छोड़ा, जिससे रावण के सब बाण क्षण भर में भस्म हो गये। तब उसने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी। किन्तु श्री रामचन्द्र जी ने उसको बाण के साथ वापस कर दिया। वह करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, परन्तु प्रभु उन्हें बिना ही परिश्रम के काटकर हरा देते हैं। रावण के बाण उसी प्रकार निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य के सब मनोरथ। तब उसने श्री राम जी के सारथी को सौ बाण मारे, वह श्री राम जी की जय पुकार कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। राम जी ने कृपा करके सारथी को उठाया। तब प्रभु अत्यन्त क्रोध को प्राप्त हुए।

छं०—भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ।।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ।।

दो०—तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल ।। ९१ ।।

भावार्थ— युद्ध में शत्रु के विरुद्ध श्री रघुनाथ जी क्रोधित हुए, तब तरकस में बाण कसमसाने लगे (बाहर निकलने को आतुर होने लगे)। उनके धनुष का अत्यन्त प्रचण्ड शब्द

(टंकार)सुनकर मनुष्य भक्षी सब राक्षस वातग्रस्त हो गये (अत्यन्त भयभीत हो गये)। मन्दोदरी का हृदय काँप उठा। समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत डर गये। दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दातों से पकड़कर चिंघाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हँसे। धनुष को कानतक तानकर श्री रामचन्द्र जी ने भयानक बाण छोड़े। श्री राम जी के बाण समूह ऐसे चले मानों सर्प लहलहाते (लहराते)हुए जा रहे हों।

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका॥
तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥
तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक॥
रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे॥
स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे॥
काटतहीं पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए॥
पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥

भावार्थ– बाण ऐसे चले मानो पंख वाले सर्प उड़ रहे हों। उन्होंने पहले सारथी और घोड़ों को मार डाला। फिर रथ को चूर-चूर करके ध्वजा और पताकाओं को गिरा दिया। तब रावण बड़े ज़ोर से गरजा, पर भीतर से उसका बल थक गया था। तुरन्त दूसरे रथ पर चढ़कर खिसिया कर उसने नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र छोड़े। उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो रहे हैं जैसे परद्रोह में लगे हुए चित्तवाले मनुष्य के होते हैं। तब रावण ने दस त्रिशूल चलाये और श्री राम जी के चारों घोड़ों को मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया। घोड़ों को उठाकर श्री रघुनाथ जी ने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े। रावण के सिर रूपी कमलवन में विचरण करने वाले श्री रघुबीर के बाण रूपी भ्रमरों की पंक्ति चली। श्री रामचन्द्र जी ने उसके दसों सिरों में दस-दस बाण मारे, जो आर-पार हो गये और सिरों से रक्त पनाले बह चले। रुधिर बहते हुए ही बलवान रावण दौड़ा। प्रभु ने फिर धनुष पर बाण संधान किया। श्री रघुबीर ने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओं समेत दसों सिर काटकर पृथवी पर गिरा दिये। सिर और हाथ काटते ही वे फिर नये हो गये। श्री राम जी ने फिर भुजाओं

और सिरों को काट गिराया। इस तरह प्रभु ने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे। परन्तु कटते ही वे तुरन्त फिर नये हो गये। प्रभु बार-बार उसके भुजा और सिरों को काट रहे हैं। क्योंकि कोसलपति श्री राम जी बड़े कौतुकी हैं। आकाश में सिर और बाहु ऐसे छा गये है मानो असंख्य केतु और राहु हों।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में चौदह सम पंक्तियाँ हैं। राम रावण के सिर और हाथ बार-बार काटते हैं; परन्तु उनके स्थान पर नए सिर और भुजाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। यही खेल दोहा १०१ तक चलता रहा। अन्त में विभीषण ने राम को समझाया कि 'रावण की नाभि में अमृत-कुण्ड है। उसी के बल पर रावण अभी तक जीवित है। सिर-हाथ काटने से कुछ नहीं होगा।' यह जानकारी पाते ही, राम ने रावण की नाभि की ओर बाण का सन्धान किया। नाभि में बाण लगते ही अमृत कुण्ड सूख गया और रावण का प्राणान्त हो गया। विभीषण के बिना राम की विजय हो ही नहीं सकती थी। विभीषण ने ही राम को सावधान किया था कि मेघनाद निकुम्भिला देवी के स्थान पर यज्ञ कर रहा है। यदि वह यज्ञ सिद्ध हो गया तो मेघनाद अपराजेय हो जायेगा (पृष्ठ ९८०)। इसी चेतावनी पर जाकर लक्ष्मण ने मेघनाद का यज्ञ विध्वन्स किया। इसी प्रकार रावण ने भी एक सिद्धि-यज्ञ का अनुष्ठान किया। इसकी भी सूचना विभीषण ने राम को दी। राम का आदेश पाकर हनुमान-अंगद की वानर सेना ने इस यज्ञ का भी विध्वंस किया। इस यज्ञ के विध्वंस होने पर रावण ने जीने की आशा छोड़ दी (पृष्ठ ९९४) और अन्त में विभीषण ने ही रावण की नाभि में अमृत-कुण्ड की सूचना दी। तभी तो प्रचलित लोकोक्ति है–

'घर का भेदी, लंका ढावे।'

छं०– जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं।।
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं।।

दो०– जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार।। ९२।।

भावार्थ– मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाश मार्ग से दौड़ रहे हों। श्री रघुबीर के प्रचण्ड बाणों के बार-बार लगने से वे पृथ्वी पर गिर नहीं पाते। एक-एक बाण से सिर छिदे हुए आकाश में उड़ते ऐसे शोभित हो रहे हैं मानों सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओं को पिरो रही हों। जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरों को काटते हैं, वैसे ही वैसे वे अपार होते जाते हैं। जैसे विषयों का सेवन करने से आपा (उन्हें भोगने की इच्छा) दिन प्रतिदिन नया-नया बढ़ता जाता है।

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी । बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ।।
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी । धायउ दसहु सरासन तानी ।।
समर भूमि दसकंधर कोप्यो । बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो ।।
दंड एक रथ देखि न परेऊ । जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ ।।
हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा । तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा ।।
सर निवारि रिपु के सिर काटे । ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ।।
काटे सिर नभ मारग धावहिं । जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ।।
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा । कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ।।

भावार्थ– सिरों की बाढ़ देखकर रावण को अपना मरण बिसर गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ । वह महान अभिमानी मूर्ख राजा दसों धनुषों को तानकर दौड़ा । समर भूमि में रावण ने कोप किया और बाण बरसा कर श्री रघुनाथ जी के रथ को ढक दिया । एक दण्ड तक रथ दिखलायी न पड़ा, मानो कुहरे में सूर्य छिप गया हो । तब देवताओं ने हाहाकार किया । तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष उठाया और शत्रु के बाणों को हटा कर उन्होंने शत्रु के सिर काटे और उनसे दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी, सब को पाट दिया । काटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड़ते हैं और जय-जय की ध्वनि से भय उत्पन्न करते हैं । '' लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसलपति रघुबीर कहाँ हैं?

छं०–कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले ।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले ।।
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं ।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं ।।

दो०–पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाड़ी सक्ति प्रचंड ।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड ।। ९३ ।।

भावार्थ– राम कहाँ हैं ?'' यह कहकर सिरों के समूह दौड़े । उन्हें देखकर वानर भाग चले । तब धनुष सन्धान करके रघुकुलमणि श्री राम जी ने हँसकर बाणों से उन सिरों को भलीभाँति वेध डाला । हाथों में मुण्डों की मालाएँ लेकर बहुत सी कलिकाएँ झुंड-की झुंड मिलकर इकट्ठी हुईं और वे रुधिर की नदी में स्नान करके चलीं, मानो अपने संग्राम रूपी वटवृक्ष की पूजा करने जा रही हों । फिर रावण ने क्रोधित होकर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी । वह विभीषण के सामने ऐसी चली जैसे काल का दण्ड हो ।

आवत देखि सक्ति अति घोरा । प्रनतारति भंजन पन मोरा ।।
तुरत बिभीषन पाछें मेला । सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ।।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई । प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो । गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो ॥
रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे । तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे ॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए । एक एक के कोटिन्ह पाए ॥
तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो । अब तव कालु सीस पर नाच्यो ॥
राम बिमुख सठ चहसि संपदा । अस कहि हनेसि माझ उर गदा ॥

भावार्थ– अत्यन्त भयानक शक्ति को आता देख, और यह विचार कर कि मेरा प्रण शरणागत के दुःख का त्राण करना है, श्री राम जी ने तुरन्त ही विभीषण को पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली । शक्ति लगने से उन्हें कुछ मूर्च्छा हुई । प्रभु ने तो यह लीला की, पर देवताओं को व्याकुलता हुई । प्रभु को श्रम प्राप्त हुआ देखकर विभीषण क्रोधित होकर हाथ में गदा लेकर दौड़ा । (और बोला–) 'अरे अभागे, मूर्ख, नीच, दुर्बुद्धि ! तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग सभी से विरोध किया । तूने आदर सहित शिवजी को सिर चढ़ाये थे, इसी से एक-एक के बदले करोड़ों पाये । उसी कारण से अरे दुष्ट ! तू अब तक बचा है । अब काल तेरे सिर पर नाच रहा है । अरे मूर्ख ! तू राम विमुख होकर सम्पत्ति (सुख) चाहता है?'' ऐसा कहकर विभीषण ने रावण की छाती के बीचोबीच गदा मारी ।

छं०– उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो ।
दस बदन सोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भर्‌यो ॥
द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै ।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै ॥

दो०– उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ ॥ ९४ ॥

भावार्थ– बीच छाती में कठोर गदा की घोर और कठिन चोट लगते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा । उसके दसों मुखों से रुधिर बहने लगा । वह अपने को फिर संभाल कर क्रोध में भरा हुआ दौड़ा । दोनों अत्यन्त बलवान योद्धा भिड़ गये, और मल्लयुद्ध में एक दूसरे के विरुद्ध होकर मारने लगे । श्री रघुबीर के बल से गर्वित विभीषण उसको पासंग के बराबर भी नहीं समझते । (शिव जी कहते हैं–) 'हे उमा! विभीषण कभी रावण के सामने आँख उठाकर भी देख सकता था? परन्तु अब वही काल के समान उससे भिड़ रहा है । यह श्री रघुबीर का ही प्रभाव है ।'

देखा श्रमित बिभीषनु भारी । धायउ हनूमान गिरि धारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता । हृदय माझ तेहि मारेसि लाता ॥

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता । गयउ बिभीषनु जहँ जनत्राता ॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी । चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी ॥
गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना । पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना ॥
लरत अकास जुगल सम जोधा । एकहि एकु हनत करि क्रोधा ॥
सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं । कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं ॥
बुधि बल निसिचर परइ न पार्‌यो । तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो ॥

भावार्थ– विभीषण को बहुत ही थका देखकर हनुमान् जी पर्वत धारण किये हुए दौड़े। उन्होंने उस पर्वत से रावण के रथ, घोड़े और सारथी का संहार कर डाला और उसके सीने पर लात मारी । रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर अत्यन्त काँपने लगा । विभीषण वहाँ गये जहाँ सेवकों के रक्षक श्री राम जी थे । फिर रावण ने ललकार कर हनुमान जी को मारा। वे पूँछ फैलाकर आकाश में चले गये । रावण ने पूँछ पकड़ ली । हनुमान जी उसको साथ लिये हुए ऊपर उड़े । फिर लौटकर महाबलवान हनुमान जी उससे भिड़ गये । दोनों समान योद्धा आकाश में लड़ते हुए एक दूसरे को क्रोध करके मारने लगे । दोनों बहुत से छल-बल करते हुए आकाश में ऐसे शोभित हो रहे हैं, जैसे कज्जल गिरि और सुमेरु पर्वत लड़ रहे हों। जब बुद्धि और बल से रावण गिराये न गिरा, तब मारूत श्री हनुमान ने प्रभु को स्मरण किया।

छं०– संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो ।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो ।।
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले ।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुज बल दलमले ।।

दो०– तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड ।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पाषंड ।। ९५ ।।

भावार्थ– श्री रघुबीर का स्मरण करके और ललकार कर हनुमान जी ने रावण को मारा । वे दोनों पृथ्वी पर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं । देवताओं ने दोनों की जय-जय पुकारी । हनुमान जी पर संकट देखकर वानर-भालू क्रोधातुर होकर दौड़े । किन्तु रण-मद-माते रावण ने सब योद्धाओं को अपने प्रचण्ड भुजाओं के बल से कुचल डाला । तब श्री रघुबीर के ललकारने पर प्रचण्ड वीर वानर दौड़े । वानरों के प्रबल दल को देखकर रावण ने माया प्रकट की ।

अंतरधान भयउ छन एका । पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते । जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥
देखे कपिन्ह अमित दससीसा । जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा ॥

आगे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥
दहुँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई ॥
सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर ॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी ॥

भावार्थ— क्षणभर के लिये वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्ट ने अनेकों रूप प्रकट किये। श्री रघुनाथ जी की सेना में जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहाँ-तहाँ (चारो ओर) प्रकट हो गये। वानरों ने अपरिमित रावण देखे। भालू और वानर सब जहाँ-तहाँ (इधर-उधर) भाग चले। वानर धीरज नहीं धरते। 'हे लक्ष्मण जी! हे रघुबीर जी! बचाइये,' यों पुकारते हुए वे भागे जा रहे हैं। दसों दिशाओं में करोड़ों रावण दौड़ते हैं, और घोर, कठोर भयानक गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गये और ऐसा कहते हुए भाग चले कि—"हे भाई! अब जय की आशा छोड़ दो। एक ही रावण ने सब देवताओं को जीत लिया था। अब तो बहुत से रावण हो गये हैं। इससे अब पहाड़ की गुफाओं का आश्रय लो (अर्थात् उनमें छिप रहो)।" वहाँ ब्रह्मा, शम्भू और ज्ञानी मुनि ही डटे रहे, जिन्होंने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी।

छं०— जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे ॥
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे ॥

दो०— सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस ॥ ९६ ॥

भावार्थ— जो प्रभु का प्रताप जानते थे, वे निर्भय डटे रहे। वानरों ने शत्रुओं (बहुत-से-रावणों) को सच्चा ही मान लिया। इससे सब वानर-भालू विचलित होकर 'हे कृपालू! रक्षा कीजिये' यों पुकारते हुए भय से व्याकुल होकर भाग चले। अत्यन्त बलवान रण बाँकुरे हनुमान जी, अंगद, नील और नल लड़ते हैं और कपटरूपी भूमि से अंकुर की भाँति उपजे हुए कोटि-कोटि योद्धा रावणों को मसलते हैं। देवताओं और वानरों को विकल देखकर कोसलपति श्री राम जी हँसे, और शारंगधनुष पर एक बाण चढ़ाकर माया के बने हुए सब रावणों को मार डाला।

प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी ॥
रावनु एकु देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे ॥

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे । फिरे एक एकन्ह तब टेरे ।।
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए । तरल तमकि संजुग महि आए ।।
अस्तुति करत देवतन्हि देखें । भयउँ एक मैं इन्ह के लेखें ।।
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल । अस कहि कोपि गगन पर धायल ।।
हाहाकार करत सुर भागे । खलहु जाहु कहँ मोरें आगे ।।
देखि बिकल सुर अंगद धायो । कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ।।

भावार्थ– प्रभु ने क्षणभर में सब माया काट डाली । जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार फट जाता है (नष्ट हो जाता है)अब एक ही रावण को देखकर देवता हर्षित हुए और उन्होंने लौटकर प्रभु पर बहुत से पुष्प बरसाये । श्री रघुनाथ जी ने भुजा उठाकर सब बानरों को लौटाया । तब वे एक दूसरे को पुकार-पुकार कर लौट आये । प्रभु का बल पाकर रीछ-बानर दौड़ पड़े । जल्दी से तमककर वे रणभूमि में आ गये । देवताओं को श्री राम जी की स्तुति करते देखकर रावण ने सोचा, मैं इनकी समझ में एक हो गया । परन्तु इन्हें यह पता नहीं कि इनके लिये मैं एक ही बहुत हूँ (और कहा–) ''अरे मूर्खों ! तुम तो सदा ही मेरे मरल (मेरी मार खाने वाले)हो ।'' ऐसा कहकर वह क्रोध करके आकाश पर देवताओं की ओर दौड़ा । देवता हाहाकार करते हुए भागे । (रावण ने कहा–) ''दुष्टों ! मेरे आगे कहाँ जा सकोगे?'' देवताओं को व्याकुल देखकर अंगद दौड़े और उछल कर रावण का पैर पकड़कर उन्होंने उसको पृथ्वी पर गिरा दिया ।

छं०–गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो ।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो ।।
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई ।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई ।।

दो०–तब रघुपति रावन के सीसु भुजा सर चाप ।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ।। ९७ ।।

भावार्थ– उसे पकड़कर पृथ्वी पर गिराकर लात मारकर बालिपुत्र अंगद प्रभु के पास चले गये । रावण सँभल कर उठा और बड़े भयंकर शब्द गरजने लगा । वह दर्प करके दसों धनुष चढ़ाकर उन पर बहुत से बाण सन्धान करके चलाने लगा । उसने जब योद्धाओं को घायल और भय से व्याकुल कर दिया, और अपना बल देखकर वह हर्षित होने लगा, तब श्री रघुनाथ जी ने रावण के सिर, भुजाएँ, बाण और धनुष काट डाले . पर वे फिर बहुत बढ़ गये, जैसे तीर्थ में किये हुए पाप बढ़ जाते हैं ।

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी । भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी ।।
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा । धाए कोपि भालु भट कीसा ।।

बालितनय मारुति नल नीला । बानरराज दुबिद बलसीला ॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा । सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा ॥
एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी । भागि चलहिं एक लातन्ह मारी ॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ । नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ ॥
रुधिर देखि बिषाद उर भारी । तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी ॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं । जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं ॥
कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी । महि पटकत भजे भुजा मरोरी ॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे । सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे ॥
हनुमदादि मुरुछित करि बंदर । पाइ प्रदोष हरष दसकंधर ॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा । जामवंत धायउ रनधीरा ॥
संग भालु भूधर तरु धारी । मारन लगे पचारि पचारी ॥
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना । गहि पद महि पटकइ भट नाना ॥
देखि भालुपति निज दल घाता । कोपि माझ उर मारेसि लाता ॥

भावार्थ– शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती देखकर, रीछ-वानरों को बहुत ही क्रोध हुआ । यह मूर्ख भुजाओं के और सिरों के कटने पर भी नहीं मरता, ऐसा कहते हुए भालू और वानर योद्धा क्रोध करके दौड़े । बालिपुत्र अंगद, मारुति हनुमान जी, नल, नील, वानर राज सुग्रीव और द्विविद आदि बलवान उस पर वृक्ष और पर्वतों का प्रहार करते हैं । वह उन्हीं पर्वतों और वृक्षों को पकड़कर वानरों को मारता है । कोई एक बानर नखों से शत्रु के शरीर फाड़कर भाग जाते हैं, तो कोई उसे लातों से मारकर। तब नल और नील रावण के सिरों पर चढ़ गये और नखों से उसके ललाट को फाड़ने लगे । खून देखकर उसे हृदय में बड़ा विषाद हुआ । उसने उनके पकड़ने के लिये हाथ फैलाये । पर वे पकड़ में नहीं आते, हाथों के ऊपर ही ऊपर फिरते हैं । मानों दो भौंरे कमलों के वन में विचरण कर रहे हों । तब उसने क्रोध करकें उठकर दोनों को पकड़ लिया । पृथ्वी पर पटकते समय वे उसकी भुजाओं को मरोड़कर भाग छूटे । फिर उसने क्रोध करके हाथों में दसों धनुष लिये और वानरों को बाणों से मारकर घायल कर दिया । हनुमान जी आदि सब वानरों को मूर्च्छित करके और सन्ध्या का समय पाकर रावण हर्षित हुआ । समस्त वीर वानर योद्धाओं को मूर्च्छित देखकर रणधीर जाम्बवान् दौड़े । जाम्बवान् के साथ जो भालू थे, वे पर्वत और वृक्ष धारण किये रावण को ललकार-ललकार कर मारने लगे । बलवान् रावण क्रोधित हुआ और पैर पकड़-पकड़ कर वह अनेकों योद्धाओं को पृथ्वी पर पटकने लगा । जाम्बवान् ने अपने दल को घायल देखकर क्रोध करके रावण की छाती में लात मारी ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में पन्द्रह विषम पंक्तियाँ हैं । दोहा ९४ के ऊपर की चौपाई में बताया गया हैं कि एक यज्ञ में रावण ने अपने दसों शीश एक-एक काटकर शिवजी को

चढ़ाए थे। इसी से एक-एक के बदले उसने करोड़ों सिर पाए। "यह मूर्ख भुजाओं और सिरों के कटने पर भी नहीं मरता" ऐसा कहते हुए अंगद, हनुमान, नील, सुग्रीव, द्विविद* आदि बलवान रावण पर वृक्ष और पर्वतों से प्रहार करने लगे। रावण ने उन्हीं पर्वतों और वृक्षों को पकड़कर वानरों को मारना शुरु कर दिया। सब वानर योद्धाओं को रावण ने मूर्च्छित कर दिया। समस्त वीर योद्धाओं को मूर्च्छित देखकर जाम्बवान् ने रावण की छाती पर लात मारी। छाती में लात का प्रचण्ड आघात लगते ही रावण व्याकुल हो कर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे मूर्च्छित देखकर और रात हुई जानकर, उसका सारथी रावण को रथ में डालकर लंका के परकोटे में वापस ले आया। यह दूसरी बार है जब रावण मूर्च्छित हो गया और सारथी उठाकर उसे वापस लंका ले गया। पहली बार रावण लक्ष्मण से युद्ध करते हुए मूर्च्छित हुआ था। देखिए छन्द और दोहा ८४, पृष्ठ ९९३।

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहुँ कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा।।
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो।।

दो०—मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास।। ९८ ।।

भावार्थ— छाती में लात का प्रचण्ड आघात लगते ही रावण व्याकुल होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने बीसों हाथों से भालुओं को पकड़ रक्खा था। ऐसा जान पड़ता था मानों रात्रि के समय भौंरे कमलों में बसे हुए हों। उसे मूर्च्छित देख कर, फिर लात मार कर जाम्बवान् प्रभु के पास चले गये। रात्रि जानकर सारथी रावण को रथ में डाल कर उसे होश में लाने का उपाय करने लगा। मूर्च्छा दूर होने पर सब रीछ-वानर प्रभु के पास आये। उधर सब राक्षसों ने बहुत ही भयभीत होकर रावण को घेर लिया।

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई।।
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी।।
मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता।।
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता।।
रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई।।
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही।।
जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा।।
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए।।

---

* पात्र परिचय के लिए देखिए पृष्ठ ९४८

रघुपति बिरह सबिष सर भारी । तकि तकि मार बार बहु मारी ॥
ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना । सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥
बहु बिधि कर बिलाप जानकी । करि करि सुरति कृपानिधान की ॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी । उर सर लागत मरइ सुरारी ॥
प्रभु ताते उर हतइ न तेही । एहि के हृदयँ बसति बैदेही ॥

भावार्थ– उसी रात त्रिजटा ने सीता जी के पास जाकर उन्हें सब कथा कह सुनायी। शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती का संवाद सुनकर सीता जी के हृदय में बड़ा डर हुआ। मुख उदास हो गया, मन में चिन्ता उत्पन्न हो गयी । तब सीता जी त्रिजटा से बोली– "हे माता ! बताती क्यों नहीं ? क्या होगा? सम्पूर्ण विश्व को दुःख देने वाला यह किस प्रकार मरेगा? श्री रघुनाथ जी के बाणों से सिर कटने पर भी नहीं मरता । विधाता सारे चरित्र विपरीत (उल्टे)ही कर रहा है। मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान के चरण कमलों से वियुक्त (अलग) कर दिया है। जिसने कपट का झूठा स्वर्णमृग बनाया था। वही दैव अब भी मुझ पर रूठा हुआ है । जिस विधाता ने मुझसे दुःसह दुःख सहन कराये, और लक्ष्मण को कडुवे वचन कहलाये। जो श्री रघुनाथ जी के विरह रूपी बड़े विषैले बाणों से तक-तक कर मुझे बहुत बार मारकर, अब भी मार रहा है, वही विधाता उस (रावण)को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं ।" कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी की याद करके जानकी जी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं । त्रिजटा ने कहा–"हे राजकुमारी ! सुनो । देवताओं का शत्रु रावण हृदय में बाण लगते ही मर जायेगा । परन्तु प्रभु उसके हृदय में बाण इस लिये नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकी जी (आप)बसती हैं ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं । अन्तिम पंक्ति और उसके नीचे के छन्द और दोहे में तुलसीदास ने बहुत ही नाजुकखयाली (भावों की उत्कर्ष व्यञ्जना)का प्रदर्शन किया है । त्रिजटा सीता जी को **समझाती है कि रावण के वक्षस्थल में जब बाण मारा जायेगा, तभी वह मरेगा । परन्तु राम उसके सीने में अभी बाण इसलिए नहीं मार रहे हैं** क्योंकि उसके हृदय में आप विराजमान हैं, और आपके हृदय में स्वयं राम विराजमान हैं, और राम के उदर में अनेकों भुवन हैं । जो भी भुवन राम के किसी या सभी गुणों को अपनाकर अपने में निवास करने वालों का कल्याण करता है, उन्हीं गुणों का लोप हो जाने से प्रजा में ही स्वार्थ और वैमनस्य की भावना जन जीवन को अवश्य अस्त-व्यस्त कर देगी । इस कारण उसके विनाश का तो कभी विचार भी नहीं किया जा सकता । इसी विशेष कारण से श्री रामचन्द्र जी रावण को मार डालने की क्षमता रखते हुए भी उसका संहार नहीं कर रहे हैं । सिरों के बार-बार काटे जाने से जब रावण इतना व्याकुल हो जायेगा कि उसके हृदय में आपका ध्यान छूट जायगा, तब अन्तर्यामी श्री राम जी उसके हृदय में बाण मारेंगे ।

छं०—एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है ।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है ।।
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा ।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा ।।

दो०- काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान ।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान ।। ९९ ।।

भावार्थ— (वे यही सोचकर रह जाते हैं कि)इसके हृदय में जानकी का निवास है, जानकी के हृदय में मेरा निवास है और मेरे उदर में अनेकों भुवन हैं । अत: रावण के हृदय में बाण लगते ही सब भुवनों का नाश हो जायगा ।'' यह वचन सुनकर, सीता जी के मन में अत्यन्त हर्ष और विषाद हुआ देखकर, त्रिजटा ने फिर कहा— ''हे सुन्दरी! महान सन्देह का त्याग कर दो । अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा । सिरों के बार-बार काटे जाने से जब वह व्याकुल हो जायेगा, और उसके हृदय में तुम्हारा ध्यान छूट जायगा, तब सुजान (अन्तर्यामी) श्री राम जी रावण के हृदय में बाण मारेंगे ।''

अस कहि बहुत भाँति समुझाई । पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई ।।
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही । उपजी बिरह बिथा अति तेही ।।
निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती । जुग सम भई सिराति न राती ।।
करति बिलाप मनहिं मन भारी । राम बिरहँ जानकी दुखारी ।।
जब अति भयउ बिरह उर दाहू । फरकेउ बाम नयन अरु बाहू ।।
सगुन बिचारि धरी मन धीरा । अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा ।।
इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा । निज सारथि सन खीझन लागा ।।
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही । धिग धिग अधम मंदमति तोही ।।
तेहिं पद गहि बहुत बिधि समुझावा । भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा ।।
सुनि आगवनु दसानन केरा । कपि दल खरभर भयउ घनेरा ।।
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी । धाए कटकटाइ भट भारी ।।

भावार्थ— ऐसा कहकर और सीता जी को बहुत प्रकार से समझा कर फिर त्रिजटा अपने घर चली गई । श्री रामचन्द्र जी के स्वभाव का स्मरण करके जानकी जी को अत्यन्त विरहव्यथा हुई । वे रात्रि की और चन्द्रमा की बहुत प्रकार से निन्दा कर रही हैं । (और कह रही हैं—)''रात युग के समान बड़ी हो गयी, वह बीतती ही नहीं ।'' जानकी जी श्री राम जी के विरह में दुखी होकर मन-ही-मन भारी विलाप कर रही हैं । जब विरह के मारे हृदय में दारुण दाह हो गया, तब उनका बाँया नेत्र और बाहु फड़क उठे । शकुन समझकर उन्होंने

मन में धैर्य धारण किया कि अब कृपालु श्री रघुबीर अवश्य मिलेंगे। यहाँ आधी रात को रावण मूर्च्छा से जागा और अपने सारथी पर रुष्ट होकर कहने लगा-- "अरे मूर्ख ! तूने मुझे रण भूमि से अलग कर दिया। अरे अधम ! अरे मन्दबुद्धि ! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है।" सारथी ने चरण पकड़ कर रावण को बहुत प्रकार से समझाया। सबेरा होते ही वह रथ पर चढ़कर फिर दौड़ा। रावण का आना सुनकर वानरों की सेना में खलबली मच गयी। वे भारी योद्धा जहाँ-तहाँ से पर्वत और वृक्ष उखाड़कर क्रोध में दाँत कटकटाकर दौड़े।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में ग्यारह विषम पंक्तियाँ हैं। इसमें चार विभिन्न वृत्तान्त हैं–

१. सीता का राम के विरह में व्याकुल होना।

२. अर्धरात्रि में रावण की मूर्च्छा जाना और उसका सारथी को डाटना कि वह उसे रणभूमि से क्यों उठा लाया।

३. प्रातः होते ही रावण का पुनः युद्ध के लिए प्रस्थान।

४. वानर योद्धाओं का पर्वत और वृक्ष उखाड़कर पुनः रावण से युद्ध करना।

छं०–धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा ।।
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु ब्याकुल कियो ।।

दो०–देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार ।। १०० ।।

भावार्थ– विकट और विकराल वानर-भालु हाथों में पर्वत लिये दौड़े। वे अत्यन्त क्रोध करके प्रहार करते हैं। उनके मारने से राक्षस भाग चले। बलवान वानरों ने शत्रु की सेना को विचलित करके फिर रावण को घेर लिया। चारों ओर से चपेट मारकर, और नखों से शरीर विदीर्ण कर वानरों ने उसको व्याकुल कर दिया। वानरों को बड़ा ही प्रबल देखकर रावण नें विचार किया और अन्तर्धान होकर क्षण भर में उसने माया फैलायी।

छं०– जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड ।।
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच ।। १ ।।
जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल ।।
करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान ।। २ ।।

धरु मारु बोलहिं घोर । रहि पूरि धुनि चहुँ ओर ।।
मुख बाइ धावहिं खान । तब लगे कीस परान ।। ३ ।।

जहँ जाहिं मर्कट भागि । तहँ बरत देखहिं आगि ।।
भए बिकल बानर भालु । पुनि लाग बरषै बालु ।। ४ ।।

जहँ तहँ थकित करि कीस । गर्जेउ बहुरि दससीस ।।
लछिमन कपीस समेत । भए सकल बीर अचेत ।। ५ ।।

हा राम हा रघुनाथ । कहि सुभट मीचहिं हाथ ।।
एहि बिधि सकल बल तोरि । तेहिं कीन्ह कपट बहोरि ।। ६ ।।

प्रगटेसि बिपुल हनुमान । धाए गहे पाषान ।।
तिन्ह रामु घेरे जाइ । चहुँ दिसि बरूथ बनाइ ।। ७ ।।

मारहु धरहु जनि जाइ । कटकटहिं पूँछ उठाइ ।।
दहँ दिसि लँगूर बिराज । तेहिं मध्य कोसलराज ।। ८ ।।

छं०—तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही ।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही ।।
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी ।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी ।। १ ।।

माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे ।
सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे ।।
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं ।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं ।। २ ।।

भावार्थ— जब उसने पाखण्ड (माया) रचा, तब भयंकर जीव प्रकट हो गये । वेताल, भूत और पिशाच हाथों में धनुष-बाण लिये प्रकट हुए । योगिनियाँ एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिये ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरह से गीत गाने लगीं । वे "पकड़ो, मारो" आदि घोर शब्द बोल रही हैं । चारों ओर (सब दिशाओं में) वह ध्वनि भर गई । वे मुख फैलाकर खाने दौड़ती हैं । तब वानर भागने लगे । वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं आग जलती देखते हैं । वानर-भालू व्याकुल हो गये । फिर रावण बालू बरसाने लगा । वानरों को जहाँ-तहाँ थकित (शिथिल) कर फिर रावण गरजा । लक्ष्मण जी

और सुग्रीव सहित सभी वीर अचेत हो गये । "हा राम! हा रघुनाथ।" पुकारते हुए श्रेष्ठ योद्धा अपने हाथ मलते (पछताते) हैं। इस प्रकार सब का बल तोड़कर रावण ने फिर दूसरी माया रची । उसने बहुत से हनुमान प्रकट किये, जो पत्थर लिये दौड़े । उन्होंने चारों ओर दल बनाकर श्री रामचन्द्र जी को जा घेरा । वे पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे "मारो, पकड़ो, जाने न पावे।" उनके लंगूर (पूंछ) दसों दिशाओं में शोभा दे रहे हैं, और उनके बीच में कोसलराज श्री राम जी है । उनके बीच में कोसलराज का सुन्दर श्याम शरीर ऐसी शोभा पा रहा है, मानो ऊँचे तमाल वृक्ष के लिये अनेक इन्द्र धनुष की श्रेष्ठ बाढ़ (घेरा) बनायी गयी हो। प्रभु को देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदय से "जय, जय, जय" ऐसा बोलने लगे । तब श्री रघुबीर ने क्रोध करके एक ही बाण से, निमेष मात्र में रावण की सारी माया हर ली । माया दूर हो जाने पर, वानर-भालू हर्षित हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े । श्री रामजी ने बाणों के समूह छोड़े, जिनसे रावण के हाथ और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े । श्री राम जी और रावण के युद्ध का चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पों तक गाते रहें, तो भी वे उसका पार नहीं पा सकते।

टिप्पणी— चारण काल से लेकर रीतिकाल तक का समस्त काव्य छन्दवद्ध है । यद्यपि "मानस" दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया है, दोहा-चौपाई भी छन्द हैं । तुलसीदास जी ने जहाँ-जहाँ छन्द का प्रयोग किया है, उनका अभिप्राय यह है कि अमुक छन्द दोहा, चौपाई, सोरठे के अतिरिक्त एक और छंद है । ऊपर पहला अवसर है जबकि तुलसीदास जी ने दोहा–चौपाई के अतिरिक्त दो विभिन्न प्रकारों के छन्दों का एक के बाद एक प्रयोग किया है। दोनों छन्द मात्रिक हैं । पहला छन्द "तोमर" है । इसके हर चरण में १२ मात्रा होती हैं । यह वीर रस के लिये बहुत उपयुक्त है । दूसरा छंद "हरिगीतिका" है । इसके पहले चरण में १६ मात्रा होती हैं, और दूसरे में केवल १२ । इसी छन्द में राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली में कविता करना प्रारम्भ किया । इसी छंद में उनकी "भारत भारती" और "जयद्रथ बध" की रचना हुई । इसी छंद का तुलसीदास जी ने बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में कई स्थान पर प्रयोग किया है ।

दो०—ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास ।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास ।। १०१ (क)।।
काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस ।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस ।। १०१ (ख)।।

भावार्थ— उसी चरित्र के कुछ गुण गण मन्दबुद्धि तुलसीदास ने कहे हैं , जैसे मक्खी भी अपने पुरुषार्थ के अनुसार आकाश में उड़ती है । सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गयीं,

फिर भी वीर रावण मरता नहीं। प्रभु तो खेल कर रहे हैं, परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता उस क्लेश को देखकर (प्रभु को क्लेश पाते समझ कर) व्याकुल हैं।

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥
उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक॥
नाभिकुंड पियूष बल याकें। नाथ जिअब रावनु बल ताकें॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥
असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥
दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥

भावार्थ– काटते ही सिरों का समूह बढ़ जाता है। जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ। तब श्री रामचन्द्र जी ने विभीषण की ओर देखा। (शिवजी कहते हैं–) "हे उमा! जिसकी इच्छा मात्र से काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवक की प्रीति की परीक्षा ले रहे हैं।" (विभीषण जी ने कहा–) "हे सर्वज्ञ! हे चराचर के स्वामी! हे शरणागत के पालनकरने वाले! हे देवता और मुनियों को सुख देने वाले! सुनिये। इसके नाभिकुंड में अमृत का निवास है। हे नाथ! रावण उसी के बल पर जीता है।" विभीषण के वचन सुनते ही कृपालु श्री रघुनाथ ने हर्षित होकर हाथ में विकराल बाण लिए। उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत से गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे। जगत के दुःख (अशुभ) को सूचित करने के लिये पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गए। दसों दिशाओं में अत्यन्त दाह होने लगा (आग लगने लगी)। बिना ही पर्वयोग के सूर्यग्रहण होने लगा। मन्दोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। मूर्तियाँ नेत्र मार्ग से जल बहाने लगीं।

टिप्पणी– ऊपर की, चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। दोहा ९१ के नीचे की चौपाई से लेकर इस चौपाई तक निरन्तर एक ही बात दोहराई गई है कि राम बार-बार रावण के सिर और भुजाएँ काटते हैं और वह पुनः नई निकल आती हैं। राम के सब प्रयास निष्फल देखकर, विभीषण उन्हें मन्त्रणा देते हैं कि सिर-हाथ काटने से कोई लाभ नहीं। रावण की नाभि में अमृत कुण्ड है। जब तक नाभि में बाण नहीं मारा जायेगा, रावण नहीं मर सकता। राम ने ज्यों ही रावण की नाभि की ओर बाण सन्धान किया चारों ओर अपशकुन होने लगे :

१. गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे।

२. पक्षी जगत को अशुभ सूचित करने के लिए बोलने लगे।

३. आकाश में पुच्छल तारे (Comet) प्रकट होने लगे।

४. चारों दिशाओं में आग लगने लगी।

५. पञ्चांग में सूचित न होने पर भी सूर्यग्रहण होने लगा।

६. मन्दोदरी का हृदय काँपने लगा।

७. मूर्तियाँ रोने लगीं।

८. आकाश से बज्र पात होने लगा।

९. प्रचण्ड वायु बहने लगी।

१०. भूकम्प होने लगा।

११. बादल रक्त, बाल, और धूलि बरसाने लगे।

अपशकुन संख्या ८ से ११ के लिए, देखिए अगला छन्द।

छं०— प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही।।
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए।।

दो०— खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस।। १०२।।

भावार्थ— मूर्तियाँ रोने लगीं। आकाश से बज्रपात होने लगे, अत्यन्त प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूलि की बर्षा करने लगे। इस प्रकार इतने अधिक अमंगल होने लगे कि उनको कौन कह सकता है? अपरिमित उत्पात देखकर आकाश में देवता व्याकुल होकर जय-जय पुकार उठे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपालु श्री रघुनाथ जी धनुष बाण पर सन्धान करने लगे। कानों तक धनुष को खींचकर श्री रघुनाथ जी ने इकतीस बाण छोड़े। वे श्री रामचन्द्र जी के बाण ऐसे चले मानो कालसर्प हों।

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा।।
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा।।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा।।
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी।।
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर।।

धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई । चापि भालु मर्कट समुदाई ॥
मंदोदरि आगें भुज सीसा । धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई । देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई ॥
तासु तेज समान प्रभु आनन । हरषे देखि संभु चतुरानन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा । जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा ॥
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा । जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥

भावार्थ– एक बाण ने नाभि के अमृतकुंड को सोख लिया । दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओं में लगे । बाण सिरों और भुजाओं को लेकर चले । सिरों और भुजाओं से रहित रुण्ड (धड़)पृथ्वी पर नाचने लगा । धड़ प्रचण्ड वेग से दौड़ता है, जिससे धरती काँपने लगी । तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये । मरते समय रावण बड़े घोर शब्द से गरज कर बोला– ''राम कहाँ हैं? मैं ललकार कर उनको युद्ध में मारूँ।'' रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई । समुद्र, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे । रावण धड़के दोनों टुकड़ों को फैला कर भालू और वानरों के समुदाय को दबाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा । रावण की भुजाओं और सिरों को मन्दोदरी के सामने रखकर राम-बाण वहाँ चले जहाँ जगदीश्वर श्री राम जीं थे। सब बाण जाकर तरकस में प्रवेश कर गये । यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाये । रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया । यह देखकर शिवजी और ब्रह्मा जी हर्षित हो गये । ब्रह्माण्ड भर में जय जय की ध्वनि भर गई । ''प्रबल भुजदण्डों वाले श्री रघुबीर की जय हो।'' देवता और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं, ''कृपालु की जय हो, मुकुन्द की जय हो।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में ग्यारह विषम पंक्तियाँ हैं । इसमें राम-रावण युद्ध समाप्त होता है । सात्विक, राजस और तामस इन तीन प्रकृतियों के अनुसार चरित्र विभाग करने से दो प्रकार के चित्रण हम गोस्वामी जी में पाते हैं– आदर्श और सामान्य। आदर्श चित्रण के भीतर सात्विक और तामस दोनों आते हैं । इस दृष्टि से सीता, राम, भरत, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आवेंगे । जिस प्रकार राम राम थे, उसी प्रकार रावण रावण था । वह भगवान को उन ललकारने वालों में से था, जिसकी ललकार पर उन्हें आना पड़ा था । बालकाण्ड में गोस्वामी जी ने पहले उसके उन अत्याचारों का वर्णन करके, जिनसे पीड़ित होकर दुनिया पनाह माँगती थी, तब राम का अवतार होना कहा है । रावण उन राक्षसों का सरदार था जो गाँव जलाते थे, खेती उजाड़ते थे, चौपाये नष्ट करते थे, ऋषियों को यज्ञ आदि नहीं करने देते थे । राम और रावण खुदा और शैतान हैं । फ़र्क इतना ही समझिए कि शैतान और खुदा की लड़ाई का मैदान इस दुनिया से ज़रा दूर पड़ता है और राम-रावण की लड़ाई का मैदान यह दुनियाँ ही थी । ऐसे तामस आदर्श में धर्म के लेश का अनुसंधान निष्फल ही समझना पड़ेगा । पर हमारे यहाँ की पुरानी परिपाटी के अनुसार धर्म

के कुछ आधार बिना कोई प्रताप और ऐश्वर्य के साथ एक क्षण नहीं टिक सकता, रावण तो इतने दिनों तक पृथ्वी पर रहा। अतः उसमें धर्म का कोई न कोई अंग अवश्य था। वह अंग अवश्य था जिससे शक्ति और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। उसमें कष्ट सहिष्णुता थी। वह बड़ा भारी तपस्वी था। उसकी धीरता में भी कोई संदेह नहीं है। भाई, पुत्र, जितने कुटुम्बी थे, सबके मारे जाने पर भी वह उसी उत्साह के साथ लड़ता रहा। सारांश यह कि रावण में केवल अपने लिये और अपने बल के लिये शक्ति अर्जित करने भर को धर्म था, समाज में उस शक्ति का सदुपयोग करने वाला नहीं था। रावण पंडित था, तपस्वी था, राजनीतिकुशल था। धीर था, वीर था, पर सब गुणों का उसने दुरुपयोग किया। उसके मरने पर उसका तेज राम के मुख में समा गया। सत् से निकल कर जो शक्ति असत्‌रूप हो गयी थी, वह फिर सत् में विलीन हो गई।

छं०—जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खलदल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥
सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥

दो०—कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।
भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥ १०३॥

भावार्थ— ''हे कृपा के कन्द! हे मोक्षदाता मुकुंद! हे (राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म, मृत्यु आदि) द्वन्दों के हरने वाले! हे शरणागत को सुख देने वाले प्रभो! हे दुष्ट-दल को विदीर्ण करने वाले! हे कारणों के भी परम कारण! हे सदा करुणा करने वाले! हे सर्वव्यापक विभो! आपकी जय हो।'' देवता हर्ष में भरे हुए पुष्प बरसाते हैं, धमाधम नगाड़े बज रहे हैं। रणभूमि में श्री रामचन्द्र जी के अंगों ने बहुत से कामदेवों की शोभा प्राप्त की। सिर पर जटाओं का मुकुट है, जिसके बीच-बीच में अत्यन्त मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं। मानों नीले पर्वत पर बिजली के समूह सहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हैं। शरीर पर रुधिर के कण अत्यन्त सुन्दर लगते हैं मानो तमाल के वृक्ष पर बहुत सी लाल मुनियाँ चिड़ियाँ अपने महान सुख से मग्न हुई निश्चल बैठी हों। प्रभु श्री रामचन्द जी ने कृपादृष्टि की वर्षा करके देवसमूह को निर्भय कर दिया। वानर-भालू सब हर्षित हुए, और ''सुखधाम मुकुन्द की जय हो,'' ऐसा पुकारने लगे।

पति सिर देखत मंदोदरी । मुरुछित बिकल धरनि खसि परी ॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं । तेहि उठाइ रावन पहिं आईं ॥
पति गति देखि ते करहिं पुकारा । छूटे कच नहिं बपुष सँभारा ॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना । रोवत करहिं प्रताप बखाना ॥
तव बल नाथ डोल नित धरनी । तेज हीन पावक ससि तरनी ॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा । सो तनु भूमि परेउ भरि छारा ॥
बरुन कुबेर सुरेस समीरा । रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा ॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं । आजु परेहु अनाथ की नाईं ॥
जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई । सुत परिजन बल बरनि न जाई ॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥
तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा । सभय दिसिप नित नावहिं माथा ॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं । राम बिमुख यह अनुचित नाहीं ॥
काल बिबस पति कहा न माना । अग जग नाथु मनुज करि जाना ॥

भावार्थ– पति के सिर देखते ही, मन्दोदरी, व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ी । स्त्रियाँ रोती हुई उठ दौड़ीं और उसको (मन्दोदरी को) उठाकर रावण के पास आयीं । पति की दशा देखकर वे पुकार पुकार कर रोने लगीं । उनके बाल खुल गये, देह को सँभाल नहीं रहीं । वे अनेकों प्रकार से छाती पीटती हैं और रोती हुई रावण के प्रताप का बखान करती हैं । (वे कहती हैं) "हे नाथ ! तुम्हारे बल से पृथ्वी सदा काँपती रहती थी । अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे । शेष और कच्छप भी जिनका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूल में भरा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है । वरुण, कुबेर, इन्द्र और वायु, इनमें से किसी नें भी रण में तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया । हे स्वामी! तुमने अपने भुजबल से काल और यमराज को भी जीत लिया था । वही तुम्हारी प्रभुता जगत भर में प्रसिद्ध है । तुम्हारे पुत्रों और कुटुम्बियों के बल का हाय! वर्णन नहीं हो सकता । श्री रामचन्द्र जी के विमुख होने से तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुल में कोई रोने वाला भी न रह गया । हे नाथ! विधाता की सारी सृष्टि तुम्हारे वश में थी । लोकपाल सदा भयभीत होकर तुमको मस्तक नवाते थे । किन्तु हाय! अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को गीदड़ खा रहे हैं । राम विमुख के लिए ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित है)। हे पति! काल के पूर्ण वश में होने से तुमने (किसी का)कहना नहीं माना और चराचर के नाथ परमात्मा को मनुष्य करके जाना ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में तेरह विषम पंक्तियाँ हैं । इसमें मन्दोदरी का विलाप है, जब राम-बाण रावण की भुजाओं और सिरों को उसके सामने रखकर, राम के तरकस में वापस चले गये । जिस तुलसीदास ने अनुसुइया के मुख से कहलाया–

"बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।" [१]

वही तुलसीदास यहाँ मन्दोदरी के मुख से कहलाते हैं –

"अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं । रामविमुख यह अनुचित नाहीं ।।"

लैटिन में एक सुक्ति है – Nil Nisi Bonum । मरे के लिए उसके गुणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना चाहिए । दिवंगत की शत्रु भी केवल प्रशंसा करता है। शत्रु की बात छोड़िए, कोई स्त्री अपने दिवंगत पति के प्रति ऐसा अभद्र वाक्य नहीं कहेगी– "अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को गीदड़ खायेंगे ।" पत्नी के अपने पति के प्रति ऐसे अपशब्द न केवल अस्वाभाविक हैं, अपितु सुरुचि विरुद्ध हैं।

तुलसीदास जी भूल गए कि रावण अभिशप्त व्यक्ति[२] था । उसकी राक्षस-योनि से मुक्ति, राम के हाथों मरने से ही हो सकती थी । वह इस बात को भली प्रकार जानता था। इसलिये उसने सीता का अपहरण किया और राम से बैर बढ़ाया :

"सुर रंजन भंजन महि भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रबु सर प्रान तजें भव तरऊँ ।।
होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ।।" [३]

मामा मारीच, भाई विभीषण, मंत्री माल्वंत, दूत शुक, पत्नी मन्दोदरी[४], पुत्र प्रहस्त, भाई कुम्भकर्ण, राक्षस कालनेमि ने क्रमशः रावण को समझाया कि वह राम को साधारण पुरुष न समझे । राम स्वयं भगवान हैं, उनसे वैर करना उसके हित में नहीं। यह बात रावण भली प्रकार जानता था । हितैषियों के कहने से यदि वह सीता को लौटा देता, तो उसके लक्ष्य की पूर्ति कैसे होती । सीता उसकी मृत्यु (मुक्ति) का निमित्त कारण थीं । सीता को उसने कभी बुरी नज़र से नहीं देखा, उनके प्रति उसने कोई दुर्व्यवहार नहीं किया । उन्हें अपने रनिवास तक में भी नहीं रखा । अपने से दूर अशोक वाटिका में रखा । रावण के चरित्र के इस पहलू को हरिकृष्ण "प्रेमी" ने उजागर किया है ।

"जिस रावण ने, तुम्हें पास पाकर भी, छुआ नहीं जीवन भर
क्यों कलंक की छाप लगी है, ऐसे उच्च हृदय मानव पर?

---

१ देखिए , अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ७०७-०८ ।

२ देखिए प्रतापभानु की कथा, भाग १, बालकाण्ड, पृष्ठ १९६-२१७ विशेषकर अन्तिम पृष्ठ २१७ ।

३ अरण्यकाण्ड दोहा २२ के नीचे की चौपाई, पृष्ठ ७४०

४ मन्दोदरी ने तो रावणको बार-बार समझाया । देखिए क्रमशः पृष्ठ ८६५, ९०५, ९१५ और ९३९।

प्राण ! तुम्हारे चरणों पर मैं,
दस-दस शीश झुकाने आया ।
तुम काटे जाओ, मैं उनको,
एक-एक कटवाने आया ।।

मैंने वेद पढ़े हैं सारे, मैंने तत्व विश्व का जाना ।
पाकर भी अमरत्व, मुझे प्रिय! प्रेम-युद्ध में जान गवाँना ।।
जो इतिहास लिखें, वे लिख लें– 'रावण का आनन काला था' ।।
प्रेमी तो यह समझ सकेंगे, उसके उर में उजियाला था ।

चढ़ा दिया छवि पर जीवन को–
उसका जीवन क्या छोटा था?
छुआ नहीं जिसने सीता को,
उसमें बोलो क्या खोटा था?''

छं०– जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं ।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं ।।
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं ।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं ।।

दो०– अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन ।
जोहि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान ।। १०४ ।।

भावार्थ– दैत्य रूपीवन को जलाने के लिए अग्निस्वरूप साक्षात् श्री हरि को तुमने मनुष्य करके जाना । शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन करुणामय भगवान को हे प्रियतम! तुमने नहीं भजा । तुम्हारा यह शरीर जन्म से ही दूसरों से द्रोह करने में तत्पर तथा पापसमूहमय रहा । इतने पर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्री राम जी ने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ । अहह (नाथ)श्री रघुनाथ जी के समान कृपा का समुद्र दूसरा कोई नहीं है, जिन भगवान ने तुमको वह गति दी जो योगि समाज को भी दुर्लभ है ।''

मंदोदरी बचन सुनि काना । सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना ।।
अज महेस नारद सनकादी । जे मुनिबर परमारथबादी ।।
भरि लोचन रघुपतिहि निहारी । प्रेम मगन सब भए सुखारी ।।
रुदन करत देखीं सब नारी । गयउ बिभीषनु मन दुख भारी ।।

बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा । तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा ॥
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो । बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो ॥
कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका । करहु क्रिया परिहरि सब सोका ॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी । बिधिवत देस काल जियँ जानी ॥

भावार्थ– मंदोदरी के वचन कानों से सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभी ने सुख माना । ब्रह्मा, महादेव, नारद और सनकादि, तथा और भी जो परमार्थवादी (परमात्मा के तत्व को जानने और कहने वाले) श्रेष्ठ मुनि थे, वे सभी श्री रघुनाथ जी को नेत्र भर निरखकर प्रेम मग्न हो गये और अत्यन्त सुखी हुए । अपने घर की सब स्त्रियों को रोती देखकर, विभीषण जी के मन में बड़ा भारी दु:ख हुआ और वे उनके पास गये । उन्होंने भाई की दशा देखकर दु:ख किया । तब प्रभु श्री रामजी ने छोटे भाई को आज्ञा दी कि जाकर विभीषण को धैर्य बँधाओ । लक्ष्मण जी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया । तब विभीषण प्रभु के पास लौट आये । प्रभु ने उनको कृपापूर्ण दृष्टि से देखा (और कहा–) ''सब शोक त्याग कर रावण की अन्त्येष्टि क्रिया करो।'' प्रभु की आज्ञा मानकर और हृदय में देश और काल का विचार करके विभीषण जी ने विधिपूर्वक सब क्रिया की ।

दो०–मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि ।। १०५ ।।

भावार्थ– मन्दोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे (रावण को) तिलांजलि देकर, मन में श्री रघुनाथ जी के गुणसमूहों का वर्णन करती हुई, महल को गयीं।

आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो । कृपासिंधु तब अनुज बोलायो ॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला । जामवंत मारुति नयसीला ॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा । सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा ॥
पिता बचन मैं नगर न आवउँ । आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ ॥
तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना । कीन्ही जाइ तिलक की रचना ॥
सादर सिंहासन बैठारी । तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ॥
जोरि पानि सबहीं सिर नाए । सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए ॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे । कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे ॥

भावार्थ– तब क्रिया कर्म करने के बाद विभीषण ने आकर पन: सिर नवाया । तब कृपा के समुद्र श्री राम जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को बुलाया । श्री रघुनाथ जी ने कहा कि ''तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नीला, जाम्बवान् और मारुति सब नीतिनिपुण लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो । पिता जी के वचनों

के कारण मैं नगर में नहीं आ सकता। पर अपने ही समान वानर और छोटे भाई को भेजता हूँ।" प्रभु के वचन सुनकर वानर तुरन्त चले और उन्होंने जाकर राजतिलक की सारी व्यवस्था कर दी। आदर के साथ विभीषण को सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की। सभी ने हाथ जोड़कर उनको सिर नवाये। तदनन्तर विभीषण जी सहित सब प्रभु के पास आये। तब श्री रघुबीर ने वानरों को बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सब को सुखी किया।

छं०— किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

दो०— प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥ १०६॥

भावार्थ— भगवान ने अमृत के समान यह वाणी कहकर सब को सुखी किया कि "तुम्हारे ही बल से यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषण ने राज्य पाया। इसके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकों में नित्य नया बना रहेगा। जो लोग मेरे सहित तुम्हारी शुभकीर्ति को परम प्रेम के साथ गायेंगे, वे बिना ही परिश्रम इस अपार संसार सागर का पार पा जायेंगे।" प्रभु के वचन कानों से सुनकर वानर-समूह तृप्त नहीं होते। वे सब बार-बार सिर नवाते हैं और चरण कमलों को पकड़ते हैं।

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥
तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥
दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥

भावार्थ— फिर प्रभु ने हनुमान जी को बुला लिया। भगवान ने कहा— "तुम लंका आओ। जानकी को सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल समाचार लेकर तुम चले आओ। तब हनुमान जी नगर में आये। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी (उनके सत्कार के लिये) दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान जी की पूजा की और फिर श्री जानकी जी को दिखला

दिया। हनुमान जी ने (सीता को) दूर से ही प्रणाम किया । जानकी जी ने पहचान लिया कि यह वही श्री रघुनाथ जी का दूत है (और पूछा–)"हे तात! कहो, कृपा के धाम मेरे प्रभु, छोटे भाई और वानरों की सेना सहित, कुशल से तो हैं।" (हनुमान ने कहा–) "हे माता! कोसलपति श्री राम जी सब प्रकार से सकुशल हैं । उन्होंने संग्राम में दस सिर वाले रावण को जीत लिया है और विभीषण ने अचल राज्य प्राप्त किया है ।" हनुमान जी के वचन सुनकर सीता जी के हृदय में हर्ष छा गया ।

छं०– अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा ।।
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं ।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं ।।

दो०– सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत ।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत ।। १०७ ।।

भावार्थ– श्री जानकी जी के हृदय में अत्यन्त हर्ष हुआ । उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनन्दाश्रुओं का)जल छा गया । वे बार-बार कहती हैं– "हे हनुमान् ! मैं तुझे क्या दूँ ? इस वाणी(समाचार) के समान तीनो लोको मे कुछ भी नहीं है ।" (हनुमान जी ने कहा–) "हे माता! सुनिये, मैंने आज निःसन्देह सारे जगत का राज्य पा लिया, जो मैं रण में शत्रु सेना को जीतकर भाई सहित निर्विकार श्री रामजी को देख रहा हूँ ।" (जानकी जी ने कहा–) "हे पुत्र! सुन, समस्त सद्‌गुण तेरे हृदय में बसे हैं और हे हनुमान! शेष (लक्ष्मण जी)सहित कोसलपति प्रभु तुझ पर सदा प्रसन्न रहें ।

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता । देखौं नयन स्याम मृदु गाता ।।
तब हनुमान राम पहिं जाई । जनकसुता कै कुसल सुनाई ।।
सुनि संदेसु भानुकुल भूषन । बोलि लिए जुबराज बिभीषन ।।
मारुतसुत के संग सिधावहु । सादर जनकसुतहि लै आवहु ।।
तुरतहिं सकल गए जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता ।।
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो । तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो ।।
बहु प्रकार भूषन पहिराए । सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए ।।
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ।।
बेतपानि रच्छक चहु पासा । चले सकलमन परम हुलासा ।।
देखन भालु कीस सब आए । रच्छक कोपि निवारन धाए ।।
कह रघुबीर कहा मम मानहु । सीतहि सखा पयादें आनहु ।।

देखहुँ कपि जननी की नाईं । बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं ।।
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे । नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ।।
सीता प्रथम अनल महुँ राखी । प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ।।

भावार्थ– हे तात! अब तुम वही उपाय करो जिससे मैं इन नेत्रों से प्रभु के कोमल श्याम शरीर के दर्शन करूँ ।'' तब श्री रामचन्द्र जी के पास जाकर हनुमान जी ने जानकी जी का कुशल समाचार सुनाया। सूर्य कुल भूषण श्री राम जी ने सन्देश सुनकर युवराज अंगद और विभीषण को बुला लिया । (और कहा–)''पवनपुत्र हनुमान के साथ जाओ और जानकी जी को आदर के साथ ले आओ ।'' वे सब तुरन्त ही वहाँ गये जहाँ सीता जी थीं । सब की सब राक्षसियाँ नम्रता पूर्वक उनकी सेवा कर रही थीं । विभीषण जी ने शीघ्र ही उन लोगों को समझा दिया । उन्होंने बहुत प्रकार से सीता जी को स्नान कराया। बहुत प्रकार से गहने पहनाये, और फिर वे एक सुन्दर पालकी सजाकर ले आये । सीता जी प्रसन्न होकर सुख के धाम प्रियतम श्री राम जी का स्मरण करके उस पर हर्ष के साथ चढ़ीं । चारों ओर हाथों में छड़ी लिये रक्षक चले । सब के मन में परम उल्लास (उमंग) है । रीछ-वानर सब दर्शन करने के लिये आये । तब रक्षक क्रोध करके उनको रोकने दौड़े । श्री रघुबीर ने कहा– ''हे मित्र! मेरा कहना मानो और सीता को पैदल ले आओ जिससे वानर उनको माता की तरह देखें ।'' गोसाई श्री राम जी ने हँसकर ऐसा कहा । प्रभु के वचन सुनकर रीछ-वानर हर्षित हो गये । आकाश से देवताओं ने बहुत से फूल बरसाये । सीता जी (के असली स्वरूप)को पहले अग्नि में रक्खा था । अब भीतर के साक्षी भगवान उनको प्रकट करना चाहते हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में चौदह सम पंक्तियाँ हैं । अन्तिम चौपाई बहुत मार्मिक है । इसके दो पदों में दो विभिन्न भाव प्रदर्शित किए गए हैं । जब लोग जानकी जी को पालकी में बिठा कर अशोक वाटिका से राम के पास ले जा रहे थे, तब जगज्जननी के दर्शन के लिए रीछ-वानरों ने पालकी को घेर लिया । रक्षक पालकी के चारों ओर की भीड़ को छिन्न-भिन्न करने लगे । रघुबीर ने रक्षकों को तुरन्त मना किया और आदेश दिया कि जानकी पालकी से उतर कर पैदल आयें ताकि रीछ-वानरों का समुदाय अपनी माता को भली प्रकार देख सके । कैसा सुन्दर भाव है ।

दूसरे पद में बिल्कुल दूसरी ही घटना का संकेत हैं । अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ७४१ पर कहा गया है ।

''तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लगि करौं निसाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ।।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ।।''

अरण्यकाण्ड में यह जो घटना हुई, इसका समापन करते हुए तुलसीदास जी यहाँ कहते हैं--

"सीता प्रथम अनल महुँ राखी । प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ।।"

जिस सीता का राम ने अग्नि में प्रवेश करा दिया था, उस असली सीता को भगवान अब जनता के सामने प्रकट करने जा रहे हैं ।

दो०— तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद ।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करैं बिषाद ।। १०८ ।।

भावार्थ— इसी कारण करुणा के भण्डार श्री राम जी ने लीला से कुछ कड़े वचन कहे, जिन्हें सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं ।

टिप्पणी— सीता को अग्नि-प्रवेश के लिये प्रचोदित करने हेतु राम ने कुछ अप्रिय वचन बोले । यह कटु वचन क्या थे? इसके लिये देखिए अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ७४४ ।

अपने पात्रों की गरिमा बनाए रखने के लिए, तुलसीदास ने उनके मुख से कभी भी अभद्र शब्द नहीं कहलाए । केवल संकेत करके, आगे बढ़ गए हैं । देखिए—

१. सिय निंदक--पृष्ठ ४०-४२।

२. पुनि कछु लखन कही कटुबानी । प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ।। पृष्ठ ४८१।

३. मरम वचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ।। पृष्ठ ७५०।

४. तेहि कारण करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद । देखिए ऊपर दोहा १०८ ।

प्रभु के बचन सीस धरि सीता । बोली मन क्रम बचन पुनीता ।।
लछिमन होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ।।
सुनि लछिमन सीता कै बानी । बिरह बिबेक धरम निति सानी ।।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ । प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ।।
देखि राम रुख लछिमन धाए । पावक प्रगटि काठ बहु लाए ।।
पावक प्रबल देखि बैदेही । हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही ।।
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं । तजि रघुबीर आन गति नाहीं ।।
तौ कृसानु सब कै गति जाना । मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना ।।

भावार्थ— प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और क्रम से पवित्र सीता जी बोलीं-- "हे लक्ष्मण! तुम मेरे धर्म के नेगी (धर्माचरण में सहायक) बनो और तुरन्त आग तैयार करो । श्री सीता जी की विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी हुई वाणी सुनकर

लक्ष्मण जी के नेत्रों के (विषाद के आँसुओं का)जल भर आया। वे दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे। वे भी प्रभु से कुछ नहीं कह सकते। फिर श्री राम जी का रुख देखकर लक्ष्मण जी दौड़े और आग तैयार करके बहुत-सी लकड़ी ले आये। अग्नि को खूब बढ़ी हुई देखकर जानकी के हृदय में हर्ष हुआ। उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ। (सीता जी ने कहा–) "यदि मन, वचन और कर्म से मेरे हृदय में श्री रघुबीर को छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसी का आश्रय)नहीं है, तो अग्नि देव जो सब के मन की गति जानते हैं, (मेरे भी मन की गति जानकर)मेरे लिये चन्दन समान हो जाँयें।

छं०– श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली।।
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।। १।।

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो।।
सो राम बाम बिभाग राजति रूचित अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली।। २।।

भावार्थ– प्रभु श्री राम जी का स्मरण करके, और जिनके चरण महादेव जी के द्वारा वन्दित हैं तथा जिनमें सीता जी की अत्यन्त विशुद्ध प्रीति है, उन कोसलपति की जय बोलकर जानकी जी ने चन्दन के समान शीतल हुई अग्नि में प्रवेश किया। प्रतिबिम्ब (सीता जी की छाया मूर्ति)और उनके लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्नि में जल गये। प्रभु के इन चरित्रों को किसी ने नहीं जाना। देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाश में खड़े देखते हैं। तब अग्नि ने शरीर धारण करके वेदों और जगत प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीता जी)का हाथ पकड़ उन्हें श्री राम जी को वैसे ही समर्पित किया, जैसे क्षीरसाग्रर ने विष्णु भगवान को लक्ष्मी समर्पित की थी। वे सीता जी श्री रामचन्द्र जी के वाम भाग में विराजित हुई। उनकी उत्तम शोभा अत्यन्त ही सुन्दर है। मानो नये खिले हुए नीले कमल के पास सोने की कली सुशोभित हो।

टिप्पणी– अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ७४१ पर बताया गया है कि राम ने सीता से कहा कि जब तक मैं राक्षसों का नाश करूं, तुम अग्नि मे निवास करो। अतएव सीता अग्नि में समा गईं और अपना प्रतिबिम्ब पृथ्वी पर छोड़ गईं। यह बात राम और सीता तक सीमित रही, क्योंकि उस समय लक्ष्मण जंगल में कन्द, मूल फल लेने गए थे।

रावण के मरने के बाद और समस्त राक्षस-जाति का संहार होने के बाद, असली सीता का अग्नि से निकलना आवश्यक था। ऊपर के छंद में इसी बात का वर्णन है।

जब सीता ने अग्नि में प्रवेश किया तब वह उनके लिये चन्दन (श्रीखण्ड)के समान शीतल हो गई। अग्नि में सीता का प्रतिबिम्ब भस्म हो गया। जन मानस के लिए सीता की अग्नि परीक्षा हो गई और उनका सतीत्व सिद्ध हो गया। वास्तव में अग्नि देव स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने असली सीता, जो उनके पास इतने दिन धरोहर रखी थी, राम को लौटा दी।

अग्निदेव द्वारा सीता का राम को समर्पित करना ऐसा था जैसा अमृत मंथन के समय क्षीर सागर का विष्णुभगवान को लक्ष्मी समर्पित करना। सीता राम के वामांग में ऐसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे नील कमल के पास सोने की कली।

सीता की अग्नि-परीक्षा का केशवदास ने अपनी ''राम-चन्द्रिका'' में बहुत सुन्दर वर्णन किया है, देखिए पृष्ठ ३०।

दो०— बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान ।। १०९ (क)।।
जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार ।। १०९ (ख)।।

भावार्थ— देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। आकाश में डंके बजने लगे। किन्नर गाने लगे। विमानों पर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगीं। श्री जानकी जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी की अपरिमित और अपार शोभा देखकर रीछ-वानर हर्षित हो गये और सुख के सार श्री रघुनाथ जी की जय बोलने लगे।

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई।।
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी।।
दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया।।
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी।।
तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी।।
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय।।
मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी।।
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो।।
यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही।।
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा।।
हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी।।
भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।।

भावार्थ– तब श्री रघुनाथ जी की आज्ञा पाकर इन्द्र का सारथी मातलि चरणों में सिर नवाकर(रथ लेकर) चला गया। तदनन्तर सदा के स्वार्थी देवता आये। वे ऐसे वचन कह रहे हैं मानो बड़े परमार्थी हों – "हे दीनबन्धु ! हे दयालु रघुराज! हे परमदेव ! आपने देवताओं पर बड़ी दया की। विश्व के द्रोह में तत्पर यह दुष्ट कामी और कुमार्ग पर चलने वाला रावण अपने ही पाप से नष्ट हो गया। आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, स्वभाव से उदासीन (शत्रु-मित्र भाव रहित), अखण्ड, निर्गुण (मायिक गुणों से रहित), अजन्मा, निष्पाप, निर्विकार, अजेय अमोघशक्ति (जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती)और दयामय हैं। आपने मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम के शरीर धारण किये। हे नाथ! जब-जब देवताओं ने दुःख पाया, तब-तब अनेकों शरीर धारण करके आपने ही उनका दुःख नाश किया। यह दुष्ट मलिन हृदय, देवताओं का नित्य शत्रु, काम, लोभ और मद में पूर्णतः लिप्त तथा अत्यन्त क्रोधी था। ऐसे अधमों के शिरोमणि ने भी आपका परमपद पा लिया। इस बात का हमारे मन में आश्चर्य हुआ। हम देवता श्रेष्ठ अधिकारी होकर भी स्वार्थ परायण हो आपकी भक्ति को भुलाकर निरन्तर भव सागर के प्रवाह में (जन्म-मृत्यु के चक्र में)पड़े हैं। अब हे प्रभो! हम आपकी शरण में आ गये हैं। हमारी रक्षा कीजिये।"

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में बारह सम पंक्तियाँ हैं। इसमें चार पृथक बातें कही गई हैं–

१. राम की सहायता के लिये इन्द्र ने अपना रथ भेजा था (देखिए पृष्ठ१००१)। रावण के मारे जाने के बाद राम को रथ की कोई आवश्यकता नहीं रही। अतएव राम की आज्ञा पाकर रथ का सारथी मातलि रथ को वापस देवलोक ले गया।

२. देवता राम के गुण गिनाते हुए कहते हैं कि वह समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, उदासीन, अखण्ड, निर्गुण, अजन्मा, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघशक्ति और दयामय हैं।

३. देवताओं ने राम से पहले विष्णु के छः अवतार गिनाए – मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम। देवताओं का भ्रम था कि भगवान ने उनके दुःख हरने के लिए अवतार लिए. भगवान ने तो अपने भक्तों की रक्षा के लिए अवतार लिया। (देखिए पृष्ठ ३४)।

४. देवताओं को आश्चर्य हो रहा है कि रावण जैसे द्रोही, दुष्ट, कामी और कुमार्गी को भगवान ने अपना परम पद दिया। इसमें आश्चर्य की क्या बात? पृष्ठ १९६ पर स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रतापभानु धर्मधुरंधर, नीतिज्ञ, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान राजा था। ब्राह्मणों के श्राप-वश उसने राक्षस योनि में जन्म लिया। राम के हाथों उसकी राक्षस योनि से मुक्ति होनी ही थी।

दो०– करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि ।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि ।। ११० ।।

भावार्थ– विनती करके देवता और सिद्ध सब जहाँ के तहाँ हाथ जोड़े खड़े रहे । तब अत्यन्त प्रेम से पुलकित शरीर होकर ब्रह्मा जी स्तुति करने लगे।

छं०– जय राम सदा सुखधाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे ।।
भव बारन दारन सिंह प्रभो । गुन सागर नागर नाथ बिभो ।।
तन काम अनेक अनूप छबी । गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी ।।
जसु पावन रावन नाग महा । खगनाथ जथा करि कोप गहा ।।

जन रंजन भंजन सोक भयं । गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं ।।
अवतार उदार अपार गुनं । महि भार बिभंजन ग्यानघनं ।।
अज ब्यापकमेकमनादि सदा । करुनाकर राम नमामि मुदा ।।
रघुबंस बिभूषन दूषन हा । कृत भूप बिभीषन दीन रहा ।।

गुन ग्यान निधान अमान अजं । नित राम नमामि बिभुं बिरजं ।।
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं । खल बृंद निकंद महा कुसलं ।।
बिनु कारन दीन दयाल हितं । छबि धाम नमामि रमा सहितं ।।
भव तारन कारन काज परं । मन संभव दारुन दोष हरं ।।

सर चाप मनोहर त्रोन धरं । जलजारुन लोचन भूपबरं ।।
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं । मद मार मुधा ममता समनं ।।
अनवद्य अखंड न गोचर गो । सबरूप सदा सब होइ न गो ।।
इति बेद बदंति न दंतकथा । रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा ।।

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए । निरखंति तवानन सादर ए ।।
धिग जीवन देव सरीर हरे । तव भक्ति बिना भव भूलि परे ।।
अब दीनदयाल दया करिऐ । मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ ।।
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिऐ । दुख सो सुख मानि सुखी चरिऐ।।

खल खंडन मंडनरम्य छमा । पद पंकज सेवित संभु उमा ।।
नृप नायक दे बरदानमिदं । चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं ।।

भावार्थ– हे नित्य सुखधाम और (दुःखों को हरने वाले)हरि! हे धनुष बाम धारण किये हुए रघुनाथ जी! आपकी जय हो। हे प्रभो! आप भव (जन्म-मरण) रूपी हाथी को विदीर्ण करने के लिए सिंह के समान हैं। हे नाथ! हे सर्वव्यापक! आप गुणों के समुद्र और परम चतुर हैं। आपके शरीर की अनेकों कामदेवों के समान, परन्तु अनुपम छवि है। सिद्ध, मुनीश्वर और कवि आपके गुण गाते रहते हैं। आपका यश पवित्र है। आपने रावण रूपी महासर्प को गरुड़ की तरह क्रोध करके पकड़ लिया। हे प्रभो ! आप सेवकों को आनन्द देने वाले, शोक और भय का नाश करने वाले, सदा क्रोधरहित और नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। आपका अवतार श्रेष्ठ, अपार दिव्य गुणों वाला, पृथ्वी का भार उतारने वाला और ज्ञान का समूह है। (किन्तु अवतार लेने पर भी) आप नित्य, अजन्मा, व्यापक, एक (अद्वितीय)और अनादि हैं। हे करुणा की खान श्री रामजी ! मैं आपको बड़े ही हर्ष के साथ नमस्कार करता हूँ। हे रघुकुल के आभूषण! हे दूषण राक्षस को मारने वाले तथा समस्त दोषों को हरने वाले!

विभीषण दीन था, उसे आपने (लंका का) राजा बना दिया। हे गुण और ज्ञान के भण्डार ! हे मानरहित! हे अजन्मा, व्यापक और मायिक विकारों से रहित श्री राम! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ। आप के भुजदण्डों का प्रताप और बल प्रचण्ड है। दुष्ट समूह के नाश करने में आप परम निपुण हैं। हे बिना ही कारण दीनों पर दया तथा उनका हित करने वाले और शोभा के धाम! मैं श्री जानकी जी सहित आपको नमस्कार करता हूँ। आप भवसागर से तारने वाले हैं, कल्याण रूपा प्रकृति और कार्यरूप जगत् दोनों से परे हैं और मन से उत्पन्न होने वाले कठिन दोषों को हरने वाले हैं। आप मनोहर बाण, धनुष और तरकस धारण करने वाले हैं। लाल कमल के समान आपके नेत्र हैं। आप राजाओं में श्रेष्ठ, सुख के मन्दिर, सुन्दर, श्री (लक्ष्मी जी)के वल्लभ तथा मद (अहंकार), काम और झूठी ममता के नाश करने वाले हैं। आप अनिन्द्य या दोषरहित हैं , अखण्ड हैं, इन्द्रियों के विषय नहीं हैं। सदा स्वरूप होते हुए भी आप वह सब कभी हुए ही नहीं ऐसा वेद कहते हैं। कोई दन्तकथा (कोरी कल्पना) नहीं है। जैसे सूर्य का प्रकाश अलग-अलग है और अलग नहीं भी है, वैसे ही आप संसार से भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही हैं। हे विभो ! वे सब वानर कृतार्थरूप हैं, जो आदरपूर्वक ये आपका मुख देख रहे हैं। हे हरे ! हमारे अमर जीवन और देव (दिव्य) शरीर को धिक्कार है, जो हम आपकी भक्ति से रहित हुए संसार में (सांसरिक विषयों में) भूले पड़े हैं। हे दीनदयाल ! अब दया कीजिये और मेरी उस विभेद उत्पन्न करने वाली बुद्धि को हर लीजिये, जिससे मैं विपरीत कर्म करता हूँ और जो दुःख है, उसे सुख मानकर आनन्द से विचरता हूँ। आप दुष्टों का खण्डन करने वाले और पृथ्वी के रमणीय आभूषण हैं। आपके चरणकमल श्री शिव-पार्वती जी द्वारा सेवित हैं। हे राजाओं के महाराज ! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके चरण कमलों में मेरा कल्याण दायक अनन्य प्रेम हो।

टिप्पणी– ऊपर के छन्द में ब्रह्मा ने भगवान की स्तुति की है। इस स्तुति में भगवान के निर्गुण और सगुण–दोनों रूपों की महिमा गाई है। इस प्रकार की "मानस" में सात स्तुतियाँ और हैं। आठों स्तुतियों की सूची नीचे दी गई है :-

काण्ड	पृष्ठ	स्तुतिकर्ता	छंद
बालकाण्ड	२२६	ब्रह्मा	मात्रिक चवपैया
अरण्यकाण्ड	७०५	अत्रि ऋषि	वर्णिक प्रमाणिका
अरण्यकाण्ड	७५९	जटायु	मात्रिक हरिगीतिका
लंकाकाण्ड	१०३४	ब्रह्मा	वर्णिक तोटक
लंकाकाण्ड	१०३७	इन्द्र	मात्रिक तोमर, हरिगितिका
लंकाकाण्ड	१०४१	शिव	मात्रिक पादाकुलक
उत्तरकाण्ड	१०६९	वेद	मात्रिक हरिगीतिका
उत्तरकाण्ड	१०७२	शिव	वर्णिक तोटक

दोहा, सोरठा, चौपाई मिलाकर, तुलसीदास जी ने "मानस" में २८ विभिन्न छंदो का प्रयोग किया है।

दो०—बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात॥ १११॥

भावार्थ— इस प्रकार ब्रह्मा जी ने अत्यन्त प्रेम-पुलकित शरीर से विनती की। शोभा के समुद्र श्री राम जी के दर्शन करते करते उनके नेत्र तृप्त नहीं होते।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए॥
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा॥
तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना॥
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा॥

भावार्थ— उसी समय दशरथ जी वहाँ आये। पुत्र (श्री राम जी) को देखकर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। छोटे भाई लक्ष्मण सहित प्रभु ने उनकी वन्दना की और पिता ने उनको आशीर्वाद दिया। (श्री रामजी ने कहा—) "हे तात! यह सब आपके पुण्यों

प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी। नेत्रों में जल छा गया और रोमावली खड़ी हो गई। श्री रघुनाथ जी ने पहले के (जीवनकाल के)प्रेम को विचार कर, पिता जी की ओर देखकर उन्हें अपने स्वरूप का दृढ़ ज्ञान करा दिया। (शिव जी ने कहा–) "हे उमा! दशरथ जी ने भेद-भक्ति में अपना मन लगाया था इसी से उन्होंने कैवल्यमोक्ष नहीं पाया। (मायारहित सच्चिदानन्दमय दिव्यगुणयुक्त) सगुण स्वरूप की उपासना करने वाले भक्त, इस प्रकार का मोक्ष लेते भी नहीं। उनको श्री राम जी अपनी भक्ति देते हैं। प्रभु को इष्टबुद्धि से बार-बार प्रणाम करके दशरथ जी हर्षित होकर देवलोक को चले गये।"

दो०– अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस ।। ११२ ।।

भावार्थ– छोटे भाई लक्ष्मण जी और जानकी जी सहित परम कुशल प्रभु श्री कोसलाधीश की शोभा देखकर सुरपति इन्द्र मन में हर्षित होकर स्तुति करने लगे।

छं०– जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम ।।
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप ।।
जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि ।।
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल सनाथ ।।

जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार ।।
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल ।।
लकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब ।।
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब कें लाग ।।

परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट ।।
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल ।।
मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान ।।
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज ।।

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव ।।
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप ।।
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत ।।
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास ।।

छं०— दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं ।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं ।।
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलितबलं ।
ब्रह्मादि संकर सेब्य राम नमामि करुना कोमलं ।।

भावार्थ— शोभा के धाम, शरणागत को विश्राम देने वाले, श्रेष्ठ तरकस, धनुष, बाण धारण किये हुए, प्रबल प्रतापी भुजदण्डों वाले श्री रामचन्द्र जी की जय हो। हे खरदूषण के शत्रु और राक्षसों की सेना को मर्दन करने वाले! आपकी जय हो। हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा, जिससे सब देवता सनाथ (सुरक्षित) हो गये। हे भूमि का भार हरने वाले! हे अपार श्रेष्ठ महिमावाले! आप की जय हो। हे रावण के शत्रु! हे कृपालु! आपकी जय हो। आपने राक्षसों को बेहाल (तहस-नहस) कर दिया। लंकापति रावण को अपने बल का बहुत घमण्ड था। उसने देवता और गन्धर्व सभी को अपने वश में कर लिया था। और वह मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी और नाग आदि सभी के हठपूर्वक (हाथ धोकर) पीछे पड़ गया था। वह परद्रोह परायण और अत्यन्त दुष्ट था। उस पापी ने वैसा ही फल पाया। अब, हे दीनों पर दया करने वाले! हे कमल के समान विशाल नेत्रों वाले! सुनिये। मुझे अत्यन्त अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है। पर अब प्रभु (आप) के चरणकमलों के दर्शन करने से दुःख समूह का देने वाला मेरा वह अभिमान जाता रहा। कोई उन निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं, जिन्हें वेद अव्यक्त कहते हैं! परन्तु हे श्री राम जी! मुझे तो आपका यह सगुण कोसलराज स्वरूप ही प्रिय लगता है। श्री जानकी जी और छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित मेरे हृदय में अपना घर बनाइये। हे रमानिवास! मुझे अपना दास समझिये और अपनी भक्ति दीजिये। हे रमानिवास! हे शरणागत के भय को हरने वाले और उसे सब प्रकार का सुख देने वाले! मुझे अपनी भक्ति दीजिये। हे सुख के धाम! हे अनेकों कामदेवों की छविवाले रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्र जी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे देवसमूह को आनन्द देने वाले, जन्म-मृत्यु, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि द्वन्दों के नाश करने वाले मनुष्य शरीर धारी, अतुलनीय बल वाले, ब्रह्मा और शिव आदि से सेवनीय, करूणा से कोमल श्री राम जी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

टिप्पणी— ब्रह्मा के बाद इन्द्र ने राम की स्तुति की। ऊपर की स्तुति दो भागों में है— पहले भाग में तोमर छन्द का प्रयोग किया गया है, और दूसरे भाग में हरिगीतिका छन्द का।

दोनों स्तुतियों के बीच में, दशरथ देवलोक से अपने पुत्र राम का दर्शन करने आये। इस सन्दर्भ में शिवजी पार्वती को समझाते हैं कि ''दशरथ जी ने भेद-भक्ति में अपना मन लगाया था अर्थात् अपने को अपने इष्ट से प्रथक रक्खा था। इसी कारण उन्होंने मोक्ष प्राप्त नहीं किया। सगुण स्वरूप की उपासना करने वाले भक्त मोक्ष प्राप्त करना भी नहीं चाहते,

करने हेतु उनको अपनी भक्ति ही प्रदान करते हैं। जो आनन्द उन्हें अपने इष्ट के ध्यान में रहकर उनके सदगुणों का रसास्वादन कर प्राप्त होता है, वह मोक्ष प्राप्त करने वाले के लिए अति दुर्गम हो जाता है। क्योंकि उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता, यहाँ तक कि उसका सूक्ष्म शरीर भी लुप्त हो जाता है। इस हेतु भक्त मोक्ष चाहता भी नहीं है (देखिए दोहा १११ के नीचे की चौपाई, पृष्ठ १०३६)।

दो०— अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल ।। ११३ ।।

भावार्थ— ''हे कृपालु ! अब मेरी और कृपा करके (कृपादृष्टि से) देखकर आज्ञा दीजिये कि मैं क्या सेवा करूँ।'' इन्द्र के ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयाल श्री राम जी बोले-

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे ।।
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना ।।
सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी ।।
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई। केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई ।।
सुधा बरषि कपि भालु जिआए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए ।।
सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर ।।
रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन ।।
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति कीं ईछा ।।
राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ।।
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पाव न ।।

भावार्थ— ''हे देवराज सुनो ! हमारे वानर-भालू, जिन्हें निशाचरों ने मार डाला है, पृथ्वी पर पड़े हैं। इन्होंने मेरे हित के लिये अपने प्राण त्याग दिये। हे सुजान देवराज ! इन सब को जिला दो।'' (काकभुशुण्डि जी कहते हैं–) ''हे गरुण ! सुनिये। प्रभु के ये वचन अत्यन्त गहन (गूढ़) हैं। ज्ञानी मुनि ही इन्हें जान सकते हैं। प्रभु श्री राम जी त्रिलोक में किसी को मारकर जिला सकते हैं। यहाँ तो केवल उन्होंने इन्द्र को बड़ाई दी है।'' इन्द्र ने अमृत बरसाकर वानर भालुओं को जिला दिया। सब हर्षित होकर उठे और प्रभु के पास आये। अमृत की वर्षा दोनों ही दलों पर हुई। पर रीछ वानर ही जीवित हुए, राक्षस नहीं। क्योंकि राक्षसों के मन तो मरते समय रामाकार हो गये थे। अतः वे मुक्त हो गये, उनके भव-बन्धन छूट गये। किन्तु वानर और भालू तो सब देवांश (भगवान की लीला के परिकर) थे। इसलिये ये सब श्री रघुनाथ जी की इच्छा से जीवित हो गये। श्री रामचन्द्र जी के समान दीनों का हित करने वाला कौन है ? जिन्होंने सारे राक्षसों को मुक्त कर दिया। दुष्ट, पापों के घर और कामी रावण ने भी वह गति पायी जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। यह लंकाकाण्ड की सबसे मार्मिक और गूढ़ चौपाई है। भगवान की स्तुति करने के बाद, इन्द्र ने राम से पूछा कि वह उनकी क्या सेवा कर सकता है? राम ने तुरन्त उत्तर दिया "मेरे लिये रण में जितने कपि और भालुओं ने प्राण दिए हैं, उन सब को तुम जिला दो।" तुलसीदास जी कहते हैं कि "भगवान त्रिलोक में किसी को भी मार कर जिला सकते हैं। वास्तव में उन्होंने बालि के सामने प्रस्ताव रक्खा था कि यदि वह जीवित रहना चाहता है तो वे उसे जीवन-दान दे सकते हैं।[१] वह चाहते तो समस्त भालुओं और बन्दरों को पुनः स्वयं जीवित कर सकते थे। पर इसका श्रेय उन्होंने इन्द्र को दिया।

इन्द्र ने मरे हुए बन्दर, भालू और राक्षसों के ऊपर समान रूप से सुधावृष्टि की। परन्तु उस वृष्टि से भालू और कपि तो जी उठे, परन्तु राक्षस नहीं–

"सुधावृष्टि भे दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।।"

अमृत का स्वाभाविक गुण है जिलाना। राक्षसों पर अमृत पड़ने पर भी उनके न जीवित होने से स्वभावविपर्ययरूपी दोष आता है। इसका समाधान तुलसीदास जी आगे की पंक्तियों में करते हैं–

"सुर आंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति की इच्छा।।"

रघुनाथ जी की इच्छा में विष और अमृत दोनों ही बसते हैं। अतः जैसी प्रभु की इच्छा थी वैसा ही अमृत ने किया। जहाँ-जहाँ से वानर-रीछ आये, उनका पुत्र-दारादि से वियोग हुआ, उस दुःख को दूर करने के लिए श्री राम जी की इच्छा यही थी कि समस्त भालू-कपि जियें और घर जाकर अपने-अपने सम्बन्धियों से मिलें।

ऊपर की पंक्ति में तुलसीदास जी ने रीछ और वानरों के जी उठने का एक और कारण बताया है। वानर देवांश थे। अतः वे अपने-अपने अंशियों में अटक गये थे, उनको अमृत फेर लाया। वानर देवांश कैसे थे? इसको समझने के लिए बालकाण्ड का दोहा १८७ देखिए–

"निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाई।।"[२]

अर्थात्, देवताओं को यही सिखाकर कि वानरों का शरीर धर-धर कर तुम लोग पृथ्वी पर जाकर भगवान के चरणों की सेवा करो, ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये।

राक्षस क्यों नहीं जीवित हुए, इसका कारण तुलसीदास जी दूसरी पंक्ति में बताते हैं–

---

१ "अचल करौं तनु राखहु प्राना।", किष्किंधा काण्ड, पृष्ठ ७९७।

२ देखिए भाग १, पृष्ठ २२९-३०।

"रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छुटे भव बंधन।।"

श्री राम चन्द्र जी के सम्मुख आते ही राक्षस वैर भाव से राम-राम पुकारते थे। भय और वैर भाव से उन्हें सर्वत्र राम ही दिखते थे। मरते समय उन्होंने रामनाम उच्चारण किया। अतः वह मुक्त हो गये। राक्षसों के मन राममय हो जाने से उन्हें परम पद की प्राप्ति हुई, जहाँ से अमृत को लौटा लाने की शक्ति नहीं है। कुछ टीकाकारों का मत है कि निशाचरों के मरने पर भालू उनकी देह पर बालू डाल देते थे[१]। इसी से अमृत का स्पर्श उनकी देह से नहीं हुआ।

दो०—सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान।। ११४ (क)।।
परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि।।११४(ख)।।

भावार्थ— फूलों की वर्षा करके सब देवता सुन्दर विमानों पर चढ़ चढ़ कर चले। तब सुअवसर जानकर सुजान शिव जी प्रभु श्री रामचन्द्र जी के पास आये और परम प्रेम से दोनों हाथ जोड़कर, कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, पुलकित शरीर और गद्‌गद वाणी से त्रिपुरारि शिव जी विनती करने लगे।

छं०—मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन।।
अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर।।
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन।।
विषय मनोरथ पुंज कंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।।

भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर।।
स्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन।।
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।।
मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन।।

भावार्थ— हे रघुकुल के स्वामी! सुन्दर हाथों में श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाण धारण किये हुए आप मेरी रक्षा कीजिये। आप महामोह रूपी मेघसमूह को उड़ाने के लिए प्रचण्ड पवन हैं, संशयरूपी बन के भस्म करने के लिए अग्नि हैं, और देवताओं को आनन्द देने वाले

---

१ देखिए दोहा ८० के नीचे की चौपाई, पृष्ठ ९८९।

हैं। आप निर्गुण, सगुण, दिव्य गुणों के धाम और परम सुन्दर हैं। भ्रमरूपी अन्धकार के नाश के लिए प्रबल प्रतापी सूर्य हैं। काम, क्रोध और मदरूपी हाथियों के वध के लिये सिंह के समान आप इस सेवक के मनरूपी वन में निरन्तर निवास कीजिये। विषय कामनाओं के समूह रूपी कमलवन के नाश के लिये आप प्रबल पाला हैं। आप उदार और मन से परे हैं। भवसागर को मथने के लिये आप मन्दराचल पर्वत हैं। आप हमारे परम भय को दूर कीजिये। हे श्याम सुन्दर शरीर! हे कमलनयन! हे शरणागत के दुःख से छुड़ाने वाले! हे राजा रामचन्द्र जी! आप छोटे भाई लक्ष्मण और जानकी जी सहित निरन्तर मेरे हृदय के अंदर निवास कीजिये। आप मुनियों को आनन्द देने वाले, पृथ्वी मण्डल के भूषण, तुलसीदास के प्रभु और भय का नाश करने वाले हैं।

टिप्पणी– ब्रह्मा और इन्द्र के बाद, शिवजी ने राम की स्तुति की। यह स्तुति पादाकुलक छन्द में है। समस्त स्तुति में राम के विभिन्न गुण बतांए गये हैं। केवल दो स्थानों पर क्रिया का प्रयोग किया गया है। स्तुति संस्कृत के वाक्य से आरम्भ होती है। मामभिरक्षय = माम् + अभिरक्षय। पहला शब्द सर्वनाम प्रथम पुरुष, एकवचन, द्वितिया विभक्ति = मुझको। दूसरा शब्द क्रिया, लोट् विभक्ति, द्वितीय पुरुष, एक वचन = रक्षा करो। मुझको रक्षा करो, अर्थात् मेरी रक्षा करो। अन्तिम छन्द के पहले पद के दूसरे चरण में अवधी भाषा में ''बसहु'' क्रिया का प्रयोग किया गया है। बसहु = निवास कीजिये।

इस छन्द में एक कालदोष भी है। जब शिव जी राम से प्रार्थना करते हैं कि ''मेरे हृदय में वास कीजिये,'' तब वह राम को ''तुलसीदास के प्रभु'' कहकर सम्बोधित करते हैं। जब शिव जी ने राम की यह स्तुति की, तब तक तो तुलसीदास का आविर्भाव ही नहीं हुआ था।

दो०—नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार॥ ११५॥

भावार्थ– हे नाथ! जब अंयोध्यांपुरी में आपका राजतिलक होगा, तब हे कृपासागर! मैं आपकी उदार लीला देखने आ जाऊँगा।''

करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषनु आए॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी॥
सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन जस त्रिभुवन बिस्तार्‌यो॥
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे ॥
देखि कोस मंदिर संपदा । देहु कृपालु कपिन्ह कहुँ मुदा ॥
सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ ॥
सुनत बचन मृदु दीनदयाला । सजल भए द्वौ नयन बिसाला ॥

भावार्थ– जब शिव जी विनती करके चले गये, तब विभीषण जी प्रभु के पास आये, और चरणों में सिर नवाकर कोमल वाणी से कहा– ''हे शारंगधनुष को धारण करने वाले प्रभो ! मेरी विनती सुनिए– आपने कुल और सेनासहित रावण का वध किया, त्रिभुवन में अपना पवित्र यश फैलाया और मुझ दीन, पापी, बुद्धिहीन और जातिहीन पर बहुत प्रकार से कृपा की । अब हे प्रभु ! इस दास के घर को पवित्र कीजिये और वहाँ चलकर स्नान कीजिए, जिससे युद्ध की थकावट दूर हो जाये । हे कृपालु ! खज़ाना, महल और सम्पत्ति को देखकर प्रसन्नता पूर्वक वानरों को दीजिये । हे नाथ ! मुझे सब प्रकार से अपना लीजिये और फिर हे प्रभो ! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरी को पधारिये ।'' विभीषण के कोमल वचन सुनते ही दीन दयालु प्रभु के दोनों विशाल नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया ।

दो०–तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात।।११६(क)।।
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि ।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि ।। ११६ (ख)।।
बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर ।।११६(ग)।।
करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ।। ११६ (घ)।।

भावार्थ– (श्री राम जी ने कहा–) ''हे भाई, सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह बात सच है । पर भरत की दशा याद करके मुझे एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है । तपस्वी के वेष में कृश (दुःख से) शरीर से निरन्तर मेरा नाम का जप कर रहे हैं । हे सखा ! वही उपाय करो जिससे मैं जल्दी से जल्दी उन्हें देख सकूँ । मैं तुमसे निहोरा करता हूँ । यदि अवधि बीत जाने पर जाऊँगा, तो भाई को जीता न पाऊँगा ।'' छोटे भाई भरत की प्रीति का स्मरण करके प्रभु का शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है । (श्री राम जी ने फिर कहा–''हे विभीषण ! तुम कल्प भर राज्य करना, मन में निरन्तर मेरा स्मरण करते रहना । फिर तुम मेरे उस धाम को पा जाओगे जहाँ सब संत जाते हैं ।''

सुनत बिभीषन बचन राम के । हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥
बानर भालु सकल हरषाने । गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने ॥
बहुरि बिभीषन भवन सिधायो । मनि गन बसन बिमान भरायो ॥
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा । हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा ॥
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन । गगन जाइ बरषहु पट भूषन ॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही । बरषि दिए मनि अंबर सबही ॥
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं । मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता । परम कौतुकी कृपा निकेता ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के वचन सुनते ही विभीषण जी ने हर्षित होकर कृपा के धाम श्री राम जी के चरण पकड़ लिये । सभी वानर-भालु हर्षित हो गये और प्रभु के चरण पकड़कर उनके निर्मल गुणों का बखान करने लगे । फिर विभीषण जी महल को गये और उन्होंने मणियों के समूहों (रत्नों) से और वस्त्रों से विमान को भर लिया । फिर उस पुष्पक विमान को लाकर प्रभु के सामने रक्खा । तब कृपासागर श्री राम जी ने हँसकर कहा– "हे सखा विभीषण ! सुनो, विमान पर चढ़कर, आकाश जाकर, वस्त्रों और गहनों को बरसा दो।" तब (आज्ञा सुनते) ही विभीषण जी ने आकाश में जाकर सब मणियों और वस्त्रों को बरसा दिया । जिसके मन जो अच्छा लगता है, वह वही ले लेता है । मणियों को मुँह में लेकर वानर फिर उन्हें खाने की चीज़ न समझकर उगल देते हैं । यह तमाशा देखकर परम विनोदी और कृपा के धाम श्री राम जी, सीता जी, और लक्ष्मण जी सहित, हँसने लगे ।

दो०– मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद ।
कृपासिंदु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद ॥ ११७ (क)॥
उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥ ११७ (ख)॥

भावार्थ– जिनको मुनि ध्यान में भी नहीं पाते, जिन्हें वेद नेति-नेति कहते हैं, वे ही कृपा के समुद्र श्री राम जी वानरों के साथ अनेकों प्रकार के विनोद कर रहे हैं । (शिव जी कहते हैं–) "हे उमा ! अनेकों प्रकार के योग, जप, दान, यज्ञ, व्रत और नियम करने पर श्री रामचन्द्र जी वैसी कृपा नहीं करते जैसी अनन्य प्रेम होने पर करते हैं ।"

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए । पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए ॥
नाना जिनस देखि सब कीसा । पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ॥
चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया । बोले मृदुल बचन रघुराया ॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो । तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो ॥

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू । सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू ॥
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर । जोरि पानि बोले सब सादर ॥
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा । हमरें होत बचन सुनि मोहा ॥
दीन जानि कपि किए सनाथा । तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा ॥
सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं । मसक कहूँ खगपति हित करहीं ॥
देखि राम रुख बानर रीछा । प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा ॥

भावार्थ– भालुओं और वानरों ने कपड़े-गहने पाये । और उन्हें पहन कर वे श्री रघुनाथ जी के पास आये । अनेकों जातियों के वानरों को देखकर कोसलपति श्री राम जी बार-बार हँस रहे हैं । श्री रघुनाथ जी ने कृपादृष्टि से देखकर सब पर दया कीं । फिर वे कोमल वचन बोले– ''हे भाइयों ! तुम्हारे ही बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण का राजतिलक किया । अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ । मेरा स्मरण करते रहना और किसी से डरना नहीं ।'' ये वचन सुनते ही सब वानर प्रेम में विह्वल होकर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बोले– ''हे प्रभो ! आप जो कुछ भी कहें, आपको सब सोहता है । पर आपके वचन सुनकर हमको मोह होता है । हे श्री रघुनाथ जी ! आप तीनों लोकों के ईश्वर हैं । हम वानरों को दीन जानकर ही आपने सनाथ (कृतार्थ) किया है । प्रभु के ऐसे वचन सुनकर हम लाज के मारे मरे जा रहे हैं । कहीं मच्छर भी गरुड़ का हित कर सकते हैं ।'' श्री राम जी का रूख देखकर रीछ-वानर प्रेम में मग्न हो गये । उनकी घर जाने की इच्छा नहीं है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ १०४० पर जो टिप्पणी दी गई है, उसकी इस चौपाई में पुष्टि होती है । वहाँ कहा गया है ''श्री राम जी की इच्छा यही थी कि समस्त भालू - कपि जियें और घर जाकर अपने-अपने सम्बन्धियों से मिलें ।'' इसी लिये यहाँ स्वयं राम कहते हैं, ''तुम्हारे ही बल से मैंने रावण को मारा...........अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ ।''

दो०-प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि ।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि।।११८।।(क)।।
कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान ।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान ।। ११८ (ख)।।
कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि ।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि ।। ११८ (ग)।।

भावार्थ– परन्तु प्रभु की प्रेरणा (आज्ञा) से सब वानर-भालू श्री राम जी के रूप को हृदय में रखकर और अनेकों प्रकार से विनती करके हर्ष और विषादसहित घर को चले । वानरराज, सुग्रीव, नील, ऋक्षराज जाम्बवान्, अंगद, नल और हनुमान तथा विभीषण सहित

और जो बलवान् वानर सेनापति हैं– वे कुछ कह नहीं सकते ; प्रेमवश नेत्रों में जल भर कर, नेत्रों का पलक मारना छोड़कर (टकटकी लगाये) सम्मुख होकर श्री राम जी की ओर देख रहे हैं।

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥
चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर॥
राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥
परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥
कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥

भावार्थ– श्री रघुनाथ जी ने उनका अतिशय प्रेम देखकर सब को विमान पर चढ़ा लिया। तदनन्तर मन ही मन विप्र चरणों में सिर नवाकर, उत्तर दिशा की ओर विमान चलाया। विमान के चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई श्री रघुनाथ जी की जय कह रहे हैं। विमान में एक अत्यन्त ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उस पर सीता जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी बैठे। पत्नी सहित श्री राम जी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरू के शिखर पर बिजली सहित श्याम मेघ हों। सन्दर विमान बड़ी शीघ्रता से चला। देवता हर्षित हुए और उन्होंने फूलों की वर्षा की। अत्‌ त सुख देने वाली तीन प्रकार की (शीतल, मन्द, सुगन्धित) वायु चलने लगी। समुद्र, तालाब और नदियों का जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुन्दर शकुन होने लगे। सब के मन प्रसन्न हैं, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं। श्री रघुबीर जी ने कहा–"हे सीते! रणभूमि देखो। लक्ष्मण ने यहाँ मेघनाद को मारा था। हनुमान और अंगद के मारे हुए ये भारी-भारी निशाचर रणभूमि में पड़े हैं। देवताओं और मुनियों को दु:ख देने वाले कुम्भकर्ण और रावण यहाँ मारे गये।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में ग्यारह विषम पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ १०४५ पर बताया गया है कि राम ने भालुओं और कपियों को आदेश दिया कि वह अपने-अपने घर लौट जायें। परन्तु उनकी घर जाने की इच्छा ही नहीं होती। समस्त वानर सेना को तो राम पुष्पक विमान पर बिठाकर अयोध्या नहीं ले जा सकते थे। अतएव उन्होंने पुष्पक पर केवल सुग्रीव, नील, नल, अंगद, हनुमान, जामवंत और विभीषण को अपने साथ विमान पर ले लिया। दोहा

११८ (ख) के अन्त में कहा है "अपर जे जूथप कपि बलवान ।" अन्य बलवान वानर सेनापति जो राम के साथ अयोध्या गये– उनके नाम तुलसीदास जी ने पहले ही सुन्दरकाण्ड के दोहा ५४ में गिना दिये हैं (देखिये पृष्ठ ८८५) । वह थे द्विविद, मयंद, गद, विकट, दधिमुख, केहरि, निशठ और शठ ।

दो०–इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम ।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम ।। ११९ (क)।।
जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम ।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम ।। ११९ (ख)।।

भावार्थ– मैंने यहाँ पुल बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम श्री शिव जी की स्थापना की ।" तदनन्तर कृपानिधान श्री रामजी ने सीता जी सहित श्री रामेश्वर महादेव को प्रणाम किया । वन में जहाँ-जहाँ करूणासागर श्री रामचन्द्र जी ने निवास और विश्राम किया था, वे सब स्थान प्रभु ने जानकी जी को दिखलाये और सब के नाम बतलाये।

टिप्पणी– पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या को लौटते समय श्री राम जी ने सीता को लंका के वह रणक्षेत्र दिखाए जहाँ लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को मारा था, जहाँ हनुमान और अंगद ने अन्य राक्षसों को मारा था और स्वयं उन्होंने कुम्भकर्ण और रावण को मारा था । इसके बाद राम ने सीता को रामेश्वरम्, ऋष्यमूक पर्वत और पम्पासर दिखाया । ऊपर के छन्द में "जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह विश्राम" कहकर, तुलसीदास जी ने संतोष कर लिया । परन्तु कालिदास ने अपने "रघुवंश" के तेरहवें सर्ग में भारत-दर्शन ७९ श्लोकों में कराया है । कालीदास के राम सीता जी को ऊपर से न केवल विविध स्थान दिखाते हैं, अपितु उनके महात्म्य और सौन्दर्य का भी साथ-साथ वर्णन करते चलते हैं । पहले १९ श्लोकों में कालिदास ने भारत और लंका के बीच के समुद्र का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है, जिसे तुलसीदास जी ने बिल्कुल भुला दिया ।

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा । दंडक बन जहँ परम सुहावा ।।
कुंभजादि मुनिनायक नाना । गए रामु सब कें अस्थाना ।।
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा । चित्रकूट आए जगदीसा ।।
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा । चला बिमानु तहाँ ते चोखा ।।
बहुरि राम जानकिहि देखाई । जमुना कलि मल हरनि सुहाई ।।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनाम करु सीता ।।
तीरथपति पुनि देखु प्रयागा । निरखत जन्म कोटि अघ भागा ।।
देखु परम पावनि पुनि बेनी । हरनि सोक हरि लोक निसेनी ।।

पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि । त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि ॥

भावार्थ– विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया जहाँ परम सुन्दर दण्डक वन था, और अगस्त्य आदि बहुत से मुनिराज रहते थे । श्री राम जी इन सबके स्थानों में गये । सम्पूर्ण ऋषियों से आशीर्वाद पाकर, जगदीश्वर श्री राम जी चित्रकूट आये । वहाँ मुनियों को सन्तुष्ट किया । विमान वहाँ से तेजी के साथ चला । फिर श्री राम जी ने जानकी जी को कलियुग के पापों का हरण करने वाली यमुना जी के दर्शन कराये । फिर पवित्र गंगा जी के दर्शन किये। श्री राम जी ने कहा– "हे सीते ! प्रणाम करो । फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिनके दर्शन से ही करोड़ो जन्मों के पाप भाग जाते हैं । फिर परम पवित्र त्रिवेणी जी के दर्शन करो, जो शोकों को हरने वाली और श्री हरि के परम धाम पहुँचाने के लिये सीढ़ी के समान है । फिर अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरी का दर्शन करो, जो तीनों प्रकार के तापों और भवरोग का नाश करने वाली है "।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । कालिदास के अनुसार पुष्पक विमान लंका से उड़कर सीधा नन्दीग्राम में भरत के पास उतरा । परन्तु तुलसीदास की मान्यता इसके विपरीत है । उनके पुष्पक ने बीच में कई पड़ाव डाले । वह दण्डकारण्य, चित्रकूट और प्रयाग राज में रुका । श्री रामचन्द्र ने इन स्थानों पर अगस्त्य, अत्रि और भरद्वाज आदि ऋषियों के दर्शन किए और उनका आशीर्वाद पाया ।

दो०– सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ।। १२०(क)।।
पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह ।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह ।। १२० (ख)।।

भावार्थ– यों कहकर कृपालु श्री राम जी ने सीता सहित अवधपुरी को प्रणाम किया । सजल नेत्र और पुलकित शरीर होकर श्री राम जी बार-बार हर्षित हो रहे हैं । फिर त्रिवेणी में आकर प्रभु ने हर्षित होकर स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिये ।

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु । समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥
तुरत पवनसुत गवनत भयऊ । तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही । अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ॥
मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी । चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी ॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए । नाव नाव कहँ लोग बोलाए ॥

सुरसरि नाघि जान तब आयो । उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो ॥
तब सीताँ पूजी सुरसरी । बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ॥
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा । सुंदरि तव अहिवात अभंगा ॥
सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल । आयउ निकट परम सुख संकुल ॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही । परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही ॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियो उर लाई ॥

भावार्थ– तदनन्तर प्रभु ने हनुमान जी को समझाकर कहा– तुम ब्रह्मचारी का रूप धर कर अवधपुरी को जाओ । भरत को हमारा कुशल सुनाना और उनका समाचार लेकर चले आना । पवनपुत्र हनुमान जी तुरन्त ही चल दिये । तब प्रभु भरद्वाज जी के पास गये । मुनि ने इष्ट बुद्धि से उनकी अनेकों प्रकार से पूजा की, और फिर लीला की दृष्टि से आशीर्वाद दिया - दोनों हाथ जोड़कर तथा मुनि के चरणों की वन्दना करके प्रभु विमान पर चढ़कर फिर चले । यहाँ जब निषादराज ने सुना कि प्रभु आ गये, तब उसने "नाव कहाँ है? नाव कहाँ है? " पुकारते हुए लोगों को बुलाया । इतने में ही विमान गंगा जी को लाँघकर इस पार आ गया । और प्रभु की आज्ञा पाकर वह किनारे पर उतरा । तब सीता जी बहुत प्रकार से गंगा जी की पूजा करके फिर उनके चरणों पर गिरीं । गंगा जी ने मन में हर्षित होकर आशीर्वाद दिया– "हे सुन्दरी ! तुम्हारा सुहाग अखण्ड हो। " भगवान के तट उतरने की बात सुनते ही निषादराज गुह प्रेम से विह्वल होकर दौड़ा । परम सुख से परिपूर्ण होकर वह प्रभु के समीप आया । और प्रभु को श्री जानकी जी सहित देखकर वह आनन्दसुधि में मग्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । उसे शरीर की सुधि नहीं रही । श्री रघुनाथ जी ने उसका परम प्रेम देखकर उसे उठाकर हर्ष के साथ हृदय से लगा लिया ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में बारह सम पंक्तियाँ हैं । यह लंकाकाण्ड की अन्तिम चौपाई है । इसके पहले की चौपाई में बताया गया है कि पुष्पक विमान प्रयागराज में उतरा था और श्री राम ने भरद्वाज के दर्शन किये थे । प्रयाग राज से चलकर गंगा पार, विमान श्रृंगवेरपुर में भी उतरा । वहाँ राम निषादराज गुह से मिले और सीता जी ने गंगा की पूजा की और गंगा माता से अखण्ड सौभाग्यवती का आशीर्वाद प्राप्त किया । बनवास को जाते समय भी सीता ने गंगा पार की थी और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया था । (देखिए प्रथम भाग, पृष्ठ ४९१)।

छं०–लियो हृदयँ लाइ कृपा निधान सुजान रायँ रमापती ।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती ।।
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेब्य जे ।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते ।। १ ।।

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो ।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो ।।
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा ।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा ।। २ ।।

भावार्थ– सुजानों के राजा (शिरोमणि), लक्ष्मीकान्त, कृपानिधान भगवान ने उसको हृदय से लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठाकर कुशल पूछा । वह विनती करने लगा– "आपके जो चरण कमल ब्रह्मा जी और शंकर जी से सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब कुशल हूँ । हे सुखधाम ! हे पूर्णकाम श्री राम जी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ।" सब प्रकार से नीच उस निषाद को भगवान ने भरत जी की भाँति हृदय से लगा लिया । तुलसीदास जी कहते हैं "इस मन्दबुद्धि ने (मैंने) मोहवश उस प्रभु को भुला दिया। रावण के शत्रु का यह पवित्र करने वाला परम पवित्र चरित्र सदा ही श्री राम जी के चरणों में प्रीति देने वाला है । यह कामादि विकारों का हरने वाला और भगवान के स्वरूप का विशेष ज्ञान उत्पन्न करने वाला है । देवता, सिद्ध और मुनि आनन्दित होकर इसे गाते हैं ।

दो०– समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान ।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान ।। १२१ (क)।।
यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार ।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार ।। १२१ (ख)।।

भावार्थ– जो सुजान लोग श्री रघुबीर की समर विजय सम्बन्धनी लीला को सुनते हैं, उनको भगवान नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं । अरे मन ! विचार करके देख ! यह कलिकाल पापों का घर है । इसमें श्री रघुनाथ जी के नाम को छोड़कर पापों से बचने के लिये दूसरा कोई आधार नहीं है ।"

टिप्पणी– कालीदास ने अपने "रघुवंश" के तेरहवें सर्ग में पुष्पक विमान के लंका से चलने और अयोध्या पहुँचने तक का वर्णन किया है । इसी सर्ग में उन्होंने राम-भरत का मिलन करा दिया है । परन्तु "मानस" के पाठक को अभी "भरत-मिलाप" के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । तुलसी दास जी ने लंकाकाण्ड राम-निषादराज मिलन के बाद ही समाप्त कर दिया । तुलसीदास जी हर काण्ड के अन्त में पाठक को बार-बार स्मरण कराते हैं कि श्री राम के चरित का पठन-पाठन सबके लिए मंगलदायक है । इसी परिपाटी के अन्तर्गत तुलसीदास जी अपने पाठकों को पुनः स्मरण कराते हैं कि जो सुजान रघुबीर के "समर विजय" का चरित सुनते हैं, उनको भगवान नित्य विजय, विवेक और विभूति देते हैं– कितना सुन्दर अनुप्रास है !

सप्तम सोपान

(उत्तरकाण्ड)

श्लोक

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिन्हं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ।। १ ।।

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ ।। २ ।।

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम् ।। ३ ।।

भावार्थ– मोर के कण्ठ की आभा के समान (हरिताभ) नील वर्ण, देवताओं में श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी) के चरणकमल के चिन्ह से सुशोभित, शोभा से पूर्ण, पीताम्बरधारी, कमलनेत्र, सदा परम प्रसन्न, हाथों में बाण और धनुष धारण किए हुए, वानर समूह से युक्त, भाई लक्ष्मण जी से सेवित, स्तुति किये जाने योग्य, श्री जानकी जी के पति, रघुकुल श्रेष्ठ, पुष्पक विमान पर सवार श्री रामचन्द्र जी को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ। कोसलपुरी के श्रेष्ठ स्वामी श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर और कोमल दोनों चरण कमल ब्रह्मा जी और शिवजी के द्वारा वन्दित हैं, श्री जानकी जी के करकमलों से दुलराये हुए हैं और चिन्तन करने वाले के मनरूपी भौंरे के नित्य संगी हैं , अर्थात् चिन्तन करने वालों का मनरूपी भ्रमर सदा उन चरणकमलों में लगा रहता है। कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख के समान सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी श्री पार्वती के पति, वांछित फल के देने वाले, दुखियों पर दया करने वाले, सुन्दर कमल के समान नेत्रवाले, कामदेव से छुड़ाने वाले, कल्याणकारी श्री शंकर जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

टिप्पणी– पृष्ठ ९०१ पर स्पष्ट कर दिया गया है कि तुलसीदास जी के समय में दक्षिण में शैवों और वैष्णवों का घोर द्वंद्व खड़ा हो गया था। रामचरितमानस के प्रसाद से उत्तर भारत में साम्प्रदायिकता का यह उच्छृंखल रूप अधिक न ठहरने पाया। शैवों और वैष्णवों के विरोध के परिहार का प्रयत्न ''मानस'' में स्थान-स्थान पर लक्षित होता है। जब राम रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना कर चुके, तो वे स्वयं अपने मुख से कहते हैं–

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ।।

ऊपर तुलसीदास जी ने जो बात राम के मुख से कहलवायी उसकी स्वयं मानस में हर काण्ड के प्रारम्भ में पुष्टि की है। जहाँ राम की वन्दना की है वहाँ शिव जी की भी। ऊपर तीन स्रग्धरा छन्द हैं, जिसमें दो में राम की स्तुति है और एक में शिव की। राम की स्तुति में पाठक का दो विशेष बातों पर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है।

१. विष्णु भगवान और उनके दो अवतार राम और कृष्ण श्यामवर्ण कहे जाते हैं। अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में राम को तुलसीदास जी ने नीलाम्बुज श्यामल कहा है; अरण्यकाण्ड में पयौ रसोभगतनुं और उत्तरकाण्ड में कैकीकण्ठाभनीलं। तुलसीदास कवि थे ; चित्रकार नहीं। प्रकृति में हर एक नीले रंग की अलग आभा होतीं है। नीलकमल, बादल और मोर की गर्दन—तीनों—बिल्कुल एक प्रकार के नीले नहीं होते। परन्तु यह निश्चित है कि इन तीनों का नीला रंग बहुत गहरा नहीं होता है और न बहुत हल्का—बीच का होता हैं। अंग्रेजी में नीले रंग की ग्यारह आभाऐं बतायी गयी हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं-- Oxford, Azure, Reviera, Ford, Bronze, Peacock, Turquoise, Electric, Sky, Himalayan and Satin.

इस श्रृंखला में केकीकण्ठाभनीलं--Peacock-- बीचोबीच आता है।

२. हर काण्ड में राम की जो मुद्रा पाठक के मानस पटल पर आती है उसका तुलसीदास जी ने शुरू में ही आभास दे दिया है। वह इस प्रकार है–

(१) अयोध्याकाण्ड में अभिषेक की बात सुनकर राम न तो प्रसन्न हुये और न वनवास पाकर दुखी हुये–प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।

(२) अरण्यकाण्ड में पथिक के रूप में राम बन-बन विचर रहे हैं– सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे।

(३) किष्किन्धाकाण्ड में राम सीता को इधर उधर ढूँढते फिर रहे हैं —सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः।

(४) सुन्दरकाण्ड में हनुमान राम के प्रिय भक्त हैं– वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं।

(५) लंकाकाण्ड में राम खलों का वध करने वाले हैं–खलवधनिरतं।

(६) उत्तरकाण्ड में राम पुष्पकारूढ़ हैं–पुष्पकारूढरामम्।

दो०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग।।
सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।।

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ।।
भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार ।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार ।।

भावार्थ— श्री राम जी के लौटने की अवधि का एक ही दिन बाकी रह गया है, अतएव नगर के लोग बहुत आतुर (अधीर)हो रहे हैं । राम के वियोग में दुबले हुए स्त्री पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार)कर रहे हैं (कि क्या बात है,क्यों नहीं आये) । इतने में ही सब सुन्दर शकुन होने लगे, यह देखकर सब के मन प्रसन्न हो गये । नगर चारों ओर से रमणीक हो गया । मानो ये सब के सब चिन्ह प्रभु के आगमन को जना रहे हैं । कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनन्द हो रहा है, जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि सीता जी और लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी आ गये । भरत जी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही है । इसे शुभ शकुन जानकर उनके मन में अत्यन्त हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे ।

रहेउ एक दिन अवधि अधारा । समुझत मन दुख भयउ अपारा ।।
कारन कवन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ ।।
अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारबिंदु अनुरागी ।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ।।
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कलप सत कोरी ।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ ।।
मोरें जियँ भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई ।।
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना । अधम कवन जग मोहि समाना ।।

भावार्थ— प्राणों की आधार रूप अवधि का एक ही दिन शेष रह गया । यह समझकर भरत जी के मन में अपार दुःख हुआ । '' किस कारण से नाथ नहीं आये? प्रभु ने मुझे कुटिल जानकर कहीं भुला तो नहीं दिया। आहा! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं, जो श्री रामचन्द्र जी के चरणारविन्द के प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए)। मुझे तो प्रभु ने कपटी और कुटिल पहचान लिया, इसी से मुझे नाथ ने साथ नहीं लिया। बात भी ठीक ही है, क्योंकि यदि प्रभु मेरी करनी पर ध्यान दें, तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पों तक भी मेरा निस्तार नहीं हो सकता परन्तु आशा इतनी ही है कि प्रभु सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते । वे दीनबन्धु हैं और अत्यन्त ही कोमल स्वभाव के हैं । अतएव मेरे हृदय में ऐसा पक्का भरोसा है कि श्री राम जी अवश्य मिलेंगे । किन्तु अवधि बीत जाने पर यदि मेरे प्राण रह गये तो जगत में मेरे समान नीच कौन होगा? ''

दो०—राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत ।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत ।। १ (क)।।
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात ।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ।। १ (ख)।।

भावार्थ— श्री राम जी के विरह-समुद्र में भरत जी का मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र हनुमान जी ब्राह्मण का रूप धरकर आ गये, मानों डूबते हुए को बचाने के लिए नाव आ गयी हो। हनुमान जी ने दुर्बलशरीर भरत जी को जटाओं का मुकुट बनाये, कुश के आसन पर बैठे देखा। वे कमल के समान नेत्रों से (प्रेमाश्रु का)जल छलकाते हुए 'राम ! राम ! रघुपति !' का जाप कर रहे हैं।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ ।।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी ।।
जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती ।।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता ।।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत ।।
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा ।।
को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ।।
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना ।।
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर ।।
मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता ।।
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते ।।
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता ।।
एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं ।।
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ।।
तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ।।
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं ।।

भावार्थ— उन्हें देखते ही हनुमान जी अति हर्षित हुए। उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का)जल बरसने लगा। मन में बहुत प्रकार से सुख मानकर वे कानों के लिये अमृत समान वाणी बोले —" जिनके विरह में आप दिन-रात सोच करते (घुलते)रहते हैं, और जिनके गुण समूहों की पंक्तियों को आप निरन्तर रटते रहते हैं , वे ही रघुकुल के तिलक, सज्जनों को सुख देने वाले और देवताओं तथा मुनियों के रक्षक श्री राम जी सकुशल आ गये। शत्रु को रण में जीतकर सीता जी और लक्ष्मण जी सहित प्रभु आ रहे हैं;देवता उनका सुन्दर यश गा रहे हैं।" ये वचन सुनते ही भरत जी के सारे दुःख भूल गये, जैसे प्यासा

आदमी अमृत पाकर प्यास के दुःख भूल जाये । (भरत जी ने पूछा–) ''हे तात! तुम कौन हो?और कहाँ से आयेहो? तुमने मुझको परम प्रिय (अत्यंत आनन्द देने वाले) वचन सुनाए हैं ।'' हनुमान जी ने कहा–'' हे कृपानिधान!सुनिये, मैं पवन का पुत्र और जाति का वानर हूँ। मेरा नाम हनुमान है । मैं दीनबन्धु रघुनाथ जी का दास हूँ ।'' यह सुनते ही भरत जी उठकर आदरपूर्वक हनुमान जी से गले लगकर मिले । मिलते समय प्रेम हृदय मे नहीं समाता। नेत्रों से (आनन्द और प्रेम के आँसुओं का)जल बहने लगा । और शरीर पुलकित हो गया । (भरत जी ने कहा–) ''हे हनुमान! तुम्हारे दर्शन से मेरे समस्त दुःख समाप्त हो गये (दुःखों का अन्त हो गया)। तुम्हारे रूप में आज मुझकों प्यारे राम जी ही मिल गये ।'' भरत जी ने बार-बार कुशल पूछी । (और कहा–) ''हे भाई! इस शुभ संवाद के बदले क्या दूँ । इस सन्देश के समान (इसके बदले में देने लायक पदार्थ)जगत में कुछ भी नहीं है, मैंने यह विचारकर देख लिया है । इसलिये हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उऋण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभु का चरित्र (वृत्तान्त)सुनाओ ।'' तब हनुमान जी ने भरत जी के चरणों में मस्तक नवाकर श्री रघुनाथ जी की सारी गुणगाथा कही । (भरत जी ने पूछा–) ''हे हनुमान!कहो, कृपालु स्वामी मुझे अपने दास की तरह याद भी करते हैं ?

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं ? पृष्ठ १०४८ पर बताया जा चुका है कि कालिदास का'पुष्पक' लंका से उड़कर सीधा अयोध्या में उतरा; परन्तु तुलसीदास का'पुष्पक' स्थान स्थान पर रुकता आया । जब विमान तीर्थराज प्रयाग में उतरा, तो वनवास की चौदह वर्ष की अवधि को पूर्ण होने में एक दिन शेष था । भरत की आतुरता को ध्यान में रखते हुये, राम ने हनुमान को पहले ही अवधपुरी भेज दिया था कि वह राम के आने का समाचार जल्दी से जल्दी भरत को पहुँचा दें ।

इधर भरत के मन में आशंका शुरु हो गई थी–

कारन कवन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ ।।

इतने में ही हनुमान जी भरत के पास आ गए और बोले–''जिनके विरह में आप दिन-रात घुलते रहते हैं, वे प्रभु सीता-लक्ष्मण सहित आ रहे हैं ।'' यह समाचार पाते ही भरत के समस्त दुःख समाप्त हो गए । उन्होंने कहा – ''हे भाई!इस शुभ संवाद के बदले में मैं तुम्हें क्या दूँ? मैं तुमसे किसी भी प्रकार से उऋण नहीं हो सकता।''

छं०– निज दास ज्यो रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो ।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यो ।।
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो ।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो ।।

भावार्थ– रघुवंश के भूषण श्री राम जी ने क्या कभी अपने दास की भाँति मेरा स्मरण किया था?'' भरत जी के अत्यन्त नम्र वचन सुनकर हनुमान जी पुलकित शरीर होकर उनके चरणों पर गिर पड़े । (और मन में विचारने लगे कि–) जो चराचर के स्वामी हैं , वे रघुनाथ जी अपने श्री मुख से जिनके गुण समूहों का वर्णन करते हैं, वे भरत जी ऐसे विनम्र परम

दो०–राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ।। २ (क)।।

सो०–भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं ।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ।। २ (ख)।।

भावार्थ– (हनुमान जी ने कहा–) "हे नाथ!आप श्री राम जी को प्राणों के समान प्रिय हैं। हे तात! मेरा वचन सत्य है।" यह सुनकर भरत जी बार-बार मिलते हैं, हृदय में हर्ष समाता नहीं। फिर भरत जी के चरणों में सिर नवाकर हनुमान जी तुरन्त ही श्री राम जी के पास गये। और जाकर उन्होंने सब कुशल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमान पर चढ़कर चले।

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए ।।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई ।।
सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ।।
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ।।
दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला ।।
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी ।।
जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं ।।
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई ।।
अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी ।।
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा ।।

भावार्थ– इधर भरत जी भी हर्षित होकर अयोध्यापुरी में आये। और उन्होंने गुरुजी को सब समाचार सुनाया। फिर राजमहल में खबर जनायी कि श्री रघुनाथ जी कुशलपूर्वक नगर को आ रहे हैं। खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौडीं। भरत जी ने प्रभु की कुशल कहकर सब को समझाया। नगर निवासियों ने यह समाचार पाये, तो स्त्री पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े। श्री राम जी के स्वागत के लिये दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मंगल के मूल नवीन तुलसी दल आदि वस्तुएँ सोने के थालों में भर भर कर हथिनी की सी चाल वाली सौभाग्यवती स्त्रियां उन्हें लेकर गाती हुई चलीं। जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशा में है)वे वैसे ही (वहीं से उसी दशा में)उठ दौड़ते हैं। (देर हो जाने के डर से)बालकों और बूढ़ों को कोई साथ नहीं लाते। एक दूसरे से पूछते हैं– हे भाई! तुमने दयालु श्री रघुनाथ जी को देखा है। राम को आता हुआ जानकर, सारी अवधपुरी शोभा की खान हो गई। सब ओर सुहावनी त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध)वायू बहने लगी। और सरयू नदी का नीर निर्मल हो गया।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। जैसे चौदह वर्ष राम ने बन में बिताए, वैसे ही भरत ने यह चौदह वर्ष अयोध्या के बाहर नन्दीग्राम में बिताए। हनुमान ने जब भरत को राम के लौट आने की सूचना दी, तो भरत ने पहली बार अयोध्यापुरी में प्रवेश किया और सबको यह सुखद समाचार दिया। रामागमन की बात सुनते ही सारी अयोध्या मे एक उल्लास की लहर दौड़ गई। सौभाग्यवती स्त्रियाँ सोने के थालों में दही, दूब, गोरोचर, फल, फूल और तुलसीदल सजा कर राम की अगवानी करने चलीं।

दो०- हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत ।। ३ (क)।।
बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ।। ३ (ख)।।
राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तंरग समान ।। ३ (ग) ।।

भावार्थ– गुरु वशिष्ठ जी, कुटुम्बी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ हर्षित होकर भरत जी अत्यन्त प्रेमपूर्ण मन से कृपानिधान श्री राम जी के सामने (अर्थात् उनकी अगवानी के लिये) चले। बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी आकाश में विमान देख रही हैं। और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर से सुन्दर मंगलगीत गा रही हैं। श्री रघुनाथ जी पूर्णिमा के चन्द्रमा हैं, तथा अवधपुरी समुद्र है, जो उस पूर्णचन्द्र को देखकर हर्षित हो रहा है और शोर करता हुआ बढ़ रहा है। इधर उधर दौड़ती हुई स्त्रियाँ उसकी तरंगों के समान लगती हैं।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ।।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा ।।
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना ।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ।।
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा ।।
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी ।।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी।।

भावार्थ– यहाँ (विमान पर से) सूर्यकुल रूपी कमल के प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री राम जी वानरों को मनोहर नगर दिखला रहे हैं। (वे कहते हैं-) ''हे सुग्रीव! हे अंगद! हे लंकापति विभीषण! सुनो। यह पुरी पवित्र है और यह देश सुन्दर है। यद्यपि सबने बैकुण्ठ की बड़ाई की है, यह वेद पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है। परन्तु अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है। यह बात (भेद) कोई-कोई (विरले ही) जानते हैं। यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है। इसके उत्तर दिशा में जीवों को पवित्र करने वाली सरयू नदी बहती

है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य बिना ही परिश्रम मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते हैं। यहाँ के निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। यह पुरी सुख की राशि और मेरे परमधाम को देने वाली है।'' प्रभु की वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए (और कहने लगे) ''जिस अवध की स्वयं श्री राम जी ने बड़ाई की वह अवश्य ही धन्य है।''

दो०— आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान।। ४ (क)।।
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु।। ४ (ख)।।

भावार्थ— कृपासागर भगवान श्री राम चन्द्र जी ने सब लोगों को आते देखा, तो प्रभु ने विमान को नगर के समीप उतरने की प्रेरणा की। तब वह पृथ्वी पर उतरा। विमान से उतर कर प्रभु ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास जाओ। श्री राम जी की प्रेरणा से वह चला। उसे (अपने) स्वामी के पास जाने का हर्ष है, और (प्रभु श्री रामचन्द्र जी से अलग होने का) अत्यन्त दुःख भी।

आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्री रघुबीर बियोगा।।
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया।।
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा।।
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज।।
परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए।।
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े।।

भावार्थ— भरत जी के साथ सब लोग आये। श्री रघुबीर के वियोग से सब के शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभु ने वामदेव, वशिष्ठ आदि मुनियों को देखा, तो उन्होंने पृथ्वी पर धनुष बाण रखकर छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित दौड़कर गुरु जी के चरण कमल पकड़ लिये। उनके रोम-रोम अत्यन्त पुलकित हो रहे हैं। मुनिराज वशिष्ठ जी ने उठाकर उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। प्रभु ने कहा— ''आप ही की दया में हमारी कुशल है।'' धर्म की धुरी धारण करने वाले रघुवंशनाथ श्री राम जी ने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरत जी ने प्रभु के वे चरण कमल पकड़े, जिन्हें देवता, मुनि, शंकर जी और ब्रह्मा जी भी नमस्कार करते हैं। भरत जी पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाये उठते नहीं। तब कृपासिंधु श्री राम जी ने उन्हें जबरदस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। साँवले शरीर पर रोएं खड़े हो गये। नवीन कमल के समान नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं के) जल की बाढ़ आ गयी।

छं०– राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी ।।
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले सुषमा लही ।। १ ।।
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई ।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो ।। २ ।।

दो०–पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ ।।५ ।।

भावार्थ– कमल के समान नेत्रों से जल बह रहा है । सुन्दर शरीर में सुन्दर पुलकावली छा रही है । त्रिलोक के स्वामी प्रभु श्री राम जी छोटे भाई भरत जी को अत्यन्त प्रेम से हृदय लगाकर मिले । भाई से मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती । मानो प्रेम और श्रृंगार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभा को प्राप्त हुए। कृपानिधान श्री राम जी भरत जी से कुशल पूछते हैं, परन्तु आनन्दवश भरत जी के मुख से वचन शीघ्र नहीं निकलते । (शिवजी ने कहा–) ''हे पार्वती! सुनो, वह सुख (जो उस समय भरत जी को मिल रहा था) वचन और मन से परे है । उसे वही जानता है जो उसे पाता है।'' (भरत जी ने कहा)–''हे कोसलनाथ!आपने आर्त्त (दुःखी) जानकर दास को दर्शन दिये, इससे अब कुशल है। विरह समुद्र में डूबते हुए मुझको कृपानिधान ने हाथ पकड़कर बचा लिया ।'' फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्न को हृदय से लगाकर उनसे मिले । तब लक्ष्मण जी और भरत जी दोनों भाई परम प्रेम से मिले ।

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे । दुसह बिरह संभव दुख मेटे ।।
सीता चरन भरत सिरु नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ।।
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी । जनित बियोग बिपति सब नासी ।।
प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ।।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथाजोग मिले सबहि कृपाला ।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी । किए सकल नर नारि बिसोकी ।।
छन महिं सबहि मिले भगवाना । उमा मरम यह काहुँ न जाना ।।
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा । आगें चले सील गुन धामा ।।
कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ।।

भावार्थ– फिर लक्ष्मण जी शत्रुघ्न जी से गले मिले और इस प्रकार विरह से उत्पन्न दुःसह दुःख का नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्न जी सहित भरत जी ने सीता जी के चरणों में सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया। प्रभु को देखकर अयोध्यापुर वासी सब हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गये। तब लोगों को प्रेम विह्वल (और मिलने के लिये अत्यन्त आतुर)देखकर, खर के शत्रु कृपालु श्री राम जी असंख्य रूपों में प्रकट हो गये और सब से एक ही साथ यथायोग्य मिले। श्री रघुबीर जी ने कृपादृष्टि से देखकर सब नर-नारीयों को शोक से रहित कर दिया।भगवान क्षणमात्र में सब से मिल लिये। 'हे उमा! यह रहस्य किसी ने नहीं जाना "। इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्री राम जी सबको सुखी करके आगे चले। कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ी मानो नई व्याही हुई गौएं अपने बछड़ों को देखकर दौड़ी हों।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। श्री कृष्ण भगवान ने जब रास लीला की, तो अपने "अमित रूप प्रगटे" और एक साथ सभी गोपियों के साथ रास किया ताकि कोई भी गोपी अपने को हीन या राधा से कम न समझे। ऐसा ही कौतुक राम ने किया। चौदह वर्ष बाद जब वह अवधपुरी लौटे तो "छ्न महिं सबहि मिले भगवाना"। एक बार पहले जब भरत समस्त पुरवासियों को लेकर राम से चित्रकूट में मिलने आये थे, उस समय भी राम "सानुज मिलि पल महुँ सब काहू।"[१] अपने अनेक रूप प्रकट कर के सारी प्रजा से एक साथ मिलना राम के लिये कोई नयी बात नहीं है। राम विमान के उतरने के पहले ही घोषणा कर चुके हैं– "अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी।"[२] ऐसा ही चमत्कार एक बार सीता ने भी किया था। अपने तीन रूप धारण करके तीनों सासों की एक साथ सेवा की थी:

"सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई।।"[३]

छं०– जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भई।।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।।

भावार्थ– मानों नई व्याही हुई गौएँ अपने छोटे बछड़ों को घर पर छोड़ परवश होकर वन में चरने गई हों, और दिन के अन्त होने पर बछड़ों से मिलने के लिये हुंकार करके थन से दूध गिरती हुई नगर की ओर दौड़ी हों। प्रभु ले अत्यन्त प्रेम से सब माताओं से मिलकर

---

१. देखिए पृष्ठ ६२१

२. देखिए पृष्ठ १०५७

३. देखिए पृष्ठ ६२७

उनसे बहुत प्रकार के कोमल वचन कहे। वियोग से उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गई और सबने भगवान से मिलकर और उनके वचन सुनकर अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किये।

टिप्पणी– चौपाई के अन्तिम चरण में जो भाव व्यक्त किया जाता है, उसको अगले छन्द में तुलसीदास विस्तारपूर्वक दोहराते हैं। ऊपर चौपाई के अन्तिम चरण में कहा गया–

"निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं।।"

इसी बात को ऊपर के छंद में पुनः सविस्तार कहा गया है। नवजात बछड़ों को घर पर छोड़कर गौएँ बन में घास चरने चली जाती हैं। दिन के अन्त होने पर अपने बछड़ों से मिलने के लिये वही गायें हुंकार भरती हुई नगर की ओर दौड़ती हैं। वह प्रेम में इतनी विह्वल हो जाती हैं कि उनके थनों से दूध स्वयं ही गिरने लगता है। चौदह वर्ष के बाद जब राम अयोध्या लौटे तो कौशल्या आदि माताएं गौओं की तरह से आतुर और उह्वल होकर, राम से मिलने के लिए दौड़ीं।

दो०–भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि।। ६ (क)।।
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ।। ६ (ख)।।

भावार्थ– सुमित्रा जी अपने पुत्र लक्ष्मण जी की श्री राम जी के चरणों में प्रीति जानकर उनसे मिलीं। श्री राम जी से मिलते समय कैकेयी हृदय में बहुत सकुचाई। लक्ष्मण जी भी सब माताओं से मिलकर और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। वे कैकेयी से बार-बार मिले, परन्तु उनके मन का क्षोभ नहीं जाता।

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही।।
देहीं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता।।
सब रघुपति मुख कमल बिलोकहीं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं।
कनक थार आरती उतारहिं। बार-बार प्रभु गात निहारहिं।।
नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं।।
कौसिल्या पुनि-पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि।।
हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा।।
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे।।

भावार्थ- जानकी जी सब सासुओं से मिलिं और उलके चरणों से लगकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। सासुएँ कुशल पूछ कर आशिष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो। सब माताएँ श्री रघुनाथ जी का मुख कमल देख रही हैं। नेत्रों में प्रेम के आंसू उमड़े आते हैं, परन्तु मंगल का समय जानकर वे आँसुओं के जल को नेत्रों में ही रोक रखती हैं। सोने के थाल में आरती

उतारती हैं और बार-बार प्रभु के श्री अंगों की ओर देखती हैं। अनेकों प्रकार से निछावरें करती हैं और हृदय में परमानन्द तथा हर्ष भर रही हैं। कौसल्या जी बार-बार कृपा के समुद्र और रणधीर श्री रघुबीर को देख रही हैं। वे बार-बार हृदय में विचारती हैं कि इन्होंने लंकापति रावण को कैसे मारा? मेरे ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं, और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान बली थे।

दो०—लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ।। ७ ।।

भावार्थ— लक्ष्मण जी और सीता जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी को माता देख रही हैं। उनका मन परमानन्द में मग्न है, और शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है।

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला ।।
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा ।।
भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा ।।
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती ।।
पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए ।।
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे ।।
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे ।।
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए ।।

भावार्थ— लंका पति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान् और अंगद तथा हनुमान जी आदि सभी उत्तम स्वभाव वाले वीर वानरों ने मनुष्यों के मनोहर शरीर धारण कर लिये। वे सब भरत जी के स्नेह, शील, व्रत और नियमों की बड़ाई कर रहे हैं। और नगर निवासियों की प्रेम, शील और विनय से पूर्ण रीति देखकर वे सब प्रभु के चरणों में उनके प्रेम की सराहना कर रहे हैं। फिर श्री रघुनाथ जी ने सब सखाओं को बुलाया और सब को सिखाया कि मुनि के चरणों में लगो। ये गुरु वशिष्ठ जी हमारे कुलभर के पूज्य हैं। इन्हीं की कृपा से रण में राक्षस मारे गये हैं। (फिर गुरु जी से कहा—) "हे मुनि! सुनिये। ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्राम रूपी समुद्र में मेरे लिए बेड़ा (जहाज़) रूप हुए। मेरे हित के लिये इन्होंने अपने जन्म तक हार दिये (अपने प्राणों की बाजी लगा दी)। ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं।" प्रभु के वचन सुनकर सब प्रेम और आनन्द में मग्न हो गये। इस प्रकार पल-पल में उन्हें नए-नए सुख उत्पन्न हो रहे हैं।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। अन्तिम चौपाई के पहले चरण में "मम हित लागि जन्म इन्ह हारे" वाक्य का अर्थ कुछ टीकाकारों ने इस प्रकार दिया है— "मेरे हित के लिए इन्होंने अपने प्राण तक न्योछावर कर दिये"। "प्राणों को संकट में

डालना'' और ''प्राण न्योछावर कर देना'' में बहुत अन्तर है। ''न्योछावर '' शब्द का प्रयोग करने से एक विरोधाभास हो जाता है। विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, जामवंत, अंगद हनुमान आदि रामके मन्त्री या सेनापति थे। लंका के युद्ध में इनमें से कोई भी मारा नहीं गया था। सब बड़ी बहादुरी से लड़े थे, और सबने अपनी जान की बाज़ी लगा दी थी। मरे तो थे साधारण बानर-रीछ योद्धा जिन्हें इन्द्र ने अमृत की वर्षा करके पुनर्जीवन दान दिया था और जो राम के आदेश से घर लौट गए थे। वे लोग पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या नहीं आए थे (देखिए पृष्ठ१०३९ और १०४५)।

दो०—कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ।। ८ (क)।।
सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद ।। ८ (ख)।।

भावार्थ— फिर उन लोगों ने कौशल्या जी के चरणों में मस्तक नवाये। कौसल्या जी ने हर्षित होकर आशिष दी (और कहा—) ''तुम मुझे रघुनाथ के समान प्यारे हो।'' आनन्दकन्द श्री राम जी अपने महल को चले। आकाश फूलों की वृष्टि से छा गया। नगर के स्त्री-पुरुषों के समूह अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं।

कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू॥
बीथीं सकल सुगंध सिंचाईं। गजमनि रचि बहु चौक पुराईं॥
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥
जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुब गाना॥
करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥

भावार्थ— सोने के कलशों को विचित्र रीति से मणि रत्नादि से अलंकृत कर और सजाकर सब लोगों ने अपने-अपने दरवाजों पर रख लिया। सब लोगों ने मंगल के लिये बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगायीं। सारी गलियाँ सुगन्धित द्रव्यों से सिचायी गयीं। गज मुक्ताओं से रच कर बहुत सी चौंके पुंरायी गयीं। अनेकों प्रकार के सुन्दर मंगल-साज सजाये गये, और हर्ष पूर्वक नगर में बहुत से डंके बजने लगे। स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही हैं और हृदय में हर्षित होकर आशीर्वाद देती हैं। बहुत सी युवती (सौभाग्यवती स्त्रियाँ) सोने के थालों में अनेकों प्रकार की आरती सजाकर मंगलगान कर रही हैं। वे आर्त्तिहर (दुःखों को हरने वाले), और सूर्यकुल रूपी कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री राम जी की आरती कर रही हैं। नगर की शोभा, सम्पत्ति, और कल्याण वेद, शेष जी और

सरस्वती जी वर्णन करते हैं। परन्तु वे भी यह चरित्र देखकर ठगे जाते हैं। (शिव जी कहते हैं–) "हे उमा! तब भला मनुष्य उनके गुणों को कैसे कह सकते हैं।"

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। शिव कहते हैं कि अयोध्यापुरी की शोभा और सम्पत्ति और उसके नागरिकों द्वारा राम का उत्साह और उल्लास पूर्ण स्वागत वेद, शेष और सरस्वती वर्णन करने की चेष्टा करते हैं। पर वे भी ठगे से रह जाते हैं। फिर भला मनुष्य राम के शुभ, कल्याणमयी और आदर्श जीवन की गाथा कैसे गा सकते हैं।

दो०–नारि कुमिदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भई निरखि राम राकेस ।। ९ (क)।।
होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान ।। ९ (ख)।।

भावार्थ– स्त्रियाँ कुमुदनी हैं, अयोध्या सरोवर है और श्री रघुनाथ जी का विरह सूर्य है (इस विरह-सूर्य के ताप से वे मुरझा गई थीं)। अब उस विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर श्री रामरूपी पूर्णचन्द्र को निरख कर वे खिल उठीं। अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं। आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। नगर के पुरुष और स्त्रियों को सनाथ (कृतार्थ)करके भगवान श्री रामचन्द्र जी महल को चले।

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।।
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा।।
कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए।।
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई।।
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन।।
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए।।
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका।।
अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै।।

भावार्थ– (शिव जी कहते हैं–) "हे भवानी! प्रभु ने जान लिया कि माता कैकेयी लज्जित हो रही हैं। इसलिये वे पहले इन्हीं के महल को गये और उन्हें समझा-बुझाकर बहुत सुख दिया। फिर श्री हरि ने अपने महल को गमन किया। कृपा के समुद्र श्री राम जी जब अपने महल को गये, तब नगरके स्त्री पुरुष सब सुखी हुए।" गुरु बशिष्ठ जी ने ब्राह्मणों को बुला लिया (और कहा–)" आज शुभ घड़ी, सुन्दर दिन आदि सभी शुभ योग हैं। आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिये, जिसमें श्री रामचन्द्र जी सिंहासन पर विराजमान हों।" वशिष्ठ मुनि के सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणों को बहुत ही अच्छे लगे। वे सब

अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्री राम जी का राज्याभिषेक सम्पूर्ण जगत को आनन्द देने वाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब बिलम्ब न कीजिये और महाराज का तिलक शीघ्र कीजिये।

दो०– तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ।। १० (क)।।
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ ।। १० (ख)।।

भावार्थ– तब मुनि ने सुमन्त्र जी से कहा। वे सुनते ही हर्षित हो कर चले। उन्होंने तुरन्त ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाये। और जहाँ-तहाँ (सूचना देने वाले) दूतों को भेजकर मांगलिक वस्तुएँ मँगाकर, फिर हर्ष के साथ आकर वशिष्ठ जी के चरणों में सिर नवाया।

अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई ।।
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवाबहु जाई ।।
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए ।।
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे ।।
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई ।।
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई ।।
पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मागि नहाए ।।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे ।।

भावार्थ– अवधपुरी बहुत ही सुन्दर सजायी गयी। देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की झड़ी लगा दी। श्री रामचन्द्र जी ने सेवकों को बुलाकर कहा कि तुम लोग जाकर पहले मेरे सखाओं को स्नान कराओ। भगवान के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दौड़े और तुरन्त ही सुग्रीवादि को उन्होंने स्नान कराया। फिर करूणानिधान श्री रामजी ने भरत जी को बुलाया और उनकी जटाओं को अपने हाथों से सुलझाया। तदनन्तर भक्त वस्तल कृपालु प्रभु श्री रघुनाथ जी ने तीनों भाइयों को स्नान कराया। भरत जी का भाग्य और प्रभु की कोमलता का वर्णन अरबों शेष जी भी नहीं कह सकते। फिर श्री रामचन्द्र जी ने अपनी जटाएँ खोलीं और गुरू जी की आज्ञा माँग कर स्नान किया। स्नान करके प्रभु ने आभूषण धारण किये। उनके सुशोभित अंगों को देखकर सैकड़ों (असंख्य) कामदेव लजा गये।

दो०– सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ ।। ११ (क)।।

राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि ।। ११ (ख)।।
सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्म सिव मुनि बृंद ।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद ।। ११ (ग)।।

भावार्थ– इधर सासुओं ने जानकी जी को आदर के साथ तुरन्त ही स्नान कराके उनके अंग-अंग में दिव्य वस्त्र और आभूषण भली भाँति सजा दिये (पहना दिये)। श्री राम जी के बायीं ओर रूप और गुणों की खान रमा (श्री जानकी जी) शोभित हो रही हैं। उन्हें देखकर सब माताएँ अपना-अपना जन्म (जीवन) सफल समझ कर हर्षित हुईं। कागभुशुण्डि जी कहते हैं "हे पक्षिराज गरुड़ जी! सुनिये। उस समय ब्रह्मा जी, शिवजी, मुनियों के समूह और सब देवता विमानों पर चढ़कर आनन्द कन्द भगवान के दर्शन करने के लिये आये।"

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा । तुरत दिव्य सिंहासन मागा ।।
रबि सम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ।।
जनकसुता समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ।।
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ।।
प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ।।
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार बार आरती उतारी ।।
बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे । जाचक सकल अजाचक कीन्हे ।।
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं ।।

भावार्थ– प्रभु को देखकर मुनि वशिष्ठ जी के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने तुरन्त ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था। उसका सौन्दर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों को सिर नवाकर श्री रामचन्द्र जी उस पर विराजे। श्री जानकी जी सहित श्री रघुनाथ जी को देखकर मुनियों का समुदाय अत्यन्त ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणों ने वेदमन्त्र का उच्चारण किया। आकाश में देवता और मुनि "जय हो, जय हो" ऐसी पुकार करने लगे। सब से पहले मुनि वशिष्ठ जी ने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को तिलक करने की आज्ञा दी। पुत्र को राज सिंहासन पर देखकर माताएँ हर्षित हुई और उन्होंने बार-बार आरती उतारी। उन्होंने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये, और सम्पूर्ण याचकों को अयाचक बना दिया (मालामाल कर दिया)। त्रिभुवन के स्वामी श्री रामचन्द्र जी को सिंहासन पर विराजित देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाये।

छं०-नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं ।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं ।।
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते ।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते ।। १ ।।

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई ।।
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे ।। २ ।।

भावार्थ– आकाश में बहुत से नगाड़े बज रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराओं के झुंड के झुंड नाच रहे हैं। देवता और मुनि परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी, विभीषण, अंगद, हनुमान और सुग्रीव आदि सहित क्रमशः छत्र, चंवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल और शक्ति लिये हुए सुशोभित हैं। श्री सीता जी सहित सूर्यवंश के विभूषण श्रीराम जी के शरीर में अनेकों कामदेवों की छबि शोभा दे रही है। । नवीन जलयुक्त मेघों के समान सुन्दर श्याम शरीर पर पीताम्बर देवताओं के मन को भी मोहित कर रहा है। मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण अंग-अंग में सजे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और लम्बी भुजाएं हैं। जो उनके दर्शन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं।

दो०– वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ।।१२ (क)।।

भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्री राम ।।१२ (ख)।।

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान ।। १२ (ग)।।

भावार्थ– ''हे पक्षिराज गरुड़ जी! वह शोभा, वह समाज और वह सुख मुझसे कहते नहीं बनता। सरस्वती जी, शेष जी और वेद निरन्तर उसका वर्णन करते हैं, और उसका रस (आनन्द)महादेव जी ही जानते हैं।'' सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने लोक को चले गये। तब भटों का रूप धारण करके चारों वेद वहाँ आये और जहाँ श्रीराम थे। सर्वज्ञ कृपानिधान प्रभु ने उनका (वेदों का)बड़ा आदर किया। यह मर्म (रहस्य)कोई नहीं जान पाया। चारों वन्दीजन (वेद)प्रभु का गुणगान करने लगे।

टिप्पणी– तुलसीदास जी ने लंकाकाण्ड में इन्द्र, ब्रह्मा और शिव से राम की स्तुति कराई है। दशरथ भी स्वर्गलोक से आए और राम को आशीर्वाद दिया। इसके पहले देवता स्थान स्थान पर अपने विमानों में चढ़कर आते हैं और पुष्पवृष्टि करते हैं। इस सबसे स्पष्ट होता है कि आदि देव और अन्य देव मृत्युलोक में उतर कर नहीं आते हैं। ऊपर से ही स्तुति गान करते हैं। पृथ्वी पर जब भी आते हैं तो कपट से मानव रूप धारण करके आते हैं–

सची सारदा रमा भवानी । जे सुरतिय सुचि सहज सयानी।।
कपट नारि बर बेष बनाई । मिलीं सकल रनिवासहिं जाई ।। *

*   *   *   *   *   *   *

बिधि हरि हर दिसिपति दिनराऊ । जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ ।
कपट बिप्रबर बेष बनाएँ । कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ ।। **

इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और अन्य देवांगनाएं स्त्री का वेष बनाकर तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य और दिक्पाल, ब्राह्मण का वेष बनाकर राम का विवाह देखने आए थे ।

इसी परम्परा के अन्तर्गत चारों वेद– ऋग, साम, यजुः और अथर्व – बन्दीजन का वेष धारण करके आए और प्रभु श्री राम का गुणगान करने लगे ।

प्रश्न उठता है कि देव तो इच्छारूपधारी होते हैं–वह कोई भी रूप धारण कर सकते हैं। परन्तु वेदों ने मानव रूप कैसे धारण किया ? वेद अपौरुषेय अर्थात् सर्वशक्तिमान ईश्वर की वाणी हैं । यदि ईश्वर मानवरूप धारण कर सकता है, तो उसकी इच्छा से उसकी वाणी भी रूप धारण कर सकती है । वैद्य राम प्रसाद जी ने तो हर वेद का अलग-अलग स्वरूप बताया है । वेदों के मानवीकरण के विषय में श्री अंजनीनन्दन शरण अपनी ''मानस पीयूष'' में कहते हैं :-

''बन्दी वेष में वेदों का आना युक्तियुक्त ही है । वेद भगवान के भाट हैं । भगवान का गुणगान करते हैं । परीक्षित जी के प्रश्न करने पर कि 'ब्रह्म तो आनिर्देश्य है, उसमें रजादि गुण नहीं हैं और वेद त्रिगुणात्मक हैं । तब ये वेद ब्रह्म के गुणों का कैसे प्रतिपादन करते हैं?', श्री सनन्दन जी ने कहा कि 'जैसे राजा सोते हैं, तब बन्दीजन उन्हें जगाते हैं, वैसे ही '। ''

मनुष्य जातियों का अनुसंधान करने वाले आधुनिक लेखकों ने स्वीकार किया है कि वन्य और असभ्य जातियाँ आदिकाल से प्राकृतिक शक्तियों को मानवरूप देकर उन्हें पूजती रही हैं । वेदों में अनेक स्थानों पर सूर्य, अग्नि, वरुण, वायु की उपासना की गई है । भारत-जनता की इस अवधारणा से तुलसीदास भली प्रकार परिचित थे । ''मानस'' के प्रारम्भिक श्लोक में अपने ग्रन्थ को ''आगम सम्मत'' कहकर उसकी उत्तर काण्ड में पुष्टी की है । स्वयं वेदों को आहूत किया है और उनको बन्दीजन बनाकर उनके मुख से राम की स्तुति कराई है।

* भाग १, बालकाण्ड, पृष्ठ ३४८

** भाग १, बालकाण्ड, पृष्ठ ३५१

इस कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में वेद की मान्यता प्रतिष्ठित की गई है। वेदों की कई ऋचाओं में राम की स्तुति है।* तुलसीदास का अभिप्राय यह है कि वेदों में राम की जो स्तुति है उसका वह नीचे भाषान्तर दे रहे हैं।

दूसरा पहलू यह है कि तुलसीदास अपने पाठकों को बताना चाहते हैं कि रामाभिषेक के समय वेद पाठ हुआ था। ऋषि वेदमन्त्र के दृष्टा थे**। अभिषेक में अनेक ऋषि मुनि सम्मिलित हुए थे। अपनी अपनी रुचि के अनुसार ऋषियों ने वेदोच्चार किया।

छं०— जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥ १॥

तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे॥ २॥

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥ ३॥

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥ ४॥

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मदुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥ ५॥

---

*१. उदाहरणार्थ, देखिए ऋग्वेद, मण्डल १०, अनुवाक ८, सूक्त ३, छन्द १४।

**२. ऋषयो मन्त्र दृष्टार:

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं ।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ।।
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं ।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ।। ६ ।।

भावार्थ– हे सगुण और निर्गुण रूप! हे अनुपम रूप-लावण्ययुक्त! हे राजाओं के शिरोमणि! आपकी जय हो। आपने रावण आदि प्रचण्ड, प्रबल और दुष्ट निशाचरों को अपने भुजबल से मार डाला। आपने मनुष्य अवतार लेकर संसार के भार को नष्ट करके अत्यन्त कठोर दुःखों को भस्म कर दिया। हे दयालु ! हे शरणागतकी रक्षा करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो। मैं शक्ति (सीता जी) सहित शक्तिमान आपको नमस्कार करता हूँ। हे हरि! देवता, राक्षस, नाग, मनुष्य और चर, अचर सभी काल, कर्म और गुणों से भरे हुए। (उनके वशीभूत हुए) दिन-रात अनन्त भव के मार्ग में भटक रहे हैं। हे नाथ! इनमें से जिनको आपने कृपा कर (कृपा दृष्टि से) देख लिया, वे मायाजनित तीनों प्रकार के दुःखों से छूट गये। जन्म-मरण के श्रम को काटने में कुशल श्री राम जी! हमारी रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं। जिन्होंने मिथ्या ज्ञान के अभिमान में विशेष रूप से मतवाले होकर भव-भय हरिणी आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, हे हरि! उन्हें देवदुर्लभ (देवताओं को भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होने वाले) पद को पाकर भी हम उस पद से नीचे गिरते देखते हैं। परन्तु जो सब आशाओं को छोड़कर, आप पर विश्वास करके आपके दास ही रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम, भवसागर से तर जाते हैं। हे नाथ!ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं। जो चरण शिवजी और ब्रह्मा जी के द्वारा पूज्य हैं, तथा जिन चरणों की कल्याणमयी रज का स्पर्श पाकर शिला बनी हुई गौतम मुनि की पत्नी अहल्या तर गई, जिन चरणों के नख से मुनियों द्वारा वंदित त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली देवनदी गंगा जी निकलीं और ध्वजा, चक्र, अंकुश और कमल, इन चिन्हों से युक्त जिन चरणों में वन में फिरते समय काँटे चुभ जाने के कारण घट्टे पड़ गये हैं, हे मुकुन्द! हे राम! हे रमापति! हम आपके उन्हीं दोनों चरण कमलों को नित्य भजते रहते हैं। वेद शास्त्रों ने कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है, जो प्रवाह रूप में अनादि है, जिसके चार त्वचाएँ, छः तने, पच्चीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत से फूल हैं, जिसमें कड़ुवे वचन और मीठे दो प्रकार के फल लगे हैं, जिस पर एक ही बेल है, जो उसी के आश्रित रहती है,जिसमें नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं, ऐसे संसार वृक्ष (स्वरूप में प्रकट)आपको मैं नमस्कार करता हूँ। ''ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभव से ही जाना जाता है और मन से परे है,'' जो इस प्रकार कहकर उस ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें किन्तु हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे करूणा के धाम! हे सद्गुणों की खान! हे देव! हम यह वर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्म से विकारों को त्याग कर आपके चरणों में ही प्रेम करें।

टिप्पणी– पृष्ठ १०६८ पर बताया गया है कि वेदों ने बन्दीजन का रूप धारण करके राम की स्तुति की। यह स्तुति हरिगीतिका छन्द में है। छंद ४ में चरण रज से अहल्या के तरने की और नख से गंगा के उद्भव की बात कही गई है। अन्तर्कथाओं के लिये देखिये भाग १, पृष्ठ ५४ और २५४ क्रमशः।

छंद ५ में भगवान को संसार-वृक्ष-स्वरूप बताया है। यह भाव भागवत् के स्कन्ध ११, अध्याय १२, श्लोक २१-२२ से लिया गया है :-

यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः।
य एष संसार तरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्प फले प्रसूते ।। २१ ।।
द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः।
दशैक शाखो द्विसुपर्णनाडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः।।२२।।

यह संसार भगवान की विभूति से आच्छादित है। विभूतिरूप संसार एक वृक्ष के समान है–

१. जिसकी जड़ अव्यक्त है– ब्रह्म या माया देख नहीं पड़ती;

२. जिसकी तीन त्वचा हैं *-वात, पित्त और कफ (खाल,छिलका और बकला);

३. जिसके छः स्कन्ध हैं– पाँच तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) और छटा मन।

४. **जिसकी पच्चीस शाखा हैं– प्रत्येक तत्व से पाँच-पाँच प्रकृतियाँ हुईं –**
आकाश तत्व से काम, क्रोध, लोभ, मद, मान।
पवन तत्व से फैलना, सिकुड़ना, दौड़ना, चलना, उत्क्रमण।
जल तत्व से वीर्य, पित्त, पसीना, रक्त, लार।
पृथ्वी तत्व से हाड़, माँस, चर्म, रोम, नस।

५. जिसके कर्मवासना पत्ते हैं जो अभी फल देने वाले नहीं हैं।

६. जो कर्म फल देने वाले हैं, वह फूल हैं।

७. जिसके सुख-दुःख दो मीठे-कडुवे फल हैं।

८. जिस पर एक बेल चढ़ रही है। वह अविद्या अर्थात माया है।

---

* यद्यपि भागवत में तीन त्वचा का उल्लेख है, तुलसीदास जी चार कहते हैं।

दो०—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार ।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ।। १३ (क)।।

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर ।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ।। १३ (ख)।।

भावार्थ– वेदों ने सबके देखते यह श्रेष्ठ विनती की । फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोक को चले गये (कागभुशुण्डि जी कहते हैं–) "हे गरुड़ जी! सुनिये, तब शिव जी वहाँ आये, जहाँ श्री रघुबीर थे । और वे गद्‌गद वाणी से स्तुति करने लगे । उनका शरीर पुलकावली से पूर्ण हो गया ।

छं०—जय राम रमारमनं समनं । भव ताप भयाकुल पाहि जनं ।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो । सरनागत मागत पाहि प्रभो ।। १ ।।

दससीस बिनासन बीस भुजा । कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ।
रजनीचर बृंद पतंग रहे । सर पावक तेज प्रचंड दहे ।। २ ।।

महि मंडल मंडन चारुतरं । धृत सायक चाप निषंग बरं ।
मद मोह महा ममता रजनी । तम पुंज दिवाकर तेज अनी ।। ३ ।।

मनजात किरात निपात किए । मृग लोग कुभोग सरेन हिए ।
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे । बिषया बन पावँर भूलि परे ।। ४ ।।

बहु रोग बियोगन्हि लोग हए । भवदंघ्रि निरादर के फल ए ।
भव सिंधु अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेम न जे करते ।। ५ ।।

अति दीन मलीन दुखी नितहीं । जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं ।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें । प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें ।।६।।

नहिं राग न लोभ न मान मदा । तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा ।
एहि ते तव सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ।।७।।

करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ । पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ ।
सम मानि निरादर आदरही । सब संत सुखी बिचरंति मही ।। ८ ।।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे । रघुबीर महा रनधीर अजे ।
तव नाम जपामि नमामि हरी । भव रोग महागद मान अरी ।।९।।

गुन सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ।
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं । महिपाल बिलोकय दीन जनं ।। १० ।।

भावार्थ– हे राम ! हे रमारमण ! लक्ष्मीकान्त ! हे भवताप का नाश करने वाले! आप की जय हो । भव-भय से व्याकुल सेवक की रक्षा कीजिये । हे अवधपति ! हे देवताओं के स्वामी! हे रमापति ! हे विभो ! मैं शरणागत आपसे यही माँगता हूँ कि हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये। हे दस सिर और बीस भुजाओं वाले रावण का विनाश करके पृथ्वी के सब महान रोगों (कष्टों)को दूर करने वाले श्री राम जी! राक्षस समूह रूपी जो पतंगे थे, वे सब आपके बाणरूपी अग्नि के प्रचण्ड तेज से भस्म हो गये । आप पृथ्वी-मण्डल के अत्यन्त सुन्दर आभूषण हैं । आप श्रेष्ठ-बाण, धनुष और तरकस धारण किये हुए हैं । महान मद, मोह और ममतारूपी रात्रि के अन्धकार समूह के नाश करने के लिये आप सूर्य के तेजोमय किरण समूह हैं । कामदेव रूपी भील ने मनुष्यरूपी हिरनों के हृदय में कुभोगरूपी बाण मारकर उन्हें गिरा दिया है । हे नाथ ! हे पाप-ताप का हरण करने वाले हरे ! उसे मार कर, विषय रूपी वन में भूले पड़े हुए, इन पामर अनाथ जीवों की रक्षा कीजिये । लोग बहुत से रोगों और वियोगों (दुःखों) से मारे हुए हैं । ये सब आपके चरणों के निरादर के फल हैं । जो मनुष्य आपके चरण-कमलों में प्रेम नहीं करते, वे अथाह भवसागर में पड़े हैं । जिन्हें आपके चरणकमलों में प्रीति नहीं है वे नित्य ही अत्यन्त दीन, मलिन और दुखी रहते हैं । और जिन्हें आपकी लीला-कथा का आधार है, उनको संत और भगवान सदा प्रिय लगने लगते हैं । उनमें न राग (आसक्ति)है, न लोभ, न मान है, न मद । उनको सम्पत्ति और विपत्ति समान है । इसी से मुनि लोग योग (साधन)का भरोसा सदा के लिये त्याग देते हैं और प्रसन्नता के साथ आपके सेवक बन जाते हैं । वे प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरन्तर शुद्ध हृदय से आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं, और निरादर और आदर को समान मानकर वे सब संत सुखी होकर पृथ्वी पर विचरते हैं। हे मुनियों के मनरूपी कमल के भ्रमर! हे महान रणधीर एवं अजेय श्री रघुबीर! मैं आपको भजता हूँ! हे हरि! आपका नाम जपता हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ । आप भवरोग की महान औषध और अभिमान के शत्रु हैं । आप गुण, शील और कृपा के परम स्थान हैं । आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूँ । हे रघुनन्दन ! आप जन्म-मरण, सुख-दुख, राग-द्वेषादि द्वन्द समूहों का नाश कीजिये । हे पृथ्वी का पालन करने वाले ! इस दीन जन की ओर देखिये ।

टिप्पणी– रावण-वध के बाद ब्रह्मा, इन्द्र और शिवजी नें राम की स्तुति की । शिवजी ने स्तुति करने के बाद कहा–

"नाथ जबहिं कोसलपुरी होइहि तिलक तुम्हार ।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार ।। " *

---

* देखिए पृष्ठ १०४२

लंकाकाण्ड में शिवजी ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि अवधपुरी में जब राम का राज्याभिषेक होगा तो मैं पुनः भगवान का चरित देखने आऊँगा । तदनुसार शिवजी अयोध्या आए और उपर्युक्त राम की वन्दना की । यह वन्दना तोटक छन्द में है और मानस की अन्तिम स्तुति है ।

दो०— बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ।। १४ (क)।।

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ।। १४ (ख)।।

भावार्थ— मैं आपसे बार-बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलों की अनन्य भक्ति और आपके भक्तों का सत्संग सदा प्राप्त हो । हे श्रीपते ! हर्षित होकर मुझे यही दीजिये । श्री रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करके उमापति महादेव जी हर्षित होकर कैलास को गये । तब प्रभु ने वानरों को सब प्रकार से सुख देने वाले निवासस्थान दिलाये ।

सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिबिध ताप भव भय दावनी ।।
महाराज कर सुभ अभिषेका । सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका ।।
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ।।
सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई ।।
खगपति राम कथा मैं बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ।।
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी । मोह नदी कहँ सुंदर तरनी ।।
नित नव मंगल कौसलपुरी । हरषित रहहिं लोग सब कुरी ।।
नित नइ प्रीति राम पद पंकज । सब कें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज ।।
मंगन बहु प्रकार पहिराए । द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए ।।

भावार्थ— हे गरुड़ जी ! सुनिये, यह कथा सब को पवित्र करने वाली है, तीनों प्रकार के तापों का और भव (जन्म-मृत्यु) भय का नाश करने वाली है । महाराज श्री रामचन्द्र जी का कल्याणमय राज्याभिषेक निष्काम भाव से सुनकर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं । जो मनुष्य सकाम भाव से सुनते और जो गाते हैं, वे नाना प्रकार के सुख सम्पत्ति पाते हैं । जगत में देवदुर्लभ सुखों को भोगकर अन्तकाल में श्री रघुनाथ जी के परम धाम को जाते हैं । इसे जो जीवन युक्त, विरक्त और विषयी सुनते हैं, वे क्रमशः भक्ति, मुक्ति और

नवीन सम्पत्ति (नित्य नये भोग)पाते हैं। हे पक्षिराज गरुड़ जी! मैं ने अपनी बुद्धि की पहुँच के अनुसार राम कथा वर्णन की है, जो भय और दुःख को हरने वाली है। यह वैराग्य, विवेक और भक्ति को दृढ़ करने वाली है और मोह रूपी नदी के पार करने के लिये सुंदर नाव है। अवधपुरी में नित-नये मंगलोत्सव होते हैं। सभी वर्णों के लोग हर्षित रहते हैं। श्री राम जी के चरणकमलों में जिन्हें श्री शिव जी, मुनिगण और ब्रह्मा जी नमस्कार करते हैं–सब को नित्य नवीन प्रीति है। भिक्षुकों को बहुत प्रकार के वस्त्राभूषण पहनाये गये और ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के दान पाये।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। भाग १, पृष्ठ ६३ पर स्पष्ट कर दिया गया है कि राम-कथा के वक्ता-श्रोता चार हैं। शिवजी ने पार्वती को राम कथा पृष्ठ १६२ से सुनाना प्रारम्भ किया और वह यहाँ तक चल रही है। परन्तु चरण में मात्रा की पूर्ति करने के लिये तुलसीदास जी ने भिम्न भिम्न श्रोताओं के नाम डाल दिये हैं। इस प्रकार ऊपर की चौपाई के पहले चरण में तुलसीदास जी कहते हैं"सुनु खगपति।" इस से तो ऐसा आभास होता है मानो कागभुशुण्डि गरुड़ को राम कथा सुना रहे हैं। वास्तविकता यह है कि **कागभुशुण्डि-गरुड़ संवाद दोहा ६२ के बाद प्रारम्भ होता है।**

"गयउ गरुड़ जहँ बसई भुसुंडा।"

दो०– ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति ॥ १५ ॥

भावार्थ– वानर सब ब्रह्मानन्द में मग्न हैं। प्रभु के चरणों में प्रेम है। उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं; और छः महीने बीत गये।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए ॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥
ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना ॥
सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥

भावार्थ– उन लोगों को अपने घर भूल ही गये। जागृति की तो बात ही क्या, उन्हें स्वप्न में भी घर की सुध (याद)नहीं आती जैसे संतों के मन में परद्रोह कभी नहीं आता। तब श्री रघुनाथ जी ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आकर आदरसहित सिर नवाया।

बड़े ही प्रेम से श्री राम जी ने उनको अपने पास बैठाया, और भक्तों को सुख देने वाले कोमल वचन कहे– ''तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है। मुँह पर किस प्रकार तुम्हारी बड़ाई करूँ। मेरे हित के लिये तुम लोगों ने घरों के सुख छोड़ दिये। इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर कुटुम्ब और मित्र ये सब मुझे प्रिय हैं, परन्तु तुम्हारे समान नहीं। मैं झूठ नहीं कहूँगा। यह मेरा स्वभाव है। सेवक सभी को प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) है। पर मेरा तो दास पर स्वाभाविक अधिक प्रेम है।

दो०– अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ॥ १६ ॥

भावार्थ–हे सखागण! अब सब लोग घर जाओ; वहाँ दृढ़ नियम से मुझे भजते रहना। मुझे सदा सर्वव्यापक और सब का हित करने वाला जानकर अत्यन्त प्रेम करना।''

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए ॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ॥
परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बिसेषा ॥
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं ॥
तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए ॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए ॥
प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए ॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ॥

भावार्थ– प्रभु के वचन सुनकर सब-के-सब प्रेम मग्न हो गये। हम कौन हैं? कहाँ हैं? यह देह की सुध भी भूल गयी। वे प्रभु के सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाये देखते ही रह गये। अत्यन्त प्रेम के कारण कुछ कह नहीं सकते। प्रभु ने उनका अत्यन्त प्रेम देखा, तब उन्हें अनेकों प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सम्मुख वे कुछ कह नहीं सकते। बार-बार प्रभु के चरण-कमलों को देखते हैं। तब प्रभु ने अनेक रंगों के अनुपम सुन्दर गहने-कपड़े मंगवाए। सब से पहले भरत जी ने अपने हाथ से सँवार कर सुग्रीव को वस्त्राभूषण पहनाये। फिर प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मण जी ने विभीषण को भी गहने-कपड़े पहनाये, जो श्री रघुनाथ जी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। अंगद बैठे ही रहे। वे अपनी जगह से हिले डुले तक नहीं। उनका उत्कृष्ट प्रेम देखकर प्रभु ने उनको नहीं बुलाया।

दो०– जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियं धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ ॥ १७ (क)॥

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि ॥ १७ (ख)॥

भावार्थ– जाम्बवान और नील आदि सबको श्री रघुनाथ जी ने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाये। वे सब अपने हृदयों में श्री रामचन्द्र जी के रूप को धारण करके उनके चरणों में मस्तक नवाकर चले। तब अंगद उठकर सिर नवाकर, नेत्रों में जल भरकर और हाथ जोड़कर तथा अत्यन्त विनम्र मानो प्रेम के रस में डुबाये हुए (मधुर) वचन बोले–

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछे घाली॥
असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥

भावार्थ– "हे सर्वज्ञ! हे कृपा और सुख के समुद्र! हे दीनों के लिये दया की खान! हे आर्तों के बन्धु! सुनिये। हे नाथ! मरते समय मेरा पिता बालि मुझे आप की ही गोद में डाल गया था। अतः हे भक्तों के हितकारी! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिये नहीं। मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता, सब कुछ आप ही हैं। आपके चरण कमलों को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ। हे महाराज! आप ही विचार कर कहिये, प्रभु (आप) को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? हे नाथ! इस ज्ञान, बुद्धि और बल से हीन बालक को दीन सेवक जानकर शरण में रखिये। मैं घर की सब नीची-से-नीची सेवा करूँगा और आपके चरणकमलों को देख-देखकर भवसागर से तर जाऊँगा।" ऐसा कहकर वे श्री राम जी के चरणों में गिर पड़े (और बोले–) "हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये। हे नाथ! अब यह न कहिये कि तू घर जा।"

दो०– अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥ १८ (क)॥

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥ १८ (ख)॥

भावार्थ– अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा प्रभु श्री रघुनाथ जी ने उनको उठाकर हृदय से लगा लिया। प्रभु के नेत्रकमलों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। तब भगवान ने अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि-रत्नों के आभूषण बालि-पुत्र अंगद को पहना कर और बहुत प्रकार से समझाकर उनकी विदाई की।

भरत अनुज सौमित्रि समेता । पठवन चले भगत कृत चेता ॥
अंगद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा । फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा ॥
बार बार कर दंड प्रनामा । मन अस रहन कहहिं मोहि रामा ॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी । सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी ॥
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी । चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी ॥
अति सादर सब कपि पहुँचाए । भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥
तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा । पुनि तव चरन देखिहउँ देवा ॥
पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा । सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता । अंगद कहइ सुनहु हनुमंता ॥

भावार्थ– भक्त की करनी को याद करके, भरत जी, छोटे भाई शत्रुघ्न जी और लक्ष्मण जी सहित उनको पहुँचाने चले । अंगद के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है)। वे फिर फिर कर श्री राम जी की ओर देखते हैं । और बार बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं । मन में ऐसा आता है कि श्री राम जी मुझे रहने को कह दें । वे श्री राम जी को देखने की, बोलने की, चलने की तथा हँसकर मिलने की रीति को याद कर-करके सोचते हैं (दुःखी होते हैं) किन्तु प्रभु का रुख देखकर, बहुत से विनय वचन कहकर तथा हृदय में चरणकमलों को रखकर वे चले । अत्यन्त आदर के साथ सब बानरों को पहुँचाकर, भाइयों सहित भरत जी लौट आये । तब हनुमान जी ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनती की और कहा– ''हे देव! दस (कुछ) दिन श्री रघुनाथ जी की चरण सेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा ।'' (सुग्रीव ने कहा–) ''हे पवन कुमार! तुम पुण्य की राशि हो (जो भगवान ने तुमको अपनी सेवा में रख लिया) । जाकर कृपाधाम श्री राम जी की सेवा करो । सब वानर ऐसा कहकर तुरन्त चल पड़े । अंगद ने कहा– ''हे हनुमान!

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । सुग्रीव, हनुमान, अंगदादि वानर सेनापति राज्याभिषेक के बाद छः महीने तक अयोध्या में रहे । तब ''अनेक रंगों के अनुपम सुन्दर गहने-कपड़े'' पहना कर श्री राम ने सबको बिदा किया । पर अंगद वस्त्राभूषण पहनने के लिए अपनी जगह से उठे ही नहीं । वे सिर नवाकर, नेत्रों में जलभर कर और हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र वचन बोले– ''प्रभु को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? हे नाथ! मुझे दीन सेवक जानकर शरण में रखिये । मैं आपकी नीची-से-नीची सेवा करूँगा और आपके चरण कमलों को देख-देख कर भवसागर से तर जाऊँगा ।'' तब भगवान ने अपने हृदय की माला,

वस्त्र और मणि-रत्नों के आभूषण अंगद को पहनाकर और बहुत प्रकार से समझाकर, उनकी विदाई की। तीनों छोटे भाई भरत,लक्ष्मण, शत्रुघ्न उनको पहुँचाने चले। वह बार-बार मुड़कर देखते हैं इस आशा से कि श्री राम शायद मुझे रहने को कह दें। अन्त में हनुमान जी की सराहना करते हैं जिनको भगवान ने अपनी सेवा में रख लिया।

दो०— कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि।। १९ (क)।।

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत।। १९ (ख)।।

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि।। १९ (ग)।।

भावार्थ— मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभु से मेरी दण्डवत् करना और श्री रघुनाथ जी को बार-बार मेरी याद कराते रहना।'' ऐसा कहकर बालिसुत अंगद चले, तब हनुमान जी लौट आये और आकर प्रभु से उनका प्रेम वर्णन किया। उसे सुनकर भगवान प्रेममग्न हो गये। (कागभुशुण्डि जी कहते हैं—)''हे गरुड़ जी! श्री राम जी का चित्त बज्र की अपेक्षा अत्यन्त कठोर और फूल से भी अत्यन्त कोमल है। तब कहिये, यह किसकी समझ में आ सकता है।''

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।।
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी।।
चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा।।
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी।।
राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।

भावार्थ— फिर कृपालु श्री राम जी ने निषादराज को बुला लिया और उसे भूषण-वस्त्र प्रसाद में दिये। (फिर कहा—)''अब तुम भी घर जाओ। वहाँ मेरा स्मरण करते रहना। और मन, वचन तथा कर्म से धर्म के अनुसार चलना। तुम मेरे मित्र हो और भरत के समान भाई हो। अयोध्या में सदा आते जाते रहना।'' यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ। नेत्रों में (आनन्द और प्रेम के आसुँओं का) जल भर कर चरणों में गिर पड़ा। फिर

भगवान के चरण कमलों को हृदय में रखकर वह घर आया और आकर अपने कुटुम्बियों को उसने प्रभु का स्वभाव सुनाया। श्री रघुनाथ जी का यह चरित्र देख-देखकर अवधपुर वासी बार बार कहते हैं कि सुख की राशि श्री रामचन्द्र जी धन्य हैं। श्री रामचन्द्र जी के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गये, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्री रामचन्द्र जी के प्रताप से सब की विषमता (आन्तरिक भेदभाव)मिट गयी।

दो०— बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ।। २० ।।

भावार्थ— सब लोग अपने अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म पर तत्पर हुए वेदमार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी ।।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी ।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ।।

भावार्थ— रामराज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) के अनुसार अपने धर्म में लगे रह कर उसका आचरण करते हैं। धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, दया, शौच और दान)से ज़गत में परिपूर्ण हो रहा है। स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी राम भक्ति में पूर्ण पारंगत हैं और सभी परमगति (मोक्ष)के अधिकारी हैं। छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी के कोई पीड़ा होती है। सभी शरीर सुन्दर और निरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है। सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं, तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरे के किये हुए उपकार को मानने वाले) हैं। कपट चतुराई (धूर्तता)किसी में नहीं है।

दो०—राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ।। २१ ।।

भावार्थ– (कागभुशुण्डि जी कहते हैं–) "हे पक्षिराज गरूड़ जी! सुनिये। श्री राम के राज्य में जड़-चेतन सारे जगत में काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नहीं होते (अर्थात् इनके बन्धन में कोई नहीं है)।"

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥
राम राज करसुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

भावार्थ– अयोध्या में श्री रघुनाथ सात समुद्रों की मेखला (करधनी)वाली पृथ्वी के एक मात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्माण्ड हैं, उनके लिये सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है। बल्कि प्रभु की उस महिमा को समझ लेने पर तो यह कहने में (कि वे सात समुद्रों से घिरी हुई सप्तद्वीपमयी पृथ्वी के एकच्छत्र सम्राट हैं)उनकी बड़ी हीनता होती है। "परन्तु हे गरुड़ जी! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीला में बड़ा प्रेम मनाते हैं। क्योंकि उस महिमा के जानने का फल यह लीला ही है। इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं।" रामराज्य की सुख-सम्पत्ति का वर्णन शेष जी और सरस्वती जी भी नहीं कर सकते। सभी नर नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुषमात्र एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली हैं।

दो०–दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥ २२॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के राज्य में दण्ड केवल सन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वालों के नृत्यसमाज में है। और "जीतो" शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही सुनायी पड़ता है आर्थात् राजनीति में शत्रुओं को जीतने, चोर, डाकुओं आदि को दमन करने के लिये साम, दाम, दण्ड और भेद, ये चार उपाय किए जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिये "जीतो" शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिये दण्ड किसी को नहीं होता। "दण्ड" शब्द केवल सन्यासियों के हाथ में रहने वाले दण्ड के लिये ही रह गया है। सभी अनुकूल होने के कारण भेद नीति की आवश्यकता ही नहीं रह गयी। "भेद" शब्द केवल सुर-ताल के भेद के लिये ही काम में

आता है।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥
लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

भावार्थ— बनों में फूल सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह वैर भूल कर एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुला कर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है। पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते हैं)। भाँति-भाँति के पशुओं के समूह वन में निर्भय विचरते और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द, सुन्धित पवन चलता रहता है। भौरें पुष्पों का रस लेकर गुंजार करते चलते हैं। बेल और वृक्ष माँगने से मधु (मकरन्द)टपका देते हैं। गौएँ मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सतयुग की करनी (स्थिति)हो गई। समस्त जगत के आत्मा भगवान को जगत का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खाने प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखद स्वादिष्ट जल बहाने लगीं। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश)अत्यन्त प्रसन्न हैं।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। दोहा २० से लेकर इस चौपाई तक **तुलसीदास जी ने राम-राज्य के वैभव सुख-समृद्धि का वर्णन किया है। पृष्ठ १०८० की** पहली चौपाई में कहा गया है—

"दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥"

इसी को अगले दो पृष्ठों में सविस्तार कहा गया है। सारांश दोहा २२ में है, जहाँ तुलसीदास जी कहते हैं कि "दण्ड" शब्द का प्रयोग केवल सन्यासियों के हाथ में रहने वाले दण्ड के लिए ही किया जाता है; भेद" शब्द का प्रयोग केवल सुर-ताल के भेद को बताने के लिए किया जाता है और "जीत" का प्रयोग केवल मन को जीतने के लिए किया जाता है।

न केवल जनता अनुशासित है, प्रकृति भी अपने सौन्दर्य और अनुकम्पा को समस्त राम-राज्य में बिखेर रही है। यद्यपि राम का प्रादुर्भाव त्रेतायुग में हुआ, सातों द्वीपों में जहाँ राम राज्य फैला हुआ है सतयुग की स्थिति हो रही है :

१. बनों में फूल सदा फूलते और फलते हैं।

२. पशु और पक्षी स्वाभाविक वैर भूल कर एक साथ रहते हैं।

३. शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु चलती रहती है।

४. बेल और वृक्ष माँगने से मधु टपका देते हैं।

५. गौएँ मनचाहा दूध देती हैं।

६. धरती सदा खेती से भरी रहती है।

७. पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियाँ खान से प्रकट कर दी हैं।

८. नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल, सुखद, स्वादिष्ट जल बहाती हैं।

९. समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं।

१०. समुद्र लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं।

दो०— बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज ।। २३ ।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी के राज्य में चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितने की आवश्यकता होती है। और मेघ माँगने से जब जितना जहाँ चाहिये, उतना ही जल देते हैं।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ॥
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥
पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई ॥
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता ॥

भावार्थ– प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणों को अनेकों दान दिये। श्री रामचन्द्र जी वेदमार्ग के पालने वाले, धर्म की धुरी को धारण करने वाले, प्रकृति जन्य सत्य, रज़ और तम– तीनों गुणों से अतीत और भोगों में (ऐश्वर्य में) इन्द्र के समान हैं। शोभा की खान, सुशील और विनम्र सीता जी सदा पति के अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर श्री राम जी की प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगा कर उनके चरण कमलों की सेवा करती हैं। यद्यपि घर में बहुत से (अपार)दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में कुशल हैं, तथापि स्वामी की सेवा का महत्व जाननें वाली श्री सीता जी घर की सब सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा का अनुसरण करती हैं। कृपासागर श्री रामचन्द्र जी जिस प्रकार से सुख मानते हैं, श्री सीता जी वही करती हैं, क्योंकि वे सेवा की विधि को जानने वाली हैं। घर में कौसल्या आदि सभी सासुओं की सीता जी सेवा करती हैं। उन्हें किसी बात का अभिमान और मद नहीं है। (शिव जी कहते हैं–) ''हे उमा! जगज्जननी रमा (सीता जी) ब्रह्मा आदि देवताओं से वन्दित और सदा आनन्दित (सर्वसम्पन्न)हैं।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। इनमें एक बहुत सुन्दर भाव है। यद्यपि घर में बहुत से दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में कुशल हैं, तथापि स्वामी की सेवा का महत्व जानने वाली श्री सीता जी घर की सब सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा का अनुसरण करती हैं।

दो०– जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ ।। २४ ।।

भावार्थ– देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परन्तु वे उनकी ओर देखती भी नहीं, वे ही जानकी जी अपने महामहिम स्वभाव को छोड़कर श्री रामचन्द्र जी के चरणारविन्द में प्रीति करती हैं।

सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई ।।
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं ।।
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती ।।
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ।।
अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं ।।
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ।।
दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर ।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे ।।

भावार्थ– सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। श्री राम जी के चरणों में उनको अत्यन्त अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभु का मुखारविन्द ही देखते रहते हैं कि कृपालु श्री राम जी कभी हमें कुछ सेवा करने को कहें। श्री रामचन्द्र जी भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकार की नीतियाँ सिखलाते हैं। नगर के लोग हर्षित रहते हैं और सब प्रकार के देव दुर्लभ (देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं। वे दिन रात ब्रह्मा जी को मनाते रहते हैं और उनसे श्री रघुबीर जी के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीता जी के लव और कुश ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद पुराणों ने वर्णन किया है। वे दोनों ही विजयी, विनयशील और गुणों के धाम हैं; और अत्यन्त सुन्दर हैं, मानों श्री हरि के प्रतिबिम्ब ही हों। दो दो पुत्र सभी भाइयों के हुए, जो बड़े ही सुन्दर, गुणवान और सुशील थे।

टिप्पणी– तुलसीदास जी कहते हैं कि सीता के दो पुत्र--लव-कुश--अयोध्या के राजमहल में पैदा हुए। परन्तु बाल्मीकि के अनुसार इन दो पुत्रों का जन्म उनके आश्रम में–प्रयाग और चित्रकूट के बीच की तपोभूमि में हुआ। अधिक जानकारी के लिए देखिए भाग १, पृष्ठ ४१-४२।

दो०– ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार॥ २५॥

भावार्थ– जो (वैदिक) ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे और अजन्मा हैं, तथा माया, मन और गुणों से पार हैं, वही सच्चिदानन्द भगवान श्रेष्ठ नरलीला करते हैं।

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥
अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं॥
भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपवन जाई॥
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥
सब कें गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥

भावार्थ– प्रातःकाल सरयू जी में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते हैं। वशिष्ठ जी वेद और पुराणों की कथाएँ वर्णन करते हैं और श्री राम जी सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं। वे भाइयों को साथ लेकर भोजन करते हैं। उन्हें देखकर सभी माताएँ आनन्द से भर जाती हैं। भरत जी और शत्रुघ्न जी दोनों भाई हनुमान जी सहित उपवनों में जाकर वहाँ बैठकर श्री राम जी के गुणों की कथाएँ पूछते है। और हनुमान जी अपनी सुन्दर बुद्धि से उन गुणों में गोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं। श्री रामचन्द्र जी के निर्मल गुणों को सुनकर दोनों भाई अत्यन्त सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार

दो०– उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर ।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर ।। २८ ।।

भावार्थ– नगर के उत्तर दिशा में सरयू बह रही है, जिसका निर्मल और गहरा जल है। मनोहर घाट बंधे हुए हैं, किनारे पर ज़रा भी कीचड़ नहीं है ।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ।।
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना ।।
राजघाट सब बिधि सुंदर बर । मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर । चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर ।।
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी । बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी ।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ।।
पुर सोभा कछु बरनि न जाई । बाहेर नगर परम रुचिराई ।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा । बन उपबन बापिका तड़ागा ।।

भावार्थ– कुछ दूरी पर अलग वह सुन्दर घाट है, जहाँ घोड़ों और हाथियों के ठट्ठ-के-ठट्ठ जल पिया करते हैं। पानी भरे बहुत से ज़नाने घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते । राजघाट सब प्रकार के सुन्दर और श्रेष्ठ हैं, जहाँ चारों वर्णों के पुरुष स्नान करते हैं। सरयू जी के किनारे-किनारे देवताओं के मन्दिर हैं, जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन (बगीचे) हैं। नदी के किनारे कहीं-कहीं विरक्त और ज्ञानपरायण मुनि और सन्यासी निवास करते हैं। सरयू जी के किनारे-किनारे सुन्दर तुलसी के झुंड-के-झुंड बहुत से पेड़ मुनियों ने लगा रक्खे हैं। नगर की शोभा तो कुछ कहीं नहीं जाती । नगर के बाहर भी परम सुन्दरता है। श्री अयोध्यापुरी के दर्शन करते ही सम्पूर्ण पाप भाग जाते हैं। वन, उपवन, बावली और तालाब शोभित हैं।

छं०– बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं ।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ।।
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं ।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं ।।

भावार्थ– अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुंड शोभा दे रहे हैं। जिनकी सुन्दर (रत्नों की)सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनि तक मोहित हो जाते हैं। (तालाबों में)बहुत रंगों के कमल खिल रहे हैं। अनेकों पक्षी कूज रहे हैं और सुन्दर भौंरे गुंजार कर रहे हैं। परम रमणीय बगीचे कोकिल आदि पक्षियों की सुन्दर बोली से मानों राह चलने वालों को बुला रहे हैं।

दो०— रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ ।। २९ ।।

भावार्थ— स्वयं रमापति भगवान जहाँ राजा हों, उस नगर का कहीं वर्णन किया जा सकता है?अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और सुख-सम्पत्तियाँ अयोध्या भर में छा रही हैं ।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं । बैठि परसपर इहइ सिखावहिं।।
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि । सोभा सील रूप गुन धामहि ।।
जलज बिलोचन स्यामल गातहि । पलक नयन इव सेवक त्रातहि ।।
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि । संत कंज बन रबि रनधीरहि ।।
काल कराल ब्याल खगराजहि । नमत राम अकाम ममता जहि ।।
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि । मनसिज करि हरि जन सुखदातहि ।।
संसय सोक निबिड़ तम भानुहि । दनुज गहन घन दहन कृसानुहि ।।
जनकसुता समेत रघुबीरहि । कस न भजहु भंजन भव भीरहि ।।
बहु बासना मसक हिम रासिहि । सदा एकरस अज अबिनासिहि ।।
मुनि रंजन भंजन महि भारहि । तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि ।।

भावार्थ— लोग जहाँ-तहाँ श्री रघुनाथ जी के गुण गाते हैं और बैठकर एक दूसरे को यही सीख देते हैं कि शरणागत का पालन करने वाले श्री राम जी को भजो। शोभा, शील, रूप और गुणों के धाम श्री राम जी को भजो । कमलनयन और साँवले शरीर वाले को भजो। पलक जिस प्रकार नेत्रों की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार अपने सेवकों की रक्षा करने वाले को भजो । सुन्दर बाण, धनुष और तरकस धारण करने वाले को भजो । संतरूपी कमलवन के खिलाने के लिये सूर्यरूप रणधीर श्री राम जी को भजो । कालरूपी भयानक सर्प के भक्षण करने वाले श्री राम- रूप गरुड़ को भजो । निष्काम भाव से प्रणाम करते ही ममता का नाश कर देने-वाले राम जी को भजो । लोभ-मोहरूपी हरिनों के समूह के नाश करने वाले श्री राम- रूप किरात को भजो । कामदेवरूपी हाथी के लिये सिंहरूप तथा सेवकों को सुख देने वाले हरि श्री राम को भजो । संशय और शोकरूपी अत्यन्त घने अन्धकार के नाश करने वाले श्री राम- रूप सूर्य को भजो । राक्षस रूपी घने वन को जलाने वाले श्री राम- रूप अग्नि को भजो । भवभय को नाश करने वाले श्री जानकी जी समेत श्री रघुवीर को क्यों नहीं भजते? बहुत सी वासनाओं रूपी मच्छरों का नाश करने वाले श्री रामरूप पाले को भजो । नित्य, एकरस, अजन्मा और अविनाशी राम जी को भजो । मुनियों को आनन्द देने वाले, पृथ्वी का भारत उतारने वाले और तुलसीदास के उदार (दयालु)स्वामी श्री राम जी को भजो ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्ति हैं। लोग बैठकर परस्पर कहते हैं कि राम का गुणगान करो। वे राम के निम्न गुण बताते हैं :-

१. राम शरणागत का पालन करने वाले हैं।

२. राम शोभा, शील, रूप और गुणों के धाम हैं।

३. राम कमल-नयन और साँवलें शरीर वाले हैं।

४. पलक जिस प्रकार नेत्रों की रक्षा करती हैं , राम अपने सेवकों की रक्षा करते हैं।

५. राम सुन्दर बाण, धनुष और तरकस धारण करते हैं।

६. राम सन्तरूपी कमलवन के लिए सूर्यरूप हैं।

७. राम कालरूपी भयानक सर्प को भक्षण करने वाले गरुड़ रूप हैं।

८. राम निष्काम भाव से प्रणाम करते ही ममता का नाश कर देते हैं।

९. राम लोभ-मोह रूपी हरिणों का नाश करने वाले किरात-रूप हैं।

१०. राम कामदेव-रूपी हाथी के लिये सिंह-रूप हैं।

११. राम संशय और शोकरूपी अन्धकार का नाश करने के लिये सूर्य-रूप हैं।

१२. राम राक्षस-रूपी घने वन को जलाने के लिये अग्नि रूप है।

१३. राम भव-भय को नाश करने वाले हैं।

१४. राम वासना- मोहरूपी मच्छरों को नाश करने वाले हैं।

१५. राम नित्य, एकरस, अजन्मा और अविनाशी हैं।

१६. राम मुनियों को आनन्द देने वाले हैं।

१७. राम पृथ्वी का भार उतारने वाले हैं।

१८. राम तुलसीदास के उदार स्वामी हैं।

दो०– एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान ।। ३० ।।

भावार्थ– इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष श्री राम जी का गुणगान करते हैं और कृपानिधान श्री रामजी सदा सब पर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं।

जब ते राम प्रताप खगेसा । उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका । बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ॥
जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी । प्रथम अबिद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने । काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ । ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा । इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा ॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना । ए पंकज बिकसे बिधि नाना ॥
सुख संतोष बिराग बिबेका । बिगत सोक ए कोक अनेका ॥

भावार्थ– (कागभुशुण्डि जी कहते हैं–) "हे पक्षिराज गरुड़ जी! जब से रामप्रताप रूपी अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य उदित हुआ है, तब से तीनों लोकों में पूर्ण प्रकाश भर रहा है। इससे बहुतों का सुख और बहुतों के मन में शोक हुआ। जिन्हें-जिन्हें शोक हुआ, उन्हें मैं बखानकर कहता हूँ। सर्वत्र प्रकाश छा जाने से पहले तो अविद्या रूपी रात्रि नष्ट हो गई। अज्ञानरूपी रात्रि न रहने से पाप रूपी उल्लू जहाँ-तहाँ छिप गये और काम-क्रोध रूपी कुमुद संकुचित होगये। भाँति-भाँति के (बन्धन कारक)कर्म, गुण, काल और स्वभाव ये चकोर हैं जो अज्ञानरूपी रात्रि के अभाव में कभी सुख नहीं पाते। मत्सर (डाह), मान, मोह और मद रूपी चोरों का हुनर (कला)भी किसी ओर नहीं चल पाता। धर्म रूपी तालाब में ज्ञान, विज्ञान, ये अनेकों प्रकार के कमल खिल उठे। सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक, ये अनेकों चकवे शोकरहित हो गये।"

दो०– यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास ।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥ ३१ ॥

भावार्थ– श्री राम प्रतापरूपी सूर्य जिसके हृदय में जब प्रकाश करता है, तब जिनका वर्णन पीछे किया गया है वे (धर्म , ज्ञान, विज्ञान, सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक) बढ़ जाते हैं, और जिनका वर्णन किया गया है, वे अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण, स्वभाव आदि नाश को प्राप्त होते हैं (नष्ट हो जाते हैं)।

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा । संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुंदर उपबन देखन गए । सब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥
जानि समय सनकादिक आए । तेज पुंज गुन सील सुहाए ॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना । देखत बालक बहु कालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा । समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं । रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं ॥

तहाँ रहे सनकादि भवानी । जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिबर बहु बरनी । ग्यान जानि पावक जिमि अरनी ॥

भावार्थ– एक बार भाइयों सहित रामचन्द्र जी परम प्रिय हनुमान जी को साथ लेकर सुन्दर उपवन देखने गये । वहाँ के सब वृक्ष फूले हुए और नये पत्तों से युक्त थे। सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आये, जो तेज के पुंज, सुन्दर गुण और शील से युक्त तथा सदा ब्रह्मानन्द में लवलीन रहते हैं । देखने में तो वे बालक लगते हैं;परन्तु हैं बहुत समय के। मानों चारों वेद ही बालक रूप धारण किये हुए हों । वे मुनि समदर्शी और भेद रहित हैं । दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं । उनके एक ही व्यसन है कि जहाँ श्री रघुनाथ जी की चरित्र-कथा होती है वहाँ जाकर वे उसे अवश्य सुनते हैं । (शिव जी कहते हैं–) ''भवानी! सनकादि मुनि वहाँ थे (वहीं से आये थे) जहाँ ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ श्री अगस्त्य जी रहते थे । श्रेष्ठ मुनि ने श्री राम जी की बहुत सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो वैसे ही ज्ञान उत्पन्न करने वाली हैं, जैसे अराणि लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है ।''

दो०– देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह ।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ।। ३२ ।।

भावार्थ– सनकादि मुनियो को आते देखकर श्री रामचन्द्र जी ने हर्षित होकर दण्डवत् की और उनका स्वागत पूछ कर प्रभु नें उनके बैठने के लिए अपना पीताम्बर बिछा दिया।

कीन्ह दण्डवत तीनिउ भाई । सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ॥
स्यामल गात सरोरुह लोचन । सुंदरता मंदिर भव मोचन ॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं । प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं ॥
तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा । स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे । परम मनोहर बचन उचारे ॥
आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा । तुम्हरें दरस जाहिं अघखीसा ॥
बड़े भाग पाइब सतसंगा । बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा ॥

भावार्थ– फिर हनुमान जी सहित तीनों भाइयों ने दण्डवत् की;सब को बड़ा सुख हुआ। मुनि श्री रघुनाथ जी की अतुलनीय छबि देखकर उसी में मग्न हो गये । वे मन को रोक न सके । वे भव (जन्म-मृत्यु के चक्र)से छुड़ाने वाले, श्याम शरीर कमलनयन, सुन्दरता के धाम श्री राम जी को टकटकी लगाये देखते ही रहे गये, पलक नहीं मारते। और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं। उनकी प्रेम विह्वल दशा देखकर उन्हीं की भाँति श्री रघुनाथ जी के नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का)जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया । तदनन्तर प्रभु ने

हाथ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियों को बैठाया और परम मनोहर वचन कहे — ''हे मुनीश्वरों! सुनिये, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शनों से ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े ही भाग्य से सत्संग प्राप्त होता है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्यु का चक्र नष्ट हो जाता है।

दो०— संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ।। ३३ ।।

भावार्थ— संत का संग मोक्ष (भव-बन्धन से छूटने) का और कामी का संग भवबन्धन में पड़ने का मार्ग हैं। संत, कवि और पण्डित, तथा वेद, पुराण आदि सभी सदग्रन्थ ऐसा कहते हैं।''

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी ।।
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय ।।
जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर ।।
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर ।।
ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद ।।
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन ।।
सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय ।।
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय ।।

भावार्थ— प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर पुलकित शरीर से स्तुति करने लगे— ''हे भगवंत! आपकी जय हो। आप अन्तरहित, विकार रहित, पापरहित, अनेक (सब रूपों में प्रकट), एक (अद्वितीय) और करूणामय हैं। हे निर्गुण! आपकी जय हो। हे गुणसागर! आपकी जय हो, जय हो। आप सुख के धाम, अत्यन्त सुन्दर और अति चतुर हैं। हे लक्ष्मीपति! आपकी जय हो। हे पृथ्वी के धारण करने वाले! आपकी जय हो। आप उपमा रहित, अजन्मा, अनादि और शोभा की खान हैं। आप ज्ञान के भण्डार, स्वयं मानरहित और दूसरों को मान देने वाले हैं। वेद और पुराण आपका पावन सुन्दर यश गाते हैं। आप तत्व के जानने वाले, उपकार मानने वाले और अज्ञान का नाश करने वाले हैं। हे निरंजन (मायारहित) आपके अनेकों (अनन्त) नाम हैं, और कोई नाम नहीं है (अर्थात आप सब नामों से परे हैं)। आप सर्वरूप हैं, सब में व्याप्त हैं और सब के हृदय रूपी घर में सदा निवास करते हैं। अतः आप हमारा परिपालन कीजिये। राग द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि द्वन्द, विपत्ति और भव के जाल को काट दीजिये। हे रामजी! हमारे हृदय में बस कर काम और मद का नाश कीजीये।

दो०—परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ।। ३४ ।।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई । तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ।।

सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन । कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन ।।

संत असंत भेद बिलगाई । प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ।।

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ।।

संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ।।

काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ।।

भावार्थ– तथापि हे कृपानिधान! मैं आपसे एक धृष्टता करता हूँ । मैं सेवक हूँ और आप सेवक को सुख देने वाले हैं । (इससे मेरी घृष्टता को क्षमा कीजिये और मेरे प्रश्न का उत्तर देकर सुख दीजिये)। हे रघुनाथ जी! वेद पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गायी है । आपने भी अपने श्री मुख से उनकी बड़ाई की है । और उनपर प्रभु (आप)का प्रेम भी बहुत है । हे प्रभो! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ । आप कृपा के समुद्र हैं और गुण और ज्ञान में अत्यन्त निपुण हैं । हे शरणागत का पालन करने वाले! संत और असंत के भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिये ।'' (श्री राम जी ने कहा–) ''हे भाई! संतों के लक्षण (गुण)असंख्य हैं जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं । संत और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन का आचरण होता है । हे भाई! सुनो । कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है, (क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षों को काटना है)और चन्दन (अपने स्वभाव बश) अपना गुण देकर उसे (काटने वाली कुल्हाड़ी को)सुगन्ध से सुवासित कर देता है।

दो०– ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड ।

अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ।। ३७ ।।

भावार्थ– इसी गुण के कारण चन्दन देवताओं के सिरों पर चढ़ता है और जगत का प्रिय हो रहा है । और कुल्हाड़ी के मुख को यह दण्ड मिलता है कि उसको आग में जला कर फिर घन से पीटते हैं ।

बिषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख देखे पर ।।

सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ।।

कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ।।

सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ।।

बिगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ।।

सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ।।

सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ।।

भावार्थ– संत विषयों में लम्पट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्‌गुणों की खान होते हैं। उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे सब में सर्वत्र, सब समय समता रखते हैं, उनके मन में कोई उनका शत्रु नहीं है, वे मद से रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किये हुए रहते हैं। उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं। मन, वचन और कर्म से मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सब को सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणों के समान हैं। उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नाम के परायण होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता सब के प्रति मित्रभाव और ब्राह्मण के चरणों में प्रीति होती है, जो धर्मों को उत्पन्न करने वाली है। हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उनको सदा सच्चा संत जानना। जो सम, दम, नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते और मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते।

दो०– निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ।। ३८ ।।

भावार्थ– जिन्हें निन्दा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

टिप्पणी– तुलसीदास जी ने संतों की महिमा का निरन्तर गुणगान किया है। ''मानस'' की प्रस्तावना संतों के गुणगान से ही आरम्भ होती है। बालकाण्ड के दोहा–१ के बाद के दो दोहों में और ग्यारह चौपाइयों में संतों की महिमा गाई गयी है। देखिए भाग १, पृष्ठ ९-१३। फेर अरण्यकाण्ड में नारद के पूछने पर राम ने दोहा ४५ और उसके ऊपर-नीचे की चौपाइयों में संतों के गुणों का विश्लेषण किया। राम ने संतों के ३३ गुण गिनाए, जिनकी सूची पृष्ठ ७७८-७९ पर दी गई है।

सनकादि मुनियों के चले जाने के बाद, भरत ने राम से वही प्रश्न किया जो नारद ने अरण्यकाण्ड में किया था और राम ने पुनः संतों के गुण गिनाए। यह गुण दोहा ३६ के बाद की दो चौपाइयों और दो दोहों में गिनाए गये हैं। वह इस प्रकार हैं :-

१. संतों का स्वभाव चन्दन के समान होता है। कुल्हाड़ी उसके पेड़ को काटती है, फिर भी वह कुल्हाड़ी के फलक को सुगंध देता है।

२. सन्त विषयों में लिप्त नहीं होते।

३. सन्त शील और सद्गुणों की खान होते हैं।

४. सन्तों को पराया दुःख देख कर दुःख और सुख देखकर सुख होता है।

५. सन्त सब में, सर्वत्र, सब समय समता रखते हैं।

६. संतों के मन में उनका कोई शत्रु नहीं है।

७. संत मद से रहित और वैराग्यवान् होते हैं।

८. संत लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किये रहते हैं।

९. संतों का चित्त बड़ा कोमल होता है।

१०. संत दीनों पर दया करते हैं।

११. संत मन, वचन और कर्म से भगवान की विशुद्ध भक्ति करते हैं।

१२. संत सबको सम्मान देते हैं।

१३. संत मान रहित होते हैं।

१४. संतों की कोई कामना नहीं होती।

१५. संत भगवान के नाम के परायण होते हैं।

१६. संत शान्ति, वैराग्य, विनम्रता और प्रसन्नता के घर होते हैं।

१७. संतों की ब्राह्मणों के चरण में प्रीति होती है, जो धर्म को उत्पन्न करने वाली है।

१८. संतों में शीतलता, सरलता और सबके प्रति मित्रभाव होता है।

१९. संत सम, दम, नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते।

२०. संत मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते।

२१. संतों को निन्दा और स्तुति दोनों समान हैं।

२२. संतों को भगवान के चरण कमलों में ममता है।

२३. संत गुणों के धाम हैं।

१४. संत सुख की राशि हैं।

१५. संत भगवान राम को प्राणों समान प्रिय हैं।

राम ने नारद को जो संतों के लक्षण बताए और जो लक्षण भरत को बताए, उन दोनों में बहुत कुछ समता है। पुनरुक्ति इस प्रकार है :

पृष्ठ ७७८-७९ के लक्षणों की क्रम-संख्या		ऊपर गिनाए हुए लक्षणों की क्रम-संख्या
१	=	७ +८ +१२
२	=	१४
४	=	२४
१४	=	१३
१७	=	२३
२०	=	२२
२२ +२४+२५	=	१८
२६	=	१९
२७	=	१७
३२	=	१५

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई।।
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।

भावार्थ– अब असंतों का (दुष्टों का) स्वभाव सुनो। कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। उनका संग सदा दुःख देने वाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जाति की) गाय कपिला (सीधी और दुधारु)गाय को अपने संग से नष्ट कर देती है। दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। ये पराई सम्पत्ति देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निन्दा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं, मानो रास्ते में पड़ी निधि पाली हो। वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसी से बैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं। उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है। और झूठा ही चबेना होता है (अर्थात् वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का सहारा लेकर दूसरों

का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रूपये ले लिये, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आये, यद्यपि चबैना चबा कर रह जाते हैं, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं)। जैसे मोर बहुत मीठा बोलता है परन्तु उसका हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान् विषैले सांपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं (परन्तु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं)।

दो०– पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद।। ३९।।

भावार्थ– वे दूसरों से द्रोह करते हैं, परायी स्त्री, पराये धन और पराई निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।।
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।।
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।।
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं।।
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।।
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा।।

भावार्थ– लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है। वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के परायण होते हैं। उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता। यदि किसी की बड़ाई सुन पाते हैं, तो वे ऐसी साँस लेते हैं मानो जूड़ी आ गई हो। और जब किसी कि विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत भर के राजा हो गये हों। वे स्वार्थ परायण, परिवार वालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लम्पट और अत्यन्त क्रोधी होते हैं। वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, अपने संग से दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान की कथा ही सुहाती है। वे अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदों के निन्दक और जबर्दस्ती पराये धन के स्वामी (लूटने वाले) होते है। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं परन्तु ब्राह्मण-द्रोह विशेष रूप से करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है, परन्तु वे ऊपर से सुन्दर वेश धारण किये रहते हैं।

दो०– ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेतौं नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं।। ४०।।

भावार्थ– ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सतयुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर मे थोड़े से होंगे, और कलियुग में तो इनके झुंड के झुंड होंगे।

टिप्पणी– मानस की प्रस्तावना में गोस्वामी तुलसीदास जी ने संतों की महिमा-गान के बाद, खलपुरुषों के लक्षण बताए हैं (पृष्ठ १४-१५)। इसी प्रकार राम ने संतों के लक्षण बताने के बाद, भरत को खलपुरुषों के दोष बताए हैं :-

१. असंत कुल्हाड़ी के समान होते हैं। वह संत-रूपी श्रीखण्ड को काटती है, इसीलिये उसे दण्डित करने के लिए उसके फलक को आग में जलाकर घन से पीटा जाता है।

२. असंतों का संग सदा दुःख देने वाला होता है।

३. असंतों के हृदय में बहुत अधिक सन्ताप रहता है।

४. असंत पराई सम्पत्ति देखकर सदा जलते हैं।

५. असंत दूसरों की निन्दा सुनकर बहुत हर्षित होते हैं।

६. असंत काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण होते हैं।

७. असंत निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं।

८. असंत बिना ही कारण सबसे बैर किया करते हैं।

९. असंत जो भलाई करता है, उसके साथ भी बुराई करते हैं।

१०. असंतों का झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है।

११. असंत ऊपर से मीठे बचन बोलते हैं, परन्तु हृदय से बड़े ही निर्दयी होते हैं।

१२. असंत दूसरों से द्रोह करते हैं।

१३. असंत परायी स्त्री, पराये धन और परायी निन्दा में आसक्त रहते हैं।

१४. असंत पामर और पापमय मनुष्य का शरीर धारण किये हुये वास्तव में राक्षस ही होते हैं।

१५. असंतों का लोभ ही ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है।

१६. असंत पशुओं के समान आहार और मैथुन के परायण होते हैं।

१७. असंतों को यमपुर का भय नहीं लगता।

१८. असंत जब किसी की बड़ाई सुनते हैं,तो ऐसी साँस लेते हैं मानो जूड़ी आ गई हो।

१९. असंत जब किसी की विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत के राजा हो गये हों।

२०. असंत स्वार्थ परायण होते हैं।

२१. असंत परिवार वालों के विरोधी होते हैं।

२२. असंत काम और लोभ के कारण लम्पट और अत्यन्त क्रोधी होते हैं।

२३. असंत माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण—किसी को नहीं मानते।

२४. असंत आप तो नष्ट हुये ही रहते हैं, अपने संग दूसरों को नष्ट करते हैं।

२५. असंत मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं।

२६. असंतों को न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान की कथा ही सुहाती है।

२७. असंत अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी और वेदों के निन्दक होते हैं।

२८. असंत ज़बर्दस्ती पराये धन के स्वामी होते हैं।

२९. असंत दूसरों से द्रोह करते हैं, विशेष तौर पर ब्राह्मणों से।

३०. यद्यपि असंतों के हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है, परन्तु ऊपर से वे सुन्दर वेश धारण किये रहते हैं।

३१. असंत सतयुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े होंगे। कलियुग में अनेक।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोहबस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।।

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने।।
त्यागहिं कर्मसुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।।
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे।।

भावार्थ– हे भाई! परोपकार के समान होई धर्म नहीं है और दूसरों को दु:ख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप)नहीं हैं । हे तात ! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चय सिद्धान्त) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पण्डित लोग जानते हैं । मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दु:ख पहुंचाते हैं, उनको भव के महान संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं। इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है । हे भाई! मैं उनके लिये कालरूप (भयंकर) हूँ, और उनके अच्छे और बुरे कर्मो का यथा योग्य फल देने वाला हूँ। ऐसा विचारकर जो लोग परम चतुर हैं, वे संसृति (संसार) **को दु:ख रूप जानकर मुझे ही भजते हैं। इसी से वे शुभ और अशुभ फल देने वाले** कर्म को त्याग कर देवता, मनुष्य और मुनियों के नायक मुझ को भजते हैं। मैंने संतों और असंतों के गुण कहे। जिन लोगों ने इन गुणों को समझ रक्खा है, वे सब भव (जन्म-मरण के चक्कर) में नहीं पड़ते ।

टिप्पणी– जब वेदव्यास अट्ठारह पुराण लिख चुके, तो उन्हें अपने जीवन के अन्तिम दिनों में बड़ी ग्लानि हुई कि इतना लिखने के बावजूद उनका अपनी जाति और समाज के प्रति क्या सन्देश है? वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि–

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्।
परोपकारं पुण्याय पापाय परिपीडनम्।।"

ऊपर की चौपाई का पहला पद व्यास के आर्षवचन का अक्षरशः अनुवाद है– "पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

दो०– सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।। ४१।।

भावार्थ–हे तात! सुनो, माया के रचे हुए ही अनेक (सब)गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। गुण (विवेक)इसी में है कि दोनों ही न देखे जायें, इन्हें देखना यही अविवेक हैं।"

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयँ समाई।।
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा।।
पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए।।
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं।।

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं।।
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं।।
सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं।।
मुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।।

भावार्थ– भगवान के श्री मुख से ये वचन सुनकर सब भाई हर्षित हो गये। प्रेम उनके हृदय में समाता नहीं। वे बार-बार बड़ी विनती करते हैं। विशेषकर हनुमान जी के हृदय में अपार हर्ष है। तदनन्तर श्री रामचन्द्र जी अपने महल को गये। इस प्रकार वे नित्य नयी लीला करते हैं। नारदमुनि अयोध्या में बार-बार आते हैं और आकर श्री राम जी के पवित्र चरित्र गाते हैं। मुनि यहाँ से नित्य नये-नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोक में जाकर सब कथा कहते हैं। ब्रह्मा जी सुनकर अत्यन्त सुख मानते हैं और कहते हैं– "हे तात! बार-बार श्री राम जी के गुणों का गान करो।" सनकादि मुनि नारद जी की सराहना करते हैं। यद्यपि वे (सनकादि) मुनि ब्रह्मनिष्ट हैं, परन्तु श्री राम जी का गुणगान सुनकर वे भी अपनी ब्रह्मसमाधि को भूल जाते हैं और आदर पूर्वक उसे सुनते हैं। वह रामकथा सुनने के अधिकारी हैं।

दो०– जीवनमुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान।। ४२।।

भावार्थ– सनकादि मुनि जैसे जीवनमुक्त और ब्रह्मनिष्ट पुरुष भी ध्यान (ब्रह्म-समाधि) छोड़कर श्री राम जी के चरित्र सुनते हैं। यह जानकर भी जो श्री हरि की कथा से प्रेम नहीं करते, उनके हृदय सचमुच ही पत्थर के समान हैं।

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।
सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

भावार्थ– एक बार श्री रघुनाथ जी के बुलाये हुए गुरु वशिष्ठ जी ब्राह्मण और नगर निवासी सब सभा में आये। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गये, तब भक्तों के जन्म-मरण को मिटाने वाले श्री राम जी वचन बोले– "हे समस्त नगर

निवासियों! मेरी बात सुनिये, मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीति की बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है (अर्थात्, न तो मैं इस ममत्व के भाव से कहता हूँ कि ये मेरे हैं, मैं कहूँगा सो मान ही लेंगे, या न इस वाणी में ही मेरी कोई ममता है जिसके न मानने से मुझे खेद होगा। न राजा की हैसियत से कहता हूँ कि मेरी राजाज्ञा माननी ही पड़ेगी, और न अन्याय की ही बात कहता हूँ) । इसलिए (संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर)मेरी बात को सुन लो और यदि तुम्हें अच्छी लगे, तो उसके अनुसार करो। वह मेरा सेवक है, और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने । हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके)मुझे रोक देना। बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है । सब ग्रन्थों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है । यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाज़ा है । इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया—

दो०— सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।। ४३।।

भावार्थ— वह परलोक में दुख पाता है, सिर पीट-पीट कर पछताता है तथा (अपना दोष न समझकर) काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है।

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं।।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जानि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

भावार्थ— हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है। (इस जगत के भोगों की तो बात ही क्या), स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुःख देने वाला है। अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदल कर विष ले लेते हैं। जो पारस मणि को खोकर बदले में घोंघी ग्रहण कर लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान)नहीं कहता। यह अविनाशी जीव चार (अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज) आकारों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है । माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इसके वश में हुआ)यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करने वाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्य का शरीर देते हैं। यह मनुष्य का शरीर भव सागर से तारने के लिये बड़ा (जहाज़)है। मेरी कृपा

ही अनुकूल वायु है। सद्‌गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेने वाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनता से मिलने वाले) साधन सुलभ होकर (भगवत कृपा से सहज ही) प्राप्त हो गये हैं।

दो०— जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।। ४४।।

भावार्थ— जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे वह कृतघ्न और मन्दबुद्धि है, और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता।।
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा।।

भावार्थ— यदि परलोक और यहाँ दोनों जगह सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदय में दृढ़ता से पकड़ रक्खो। हे भाई! यह मेरी भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वेदों ने इसे गाया है। ज्ञान अगम (दुर्लभ) है, उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न हैं। उसका पालन कठिन है और उसमें मन के लिये कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करने पर कोई उसे पा भी लेता है, सो वह भी भक्ति रहित होने से मुझको प्रिय नहीं होता। भक्ति स्वतन्त्र है; और सब सुखों की खान है। परन्तु सत्सग के (संतों का संग) बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते। और पुण्यपुंज के बिना संत नहीं मिलते, सत्संगति ही संसृति का (जन्म मरण के चक्र का) अन्त करती है। जगत में पुण्य एक ही है; (उसके समान) दूसरा नहीं। वह है— मन, कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना। जो कपट का त्याग करके ब्राह्मणों की सेवा करता है उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं।

दो०— औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। ४५।।

भावार्थ— और भी एक गुप्त बात है, मैं उसे सब से हाथ जोड़ कर कहता हूँ कि शंकर जी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।।

मोर दास कहाइ नर आसा । करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई । एहि आचरन बस्य मैं भाई ॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारंभ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥

भावार्थ– कहो तो, भक्तिमार्ग में कौन सा परिश्रम है? इसमें न योग की आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवास की । यहाँ इतना ही आवश्यक है कि सरल स्वभाव हो, मन में कुटिलता न हो, और जो कुछ मिले उसी में सदा सन्तोष रक्खे । मेरा दास कहलाकर यदि कोई (साधारण) मनुष्यों की सी आशा करे, तो तुम्ही कहो उसका क्या विश्वास है? (अर्थात् उसकी मुझ पर आस्थ बहुत ही निर्बल है) । बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ? हे भाइयों मैं तो इसी आचरण के वश में हूँ । न किसी से वैर करे, न लड़ाई झगड़ा करे;न आशा रक्खे ; न भय ही करे । उसके लिये सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं। जो कोई भी आरम्भ (आसक्ति पूर्वक कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (घर में ममता नहीं है), जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है , जो(भक्ति करने में) निपुण और विज्ञानवान है । संतजनों के संसर्ग (सत्संग)से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मन में सब विषय यहाँ तक कि स्वर्ग और मुक्ति तक (भक्ति के सामने) तृण के समान हैं, जो भक्ति के पक्ष में हठ करता है, पर मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है ।

दो०– मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह ।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह ॥ ४६ ॥

भावार्थ– जो मेरे गुणसमूहों का और मेरे नाम का परायण है, तथा ममता, मद और मोह से रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो परामात्मा रूप परमानन्द-राशि को प्राप्त है ।

टिप्पणी– जैसे ईशुमसीह ने Sermon on the Mount दिया था, जैसे कृष्ण भगवान ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था, वैसे ही राम ने चौदह वर्ष के बनवास से लौटने पर-- ''गुरु, द्विज, पुरबासी'' का एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया और उसमें जीवन के शाश्वत सत्यों पर प्रवचन किया--

''माया की प्रेरणा से काल, कर्म स्वभाव और गुण से घिरा हुआ यह जीव चार प्रकार से जन्म लेता है और चौरासी लाख योनियों में निरन्तर भटकता रहता है । ईश्वर कभी दया करके इस जीव को मनुष्य का शरीर दे देते हैं । बड़े भाग्य से यह मनुष्य-शरीर मिलता है । मनुष्य का शरीर भवसागर से तरने के लिये एक जहाज़ है जिसका सद्गुरु कर्णधार है और

भगवान की कृपा अनुकूल वायु है। जो मनुष्य ऐसा साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मन्दबुद्धि है। इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर जिसने अपना परलोक नहीं बनाया, वह बाद में सिर पीट-पीट कर पछ्ताता है और अपना दोष व्यर्थ में काल, कर्म और ईश्वर पर डालता है।

इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषय-भोग नहीं है। जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं।

यदि इहलोक और परलोक दोनों जगह सुख चाहते हो, तो भक्ति मार्ग अपनाओ। भक्तिमार्ग में कोई परिश्रम नहीं। इसमें न योग की आवश्यकता है, न यज्ञ, न जप, तप और उपवास की। यहाँ इतना ही आवश्यक है कि सरल स्वभाव हो, मन में कुटिलता न हो। जो कुछ मिले, उसी में सदा सन्तोष रक्खे। न किसी से वैर करे, न लड़ाई झगड़ा करे, न आशा रक्खे, न भय ही करे। जो कोई आसक्ति-पूर्वक कर्म नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है, जो मानहीन है, पापहीन और क्रोधहीन है, भक्ति करने में निपुण और विज्ञानवान है, जिसके मन में सब विषय तृण के समान हैं, जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है, जो भगवान के गुण-समूहों के और उसके नाम का परायण है, तथा ममता, मद और मोह से रहित है, वह परमात्मा-रूप परमानन्द-राशि को प्राप्त करता है।

भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखों की खान है। परन्तु सत्संग के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते। और पुण्यपुञ्ज के बिना सन्त नहीं मिलते। सत्संगति ही जन्म-मरण के चक्र का अन्त करती है। जगत में पुण्य एक ही है। वह है मन, कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना। जो कपट का त्याग करके, ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं। एक बात और है-- शंकर के भजन के बिना, मनुष्य राम की भक्ति नहीं पाता।*

भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है। इसके विपरीत, ज्ञान-मार्ग दुर्लभ है। उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न हैं। उसका पालन कठिन है और उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करने पर यदि कोई उसे पा भी लेता है, तो वह भी भक्ति-रहित होने से भगवान को प्रिय नहीं होता।''

भक्ति और ज्ञान मार्ग में अन्तर बताते हुए, राम ने नारद को समझाया था कि भक्त माता के शिशुपुत्र के समान हैं और ज्ञानी प्रौढ़ पुत्र के समान। शिशु जब सयाना हो जाता है, तो उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है परन्तु उसको संकट से बचाने की

---

* शिव और विष्णु की उपासना के सामञ्जस्य के लिए, देखिए लंकाकाण्ड, दोहा १ के नीचे की चौपाई, पृष्ठ ९००-९०१

चिन्ता नहीं करती । क्योंकि प्रौढ़ माता पर निर्भर न रहकर अपनी रक्षा आप करने लगता हैं । उसी प्रकार भक्त के शत्रुओं (काम-क्रोध आदि)को मारने की ज़िम्मेदारी भगवान पर रहती है, परन्तु अपने बल को मानने वाले ज्ञानी के शत्रुओं का नाश करने की जिम्मेदारी भगवान पर नहीं है ।*

सुनत सुधासम बचन राम के । गहे सबनि पद कृपाधाम के॥
जननि जनक गुर बंधु हमारे । कृपा निधान प्रान ते प्यारे ॥
तनु धनु धाम राम हितकारी । सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी ॥
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ । मातु पिता स्वारथ रत ओऊ ॥
हेतु रहित जग जुग उपकारी । तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी ॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं । सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं ॥
सब के बचन प्रेम रस साने । सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने ॥
निज निज गृह गए आयसु पाई । बरनत प्रभु बतकही सुहाई ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के अमृत वचन सुनकर सबने कृपाधाम के चरण पकड़ लिये । (और कहा–)"हे कृपानिधान! आप हमारे माता,पिता, गुरु, भाई सब कुछ हैं, और प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। और हे शरणागत के दुःख हरने वाले राम जी! आप ही हमारे तन, धन, धाम और सभी प्रकार से हित करने वाले हैं । ऐसी शिक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता । माता-पिता हितैषी हैं और शिक्षा भी देते हैं, परन्तु वे भी स्वार्थ परायण हैं। (इसलिये ऐसी परम हित करने वाली शिक्षा नहीं देते)। हे असुरों के शत्रु! जगत में बिना हेतु के (निःस्वार्थ)उपकार करने वाले तो दो ही हैं– एक आप, दूसरे आपके सेवक । जगत में शेष सभी स्वार्थ के मित्र हैं । हे प्रभो! उनमें स्वप्न में भी परमार्थ का भाव नहीं है ।" सब के प्रेम रस से सने हुए वचन सुनकर श्री रघुनाथ जी हृदय में हर्षित हुए । फिर आज्ञा पाकर सब प्रभु की सुन्दर बातचीत का वर्णन करते हुए अपने-अपने घर गये ।

दो०– उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप ।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप ।। ४७ ।।

---

* देखिए पृष्ठ ७७४-७५

भावार्थ– (शिवजी कहते हैं–) ''हे उमा! अयोध्या में रहने वाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्वरुप हैं, जहाँ स्वंय सच्चिदानन्द श्री रघुनाथ जी राजा हैं।''

एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए ॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा ॥
राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी ॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा ॥
महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना ॥
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा ॥
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही ॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा ॥

भावार्थ– एक बार मुनि वशिष्ठ जी वहाँ आये जहाँ सुख के धाम श्री राम जी थे। श्री रघुनाथ जी ने उनका बहुत ही आदर सत्कार किया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया। मुनि ने हाथ जोड़कर कहा–''हे कृपासागर श्री राम जी! मेरी कुछ विनती सुनिये। आपके आचरणों (मनुष्योचित-चरित्रों को देख-देखकर मेरे हृदय में अपार मोह होता है। हे भगवान! आपकी महिमा की सीमा नहीं है, उसे वेद भी नहीं जानते। फिर मैं किस प्रकार कह सकता हूँ? पुरोहिती का कर्म (पेशा)बहुत ही नीचा है। वेद, पुराण और स्मृति सभी इसकी निन्दा करते हैं। जब मैं उसे (सूर्यवंश की पुरोहिती का काम)नहीं लेता था, तब ब्रह्मा जी ने मुझे कहा था–'हे पुत्र! इससे तुमको आगे चलकर बहुत लाभ होगा। स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्य रूप धारण करके रघुकुल के भूषण राजा होंगे।'

दो०– तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ॥ ४८ ॥

भावार्थ– तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिसके लिये योग, यज्ञ, व्रत और दान दिये जाते हैं, उसे मैं इसी कर्म से पा जाऊँगा; तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर ॥
छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ॥

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित । सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित ॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाकें पद सरोज रति होई ॥

भावार्थ– जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने वर्णाश्रम के धर्म, श्रुतियों से उत्पन्न (वेद विहित) बहुत से शुभ कर्म, दान, दया, दम (इन्द्रियनिग्रह), तीर्थस्नान आदि जहाँ तक वेद और संतजनों ने धर्म कहे हैं (उनके करने का–), हे प्रभो! अनेक तन्त्र, वेद और पुराणों के पढ़ने और सुनने का, सर्वोत्तम फल एक ही है । और सब साधनों का भी एक सुन्दर फल है, कि आपके चरणकमलों में सदा-सर्वदा प्रेम हो । मैल से धोने से क्या मैल छूटता है? जल के मथने से क्या कोई घी पा सकता है । (उसी प्रकार) हे रघुनाथ जी! प्रेम भक्तिरूपी निर्मल जल के बिना अन्तःकरण का मल कभी नहीं जाता। वही सर्वज्ञ है , वही तत्वज्ञ और पण्डित है, वही गुणों का घर और अखण्ड विज्ञानवान है; वही चतुर और सब के सुलक्षणों से युक्त है, जिसका आपके चरण-कमलों में प्रेम है ।

दो०– नाथ एक बार मागउँ राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ।। ४९ ।।

भावार्थ– हे नाथ! हे श्री राम जी! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ । कृपा करके दीजिये । प्रभु (आप) के चरण कमलों में मेरा प्रेम जन्म-जन्मान्तर में भी न घटे ।''

टिप्पणी– जब श्री राम महासभा में ज्ञानोपदेश दे चुके (पृष्ठ ११०४-०९), तो अकेले में वशिष्ठ जी उनसे मिलने आए और कहने लगे–''पुरोहित का पेशा नीच है । जब मैं सूर्यवंश की पुरोहिती का काम नहीं लेता था, तब ब्रह्मा जी ने मुझे समझाया की आगे चलकर तुमको इससे बहुत लाभ होगा क्योंकि स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्य-रूप धारण करके रघुकुल के राजा होंगे । ब्रह्मा जी की बात मेरी समझ में आ गई और मैंने रघुवंश की पुरोहितीं स्वीकार कर ली। जिसको पाने के लिए लोग योग और व्रत करते हैं और दान देते हैं, उसे मैं अपने कर्म से ही पा गया । आपको इस भाँति पाकर, अब मैं आपसे एक ही वरदान माँगता हूँ । वह यह कि आपके चरण-कमलों में मेरा प्रेम जन्म-जन्मान्तर इसी प्रकार बना रहे ।''

अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए । कृपासिंधु के मन अति भाए ॥
हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ॥
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए । गज रथ तुरग मगावत भए ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे ॥
हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ सीतल अवँराई ॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥
मारुतसुत तब मारुत करई । पुलक बपुष लोचन जल भरई ॥

हनूमान सम नहिं बड़भागी । नहिं कोउ राम चरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई । बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥

भावार्थ– ऐसा कहकर मुनि वशिष्ठ जी घर आये । वे कृपासागर श्री राम जी के मन को बहुत ही अच्छे लगे । तदनन्तर सेवकों को सुख देने वाले श्री राम जी ने हनुमान जी तथा भरत जी आदि भाइयों को साथ लिया । और फिर कृपालु श्री राम जी नगर के बाहर गये और वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मँगवाये । उन्हें देखकर; कृपा करके प्रभु ने सब की सराहना की । और उनको जिस-जिसने चाहा उन-उनको उचित जानकर दिया । संसार के सभी श्रमों को हरने वाले प्रभु ने (हाथी, घोड़े आदि बाँटने में) श्रम का अनुभव किया, और श्रम मिटाने को वहाँ गये जहाँ शीतल अमराई (आमों का बगीचा) थी । वहाँ भरत जी ने अपना वस्त्र बिछा दिया । प्रभु उस पर बैठ गये और सब भाई उनकी सेवा करने लगे । उस समय पवनपुत्र हनुमान जी (पंखा) करने लगे । उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया । ''हे गिरिजे! हनुमान जी के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्री राम जी के चरणों का प्रेमी ही है , जिनके प्रेम और सेवा की स्वयं प्रभु ने अपने श्री मुख से बार-बार बड़ाई की है ।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । इधर राम बहुत व्यस्त रहे। जब विराट् सम्मेलन में ज्ञानोपदेश दे चुके, तो वशिष्ठ जी उनसे मिलने आये और उन्हें बताया कि उन्होंने रघुवंश की पुरोहिती क्यों स्वीकार की । वशिष्ट जी से वार्ता करने के बाद राम ने ''गज, रथ, तुरग'' मँगवाये और उनको यथा योग्य लोगों को दान कर दिया । इन सब कार्यों में व्यस्त रहने के कारण राम ने श्रम का अनुभव किया। श्रम मिटाने के लिये वह अमरायी में गये। वहाँ भरत ने उनके लेटने के लिये अपना वस्त्र बिछा दिया और सब भाई उनकी सेवा करने लगे । और हनुमान जी पंखा झलने लगे । शिव जी कहते हैं कि ''हनुमान सबसे बड़भागी हैं क्योंकि उनके प्रेम और सेवा की स्वयं राम ने अपने मुख से बार-बार प्रशंसा की है ।''

दो०– तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन ।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन ।। ५० ।।

भावार्थ– उसी अवसर पर नारदमुनि हाथ में वीणा लिये हुए आये । वे श्री राम जी की सुन्दर और नित्य नवीन रहने वाली कीर्ति गाने लगे ।

मामवलोकय पंकज लोचन । कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन ॥
नील तामरस स्याम काम अरि । हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥
जातुधान बरूथ बल भंजन । मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन ॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक । असरन सरन दीन जन गाहक ॥

भुजबल बिपुल भार महि खंडित । खर दूषन बिराध बध पंडित ॥

रावनारि सुखरूप भूपबर । जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥

सुजस पुरान बिदित निगमागम । गावत सुर मुनि संत समागम ॥

कारुनीक ब्यलीक मद खंडन । सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥

कलि मल मथन नाम ममताहन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥

भावार्थ– कृपादृष्टि से शोक छुड़ाने वाले हे कमलनयन! मेरी ओर देखिए । हे हरि! आप नील कमल के समान श्याम वर्ण और काम देव के शत्रु महादेव जी के हृदय कमल के मकरन्द प्रेमरस के पान करने वाले भ्रमर हैं । और राक्षसों की सेना के बल को तोड़ने वाले हैं । मुनियों और संतजनों को आनन्द देने वाले और पापों के नाश करने वाले हैं। ब्राह्मणरूपी खेती के लिये आप नये मेघ समूह हैं, और शरण हीनों को शरण देने वाले तथा दीन जनों को अपने आश्रय में ग्रहण करने वाले हैं । अपने बाहुबल से पृथ्वी के बड़े भारी बोझ को नष्ट करने वाले, खरदूषन और बिराध वध करने में सकुशल, रावण के शत्रु, आनन्दस्वरूपी, राजाओं में श्रेष्ठ और दशरथ के कुलरूपी कुमुदनी के चन्द्रमा श्री राम जी! आपकी जय हो। आपका सुन्दर यश पुराणों, वेदों और शास्त्रों में प्रकट है । देवता, मुनि और संतों के समुदाय उसे गाते हैं । आप करुणा करने वाले हैं और झूठे पद का नाश करने वाले, सब प्रकार से कुशल (निपुण)और श्री अयोध्या जी के भूषण हैं । आपका नाम कलियुग के पापों को मथ डालने वाला और ममता को मारने वाला है । हे तुलसीदास के प्रभु! शरणागत की रक्षा कीजिये ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । राम ने रावण पर जब विजय पायी और उसका देहावसान हो गया, तो बार-बार देवताओं ने आकर श्री राम की स्तुति की । इस प्रकार की चार स्तुतियाँ क्रमशः देवताओं, ब्रह्मा, इन्द्र और शिव ने लंकाकाण्ड के अन्त में कीं । और फिर उत्तर काण्ड में चार स्तुतियां क्रमशः वेद, शिव, सनतकुमार और नारद ने कीं । आखिरी दो स्तुतियाँ चौपाइयों में हैं । शेष अन्य छन्दों में, जैसा पृष्ठ १०९५ पर स्पष्ट कर दिया गया है ।

दो०– प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम ।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम ।। ५१ ।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के गुणसमूहों को प्रेमपूर्वक वर्णन करके मुनि नारद जी शोभा के समुद्र प्रभु को हृदय में भरकर, जहाँ ब्रह्मलोक है वहाँ चले गये ।

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा । मै सब कही मोरि मति जथा ॥

राम चरित सत कोटि अपारा । श्रुति सारदा न बरनै पारा ॥

राम अनंत अनंत गुनानी । जन्म कर्म अनंत नामानी ॥

जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥
बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी॥
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥
कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी॥
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी॥

भावार्थ– (शिवजी कहते हैं–) ''हे गिरिजे! मैंने यह उज्जवल कथा, जैसी मेरी बुद्धि थी, वैसी पूरी कह डाली। श्री राम जी के चरित्र सौ करोड़ (अथवा) अपार हैं। श्रुति और शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते। भगवान श्री राम अनन्त हैं; उनके गुण अनन्त हैं; जन्म, कर्म और नाम भी अनन्त हैं। जल की बूँदे और पृथ्वी के रज कण चाहे गिने जा सकते हों, पर श्री रघुनाथ जी के चरित्र वर्णन करने से नहीं चुकते। यह पवित्र कथा भगवान के परम पद को देने वाली है। इसके सुनने से अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा! मैंने यह सब सुन्दर कथा कही, जो कागभुशुण्डि जी ने गरुड़ जी को सुनायी थी। मैंने श्री राम के कुछ थोड़े से गुण बखान कर कहे हैं। हे भवानी! सो कहो, अब क्या कहूँ?'' श्री राम जी की मंगलमयी कथा सुनकर पार्वती जी हर्षित हुईं, और अत्यन्त विनम्र और कोमल वाणी बोलीं–''हे त्रिपुरारि! मैं धन्य हूँ, धन्य-धन्य हूँ, जो मैंने भव भय को हरण करने वाले श्री राम जी के चरित्र सुने।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है। जिस रामकथा को शिव जी ने पार्वती को पृष्ठ १६४ पर सुनाना शुरु किया, उसका अब यहाँ आकर समापन किया। राम जन्म के एक दो कारण बताने के बाद, शिवजी ने कहा कि भगवान के अनेक स्वरूप हैं और उनकी अनेक लीलाएँ हैं–

''हरि अनंत हरि कथा अनंता।''*

इस शाश्वत सत्य को शिवजी ने राम-कथा समाप्त करने पर फिर दोहराया–

''राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी॥''

एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। कथा आरम्भ करने के पहले, शिवजी ने पार्वती को समझा दिया–

''सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़॥''**

---

* देखिए भाग १, पृष्ठ १८२-८५

अर्थात्, मैं जो कथा कहने जा रहा हूँ, वह पहले कागभुशुण्डि ने गरुड़ को सुनाई थी। इस बात की भी समापन में शिवजी ने पुष्टि की है–

"उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई।।"

दो०– तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह।। ५२ (क)।।

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर।। ५२(ख)।।

भावार्थ– हे कृपानिधान! अब आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हो गयी। अब मुझे मोह नहीं रह गया। हे प्रभु! मैं सच्चिदानन्द घन प्रभु श्री राम जी के प्रताप को जान गयी। हे नाथ! आपका मुखरूपी चन्द्रमा श्री रघुबीर जी की कथा रूपी अमृत बरसाता है। मतिधीर! मेरा मन कर्णपुटों से उसे पीकर तृप्त नहीं होता।

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं।।
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ।।
भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा।।
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा।।
श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं।।
ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती।।
हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा।।
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई।।

भावार्थ– श्री राम जी के चरित्र सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाते हैं (बस कर देते हैं), उन्होंने तो उसका विशेष रस जाना ही नहीं। जो जीवनमुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान के गुण निरन्तर सुनते रहते हैं। जो भवसागर को पार पाना चाहता है, उसके लिये तो श्री राम जी की कथा दृढ़ नौका के समान है। श्री हरि के गुणसमूह तो विषयी लोगों के लिये भी कानों को सुख देने वाले हैं। जगत में कान वाला ऐसा कौन है, जिसे श्री रघुनाथ जी के चरित्र न सुहाते हों। जिन्हें श्री रघुनाथ जी की कथा नहीं सुहाती, हों वे मूर्ख जीव तो अपनी आत्मा की हत्या करने वाले हैं। हे नाथ! आपने श्री रामचरित मानस का गान किया। उसे सुनकर मैंने अपार सुख पाया आपने जो यह कहा कि वह सुन्दर कथा कागभुशुण्डि ने गरुड़ जी से कही थी।

दो०– बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह।। ५३।।

भावार्थ– सो कौए का शरीर पाकर भी कागभुशुण्डि वैराग्य, ज्ञान और विज्ञान में दृढ़ हैं, उनका श्री राम जी के चरणों में अत्यन्त प्रेम है और उन्हें श्री रघुनाथ की भक्ति भी प्राप्त है, इस बात का मुझे परम सन्देह हो रहा है।

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी ॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई ॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई ॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ ॥
तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी ॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया ॥
सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ॥

भावार्थ– हे त्रिपुरारि! सुनिये, हजारों मनुष्यों में कोई एक धर्म व्रत का धारण करने वाला होता हैं और करोड़ो धर्मात्माओं में कोई एक विषय से विमुख (विषयों का त्यागी) और वैराग्य परायण होता है। श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तों में कोई एक सम्यक (यथार्थ)ज्ञान को प्राप्त करता है। और करोड़ो ज्ञानियों में कोई एक ही जीवन मुक्त होता है। जगत में कोई विरला ही ऐसा (जीवनमुक्त) होगा। हजारों जीवनमुक्तों में भी सब सुखों की खान, ब्रह्म में लीन विज्ञानवान पुरुष और भी दुर्लभ हैं। धर्मात्मा, वैराग्यवान, ज्ञानी, जीवनमुक्त और ब्रह्मलीन, इन सब में भी है देवादिदेव महादेव जी! वह प्राणी अत्यन्त दुर्लभ हैं, जो मद्-मायारहित होकर रामभक्ति के परायण हों। हे विश्वनाथ! ऐसी दुर्लभ हरिभक्ति को कौआ कैसे पा गया, मुझे समझाकर कहिये।

दो०– राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर ॥ ५४ ॥

भावार्थ– हे नाथ! कहिये, (ऐसे)रामपरायण, ज्ञानपरित, गुणधाम और धीरबुद्धि भुशुण्डि जी ने कौए का शरीर किस कारण पाया।

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥
गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी ॥
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनि कथा मुनि निकर बिहाई ॥
कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा ॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई ॥
धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी ॥

सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥

भावार्थ—हे कृपालु! बताइये उस कौए ने प्रभु का यह पवित्र और सुन्दर चरित्र कहाँ पाया ? और हे कामदेव के शत्रु ! यह भी बताइये, आपने इसे किस प्रकार सुना? मुझे बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है गरुड़ जी तो महान ज्ञानी, सद्गुणों की राशि श्री हरि के सेवक और उनके अत्यन्त निकट रहने वाले (उनके वाहन ही) हैं, उन्होंने मुनियों के समूह को छोड़कर, कौए से जाकर हरि कथा किस कारण सुनी। कहिये, काकभुशुण्डि और गरुड़ इन दोनों हरिभक्तों की बातचीत किस प्रकार हुई?'' पार्वती जी की सरल, सुन्दर वाणी सुनकर शिवजी सुख पाकर आदर के साथ बोले—''हे सती! तुम धन्य हो;तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त पवित्र है। श्री रघुनाथ जी के चरणों में तुम्हारा कम प्रेम नहीं है (अत्यधिक प्रेम है)। अब वह परम पवित्र इतिहास सुनो, जिसे सुनने से सारे लोक के भ्रम का नाश हो जाता है तथा श्री राम जी के चरणों में विश्वास उत्पन्न होता है, और मनुष्य बिना ही परिश्रम भव सागर से तर जाता है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है। पृष्ठ १११४-१५ पर स्पष्ट कर दिया गया है कि राम-कथा आरम्भ करने के पहले और समाप्त करने के बाद-दोनों अवसरों पर शिवजी ने पार्वती जी को समझाया था कि जो कथा वह सुनाने जा रहे हैं (या जो कथा उन्होंने सुनाई)वह पहले ही कागभुशुण्डि गरुड़ जी को सुना चुके हैं। इस पर पार्वती जी को कौतुहल हुआ कि—

१. जो भक्ति धर्मात्मा, वैराग्यवान, ज्ञानी, जीवनमुक्त, ब्रह्मलीन को भी दुर्लभ है, वह हरिभक्ति कौआ कैसे पा गया?

ऐसे रामपरायण, ज्ञानपरित, गुण धाम और धीरबुद्धि भुशुण्डि जी को कौए का शरीर किस कारण मिला?

३. कौए ने प्रभु का यह पवित्र और सुन्दर चरित्र कहाँ से पाया ?

४. शिव जी ने यह चरित्र कागभुशुण्डि से कैसे सुना?

५. गरुड़ तो महान ज्ञानी, सद्गुणों की राशि और हरि के बहुत निकट सेवक हैं। उन्होंने मुनियों के समूह को छोड़कर कौए से जाकर हरि-कथा किस कारण सुनी?

६. कागभुशुण्डि और गरुण—इन दोनों हरिभक्तों की बातचीत किस प्रकार हुई?

दो०— ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ ।
सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ ।। ५५ ।।

भावार्थ— पक्षिराज गरुड़ जी ने भी जाकर कागभुशुण्डि जी से प्रायः ऐसे ही प्रश्न किये थे । हे उमा! मैं वह सब आदर सहित कहूँगा तुम मन लगा कर सुनो ।

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि । सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा । सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥
दच्छ जग्य तव भा अपमाना । तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा । जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥
तब अति सोच भयउ मन मोरें । दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें ॥
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा । कौतुक देखत फिरउँ बेरागा ॥
गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी । नील सैल एक सुंदर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए । चारि चारु मोरे मन भाए ॥
तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला । बट पीपर पाकरी रसाला ॥
सैलोपरि सर सुंदर सोहा । मनि सोपान देखि मन मोहा ॥

भावार्थ— मैंने जिस प्रकार यह भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ाने वाली कथा सुनी, हे सुमुखी! हे सुलोचनी! वह प्रसंग सुनो । पहले तुम्हारा अवतार दक्ष के घर हुआ था । तब तुम्हारा नाम सती था । दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ । तब तुमने अत्यन्त क्रोध करके प्राण त्याग दिये थे । और फिर मेरे सेवकों ने यज्ञ विध्वंस कर दिया था । वह सारा प्रसंग तुम जानती ही हो । तब मेरे मन में बड़ा सोच हुआ । और हे प्रिये! मैं तुम्हारे वियोग से दुःखी हो गया । मैं विरक्त भाव से सुन्दर वन, पर्वत, नदी और तालाबों का कौतुक (दृश्य) देखता फिरता था । सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में, और भी दूर, एक बहुत ही सुन्दर नील पर्वत है। उसके सुन्दर स्वर्णमय शिखर हैं, उनमें से चार सुन्दर शिखर मेरे मन को बहुत ही अच्छे लगे । उन शिखरों में एक-एक पर बरगद, पीपल, पाकर और आम का एक-एक विशाल वृक्ष है । पर्वत के ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है, जिसकी मणियों की सीढ़ियाँ देखकर मन मोहित हो जाता है ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ १११७ पर जो छः प्रश्न पार्वती ने पूछे, उनका समाधान करने के पूर्व शिवजी ने पार्वती को उनके पहले भव का स्मरण कराया और जो कथा पृष्ठ ८६-१०५ में कही गई है, उसे संक्षिप्त में दोहराया। सती के आत्मदाह करने पर शिवजी उनके वियोग में विरक्त भाव से बन, पर्वत, नदी और तालाबों का कौतुक देखते फिरते थे । परिभ्रमण करते करते, वह सहसा सुमेरु पर्वत पहुँच गए । सुमेरु पर्वत के उत्तर में नील पर्वत है । नील पर्वत के चार शिखर हैं । इन शिखरों पर क्रमशः

बरंगद, पीपल, पाकर और आम का एक-एक विशाल वृक्ष है।

दो०— सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग ॥ ५६ ॥

भावार्थ— उसका जल शीतल, निर्मल और मीठा है, उसमें रंग-बिरंगे बहुत से कमल खिले हुए हैं, हंसगण मधुर स्वर से बोल रहे हैं, और भौंरें सुन्दर गुंजार कर रहे हैं।

तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कल्पांत न होई॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका॥
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं॥
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा॥
पीपर तरु पर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई॥
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा॥
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥
सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥

भावार्थ— उस सुन्दर पर्वत पर वही पक्षी (कागभुशुण्डि) बसता है। उसका नाश कल्प के अन्त में भी नहीं होता। मायारहित अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक, जो सारे जगत में छा रहे हैं, उस पर्वत के पास भी कभी नहीं भटकते। यहाँ बसकर जिस प्रकार वह काक हरि को भजता है, उसे प्रेमसहित सुनो। वह पीपल-वृक्ष के नीचे ध्यान करता है। पाकर के नीचे जप-यज्ञ करता है। आम की छाया में मानसिक पूजा करता है। हरिभजन को छोड़कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है। बरगद के नीचे वह हरि-कथा का प्रसंग कहता है। वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं। वह विचित्र रामचरित्र को अनेकों प्रकार से प्रेम सहित आदरपूर्वक गान करता है। सब निर्मल बुद्धिवाले हंस, जो सदा उस तालब पर बसते हैं, उसे सुनते हैं। जब मैंने वहाँ जाकर यह कौतुक देखा, तब मेरे हृदय में विशेष आनन्द हुआ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। कथानक को आगे बढ़ाते हुए शिव जी कहते हैं कि सुमेरु के उत्तर में जो नील पर्वत है उसके पास माया रचित अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक कभी नहीं भटकते। उसी पर्वत पर कागभुशुण्डि निवास करते हैं। उनका नाश कल्प के अन्त में भी नहीं होगा। वह पीपल के नीचे ध्यान करते हैं, पाकर के नीचे जप-यज्ञ करते हैं, आम की छाया में मानसिक पूजा करते हैं और बरगद के नीचे हरि कथा का प्रसंग कहते हैं। तालाब में बसने वाले हंस उस हरिकथा को ध्यानपूर्वक

सुनते हैं। जब शिवजी ने नील-शिखर पर जाकर यह कौतुक देखा, तब उनके हृदय में विशेष आनन्द हुआ।

दो०– तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास ।। ५७ ।।

भावार्थ– तब मैंने हंस का शरीर धारण कर कुछ समय वहाँ निवास किया और श्री रघुनाथ जी के गुणों को आदर सहित सुनकर फिर कैलाश को लौट आया।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा।।
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिं खग कुल केतू।।
जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा।।
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो।।
बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा।।
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती।।
ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा।।
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।।

भावार्थ– हे गिरिजे! मैंने यह सब इतिहास कहा, कि जिस समय मैं कागभुशुण्डि के पास गया था। अब वह कथा सुनो, जिस कारण से पक्षिकुल के ध्वजा गरुड़ जी उस काक के पास गये थे जब श्री रघुनाथ जी ने ऐसी रासलीला की, कि जिस लीला के समझने से (स्मरण करने से) मुझे लज्जा होती है। मेघनाद के हाथों अपने को बँधा लिया–तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा। सर्पों के शत्रु गरुड़ जी बन्धन काटकर गये, तब उनके हृदय में बड़ा भारी विवाद उत्पन्न हुआ। प्रभु के बन्धन को स्मरण करके सर्पों के शत्रु गरुड़ जी बहुत प्रकार से विचार करने लगे। जो व्यापक, विकार रहित, वाणी के पति और माया-मोह से परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, मैंने सुना था कि जगत में वही अवतीर्ण हुए हैं। पर मैंने वह (अवतार का) प्रभाव कुछ भी नहीं देखा।

दो०– भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम ।। ५८।।

भावार्थ– जिसका नाम जपकर मनुष्य संसार के बन्धन से छूट जाते हैं, उन्हीं राम को एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश से बाँध लिया।

नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम लावा।।
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाईं।।
ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं।।

सुनि नारदहि लागि अति दाया । सुनु खग प्रबल राम कै माया ।।
जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई । बरिआई बिमोह मन करई ।।
जेहिं बहु बार नचावा मोही । सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही ।।
महामोह उपजा उर तोरें । मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें ।।
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा । सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा ।।

भावार्थ– गरुड़ जी ने अनेकों प्रकार से अपने मन को समझाया । पर उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, हृदय में भ्रम और भी अधक छा गया । सन्देह जनित दुःख से दुखी होकर, मन में कुतर्क बढ़ाकर वे तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गये । व्याकुल होकर वे देवर्षि नारद जी के पास गये और मन में जो सन्देह था, वह उनसे कहा । उसे सुनकर नारद को अत्यन्त दया आयी। (उन्होंने कहा–) 'हे गरुड़! सुनिये, श्री राम जी की माया बड़ी ही बलवती होती है । जो ज्ञानियों के चित्त को भी भलीभाँति हरण कर लेती है और उनके मन में ज़बर्दस्ती बड़ा भारी मोह उत्पन्न कर देती है । उसने मुझको भी बहुत बार नचाया है । हे पक्षिराज! वही माया आपको भी व्याप गई है । हे गरुड़! आपके हृदय में महामोह उत्पन्न हो गया है । यह मेरे समझाने से तुरन्त नहीं मिटेगा । अतः हे पक्षिराज! आप ब्रह्मा जी के पास जाइये और वहाँ जो आदेश मिले, वही कीजियेगा ।'

दो०– अस कहि चले देबरिषि करत राम गुन गान ।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान ।। ५९ ।।

भावार्थ– ऐसा कहकर परम सुजान देवर्षि नारद जी श्री राम जी के गुणगान करते हुए और बार-बार श्री हरि की माया का बल वर्णन करते हुए चले ।

तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ । निज संदेह सुनावत भयऊ ।।
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा । समुझि प्रताप प्रेम अति छावा ।।
मन महुँ करइ बिचार बिधाता । माया बस कबि कोबिद ग्याता ।।
हरि माया कर अमिति प्रभावा । बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा ।।
अग जगमय जग मम उपराजा । नहिं आचरज मोह खगराजा ।।
तब बोले बिधि गिरा सुहाई । जान महेस राम प्रभुताई ।।
बैनतेय संकर पहिं जाहू । तात अनत पूछहु जनि काहू ।।
तहँ होइहि तव संसय हानी । चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी ।।

भावार्थ– तब पक्षिराज गरुड़ ब्रम्हा जी के पास गये और अपना सन्देह उन्हें कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्मा जी ने श्री रामचन्द्र जी को सिर नवाया, और उनके प्रताप को समझ करके (स्मरण करके)उनमें अत्यन्त प्रेम छा गया । ब्रह्मा जी मन में विचार करने लगे कि कवि, कोविद और ज्ञानी, सभी माया के वश हैं । भगवान की माया का प्रभाव असीम

है, जिसने मुझ तक को अनेकों बार नचाया है। यह सारा चराचर जगत तो मेरा रचा हुआ है। जब मैं ही मायावश नाचने लगता हूँ, तब पक्षिराज गरुड़ को मोह होने में कोई आश्चर्य नहीं है। तदनन्तर ब्रह्मा जी सुन्दर वाणी बोले–'श्री राम जी की महिमा को महादेव जी जानते हैं। हे गरुड़ जी! तुम शंकर जी के पास जाओ। हे तात! और कहीं किसी से न पूछना। तुम्हारे सन्देह का नाश वहीं होगा।' ब्रह्मा जी का वचन सुनते ही गरुड़ चल दिये।

दो०– परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास ।। ६० ।।

भावार्थ– तब बड़ी आतुरता से पक्षिराज गरुड़ मेरे पास आये। हे उमा ! उस समय मैं कुबेर के घर जा रहा था, और तुम कैलाश पर थीं।

तेहिं मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा ।।
सुनि ता करि बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी ।।
मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही ।।
तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा ।।
सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ।।
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।
नित हरि कथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ।।
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा ।।

भावार्थ– गरुड़ ने आदरपूर्वक मेरे चरणों में सिर नवाया और फिर मुझको अपना सन्देह सुनाया। हे भवानी! उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमसहित उनसे कहा–'हे गरुड़ ! तुम मुझे रास्ते में मिले हो। राह चलते मैं तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ? सब सन्देहों का तो तभी नाश हो, जब दीर्घ काल तक सत्संग किया जाये। और वहाँ (सत्संग में) सुन्दर हरिकथा सुनी जाये, जिसे मुनियों ने अनेकों प्रकार से गाया है और जिसके आदि, मध्य और अन्त में भगवान श्री रामचन्द्र ही प्रतिपाद्य प्रभु हैं। हे भाई! जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, तुमको मैं वहीं भेजता हूँ, तुम जाकर उसे सुनो। उसे सुनते ही तुम्हारा सब सन्देह दूर हो जायगा और तुम्हें श्री रामजी के चरणों में अत्यन्त प्रेम होगा।

दो०– बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।। ६१ ।।

भावार्थ– सत्संग के बिना हरि की कथा सुनने को नहीं मिलती। हरिकथा सुने बिना मोह नहीं भागता, और मोह के गये बिना श्री रामचन्द्र जी के चरणों में दृढ़ (अचल) प्रेम नहीं होता।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ।।
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला। तहँ रह काकभुशुंडि सुसीला ।।

राम भगति पथ परम प्रबीना । ग्यानी गुन गृह बहु कालीना ।।
राम कथा सो कहइ निरंतर । सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर ।।
जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी । होइहि मोह जनित दुख दूरी ।।
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई । चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई ।।
ताते उमा न मैं समुझावा । रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा ।।
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना । सो खोवै चह कृपानिधाना ।।
कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा । समुझइ खग खगही कै भाषा ।।
प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कवन अस ग्यानी ।।

भावार्थ– बिना प्रेम के केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्य के करने से श्री रघुनाथ जी मिलते नहीं । (अतएव तुम सत्संग के लिये वहाँ जाओ जहाँ)उत्तर दिशा में एक सुन्दर नील पर्वत है । वहाँ परम सुसील कागभुशुण्डि जी रहते हैं । वे रामभक्ति के मार्ग में परम प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, गुणों के धाम हैं । और बहुत काल से हैं । वे निरन्तर श्री रामचन्द्र जी की कथा कहते रहते हैं, जिसे भाँति-भाँति के श्रेष्ठ पक्षी आदर सहित सुनते हैं । वहाँ जाकर श्री हरि के गुणसमूहों को सुनो । उनके सुनने से मोह से उत्पन्न तुम्हारा दुःख दूर हो जाएगा ।' मैंने उसे जब सब समझाकर कहा, तब वह मेरे चरणों में सिर नवाकर हर्षित होकर चला गया । हे उमा!मैंने उसको इसलिये नहीं समझाया कि मैं श्री रघुनाथ जी की कृपा से उसका मर्म (भेद) पा गया था । उसने कभी अभिमान किया होगा, जिसको कृपानिधान श्री रामजी नष्ट करना चाहते हैं । फिर कुछ इस कारण भी मैंने उसको अपने पास नहीं रक्खा कि पक्षी पक्षी की बोली ही समझते हैं । हे भवानी! प्रभु की माया बड़ी ही बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी है जिसे वह न मोह ले ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है । रामकथा सुनने के बाद पार्वती जी ने शिवजी से छः प्रश्न पूछे जो पृष्ठ १११७ पर अंकित हैं । शिवजी ने प्रश्नों का उत्तर क्रमानुसार नहीं दिया । सबसे पहले प्रश्न चार का उत्तर दिया । प्रश्न चार में पार्वती जी ने पूछा की रामचरित शिवजी ने कागभुशुण्डि से कैसे सुना ? इसका उत्तर शिव जी ने विस्तारपूर्वक पृष्ठ १११८ से ११२० तक दिया । सुमेरु पर्वत के उत्तर नील पर्वत पर कागभुशुण्डि रहते हैं । नील पर्वत में चार शिखर हैं । एक शिखर पर बरगद का पेड़ है । उस बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर कागभुशुण्डि हरिकथा का प्रवचन करते हैं । उस प्रवचन को तालाब में बसने वाले हंस बहुत ध्यानपूर्वक सुनते हैं । जब शिवजी ने यह कौतुक देखा तो, स्वयं हंस का रूप धारण करके, उन्होंने भी कागभुशुण्डि के मुख से राम कथा सुनी ।

पार्वती का पाँचवा प्रश्न था कि गरुड़ ने मुनियों के समूह को छोड़कर कौए से जाकर हरिकथा किस कारण सुनी? उत्तर में शिवजी ने बताया कि मेघनाद ने राम को नागपाश में

बाँध लिया था। तब नारद मुनि ने सर्पों का बन्धन काटने के लिये गरुड़ को भेजा था (देखिए लंकाकाण्ड, पृष्ठ ९७९)। इस घटना से गरुड़ को राम की माया व्याप गयी। उनको बार-बार यह प्रश्न विचलित करता था कि "जिसका नाम जपकर मनुष्य संसार के बन्धन से छूट जाते हैं, उन्हीं राम को एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश में कैसे बाँध लिया?" इस सन्देह के निवारण के लिये वह नारद के पास गये। नारद ने उनको आदेश दिया कि शंका-समाधान के लिये ब्रह्मा जी के पास जायें। ब्रह्मा जी ने उनको शिवजी के पास भेज दिया। उस समय शिवजी कुबेर के घर जा रहे थे। शिवजी ने गरुड़ को समझाया कि चलते-चलते वह गरुड़ की जिज्ञासा पूरी नहीं कर सकते। सत्संग के बिना हरि की कथा सुनने को नहीं मिलती। हरिकथा सुने बिना मोह नहीं भागता। मोह के गये बिना श्री रामचन्द्र जी के चरणों में दृढ़ प्रेम नहीं होता। बिना प्रेम के केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्य के करने से श्री रघुनाथ जी नहीं मिलते। गरुड़ को सत्संग की आवश्यकता है और यह सत्संग उन्हें नील पर्वत पर ही प्राप्त हो सकता है, जहाँ कागभुशुण्डि निरन्तर पक्षियों को राम कथा सुनाते रहते हैं।

इस प्रकार शिवजी ने गरुड़ को कागभुशुण्डि के पास भेजा। भेजने के दो और विशिष्ट कारण थे :

१. राम को नागपाश से छुड़ाने पर गरुड़ को अभिमान हो गया था, जिसे कृपानिधान राम नष्ट करना चाहते थे।

२. पक्षी की बोली पक्षी ही समझता है।

लोकोक्ति– ऊपर की आखिरी चौपाई की एक अर्धाली में एक लोकोक्ति है – "समुझइ खग खग ही कै भाषा।"

पक्षी की बोली पक्षी ही समझता है। कहने को तो यह एक बड़ी सीधी-साधी बात है पर इसमें एक बड़ा गूढ़ तत्व अन्तर्निहित है। ज्ञानियों का प्रवचन ज्ञानी ही समझ सकते हैं। देहाती और जनजाति के लोग लोक भाषा में ही बात समझ सकते हैं। संस्कृत में एक सूक्ति है–"शठम्प्रति शाठ्यम समाचरेत।" शठ पुरुष के साथ शठता का ही व्यवहार किया जाए, तभी वह बस में आता है। A Terrorist knows no other language, except the language of violence.

दो०– ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान।। ६२ (क)।।

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान।। ६२ (ख)।।

भावार्थ– जो ज्ञानियों में और भक्तों में शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवन पति भगवान के

भावार्थ– जो ज्ञानियों में और भक्तों में शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवन पति भगवान के वाहन हैं, उन गरुड़ को भी माया ने मोह लिया। फिर भी नीच मनुष्य मूर्खतावश घमंड किया करते हैं। यह माया जब शिवजी और ब्रह्मा जी को भी मोह लेती है, तब दूसरा बेचारा क्या चीज़ है ? जी में ऐसा जानकर ही मुनि लोग उस माया के स्वामी भगवान का भजन करते हैं।

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा ॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ ॥
करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदयँ हरषाना ॥
वृद्ध वृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए ॥
कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा ॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ वायस सहित समाजा ॥
अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा ॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा ॥

भावार्थ– गरुड़ जी वहाँ गये, जहाँ निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्ति वाले कागभुशुण्डि बसते थे। उस पर्वत को देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया और सब माया मोह तथा सोच जाता रहा है। तालाब में स्नान और जलपान करके वे प्रसन्न चित्त से वटवृक्ष के नीचे गये। वहाँ श्री राम जी के सुन्दर चरित्र सुनने के लिये बूढ़े-बूढ़े पक्षी आये हुए थे। भुशुण्डि जी कथा आरम्भ करना ही चाहते थे कि उसी समय पक्षिराज गरुड़ जी वहाँ जा पहुँचे। पक्षियों के राजा गरुड़ जी को आते देखकर सारे पक्षि समाज सहित कागभुशुण्डि जी हर्षित हुए। उन्होंने पक्षिराज गरुड़ जी का बहुत ही आदर सत्कार किया और स्वागत (कुशल) पूछकर बैठने के लिए सुन्दर आसन दिया।" फिर प्रेम सहित पूजा करके, कागभुशुण्डि जी मधुर बचन बोले–

दो०– नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज ॥ ६३ (क)॥

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ॥ ६३ (ख)॥

भावार्थ– "हे नाथ! हे पक्षिराज! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। आप जो आज्ञा दें, मैं अब वही करूँ। हे प्रभो! आप किस कार्य के लिये आये हैं ?" पक्षिराज गरुड़ जी ने कोमल वचन कहे–"आप तो सदा ही कृतार्थ रूप हैं, जिनकी बड़ाई स्वयं महादेव जी ने आदरपूर्वक अपने श्री मुख से की है।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ । सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥
देखि परम पावन तव आश्रम । गयउ मोह संसय नाना भ्रम ॥
अब श्रीराम कथा अति पावनि । सदा सुखद दुख पुंज नसावनि ॥
सादर तात सुनावहु मोही । बार बार बिनवउँ प्रभु तोही ॥
सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता । सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
भयउ तासु मन परम उछाहा । लाग कहै रघुपति गुन गाहा ॥
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी । रामचरित सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा । कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई । तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥

भावार्थ– हे तात! सुनिये, मैं जिस कारण से आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही पूरा हो गया । फिर आपके दर्शन भी प्राप्त हो गये । आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही मेरा मोह, सन्देह और अनेक प्रकार के भ्रम सब जाते रहे । अब हे तात! आप मुझे श्री राम जी की अत्यन्त पवित्र करने वाली, सदा सुख देने वाली, और दुःख समूह का नाश करने वाली कथा आदर सहित सुनाइये । हे प्रभो! मैं बार-बार आपसे यही विनती करता हूँ ।'' गरुड़ जी की विनम्र, सरल, सुन्दर, प्रेमयुक्त, सुखप्रद और अत्यन्त पवित्र वाणी सुनते ही भुशुण्डि जी के मन में परम उत्साह हुआ और वे श्री रघुनाथ के गुणों की कथा कहने लगे । 'हे भवानी! पहले तो उन्होंने बड़े ही प्रेम से रामचरितमानस सरोवर का रूपक समझाकर कहा । फिर नारद जी का अपार मोह और फिर रावण का अवतार कहा । फिर प्रभु के अवतार की कथा वर्णन की । तदनन्तर मन लगाकर श्री राम जी की शिशु लीलाएँ कहीं ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं । पार्वती का अन्तिम और छ्टा प्रश्न यह था कि **कागभुशुण्डि** और गरुड़ इन दोनों की बातचीत किस प्रकार हुई? (पृष्ठ १११७)

गरुड़ ने कागभुशुण्डि से विनय की कि वह ''श्री राम जी की अत्यन्त पवित्र करने वाली कथा आदर सहित सुनाए ।'' तब कागभुशुण्डि ने संक्षेप में वह कथा सुनाई जो शिवजी ने पार्वती को सात काण्डों में सुनाई थी । **कागभुशुण्डि** के मुख से तुलसीदास जी ने अपनी समस्त रामचरितमानस का सारांश चार दोहों और उनके बीच की चौपाइयों में कर दिया है । कागभुशुण्डि ने गरुड़ को रामचरित मानस का सार इस प्रकार बताया ;

१. रामचरित मानस (मानसरोवर)का रूपक (देखिए पृष्ठ ७१-८२)

२. नारद का मोह (देखिए पृष्ठ १६८-१८२)

७५. नगर-प्रवेष (देखिए पृष्ठ १०५६-६४)

७६. रामाभिषेक (देखिए पृष्ठ १०६४-६७)

७७. राम का प्रजा को सन्देश (देखिए पृष्ठ ११०४-०९)

दो०— बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परम उछाह ।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्री रघुबीर बिबाह ।। ६४ ।।

भावार्थ— मन में परम उत्साह भरकर अनेकों प्रकार की बाल लीलाएँ कहकर, फिर ऋषि विश्वामित्र जी का अयोध्या आना और श्री रघुबीर जी का विवाह वर्णन किया ।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा । पुनि नृप बचन राज रस भंगा ॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा । कहेसि राम लछिमन संबादा ॥
बिपिन गवन केवट अनुरागा । सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ॥
बालमीक प्रभु मिलन बखाना । चित्रकूट जिमि बसे भगवाना ॥
सचिवागवन नगर नृप मरना । भरतागवन प्रेम बहु बरना ॥
करि नृप क्रिया संग पुरबासी । भरत गए जहँ प्रभु सुख रासी ॥
पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए । लै पादुका अवधपुर आए ॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी । प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी ॥

भावार्थ— फिर श्री राम जी के राज्याभिषेक का प्रसंग । फिर राजा दशरथ जी के वचन से राज-रस (राज्याभिषेक के आनन्द) में भंग पड़ना, फिर नगरनिवासियों का विरह-विषाद और श्री राम-लक्ष्मण संवाद कहा । श्री राम का वनगमन, केवट का प्रेम, गंगा जी के पार उतर कर प्रयाग में निवास, बाल्मीकि जी और प्रभु श्री राम जी का मिलन, और जैसे भगवान चित्रकूट में बसे, वह सब कहा । फिर मन्त्री सुमन्त्र जी का नगर में लौटना, राजा दशरथ जी का मरण, भरत जी का ननिहाल से अयोध्या में आना और उनके प्रेम का बहुत वर्णन किया। राजा की अन्त्येष्टि क्रिया करके नगर निवासियों को साथ लेकर भरत जी वहाँ आये जहाँ सुख की राशि प्रभु श्री रामचन्द्र जी थे । फिर श्री रघुनाथ जी ने उनको बहुत प्रकार से समझाया, जिससे वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्यापुरी लौट आये, यह सब कथा कही । भरत जी की नन्दिग्राम में रहने की रीति, इन्द्र पुत्र जयन्त की नीच करनी, और फिर प्रभु श्री रामचन्द्र जी और अत्रि जी का मिलाप वर्णन किया ।

दो०— कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग ।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग ।। ६५ ।।

भावार्थ– जिस प्रकार विराध का बध हुआ और शरभंग जी ने शरीर त्याग दिया, यह प्रसंग कहकर फिर सुतीक्षण जी का प्रेम वर्णन करके, प्रभु और अगस्त्य जी का सत्संग वृत्तान्त कहा।

कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई॥
पुनि प्रभु पंचबटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥
पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा॥
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना॥
दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्री रघुबीर बिरह कछु बरना॥
पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा॥

भावार्थ– दण्डकवन का पवित्र करना कहकर, फिर भुशुण्डि जी ने गृधराज के साथ मित्रता का वर्णन किया। फिर जिस प्रकार प्रभु ने पञ्चवटी में निवास किया और सब मुनियों के भय को नाश किया। और फिर जैसे लक्ष्मण जी को अनुपम उपदेश दिया और सूर्पणखा को कुरूप किया, वह सब वर्णन किया। फिर खर-दूषण वध और जिस प्रकार रावण ने सब समाचार जाना, वह बखान कर कहा तथा जिस प्रकार रावण और मारीच की बातचीन हुई, वह सब उन्होंने कही। फिर माया-सीता का हरण और श्री रघुबीर के विरह का कुछ वर्णन किया। फिर प्रभु ने गिद्ध जटायु की जिस प्रकार क्रिया की, कबन्ध का वध करके शबरी को परमगति दी। और फिर जिस प्रकार विरह वर्णन करते हुए श्री रघुबीर जी पंपासर के तीर पर गये, वह सब कहा।

दो०– प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग॥ ६६ (क)॥

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास।
बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास॥ ६६ (ख)॥

भावार्थ– प्रभु और नारद जी का संवाद और मारुति के मिलने का प्रसंग कहकर, फिर सुग्रीव से मित्रता और बालि के प्राणनाश का वर्णन किया। सुग्रीव का राजतिलक करके, प्रभु ने प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया, वह तथा वर्षा और शरद का वर्णन, श्री राम जी का सुग्रीव पर रोष और सुग्रीव का भय आदि प्रसंग कहे।

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए॥
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती॥

सुनि सब कथा समीरकुमारा । नाघत भयउ पयोधि अपारा ॥
लंकाँ कपि प्रबेस जिमि कीन्हा । पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा ॥
बन उजारि रावनहि प्रबोधी । पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी ॥
आए कपि सब जहँ रघुराई । बैदेही की कुसल सुनाई ॥
सेन समेति जथा रघुबीरा । उतरे जाइ बारिनिधि तीरा ॥
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई । सागर निग्रह कथा सुनाई ॥

भावार्थ– जिस प्रकार वानरराज सुग्रीव ने वानरों को भेजा और वे सीता जी की खोज में जिस प्रकार सब दिशाओं में गये, जिस प्रकार उन्होंने बिल में प्रवेश किया, और फिर जैसे वानरों को सम्पाती मिला, वह कथा कही । संपाती से सब कथा सुनकर पवनपुत्र हनुमान जी जिस तरह अपार समुद्र को लाँघ गये, फिर हनुमान जी ने जैसे लंका में प्रवेश किया और फिर जैसे सीता जी को धीरज दिया, वो सब कहा फिर अशोक वन को उजाड़कर, रावण को समझाकर लंकापुरी को जला फिर जैसे उन्होंने समुद्र को लाँघा, और जिस प्रकार सब वानर वहाँ आए जहाँ श्री रघुनाथ जी थे और आकर श्री जानकी जी की कुशल सुनायी । फिर जिस प्रकार सेना सहित श्री रघुबीर जी जाकर समुद्र के तट पर उतरे और जिस प्रकार विभीषण जी आकर उनसे मिले, वह सब और समुद्र के बाँधने की कथा उसने सुनायी ।

दो०– सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार ।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार ।। ६७ (क)।।

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिधि प्रकार ।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार ।। ६७ (ख)।।

भावार्थ– पुल बाँधकर जिस प्रकार वानरों की सेना समुद्र के पार उतरी, और जिस प्रकार वीरश्रेष्ठ बालिपुत्र अंगद दूत बन कर गये, यह सब कहा । फिर राक्षसों और वानरों के युद्ध का अनेकों प्रकार से वर्णन किया । फिर कुम्भकर्ण और मेघनाद के बल, पुरुषार्थ और संहार की कथा कही ।

निसिचर निकर मरन बिधि नाना । रघुपति रावन समर बखाना ॥
रावन बध मंदोदरि सोका । राज बिभीषन देव असोका ॥
सीता रघुपति मिलन बहोरी । सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी ॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता । अवध चले प्रभु कृपा निकेता ॥
जेहि बिधि राम नगर निज आए । बायस बिसद चरित सब गाए ॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका । पुर बरनत नृपनीति अनेका ॥
कथा समस्त भुसुंड बखानी । जो मैं तुम्ह सन कही भवानी ॥

सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥

भावार्थ– नाना प्रकार के राक्षस समूहों के मरण और श्री रघुनाथ जी और रावण के अनेक प्रकार के युद्ध का वर्णन किया। रावण वध, मन्दोदरी का शोक, विभीषण का राज्याभिषेक और देवताओं का शोकरहित होना कहकर, फिर सीता जी और श्री रघुनाथ जी का मिलाप कहा। जिस प्रकार देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की, और फिर जैसे वानरों के समेत पुष्पक विमान पर चढ़कर कृपाधाम प्रभू अवधपुरी को चले, यह कहा। जिस प्रकार श्री रामचन्द्र जी अपने नगर में आये, वे सब उज्ज्वल चरित्र कागभुशुण्डि जी ने विस्तार पूर्वक वर्णन किये। फिर उन्होंने श्री राम जी का राज्यभिषेक कहा। अयोध्यापुरी और अनेक प्रकार की राजनीति का वर्णन करते हुए, भुशुण्डि जी ने वह सब कथा कही जो हे भवानी! मैंने तुमसे कही।'' सारी रामकथा सुनकर पक्षिराज गरुड़ जी मन में बहुत उत्साहित (आनन्दित)होकर वचन कहने लगे।

सो०– गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥ ६८ (क)॥

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥ ६८ (ख)॥

भावार्थ– ''श्री रघुनाथ के सब चरित्र मैंने सुते, जिससे मेरा सन्देह जाता रहा। हे काकशिरोमणि! आपके प्रसाद (अनुग्रह)से श्री राम जी के चरणों में मेरा प्रेम हो गया। युद्ध में प्रभु का नागपाश से बन्धन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हो गया था कि श्री रामजी तो सच्चिदानन्द हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं।

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी॥
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना॥
जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥
जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही॥
सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा॥
संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥
राम कृपाँ तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥

भावार्थ– बिल्कुल ही लौकिक मनुष्यों का-सा चरित्र देखकर मेरे हृदय में भारी सन्देह हो गया। मैं अब उस भ्रम (सन्देह)को अपने लिये हित करके समझता हूँ। कृपानिधान ने मुझ पर यह बड़ा अनुग्रह किया। जो धूप से अत्यन्त व्याकुल होता है, वही वृक्ष की छाया का सुख जानता है। हे तात! मुझे अत्यन्त मोह न होता, तो मैं आपसे किस प्रकार मिलता? और

कैसे अत्यन्त विचित्र यह सुन्दर हरिकथा सुनता, जो आपने बहुत प्रकार से गायी है? वेद, शास्त्र और पुराणों का यही मत है, सिद्ध और मुनि भी यही कहते हैं कि इसमें सन्देह नहीं है कि सच्चे शुद्ध संत उसे अवश्य मिलते हैं, जिसे श्री राम जी कृपा करके देखते हैं। श्री रामजी की कृपा से मुझे आपके दर्शन हुए और आपकी कृपा से मेरा सन्देह चला गया।''

दो०— सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग।। ६९ (क)।।

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।। ६९ (ख)।।

भावार्थ— पक्षिराज गरुड़ जी का विनय और प्रेमयुक्त वाणी सुन कर कागभुशुण्डि जी का शरीर पुलकित हो गया, उनके नेत्रों में जल भर आया और वे मन में अत्यन्त हर्षित हुए। हे उमा! सुन्दर बुद्धिवाले, सुशील, पवित्र कथारसिक और हरि के सेवक श्रोता को पाकर सज्जन अत्यन्त गोपनीय (सब के सामने प्रकट न करने योग्य) रहस्य को भी प्रकट कर देते हैं।

बोलेउ काकभुसुंड बहोरी। नभग नाथ पर प्रीति न थोरी।।
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे।।
तुम्हहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया।।
पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही।।
तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं।।
नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी।।
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।।

भावार्थ— कागभुशुण्डि जी ने फिर कहा। पक्षिराज पर उनका प्रेम कम न था (अर्थात् बहुत था—) ''हे नाथ! आप सब प्रकार से मेरे पूज्य हैं, और श्री रघुनाथ जी के कृपा पात्र हैं। आपको न सन्देह है और न मोह माया ही है। हे नाथ! आपने तो मुझ पर दया की है। हे पक्षिराज! मोह के बहाने श्री रघुनाथ जी ने आपको यहाँ भेजकर मुझे बड़ाई दी है। हे पक्षियों के स्वामी! आपने अपना मोह कहा, सो हे गोसाईं! यह कुछ आश्चर्य नहीं है। नारद जी, शिवजी, ब्रह्मा जी और सनकादि, जो आत्मतत्व के मर्मज्ञ और उसका उपदेश करने वाले श्रेष्ठ मुनि हैं, उनमें से भी किस-किस को मोह ने अन्धा नहीं किया? जगत में ऐसा कौन है, जिसे काम ने न नचाया हो? तृष्णा ने किसको पागल नहीं किया? क्रोध ने किसका हृदय नहीं जलाया?

दो०— ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ।। ७० (क)।।

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ।। ७० (ख)।।

भावार्थ– ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, कोविद और गुणों का धाम इस संसार में ऐसा कौन है, जिसकी लोभ ने विडम्बना (मिट्टी पलीद)न की हो । लक्ष्मी के मद ने किसको टेढ़ा और प्रभुता ने किसको बहरा नहीं कर दिया? ऐसा कौन है, जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री)के नेत्र-बाण न लगे हों?

गुन कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ।।
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जस न नसावा ।।
मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ।।
चिंता साँपिनि को नहिं खाया । को जग जाहि न ब्यापी माया ।।
कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ।।
सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ।।
यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमिति को बरनै पारा ।।
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं । अपर जीव केहि लेखे माहीं ।।

भावार्थ– रज, तम आदि गुणों का किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ? ऐसा कोई ही है जिसे मान और मद ने अछूता छोड़ा हो । यौवन के ज्वर ने किसे आपे से बाहर नहीं किया? ममता ने किसके यश का नाश नहीं किया? मत्सर (डाह) ने किसको कलंक नहीं लगाया? शोकरूपी पवन ने किसे नहीं हिला दिया ? चिन्ता साँपिन ने किसे नहीं खा लिया? जगत में ऐसा कौन है जिसे माया न व्यापी हो? मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है । ऐसा धैर्यवान कौन है, जिसके शरीर में यह कीड़ा न लगा हो? पुत्र, धन और लोक प्रतिष्ठा इन तीन प्रबल इच्छाओं ने किसकी बुद्धि मलिन नहीं कर दी? यह सब माया का बड़ा बलवान परिवार है । यह अपार है, इसका वर्णन कौन कर सकता है? शिवजी और ब्रह्मा जी भी जिससे डरते हैं, तो दूसरे जीव किस गिनती में हैं ।

दो०— ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ।। ७१ (क)।।

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि ।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ।। ७१ (ख)।।

भावार्थ– माया की प्रचण्ड सेना संसार भर में छायी हुई है। कामादि (काम, क्रोध और लोभ)उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पाखण्ड उसके योद्धा हैं। वह माया श्री रघुबीर की दासी है। यद्यपि समझ लेने पर वह मिथ्या ही है, किन्तु वह श्री रामजी की कृपा के बिना छूटती नहीं है। हे नाथ! यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥
सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा ॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ॥

भावार्थ– जो माया सारे जगत को नचाती है और जिसका चरित्र किसी ने नहीं लख पाया, हे खगराज गरुड़ जी! वही माया प्रभु श्री रामचन्द्र जी के भ्रकुटी के इशारे पर अपने समाज सहित नटी की तरह नाचती है। श्री राम जी वही सच्चिदानन्द हैं जो अजन्मा, विज्ञानस्वरूप, रूप और बल के धाम, सर्वव्यापक एवं स्वरूप, अखण्ड, अनन्त, सम्पूर्ण अमोघशक्ति और छः ऐश्वर्यों से युक्त भगवान हैं। वे निर्गुण (माया के गुणों से रहित), महान, वाणी और इन्द्रियों से परे, सब कुछ देखने वाले, निर्वाध, अजेय, ममतारहित, निराकार (मायिक आकार से रहित), मोहरहित, नित्य माया-रहित, सुख की राशि, प्रकृति से परे, प्रभु (सर्वसमर्थ) सदा सब के हृदय में बसने वाले, इच्छा रहित, विकाररहित, अविनाशी ब्रह्म हैं। यहाँ (श्री राम में)मोह का कारण ही नहीं है। क्या अन्धकार भी कभी सूर्य के सामने जा सकता है?

दो०– भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥ ७२ (क)॥

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ ॥ ७२ (ख)॥

भावार्थ– भगवान प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने भक्तों के लिये नृपशरीर धारण किया और साधारण मनुष्यों के अनुसार उन्होंने अनेकों परम पावन चरित्र किये। जैसे कोई नट अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है, और वही-वही (जैसा वेष होता है उसी के अनुकूल)भाव दिखलाता है, पर स्वयं वह उनमें से कोई हो नहीं जाता।

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
जे मति मलिन बिषयबस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥
नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा॥
नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥
हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा॥
मायाबस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥

भावार्थ– हे गरुड़ जी! ऐसी ही श्री रघुनाथ जी की यह लीला है, जो राक्षसों को विशेष मोहित करने वाली और भक्तों को सुख देने वाली है। हे स्वामी! जब जिसको कवँल आदि नेत्रदोष होता है, तब वह चन्द्रमा को पीले रंग का कहता है। हे पक्षिराज! जब जिसे दिशा भ्रम होता है, तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुआ है। नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपने को अचल समझता है। बालक घूमते (चक्राकार दौड़ते) हैं। घर आदि नहीं घूमते। पर वे आपस में एक दूसरे को झूठा कहते हैं। हे गरुड़ जी! श्री हरि के विषय में मोह की कल्पना भी ऐसी ही है। भगवान में तो स्वप्न में भी अज्ञान का प्रसंग नहीं है। किन्तु जो माया के वश, मंदबुद्धि और भाग्यहीन हैं, और जिनके हृदय पर अनेकों प्रकार के परदे पड़े हैं, वे मूर्ख हठ के वश होकर सन्देह करते हैं, और अपना अज्ञान श्री राम जी पर आरोपित करते हैं।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ हैं। कागभुशुण्डि द्वारा रामकथा पृष्ठ ११३३ पर समाप्त हुयी है। उसे सुनकर गरुड़ बहुत आनन्दित हुये। उन्होंने कागभुशुण्डि के प्रति अपनी कृज्ञता प्रकट करते हुये कहा कि उनका मोह अब पूरी तरह नष्ट हो गया। मोह के विषय में कागभुशुण्डि ने उन्हें फिर समझाया कि भगवान में तो स्वप्न में भी अज्ञान का प्रसंग नहीं है। किन्तु माया के वश मन्दबुद्धि और भाग्यहीन भगवान के विषय में सन्देह करते हैं। और अपना अज्ञान राम पर आरोपित करते हैं। अपनी बात की पुष्टि करते हुये, कागभुशुण्डि ने कई दृष्टान्त दिये। जैसे–

१. जिसको पीलिया हो गया है, उसे चन्द्रमा पीला लगता है।

२. जिसे दिशा भ्रम हो जाता है, वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुआ है।

३. नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपने को अचल समझता है।

४. बालक चक्राकार दौड़ते हैं और उन्हें घर घूमते हुये दिखते हैं।

दो०— काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुख रूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ पड़े तम कूप ।। ७३ (क)।।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ।। ७३ (ख)।।

भावार्थ— जो काम, क्रोध, मद और लोभ में रत हैं, और दुःख रूप घर में आसक्त हैं, वे श्री रघुनाथ जी को कैसे जान सकते हैं? वे मूर्ख तो अन्धकार रूपी कुएँ में पड़े हुए हैं। निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ हैं, परन्तु (गुणातीत दिव्य) सगुण रूप को कोई नहीं जानता। इसलिये उन सगुण भगवान के अनेक प्रकार के सुगम और अगम चरित्रों को सुनकर मुनियों के मन को भ्रम हो जाता है।

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ यथामति कथा सुहाई ॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावउँ तोही ॥
राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता ॥
ताते नहिं कछु तुम्हहिं दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ ॥
सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना ॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी ॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं ॥

भावार्थ— हे पक्षिराज गरुड़ जी! श्री रघुनाथ जी की प्रभुता सुनिये। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार यह सुहावनी कथा कहता हूँ। हे प्रभो! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ, वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ। हे तात! तुम श्री राम जी के कृपापात्र हो। श्री हरि के गुणों में आपकी प्रीति है, इसलिये आप मुझे सुख देने वाले हैं। इसी से मैं आपसे कुछ भी नहीं छिपाता और अत्यन्त रहस्य की बातें आपको गाकर सुनाता हूँ। श्री रामचन्द्र जी का सहज स्वभाव सुनिये। वे भक्त में अभिमान कभी नहीं रहने देते। क्योंकि अभिमान जन्म-मरण रूप संसार का मूल है और अनेकों प्रकार के क्लेशों तथा समस्त शोकों का देने वाला है। इसलिये कृपानिधि उसे दूर कर देते हैं क्योंकि सेवक पर उनकी बहुत ही अधिक ममता है। हे गोसाईं! जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा होता है, तो माता उसे कठोर हृदय की भाँति चिरा डालती है।

दो०— जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर ।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ।। ७४ (क)।।
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि ।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि ।। ७४ (ख)।।

भावार्थ—यद्यपि बच्चा पहले (फोड़ा चिराते समय) दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है, तो भी रोग के नाश के लिये माता बच्चे की उस पीड़ा को कुछ भी नहीं गिनती (उसकी परवा नहीं करती)। उसी प्रकार श्री रघुनाथ जी अपने दास का अभिमान उसके हित के लिये हर लेते हैं।" तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे प्रभु को भ्रम त्यागकर क्यों नहीं भजते।

राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥
इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी॥
लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहु रंगा॥

भावार्थ— हे पक्षिराज गरुड़ जी! श्री राम जी की कृपा और अपनी जड़ता की बात कहता हूँ, मन लगा कर सुनिये। जब जब श्री रामचन्द्र जी मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिये बहुत लीलाएँ करते हैं, तब तब मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ और उनकी बाललीला देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर मैं जन्मोत्सव देखता हूँ और भगवान की शिशु लीला में लुभाकर पाँच वर्ष तक वहीं रहता हूँ। बालकरूप श्री रामचन्द्र जी मेरे इष्टदेव हैं, जिनके शरीर में अरबों कामदेवों की शोभा है। हे गरूड़ जी! अपने प्रभु का मुख देख-देखकर मैं नेत्रों को सफल करता हूँ। छोटे से कौए का शरीर धरकर भगवान के साथ-साथ फिरकर मैं उनके भाँति भाँति के बालचरित्रों को देखा करता हूँ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में केवल सात विषम पंक्तियाँ है। राम-कथा कहने के पश्चात् और माया का स्वरूप बताने के बाद, कागभुशुण्डि ने गरुड़ को अपने जीवन का एक भेद बताया। उन्होंने बतलाया कि बालस्वरूप श्री रामचन्द्र जी उनके इष्टदेव हैं। छोटे से कौए का शरीर धरकर भगवान के साथ-साथ फिर कर उन्होंने उनके भाँति-भाँति के बालचिरत्रों को देखा।

दो०— लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥ ७५ (क)॥

एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥ ७५ (ख)॥

भावार्थ–लड़कपन में वे जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ मैं साथ-साथ उड़ता हूँ। और आँगन में उनकी जो जूठन पड़ती है वही उठाकर खाता हूँ। एक बार श्री रघुनाथ जी ने सब चरित्र बहुत अधिकता से किये। प्रभु की उस लीला का स्मरण करते ही कागभुशुण्डि का शरीर प्रेमानन्दवश पुलकित हो गया।

कहइ भुसुंड सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक सुखदायक॥
नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥
बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥

भावार्थ– भुशुण्डि जी कहने लगे– हे पक्षिराज सुनिये, श्री राम जी का चरित्र सेवकों को सुख देने वाला है। अयोध्या का राजमहल सब प्रकार से सुन्दर है। सोने के महल में नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं। सुन्दर आँगन का वर्णन नहीं किया जा सकता, जहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। माता को सुख देने वाले बालविनोद करते हुए श्री रघुनाथ जी आँगन में विचर रहे हैं। मरकत मणि के समान श्याम और कोमल शरीर है। अंग-अंग में बहुत से कामदेवों की शोभा छायी हुई है। नवीन लाल कमल के समान लाल-लाल कोमल चरण हैं और उनके नख चन्द्रमा की कान्ति को हरने वाले हैं। तलवे में बज्रादि (बज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल) के चार सुन्दर चिन्ह हैं। चरणों में मधुर शब्द करने वाले सुन्दर नूपुर हैं। मणियों से (रत्नों से) जड़ी हुई, सोने की बनी हुई सुन्दर करधनी का शब्द सुहावना लग रहा है।

दो०– रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिधि बाल बिभूषन चीर॥ ७६॥

भावार्थ– उदर पर सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभि सुन्दर और गहरी है। विशाल वक्षःस्थल पर अनेकों प्रकार के बच्चों के आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं।

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल केहरि दर गईवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा॥
कलबल बचन अधिर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥

नील कंज लोचन भव मोचन । भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए । कुंचित कच मेचक छबि छाए ॥
पीत झीनि झगली तन सोही । किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी । नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी ॥
मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा । बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं । चलउँ भागि तब पूप देखावहिं ॥

भावार्थ– लाल हथेलियाँ, नख और अँगुलियाँ मन को हरने वाली हैं और विशाल भुजाओं पर सुन्दर आभूषण हैं। बाल सिंह के से कन्धे और शंख के समान (तीन रेखाओं से युक्त) गला है। सुन्दर ठुड्डी है और मुख तो छबि की सीमा है। कलबल (तोतले) बचन हैं, लाल ओठ हैं। उज्ज्वल, सुन्दर और छोटी-छोटी (ऊपर और नीचे)दो-दो दँतुलिया हैं। सुन्दर गाल, मनोहर नासिक और सब सुखों को देने वाली चन्द्रमा की (अथवा सुखों को देने वाली समस्त कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा की)किरणों के समान मधुर मुस्कान है। नीले कमल के समान नेत्र भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ाने वाले हैं। ललाट पर गोरोचन का तिलक सुशोभित है। भौहें टेढ़ी हैं, कान सम सुन्दर हैं, काले और घुंघराले केशों की छबि छा रही है। पीली और महीन झंगुली शरीर पर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। राजा दशरथ जी के आँगन में बिहार करने वाले, रूप की राशि श्री रामचन्द्र जी अपनी परछाहीं देखकर नाचते हैं। और मुझसे बहुत प्रकार से खेल करते हैं। इन चरित्रों का वर्णन करते मुझे लज्जा आती है। किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता, तब मुझे पुआ दिखलाते थे।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। बाल राम को अपना इष्टदेव मानकर, कागभुशुण्डि ने उनके बाल स्वरूप का ऊपर वर्णन किया है। वर्णन करने के पश्चात् वह कहते हैं कि "उनकी किलकारी और चितवन मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। दशरथ के आँगन में श्री रामचन्द्र जी अपनी परछाई देखकर नाचते हैं और मुझसे बहुत प्रकार से खेल करते हैं। किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता, तब वह मुझे पूआ दिखलाते थे।"

दो०–आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं ।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ।। ७७ (क)।।

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह ।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह ।। ७७ (ख)।।

भावार्थ– मेरे निकट आने पर प्रभु हँसते हैं, और भाग जाने पर वे रोते हैं। और जब मैं उनका चरण स्पर्श करने के लिये पास जाता हूँ, तब वे पीछे फिर-फिर कर मेरी ओर देखते

हुए भाग जाते हैं। साधारण बच्चों जैसी लीला देखकर मुझे मोह (शंका) हुआ कि सच्चिदानन्द प्रभु ये कौन चरित्र कर रहे हैं।

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥
नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना॥
ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर॥
जौं सब कें रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

भावार्थ— हे पक्षिराज! मन में इतनी (शंका) लाते ही श्री रघुनाथ जी के द्वारा प्रेरित माया मुझपर छा गई। परन्तु वह माया न तो मुझे दुःख देने वाली हुई और न दूसरे जीवों की भाँति संसार में डालने वाली हुई। हे नाथ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है। हे भगवान के वाहन गरुड़ जी! उसे सावधान होकर सुनिये। एक सीतापति श्री रामजी ही अखण्ड ज्ञानस्वरूप हैं और जड़-चेतन सभी जीव मोह के वश हैं। यदि जीवों को एकरस (अखण्ड) ज्ञान रहे, तो कहिये, फिर ईश्वर और जीव में भेद ही कैसा? अभिमानी जीव माया के वश है और वह माया सत, रज और तम इन तीनों गुणों की खान ईश्वर के वश में है। जीव परतन्त्र है, भगवान स्वतन्त्र हैं। जीव अनेक हैं, श्रीपति भगवान एक हैं। यद्यपि माया का किया हुआ यह भेद असत है, तथापि वह भगवान के भजन बिना करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं जा सकता।

दो०— रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥ ७८ (क)॥

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥ ७८ (ख)॥

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी के भजन बिना जो मोक्षपद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान होने पर भी, बिना पूँछ और सींग का पशु है। सभी तारागणों साथ सोलह कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा उदय हो, और जितने पर्वत हैं उन सब में दावाग्नि लगा दी जाय, तो भी सूर्य के उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती।

ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥

ताते नास न होइ दास कर । भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर ॥
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा । बिहसे सो सुनु चरित बिसेषा ॥
तेहि कोतुक कर मरमु न काहूँ । जाना अनुज न मातु पिताहूँ ॥
जानु पानि धाए मोहि धरना । स्यामल गात अरुन कर चरना ॥
तब मैं भागि चलउ उरगारी । राम गहन कहँ भुजा पसारी ॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा । तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा ॥

भावार्थ— हे पक्षिराज ! इसी प्रकार श्री हरि के भजन बिना जीवों का क्लेश नहीं मिटता । श्री हरि के सेवक को अविद्या नहीं व्यापती । प्रभु की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है । हे पक्षिराज ! इसी से दास का नाश नहीं होता और भेद-भक्ति बढ़ती है । श्री राम जी ने मुझे जब भ्रम से चकित देखा, तब वे हँसे। वंह विशेष चरित्र सुनिये । उस खेल का मर्म किसी ने नहीं जाना, न छोटे भाइयों ने और न माता-पिता ने ही । वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरण वाले श्रीरामजी घुटने और हाथों बल मुझे पकड़ने दौड़े । हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! तब मैं भाग चला । श्री राम जी ने मुझे पकड़ने के लिये भुजा फैलायी। मैं जैसे जैसे आकाश में दूर उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ श्री हरि की भुजा को अपने पास देखता था ।

दो०— ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात ।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात ।। ७९ (क)।।

सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि ।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि ।। ७९ (ख)।।

भावार्थ— मैं ब्रह्म लोक तक गया, और जब उड़ते हुए मैंने पीछे की ओर देखा, तो हे तात! श्री राम जी की भुजा में और मुझमें केवल दो ही अंगुल का बीच था । सातों आवरण को भेदकर जहाँ तक मेरी गति थी, वहाँ तक मैं गया पर वहाँ भी प्रभु की भुजा को (अपने पीछे)देखकर मैं व्याकुल हो गया ।

मूदेउँ नयन त्रसित जब भयउँ । पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं । बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं ॥
उदर माझ सुनु अंडज राया । देखेउँ बहुत ब्रह्मांड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भांति सृष्टि बितारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥

भावार्थ– जब मैं भयभीत हो गया, तब मैंने आखें मूँद लीं। फिर आँखे खोलकर देखते ही अवधपुरी में पहुँच गया। मुझे देखकर श्रीराम जी मुस्कराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरन्त उनके मुख में प्रवेश कर गया। हे पक्षिराज! सुनिये, मैंने उनके पेट में बहुत से ब्रह्माण्डों के समूह देखे। वहाँ (उन ब्रह्माण्डों में) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक-से-एक बढ़ कर थी। करोड़ों ब्रह्मा जी और शिव जी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि; असंख्य समुद्र, नदी, तालाब और वन, तथा और भी नाना प्रकार की सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकार के जड़ और चेतन जीव देखे।

दो०– जो नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्‌भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ ।। ८० (क)।।

एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक ।। ८० (ख)।।

भावार्थ– जो कभी नहीं देखा था, न सुना था और मन में भी नहीं समा सकता था, अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, वही सब अद्‌भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उसका किस प्रकार वर्णन किया जाय। मैं एक-एक ब्रह्माण्ड में एक-एक सौ वर्ष तक रहता। इस प्रकार मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा।

लोक लोकप्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता ।।
नर गंधर्ब भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला ।।
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती ।।
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। सब प्रपंच तहँ आनइ आना ।।
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा ।।
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ।।
दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता ।।
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा ।।

भावार्थ– प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिग्पाल, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प तथा नाना जाति के देवता एवं दैत्य गण थे। सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकार के थे। अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरी-ही-दूसरी प्रकार की थी। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में मैंने अपना रूप देखा तथा अनेकों अनुपम वस्तुएँ देखीं। प्रत्येक भुवन में न्यारी ही अवधपुरी, भिन्न ही सरयू जी और भिन्न प्रकार के ही नर-नारी थे। हे तात! सुनिये, दशरथ जी, कौशल्याजी और भरत जी

आदि भाई भी भिन्न-भिन्न रूप के थे। मैं अनेक ब्रह्माण्ड में रामावतार और उनकी अपार बाललीलाएँ देखता फिरता।

दो०— भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरि जान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ।। ८१ (क)।।

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन फिरउँ प्रेरित मोह समीर ।। ८१ (ख)।।

भावार्थ— हे हरिवाहन! मैंने सभी कुछ भिन्न-भिन्न और अत्यन्त विचित्र देखा। मैं अनगिनत ब्रह्माण्डों में फिरा, पर प्रभु श्री रामचन्द्र जी को मैंने दूसरी तरह का नहीं देखा। सर्वत्र वही शिशुपन, शोभा और वही कृपालु रघुवीर। इस प्रकार मोहरूपी पवन की प्रेरणा से मैं भुवन-भुवन में देखता फिरता था।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका ।।
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ ।।
निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ ।।
देखउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई ।।
राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना ।।
तहँ पुनि देखेउ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना ।।
करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी ।।
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा ।।

भावार्थ— अनेक ब्रह्माण्ड में भटकते मुझे मानों एक सौ कल्प बीत गये। फिरता-फिरता मैं अपने आश्रम आया, और कुछ काल वहाँ रह कर बिताया। फिर जब अपने प्रभु का अवधपुरी में जन्म (अवतार)सुन पाया, तब प्रेम से परिपूर्ण होकर मैं हठपूर्वक उठ दौड़ा। जाकर मैंने जन्म-महोत्सव देखा, जिस प्रकार मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ। श्री रामचन्द्र जी के पेट में मैंने बहुत से जगत् देखे जो देखते ही बनते थे। वर्णन नहीं किये जा सकते। वहाँ फिर मैंने सुजान, मायापति, कृपालु भगवान श्री राम को देखा। मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड़ में व्याप्त थी। यह सब मैंने दो ही घड़ी में देखा। मन में विशेष मोह होने से मैं थक गया।

दो०— देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर ।। ८२ (क)।।

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम ।। ८२ (ख)।।

भावार्थ– मुझे व्याकुल देखकर तब कृपालु श्री रघुबीर जी हँस दिये। हे धीरबुद्धि गरुड़ जी! सुनिये। उनके हँसते ही मैं मुँह से बाहर आ गया। श्री रामचन्द्र जी मेरे साथ फिर वही लड़कपन करने लगे। मैं करोड़ो (असंख्य) प्रकार से मन को समझाता था पर वह शान्ति नहीं पाता था।

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥
प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥
कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी॥
भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥

भावार्थ– यह बालचरित्र देखकर और (पेट के अन्दर देखी हुई) वह प्रभुता समझकर (स्मरणकर) ''हे आर्त्तजनों के रक्षक! रक्षा कीजिये'' पुकारता हुआ मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुख से बात नहीं निकलती थी। तदनन्तर प्रभु ने मुझे प्रेम विह्वल देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोक लिया। प्रभु ने अपना कर-कमल मेरे सिर पर रक्खा। दीनदयाल ने मेरा सम्पूर्ण दुःख हर लिया। सेवकों को सुख देने वाले कृपामय श्री राम जी ने मुझे मोह से सर्वथा रहित कर दिया। उनकी पहले वाली प्रभुता विचार-विचार कर मेरे मन में बड़ा भारी हर्ष हुआ। प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय में बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ। फिर मैंने (आनन्द से) नेत्रों में जल भरकर, पुलकित होकर औह हाथ जोड़कर बहुत प्रकार से विनती की।

दो०– सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥ ८३ (क)॥

काकभुसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥८३(ख)॥

भावार्थ– मेरी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर और अपने दास को दीन देखकर रमानिवास श्री राम जी सुखदायक, गम्भीर और कोमल वचन बोले–''हे कागभुशुण्डि! तू मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर वर माँग–अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा सम्पूर्ण सुखों की खान मोक्ष,

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना । मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना ॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं । मागु जो तोहि भाव मन माहीं ॥
सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ । मन अनुमान करन तब लागेउँ ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही ।भगति आपनी देन न कही ॥
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ॥
भजन हीन सुख कवने काजा । अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ॥
जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू । मो पर करहु कृपा अरु नेहू ॥
मन भावत बर मागउँ स्वामी । तुम्ह उदार उर अंतरजामी ॥

भावार्थ– ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान और वे अनेकों गुण जो जगत में मुनियों के लिये भी दुर्लभ हैं, ये सब मैं आज तुझे दूँगा, इसमें सन्देह नहीं । जो तेरे मन भावे, सो माँग ले ।'' प्रभु के वचन सुन कर मैं बहुत ही प्रेम में भर गया । तब मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुखों के देने की बात कही, यह तो सत्य है पर अपनी भक्ति देने की बात नहीं कही । भक्ति से रहित सब गुण और सब सुख कैसे फीके हैं, जैसे नमक के बिना बहुत प्रकार के भोज पदार्थ । भजन से रहित सुख किस काम के । हे पक्षिराज! ऐसा विचारकर मैं बोला–''हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देते हैं और मुझ पर कृपा और स्नेह करते हैं, तो हे स्वामी ! मैं अपना मन-भाया वर माँगता हूँ । आप उदार हैं । और हृदय के भीतर की जानने वाले हैं ।

दो०– अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ।। ८४ (क)।।

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ।। ८४ (ख)।।

भावार्थ– आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध (अनन्य, निष्काम)भक्ति को श्रुति और पुराण गाते हं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभु की कृपा से कोई विरला हीं जिसे पाता है, हे भक्तों के मन इच्छित फल देने वाले कल्पवृक्ष ! शरणागत के हितकारी हे कृपासागर! हे सुखधाम! श्री राम जी ! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिये ।''

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक । बोले बचन परम सुखदायक ॥
सुनु बायस तैं सहज सयाना । काहे न मागसि अस बरदाना ॥
सब कुछ खानि भगति तैं मागी । नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं । जे जप जोग अनल तन दहहीं ॥

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई । मागेहु भगति मोहि अति भाई ॥

सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें । सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें ॥

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा । जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥

जानब तैं सबही कर भेदा । मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥

भावार्थ– ''एवमस्तु'' (ऐसा ही हो)कहकर रघुवंश के स्वामी परम सुख देने वाले वचन बोले–''हे काक ! सुन । तू स्वभाव से ही बुद्धिमान है । ऐसा वरदान कैसे न माँगता ? तूने सब सुखों की खान भक्ति माँग ली । जगत में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है । वे मुनि जो जप और योग की अग्नि से शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यज्ञ करके भी जिसको (जिस भक्ति को)नहीं पाते, वही भक्ति तूने माँग ली । तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया । यह चतुरता मुझे बहुत ही अच्छी लगी। हे पक्षी! सुन, मेरी कृपा से अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदय में बसेंगे । भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उनके रहस्य तथा विभाग, इन सब के भेद को तू मेरी कृपा से ही जान जायेगा, तुझे साधन का कष्ट नहीं होगा ।

दो०– माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि ।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ।। ८५ (क)।।

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग ।
कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग ।। ८५ (ख)।।

भावार्थ– माया से उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको न व्यापेंगे । मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण (प्रकृति के गुणों से रहित)और गुणों की खान ब्रह्म जानना। हे काक! सुन । मुझे भक्त निरन्तर प्रिय हैं, ऐसा विचार कर शरीर, वचन और मन से चरणों में अटल प्रेम करना ।

अब सुनु परम बिमल मम बानी । सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥

निज सिद्धान्त सुनावउँ तोही । सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही ॥

मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिबिधि प्रकारा ॥

सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ॥

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी । तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ॥

तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी । ग्यानिह ते अति प्रिय बिग्यानी ॥

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं । मोहि सेवक मम प्रिय कोउ नाहीं ॥

भगति हीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु मम प्रिय मोहि सोई ॥

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥

भावार्थ– अब मेरी सत्य, सुगम, वेदादि के द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन । मैं तुझको यह 'निज सिद्धान्त' सुनाता हूँ । सुन कर मन में धारण कर और सब तज कर मेरा भजन कर । यह सारा संसार मेरी माया से उत्पन्न है । इसमें अनेकों प्रकार के चराचर जीव हैं । वे सभी मुझे प्रिय हैं । क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं । इनमें मुझको मनुष्य सब से अधिक अच्छे लगते हैं । उन मनुष्यों में भी द्विज, द्विजों में भी वेदों को धारण करने वाले, उनमें भी वेदोक्त धर्म पर चलने वाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान)मुझे प्रिय हैं । वैराग्यवानों में फिर ज्ञानी और ज्ञानियों में भी अत्यन्त प्रिय विज्ञानी हैं । विज्ञानियों से भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति है, कोई दूसरी आशा नहीं है । मैं तुझ से बार-बार सत्य (निज सिद्धान्त) कहता हूँ कि मुझे अपने सेवक के समान प्रिय कोई भी नहीं है । भक्ति हीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवों के समान ही प्रिय है । परन्तु भक्तिमान अत्यन्त नीच भी प्राणी मुझे प्राणों के समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । पृष्ठ ११३९ पर बताया गया है कि कागभुशुण्डि के इष्टदेव बाल राम थे । उसने छोटे से कौए का शरीर धरकर भगवान के साथ-साथ फिरकर भगवान के भाँति-भाँति के बाल चरित देखे । जैसे गरुड़ को भ्रम हो गया था कि भगवान नागपाश में कैसे बन्ध गये ? और उसको उनको नागपाश से छुड़ाने के श्रेयका अभिमान हो गया था, इसी प्रकार कागभुशुण्डि को भी माया व्याप गयी थी कि सच्चिदानन्द प्रभु एक कौए के पीछे क्यों और कैसे दौड़ते फिर रहे हैं?अपने भक्त के भ्रम को नष्ट करने के लिये बाल भगवान ने अपने हाथ बढ़ाये । तब कागभुशुण्डि भाग चला । वह आकाश में जैसे जैसे दूर उड़ता, वैसे वैसे ही श्री हरि की भुजा अपने पास की दिखती । कागभुशुण्डि उड़ते-उड़ते ब्रह्म लोक तक गया, पर वहाँ भी प्रभु की भुजा ने उसका पीछा नहीं छोड़ा । भयभीत होकर उसने अपनी आँखे मूँद लीं । आँखे खोलीं तो अपने को अवधपुरी में पाया । हँसते हुए बाल राम के मुख में प्रवेश कर गया । वहाँ उसने अनेकों ब्रह्माण्ड देखे । काकभुशुण्डि को व्याकुल देखकर कृपालु श्री राम जी हँस दिये । उनके हँसते ही कागभुशुण्डि मुँह से बाहर आ गया । "हे आर्त्त जनों के रक्षक ! रक्षा कीजिये" पुकारते हुए कागभुशुण्डि को प्रेम में विह्वल देखकर, भगवान ने अपनी माया की प्रभुता को रोक लिया । भगवान ने कहा–"तू मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर जो भी सिद्धि-ऋद्धि चाहे माँग ले । कागभुशुण्डि ने केवल भगवान की अविरल भक्ति माँगी । "एवमस्तु" कहकर, भगवान ने उसको वही उपदेश दिया जो उन्होंने समस्त अयोध्यावासियों को पहले दिया था । भगवान ने कहा–"सभी चराचर जीव मुझे प्रिय हैं । इनमें मुझको मनुष्य सबसे अच्छे लगते हैं । उन मनुष्यों में भी मुझे ब्राह्मण अच्छे लगते हैं और ब्राह्मणों में वेदधारी । वेदधारियों में वेदोक्त धर्म पर चलने वाले । वेदोक्त धर्म पर चलने वाले विरक्त, वैराग्यवानों में ज्ञानी, और ज्ञानियों में विज्ञानी । परन्तु विज्ञानियों से भी प्रिय मुझे अपने दास हैं, जिन्हें मेरी गति के अतिरिक्त कोई दूसरी आशा नहीं है ।"

दो०— सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग ।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग ।। ८६ ।।

भावार्थ— पवित्र, सुशील और सुन्दर बुद्धिवाला सेवक भला बता, किसको प्यारा नहीं लगता ? वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं । काक! सावधान होकर सुन ।

एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ।।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ।।
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ।।
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा । सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ।।
एहि बिधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ।।
अखिल बिस्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबरि दाया ।।
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया । भजै मोहि मन बच अरु काया ।।

भावार्थ— एक पिता के बहुत से पुत्र पृथक-पृथक गुण, शील और आचरण वाले होते हैं । कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी । कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है । पिता का प्रेम इन सभी पर समान होता है । परन्तु इनमें से यदि कोई मन, वचन और कर्म से पिता का ही भक्त होता है, स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता, वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है, यद्यपि (चाहे) वह सब प्रकार से अज्ञान (मूर्ख) ही हो । इसी प्रकार तिर्यक (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरों समेत जितने भी चेतन और जड़ जीव हैं, उनसे भरा हुआ यह सम्पूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है । अतः सब पर मेरी बराबर दया है । परन्तु इनमें से जो मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीर से मुझको भजता है,

दो०— पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ।। ८७ (क) ।।

सो०— सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय ।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ।। ८७ (ख) ।।

भावार्थ— वह पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो भी सर्वभाव से मुझे भजता है, वही मुझे परम प्रिय है । हे पक्षी! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणप्रिय है । ऐसा विचार कर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझको ही भज ।

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही । सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही ॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ । तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ ॥
सो सुख जानि मन अरु काना । नहिं रसना पहिं जाइ बखाना ॥
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना । कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना ॥
बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसि कौतुक देई ॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा । चितइ मातु लागी अति भूखा ॥
देखि मातु आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिए उर लाई ॥
गोद राखि कराव पय पाना । रघुपति चरित ललित कर गाना ॥

भावार्थ– तुझे काल कभी नहीं व्यापेगा । निरन्तर मेरा स्मरण और भजन करते रहना।"प्रभु के वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था । मेरा शरीर पुलकित था और मन में मैं अत्यन्त ही हर्षित था । वह मुख मन और कान ही जानते हैं । जीभ से उसका बखान नहीं किया जा सकता । प्रभु की शोभा का वह सुख नेत्र ही जानते हैं । पर वे कह कैसे सकते हैं ? उनके वाणी तो नहीं । मुझे बहुत प्रकार से भलीभाँति समझाकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकों के खेल करने लगे । नेत्रों में जल भरकर और मुख को कुछ रूखा सा बनाकर उन्होंने माता की ओर देखा– (और मुखाकृति तथा चितवन से माता को समझा दिया कि)बहुत भूख लगी है । यह देखकर माता तुरन्त उठ दौड़ी और कोमल वचन कहकर उन्होंने श्रीराम जी को छाती से लगा लिया । वे गोद में लेकर उन्हें दूध पिलाने लगीं और श्री रघुनाथ जी (उन्हीं)की ललित कलाएँ गाने लगीं ।

सो०– जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद ।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ॥ ८८ (क)॥

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति ॥ ८८ (ख)॥

भावार्थ– जिस सुख के लिये सब को सुख देने वाले कल्याण रूप त्रिपुरारि शिवजी ने अशुभ वेष धारण किया, उस सुख में अवधपुर के नर-नारी निरन्तर निमग्न रहते हैं । उस सुख का लवलेश मात्र जिन्होंने एक बार स्वप्न में भी प्राप्त कर लिया, हे पक्षिराज! वे सुन्दर बुद्धिवाले सज्जन पुरुष उसके सामने ब्रह्म सुख को भी कुछ नहीं गिनते ।

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला । देखेउँ बालबिनोद रसाला ॥
राम प्रसाद भगति बर पायउँ । प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ ॥
तब ते मोहि न ब्यापी माया । जब ते रघुनायक अपनाया ॥

यह सब गुप्त चरित मैं गावा । हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा ॥
निज अनुभव अब कहउँ खगेसा । बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जानें बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई । जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥

भावार्थ– मैं और कुछ समय तक अवधपुर में रहा और मैंने श्री रामजी की रसीली बाल लीलाएँ देखीं । श्री राम जी की कृपा से भक्ति का वरदान पाया । तदनन्तर प्रभु के चरणों की वन्दना करके मैं अपने आश्रम पर आया । इस प्रकार जब से श्री रघुनाथ जी ने मुझको अपनाया, तबसे मुझे माया कभी नहीं व्यापी । श्री हरि की माया ने मुझे जैसे नचाया, वह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा । हे पक्षिराज गरुड! अब मैं आपसे अपना निजी अनुव कहता हूँ । वह यह है कि भगवान के भजन बिना क्लेश दूर नहीं होते । हे पक्षिराज ! सुनिये, श्री राम जी की कृपा बिना श्री राम जी की प्रभुता नहीं जानी जाती, प्रभुता जाने बिना उन पर विश्वास नहीं जमता, विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे ही दृढ़ नहीं होती, जैसे हे पक्षिराज! जल की चिकनाई नहीं ठहरती ।

सो०– बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ।। ८९ (ख)।।

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ।।८९(ख)।।

भावार्थ– गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? और वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है ? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्री हरि की भक्ति के बिना क्या कोई सुख प्राप्त कर सकता है? हे तात! स्वाभाविक संतोष के बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है? चाहे करोड़ उपाय करके पच-पच मरिये फिर भी क्या कभी जल के बिना नाव चल सकती है?

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥
बिनु बिग्यान कि समता आवइ । कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गौसाँई ॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस कि ओहि बिहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥

भावार्थ– संतोष के बिना कामना का नाश नहीं होता और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं हो सकता । और श्री राम के भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं ? बिना धरती के भी कहीं पेड़ उग सकता है? विज्ञान के बिना क्या समभाव आ सकता है? आकाश के बिना क्या कोई अवकाश पा सकता है ? श्रद्धा के बिना धर्म का आचरण नहीं होता । क्या पृथ्वी-तत्व के बिना कोई गन्ध पा सकता है ? तप के बिना क्या तेज फैल सकता है? जल-तत्व के बिना संसार में क्या रस हो सकता है? पण्डित जनों की सेवा बिना क्या शील प्राप्त हो सकता है ? हे गोसाईं ! जैसे बिना तेज (अग्नि-तत्व)के रूप नहीं मिलता, निज-सुख (आत्मानन्द) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? वायु-तत्व के बिना क्या स्पर्श हो सकता है? क्या विश्वास के बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है ? इसी प्रकार श्री हरि के भजन बिना भव भय का नाश नहीं होता ।

दो०– बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ।। ९० (क)।।

सो०– अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ।। ९० (ख)।।

भावार्थ– बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना श्री राम जी द्रवीभूत नहीं होते और श्री राम जी की कृपा के बिना जीव स्वप्न में भी शान्ति नहीं पाता । हे धीर बुद्धि! ऐसा विचार कर सम्पूर्ण कुतर्कों और सन्देहों को छोड़कर ,करुणा की खान ,सुन्दर और सुख देने वाले श्री रघुबीर का भजन कीजिये।

निज मति सरिस नाथ मैं गाई । प्रभु प्रताप महिमा खगराई ।।
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी । यह सब मैं निज नयनन्हि देखी ।।
महिमा नाम रुप गुन गाथा । सकल अमित अनंत रघुनाथा ।।
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं । निगम सेष सिव पार न पावहिं ।।
तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता । नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ।।
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा । तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ।।
रामु काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ।।

भावार्थ– हे पक्षिराज ! हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप और महिमा का गान किया । मैंने इसमें कोई बात विशेष युक्ति से बढ़ाकर नहीं कही है । यह सब अपनी आँखों देखी कही है । श्री रघुनाथ जी की महिमा, नाम, रूप और गुणों की कथा सभी अपार एवं अनन्त हैं । तथा श्री रघनाथ जी स्वयं भी अनन्त हैं । मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धि के

अनुसार श्री हरि के गुण गाते हैं। वेद, शेष और शिवजी भी उनका पार नहीं पाते। आपसे लेकर मच्छर पर्यन्त सभी छोटे-बड़े जीव आकाश में उड़ते हैं, परन्तु आकाश का अन्त कोई नहीं पाते। इसी प्रकार हे तात! श्री रघुनाथ जी की महिमा भी अथाह है। क्या कभी कोई उसकी थाह पा सकता है? श्री राम जी का अरबों कामदेवों के समान सुन्दर शरीर है। वे अनन्त कोटि दुर्गाओं के समान शत्रुनाशक हैं। अरबों इन्द्रों के समान उनका विलास (ऐश्वर्य) है। अरबों आकाशों के समान उनमें अनन्त अवकाश हैं।

दो०— मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ।। ९१ (क)।।

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ।। ९१ (ख)।।

भावार्थ— अरबों पवन के समान उनमें महान बल है, अरबों सूर्यों के समान प्रकाश है। अरबों चन्द्रमाओं के समान वे शीतल और संसार के समस्त भयों का नाश करने वाले हैं। अरबों कालों के समान वे अत्यन्त दुस्तर, दुर्गम और दुरन्त हैं। वे भगवान अरबों धूम केतुओं के समान अत्यन्त प्रबल हैं।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला समन कोटि सत सरिस कराला ।।
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन ।।
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ।।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना ।।
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ।।
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ।।
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ।।
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ।।

भावार्थ— अरबों पातालों के समान प्रभु अगाध हैं। अरबों यमराज के समान भयानक हैं। अनन्त कोटि तीर्थों के समान वे पवित्र करने वाले हैं। उनका नाम सम्पूर्ण पापसमूह का नाश करने वाला है। श्री रघुबीर करोड़ों हिमालयों के समान अचल (स्थिर) हैं और अरबों समुद्रों के समान गहरे हैं। भगवान अरबों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं के देने वाले हैं। उनमें अनन्त कोटि सरस्वतियों के समान चतुरता है। अरबों ब्रह्माओं के समान सृष्टि-रचना की निपुणता है। वे अरबों विष्णुओं के समान पालन करने वाले और अरबों रुद्रों के समान संहार करने वाले हैं। वे अरबों कुबेरों के समान धनवान और करोड़ों मायाओं के समान सृष्टि के खजाने हैं। बोझ उठाने में वे अरबों शेषों के समान हैं। जगदीश्वर प्रभु श्री राम जी सभी बातों में सीमा रहित और उपमा रहित हैं।

छं०— निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै ।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै ।।
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं ।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं ।।

दो०— रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ ।। ९२ (क)।।

सो०— भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन ।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीतारवन ।। ९२ (ख)।।

भावार्थ— श्री राम जी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा ही नहीं । श्री राम के समान श्री राम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं । जैसे अरबों जुगनुओं के समान कहने से सूर्य प्रशंसा को नहीं, वरन लघुता को ही प्राप्त होता है । इसी प्रकार अपनी बुद्धि के विकास के अनुसार मुनीश्वर श्री हरि का वर्णन करते हैं । किन्तु प्रभु भक्तों को भावमात्र ग्रहण करने वाले और अत्यन्त कृपालु हैं । वे उस वर्णन को प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं । श्री रामजी अपार गुणों के समुद्र हैं । क्या उनका कोई पार पा सकता है? संतों से मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपको सुनाया । सुख के भण्डार, करुणाधाम भगवान भाव (प्रेम) के वश हैं । अतएव ममता, मद और मान को छोड़कर सदा श्री जानकी नाथ जी का ही भजन करना चाहिए ।

सुनि भसुंडि के बचन सुहाए । हरषित खगपति पंख फुलाए ।।
नयन नील मन अति हरषाना । श्रीरघुपति प्रताप उर आना ।।
पाछिल मोह समुझि पछिताना । ब्रह्म अनादि मनुज करि माना ।।
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा । जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ।।
गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई । जौं बिरंचि संकर सम होई ।।
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता ।।
तव सरूप गारुड़ि रघुनायक । मोहि जिआयउ जन सुखदायक ।।
तव प्रसाद मम मोह नसाना । राम रहस्य अनुपम माया ।।

भावार्थ— भुशुण्डि जी के सुन्दर वचन सुनकर पक्षिराज ने हर्षित होकर अपने पंख फूला लिये । उनके नेत्रों में (प्रेमानन्द के आँसुओं का) जल आ गया और मन अत्यन्त हर्षित हो गया । उन्होंने श्री रघुनाथ जी का प्रताप हृदय में धारण किया । वे अपने पिछले मोह को समझकर (याद करके) कि मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य करके माना, गरुड़ जी ने बार-बार कागभुशुण्डि जी के चरणों पर सिर नवाया और उन्हें श्री राम जी के ही समान जानकर प्रेम बढ़ाया । गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्मा जी और शंकर

जी के समान ही क्यों न हो। गरुड़ जी ने कहा–"हे तात ! मुझे सन्देहरूपी सर्प ने डस लिया था। (और सांप के डसने पर जैसे विष चढ़ने से लहरे आती हैं, वैसे ही)बहुत सी कुतर्क रूपी दुःख देने वाली लहरें आ रहीं थीं। आपके स्वरूप रूपी गरुड़ मन्त्र से भक्तों को सुख देने वाले गारुड़ी श्री रघुनाथ जी ने मुझे जिला लिया। आपकी कृपा से मेरा मोह नाश हो गया और मैंने श्री राम जी का अनुपम रहस्य जाना।"

टिप्पणी– सर्प के डसने पर गारुड़ मन्त्र से झाड़ने से विष उतर जाता है। यहाँ भुशुण्डी जी के द्वारा गरुड़ का संशय और कुतर्क नष्ट हुआ। अतः भुशुण्डी जी गरुड़ मन्त्र हुए। मन्त्र के लिये उसको जानने वाला गारुड़ी चाहिये, जो झाड़े, सो यहाँ रघुनाथ जी झाड़ने वाले हैं। अतः अर्धाली "तव स्वरूप गारुड़ि रघुनायक" का टीकाकारों ने तीन प्रकार से भावार्थ दिया है :-

१. आपका स्वरूप गारुड़ी मन्त्र है;आपके पास भेजकर रघुनाथ जी ने जिलाया।

२. आपके स्वरूप में रघुनायक ने गारुड़ी रुप होकर मुझे जिला लिया।

३. आपने जो रघुनायक जी का स्वरूप कहा, यही गारुड़ी है, जिसने मुझे जिला लिया।

दो०– ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ।। ९३ (क)।।

प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ।। ९३ (ख)।।

भावार्थ– उनकी (कागभुशुण्डि जी की)बहुत प्रकार से प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ जोड़कर, फिर गरुड़ जी प्रेम पूर्वक विनम्र और कोमल वचन बोले–"हे प्रभो ! हे स्वामी! मैं अपने अविवेक के कारण आपसे पूछता हूँ। हे कृपा के समुद्र! मुझे अपना निज दास जानकर आदरपूर्वक मेरे प्रश्न का उत्तर कहिये।

तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा ।।
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा ।।
कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई ।।
राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी ।।
नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं ।।
मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई ।।
अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा ।।
अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी ।।

भावार्थ– आप सर्वज्ञ हैं, तत्व के ज्ञाता हैं, अन्धकार (माया)से परे, उत्तम बुद्धि से युक्त, सुशील, सरल आचरण वाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के धाम और श्री रघुनाथ जी के प्रिय दास हैं। आपने यह कागशरीर किस कारण से पाया ? हे तात! यह सुन्दर रामचरितमानस आपने कहाँ पाया ? सो कहिये। हे नाथ! मैंने शिवजी से ऐसा सुना है कि महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता। ईश्वर (शिवजी)कभी मिथ्या वचन नहीं कहते, वह भी मेरे मन में सन्देह है। क्योंकि, हे नाथ! जगत में नाग, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर सभी जीव काल के कलेवा हैं। असंख्य ब्रह्माण्डों का नाश करने वाला काल सदा बड़ा ही अनिवार्य है।

सो०– तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल ।। ९४ (क)।।

दो०– प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ।। ९४ (ख)।।

भावार्थ– (ऐसा वह)अत्यन्त भयंकर काल आपको नहीं व्यापता। इसका क्या कारण है ? हे कृपालु ! मुझे कहिये, यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल है। हे प्रभो! आपके आश्रम में आते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! यह सब प्रेम सहित कहिये।''

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा ।।
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ।।
सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई ।।
सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई ।।
जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना ।।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ।।
एहिं तन राम भगति मैं पाई। तात मोहि ममता अधिकाई ।।
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई ।।

भावार्थ– हे उमा! गरुड़ जी की वाणी सुनकर कागभुशुण्डि जी हर्षित हुए और परम प्रेम से बोले–हे सर्पों के शत्रु! आपकी बुद्धि को धन्य है ! धन्य है! आपके प्रश्न मुझे बहुत प्यारे लगे। आपके प्रेम युक्त सुन्दर प्रश्न सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मों की याद आ गई। मैं अपनी सब कथा विस्तार से कहता हूँ। हे तात! आदरसहित मन लगाकर सुनिये। अनेक जप, तप, यज्ञ, शम, दम, व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान आदि सब का फल श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रेम होना है। इसके बिना कोई कल्याण नहीं पा सकता। मैंने इसी शरीर से

श्री राम जी की भक्ति प्राप्त की है, इसी से इस पर मेरी ममता अधिक है। जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उस पर सभी कोई प्रेम करते हैं।

सो०— पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ।। ९५ (क)।।

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ।। ९५ (ख)।।

भावार्थ-- हे गरुड़ जी ! ऐसी श्रुति सम्मत नीति है, और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यन्त नीच से भी प्रेम करना चाहिये। रेशम कीड़े से होता है। उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसी से उस परम अपवित्र कीड़ों को भी सब कोई प्राणों के समान पालते हैं।

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा ।।
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ।।
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही ।।
राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी ।।
तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना ।।
प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा ।।
नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना ।।
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं ।।
देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं ।।
सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी ।।

भावार्थ— जीव के लिये सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्म से श्री राम जी के चरणों से प्रेम हो। वही शरीर पवित्र और सुन्दर है, जिस शरीर को पाकर श्री रघुबीर जी का भजन किया जाय। जो श्री राम जी के विमुख है वह यदि ब्रह्मा जी के समान शरीर पा जाय तो भी कवि और पण्डित उसकी प्रशंसा नहीं करते। इसी शरीर से मेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न हुई। इसी से हे स्वामी! यह मुझे परम प्रिय है। मेरा मरण अपनी इच्छा पर है, परन्तु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता। क्योंकि वेदों ने वर्णन किया है कि शरीर के बिना भजन नहीं होता। पहले मोह ने मेरी बड़ी दुर्दशा की। पर श्री राम जी के विमुख होकर मैं कभी सुख से नहीं सोया। अनेकों जन्मों में मैंने अनेकों प्रकार के योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म किये हे गरुड़ जी ! जगत में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने बार-बार घूम-फिरकर जन्म न लिया हो। हे गुसाईं! मैंने सब कर्म करके देख लिये, पर अब (इस

जन्म) की तरह मैं कभी सुखी नहीं हुआ । हे नाथ! मुझे बहुत से जन्मों की याद है । क्योंकि श्री शिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह ने नहीं घेरा ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । रामकथा और ज्ञान-विज्ञान की बातें सुनने के पश्चात्, गरुड़ जी ने कागभुशुण्डि से दो प्रश्न पूछे—आपने यह कौए का शरीर क्यों और कैसे पाया और आपने काल को कैसे जीता? उत्तर में कागभुशुण्डि ने कहा—

"राम भगति एहिं तन उर जामी । ताते मोहि परम प्रिय स्वामी ।।
तजउँ न तन निज इच्छा मरना । तन बिनु बेद भजन नहिं बरना।।"

अर्थात्, इसी शरीर से मेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न हुई । इसीसे यह मुझे परम प्रिय है । मेरा मरण अपनी इच्छा पर है, परन्तु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता ।

दो०— प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस ।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस ।। ९६ (क)।।

पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल ।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल ।। ९६ (ख)।।

भावार्थ— हे पक्षिराज ! सुनिये, अब मैं अपने प्रथम जन्म के चरित्र कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्रभु के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, जिससे सब क्लेश मिट जाते हैं। (मेरे) पूर्व (जन्मों)के एक कल्प में पापों का मूल युग कलियुग था, जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्मपरायण और वेद के विरोधी थे।

तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई । जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई ।।
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी । आन देव निंदक अभिमानी ।।
धन मद मत्त परम बाचाला । उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला ।।
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी । तदपि न कछु महिमा तब जानी ।।
अब जाना मैं अवध प्रभावा । निगमागम पुरान अस गावा ।।
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई । राम परायन सो परि होई ।
अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर बसहिं रामु धनुपानी ।।
सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ।।

भावार्थ– उस कलियुग में मैं अयोध्यापुरी में जाकर शुद्र का शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, वचन और कर्म से शिवजी का सेवक और दूसरे देवताओं की निन्दा करने वाला अभिमानी था। मैं धन के मद से मतवाला, बहुत ही बकवादी और उग्र बुद्धिवाला था। मेरे हृदय में बड़ा भारी दम्भ था। यद्यपि मैं श्री रघुनाथ जी की राजधानी में रहता था तथापि मैंने उस समय उसकी महिमा कुछ भी नहीं जानी। अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद, शास्त्र, और पुराणों ने ऐसा गाया है कि किसी भी जन्म में जो कोई भी अयोध्या में बस जाता है वह अवश्य ही श्री राम जी के परायण हो जायेगा। अवध का प्रभाव जीव तभी जानता है, जब हाथ में धनुष धारण करने वाले श्री राम जी उसके हृदय में निवास करते हैं। हे गरुड़ जी! वह कलिकाल बड़ा कठिन था। उसमें सभी नर-नारी पाप-परायण (पाप में लिप्त)थे।

दो०– कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ ।। ९७ (क)।।

भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ।। ९७ (ख)।।

भावार्थ– कलियुग के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये, दम्भियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर-करके बहुत से पंथ प्रकट कर दिये। सभी लोग मोह वश हो गये। शुभ कर्मों को लोभ ने हड़प लिया। हे ज्ञान के भम्डार! हे श्री हरि के वाहन! सुनिये! अब मैं कलि के कुछ धर्म कहता हूँ।

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ।।
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ।।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई ।।
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।।
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ।।
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ।।
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ।।

भावार्थ– कलियुग में न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब पुरुष-स्त्री वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदों के बेचने वाले और राजा प्रजा को खा डालने वाले होते हैं। वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता। जिसको जो अच्छा लग जाय, वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पंडित है। जो मिथ्या आरम्भ करता (आडम्बर करता)है और जो दम्भ में रत है,उसी को सब कोई संत कहते हैं। जो जिस किसी प्रकार से दूसरे का धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान है। जो दम्भ करता है वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलता है और

हँसी दिल्लगी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान कहा जाता है। जो आचारहीन हैं और वेदमार्ग को छोड़े हुए हैं, कलियुग में वही ज्ञानी और वैराग्यवान हैं। जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं, वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी हैं।

दो०– असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ।। ९८ (क)।।

सो०– जडे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ।। ९८ (ख)।।

भावार्थ– जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते हैं, और भक्ष्य-अभक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं, वे ही योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं, और वे ही मनुष्य कलियुग में पूज्य हैं। जिनके आचरण दूसरों का अपकार (अहित) करने वाले हैं, उन्हीं का बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मान के योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्म से लबार (झूठ बकने वाले) हैं, वे ही कलियुग में वक्ता माने जाते हैं।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी।।
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।।
सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना।।
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।।
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।।

भावार्थ– हे गोसाईं! सभी मनुष्य स्त्रियों के विशेष वश में हैं और बाजीगर के बन्दर की तरह उनके नचाये नाचते हैं। ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और गले में जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं। सभी पुरुष काम और लोभ में तत्पर और क्रोधी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों के विरोधी होते हैं। अभागिनीं स्त्रियाँ गुणों के धाम सुन्दर पति को छोड़कर, पर पुरुष का सेवन करती हैं। सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित होती हैं, पर विधवाओं के नित्य नये श्रृंगार होते हैं। शिष्य और गुरु में बहरे और अन्धे का सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरु के उपदेश को सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे ज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं है)। जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है पर शोक हरण नहीं करता, वह घोर नरक में पड़ता है। माता-पिता बालकों को बुलाकर वही धर्म सिखलाते हैं, जिससे पेट भरे।

दो०– ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरी बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ।। ९९ (क)।।

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि ।। ९९ (ख)।।

भावार्थ– स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते । पर वे लोभवश कौड़ियों के (बहुत थोड़े लाभ के)लिए ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते हैं । शूद्र द्विजों से विवाद करते हैं कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है, ऐसा कहकर वे उन्हें डाँट कर आँखें दिखलाते हैं ।

पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ।।
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर । देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ।।
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं । जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं ।।
कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ।।
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ।।
नारि मुई गृह संपति नासी । मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी ।।
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ।।
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ बृषली स्वामी ।।
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ।।

भावार्थ– जो पराई स्त्री में आसक्त; कपट करने में चतुर और मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (ब्रह्म और जीव को एक बताने वाले) ज्ञानी हैं । मैंने उस कलियुग का यह चरित्र देखा । वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं;जो कहीं सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर देते हैं । जो तर्क करके वेद की निन्दा करते हैं, वे लोग कल्प-कल्प भर एक-एक नरक में पड़े रहते हैं । तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल और कलवार आदि जो वर्ण में नीचे हैं, स्त्री के मरने पर अथवा घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुँड़ाकर सन्यासी हो जाते हैं । वे अपने को ब्राह्मणों से पुजवाते हैं और अपने ही हाथों दोनों लोक नष्ट करते हैं । ब्राह्मण अनपढ़, लोभी, कामी, आचारहीन, मूर्ख और नीची जाति की व्यभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं । शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं, तथा ऊँचे आसन (व्यासगद्‌दी) पर बैठकर पुराण कहते हैं । सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं । अपार अनीति का वर्णन नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं । गरुड़ जी के पूछने पर कि उन्होंने कौवे का शरीर कैसे पाया और उससे उन्हें इतना मोह क्यों है,* कागभुशुण्डि ने पहले अपने

* देखिये पृष्ठ ११५७

पूर्व भव की कथा सुनाई। उन्होंने कहा कि एक कल्प में जब कलियुग काल चल रहा था, तब उन्होंने अयोध्यापुरी में जाकर शूद्र वर्ण में जन्म लिया। इतना कहकर कागभुशुण्डि कलियुग के लक्षण बतलाने लगे। यह लक्षण दोहा ९८ के ऊपर की चौपाई से लेकर दोहा १०२ के ऊपर के छन्द तक सविस्तार बताए गए हैं (देखिए टिप्पणी पृष्ठ ११६५)।

दो०– भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ।। १०० (क)।।

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ।। १०० (ख)।।

भावार्थ– कलियुग में सब लोग वर्णसंकर और मर्यादा से च्युत हो गये। वे पाप करते हैं और उनके फलस्वरूप दुःख, भय, रोग, शोक और प्रिय वस्तु का वियोग पाते हैं। वेदसम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त जो हरिभक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उस पर नहीं चलते और अनेकों नये-नये पन्थों की कल्पना करते हैं।

छं०– बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ।।
कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ।।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं ।।
ससुरारि पिआरि लगि जब तें। रिपुरुप कुटुंब भए तब तें ।।
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ।।
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी ।।
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो ।।
कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी ।।
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ।।

भावार्थ– सन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयों ने हर लिया। तपस्वी धनवान हो गये और गृहस्थ दरिद्र। हे तात!कलियुग की लीला कुछ कही नहीं जाती। कुलवती और सती स्त्री को पुरुष घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल को छोड़कर घर में दासी को ला रखते हैं। पुत्र अपने माता-पिता को तभी तक मानते हैं, जब तक स्त्री का मुख नहीं दिखायी पड़ता जब ससुराल प्यारी लगने लगी, तब से कुटुम्बी शत्रुरुप हो गये। राजा लोग पाप परायण हो गये, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजा को नित्य ही (बिना अपराध)दण्ड देकर उसकी विडम्बना (दुर्दशा)किया करते हैं। धनी लोग मलिन

(पापी)होने पर भी कुलीन माने जाते हैं। द्विज का चिन्ह जनेऊ मात्र रह गया और नंगे बदन रहना तपस्वी का। जो वेदों और पुराणों को नहीं मानते, कलियुग में वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं। कवियों के तो झुंड हो गये, पर दुनियाँ में उदार (दाता)सुनायी नहीं पड़ता। गुण में दोष लगाने वाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं है। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं, अन्न के बिना सब लोग दुखी होकर रहते हैं।

दो०– सुनु खगेस कलि कपट हगठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड ।। १०१ (क)।।

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान ।। १०१ (ख)।।

भावार्थ– हे पक्षिराज! गरुड़ जी! सुनिये, कलियुग में कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह और काम आदि (अर्थात् काम, क्रोध और लोभ) और मद ब्रह्माण्ड भर में व्याप्त हो गये (छा गये)। मनुष्य, जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भाव से करने लगे। देवता (इन्द्र)पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते, और बोया हुआ अन्न उगता नहीं।

छं०- अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा ।।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता ।।
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं ।।
लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा ।।
कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा ।।
नहं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता ।।
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता ।।
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए ।।
दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी ।।
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे ।।

भावार्थ– स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं (उनके शरीर पर कोई आभूषण नहीं है), और उनको भूख बहुत लगती है (अर्थात् वे सदा अतृप्त ही रहती हैं)। वे धनहीन और बहुत प्रकार की ममता होने के कारण दुःखी रहती हैं। वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्म में उनका प्रेम नहीं है। बुद्धि थोड़ी है और कठोर है, उनमें कोमलता नहीं है। मनुष्य रोगों से पीड़ित हैं, भोग (सुख) कहीं नहीं है। बिना ही कारण अभिमान और विरोध करते हैं। दस-पाँच वर्ष का थोड़ा-सा जीवन है, परन्तु घमण्ड ऐसा है मानों कल्पान्त होने पर भी उनका नाश नहीं होगा। कलिकाल ने मनुष्यों को बेहाल (अस्त-व्यस्त) कर डाला। कोई बहन-बेटी का भी विचार नहीं करता। न सन्तोष है, न विवेक है, और न शीतलता है। जाति, कुजाति

सभी लोग भीख माँगने वाले हो गये। ईर्ष्या (डाह), कड़वे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं, समता चली गयी। सब लोग वियोग और विशेष शोक से भरे पड़े हैं, वर्णाश्रम-धर्म के आचरण नष्ट हो गए। इन्द्रियों का दमन, दान, दया, और समझदारी किसी में नहीं रही। मूर्खता और दूसरों को ठगना, यह बहुत अधिक बढ़ गया। स्त्री-पुरुष सभी शरीर के पालन-पोषण में लगे रहते हैं। जो परायी निन्दा करने वाले हैं, जगत में वही फैले हैं।

टिप्पणी– दोहा ९८ के ऊपर की चौपाई में जो कलियुग के लक्षण कागभुशुण्डि ने गिनाने शुरु किए,* , उन्हें ऊपर के सवैये में लाकर समाप्त किया। लक्षणों की सूची इस प्रकार है :-

*१. कलियुग में न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम।

२. सब पुरुष-स्त्री वेद के विरोध में लगे रहते हैं।

३. ब्राह्मण वेदों को बेचने वाले होते हैं।

४. राजा प्रजा को खा डालने वाले होते हैं।

५. वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता।

६. जिसको जो अच्छा लग जाय, वही मार्ग है।

७. जो डींग मारता है वही पंडित है।

८. जो आडम्बर रचता है और जो दम्भ में रत है, उसी को सब कोई संत कहते हैं।

९. जो जिस किसी प्रकार से दूसरे का धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान है।

१०. जो दम्भ करता है, वही बड़ा आचारी है।

११. जो झूठ बोलता है और हंसी-दिल्लगी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान कहा जाता है।

१२. जो आचारहीन हैं और वेदमार्ग को छोड़े हुए हैं, कलियुग में वही ज्ञानी और वैराग्यवान है।

१३. जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं, वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी है।

---

* देखिए पृष्ठ ११६०

१४. जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते हैं, और भक्ष्य-अभक्ष्य सब कुछ खा लेते हैं,वे ही योगी, सिद्ध और पूज्य हैं ।

१५. जिनके आचरण दूसरों का अहित करने वाले हैं, उन्हीं का बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मान के योग्य होते हैं ।

१६. जो मन, वचन और कर्म से झूठ बकने वाले हैं, वे ही कलियुग में वक्ता माने जाते हैं ।

१७. पुरुष स्त्रियों के वश में होते है ।

१८. ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और गले में जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं ।

१९. सभी पुरुष काम और लोभ में तत्पर और क्रोधी होते हैं ।

२०. पुरुष देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों के बिरोधी होते हैं ।

२१. स्त्रियाँ पति को छोड़कर पर-पुरुष का सेवन करती हैं ।

२२. विधवाओं के नित्य नये श्रृंगार होते हैं ।

*२३. शिष्य और गुरु में बहरे और अन्धे का सा हिसाब होता है । शिष्य गुरु के उपदेश को नहीं सुनता और गुरु को ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं ।

*२४. गुरु शिष्य का धन हरण करते हैं ।

*२५. पिता बालकों को वही धर्म सिखाते हैं, जिससे पेट भरे ।

२६. शूद्र द्विजों से विवाद करते हैं ।

२७. सभी अपने को ब्रह्म-ज्ञान वेत्ता समझते हैं ।

२८. थोड़े से लाभ के लिए लोग ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते हैं ।

२९. जो पराई स्त्री में आसक्त, कपट करने में चतुर, और मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी ज्ञानी माने जाते हैं ।

३०. उपर्युक्त स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, जो कहीं सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं , उनको भी वे नष्ट कर देते हैं ।

३१. तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल, कलवार आदि जो वर्ण में नीचे हैं, स्त्री के मरने पर अथवा घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर, सिर मूँड़ाकर

सन्यासी हो जाते हैं और अपने को ब्राह्मणों से पुजवाते हैं।

३२. ब्राह्मण अनपढ़, लोभी, कामी, आचरण हीन, मूर्ख और नीची जाति की व्यभिचारिणी के स्वामी होते हैं।

३३. शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं, तथा ऊँचे आसन पर बैठकर पुराण कहते हैं।

३४. सब मनुष्य मनमानी आचरण करते हैं।

*३५. कलियुग में वर्णसंकर हो गया और सब लोग मर्यादा से च्युत हो गए।

३६. वेद सम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त जो हरिभक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उस पर नहीं चलते और अनेकों नये-नये पंथों की कल्पना करते हैं।

३७. सन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयों ने हर लिया।

३८. तपस्वी धनवान हो गए और गृहस्थी दरिद्र।

३९. कुलवती और सती स्त्री को पुरुष घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल को छोड़कर घर में दासी को ला रखते है।

*४०. पुत्र अपने माता-पिता को तभी तक मानते हैं, जब तक स्त्री का मुख नहीं दिखाई पड़ता।

A son is a son, till he gets a wife;

A daughter is a daughter, all her life.

ससुराल प्यारी लगने लगी और कुटुम्बी शत्रुरुप हो गए।

*४१. राजा (आज के परिपेक्ष में, मन्त्री और सांसद) पाप परायण हो गये। वे प्रजा को नित्य ही बिना अपराध दण्ड देकर उनकी दुर्दशा किया करते हैं।

*४२. धनी लोग मलिन होने पर भी कुलीन माने जाते हैं।

४३. द्विज का चिन्ह जनेऊ मात्र रह गया है। और नंगे बदन रहना तपस्वी का।

४४. जो वेदों ओर पुराणों को नहीं मानते, कलियुग में वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं।

*४५. कवियों के तो झुण्ड हो गए, पर दुनियाँ में उदार दाता सुनाई नहीं पड़ता।

४६. गुण में दोष लगाने वाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं।

४७. कलियुग में इन्द्र पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते और बोया हुआ अन्न उगता नहीं। बार-बार अकाल पड़ते हैं। बिना अन्न के लोग दुखी होकर मरते हैं।

४८. कलियुग में कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह, मद और काम सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गए।

४९. मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भाव से करने लगे।

५०. स्त्रियाँ सदा अतृप्त रहती हैं।

५१. मनुष्य रोगों से पीड़ित हैं।

५२. बिना कारण ही वे अभिमान और विरोध करते हैं।

५३. दस-पाँच वर्ष का थोड़ा सा जीवन है, परन्तु घमण्ड ऐसा है मानों कल्पान्त होने पर भी उनका नाश नहीं होगा।

५४. कोई बहन- बेटी का भी विचार नहीं करता।

५५. न सन्तोष है, न विवेक, न शीतलता।

५६. जाति-कुजाति सभी लोग भीख माँगने वाले हो गये।

५७. ईर्ष्या, कड़वे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं।

५८. समता चली गई।

५९. इन्द्रियों का दमन, दान, दया और समझदारी किसी में नहीं रही।

६०. मूर्खता और दूसरों को ठगना बहुत बढ़ गया है।

*६१. स्त्री-पुरुष सभी शरीर के पालन पोषण में लगे रहते हैं।

६२. जो परायी निन्दा करने वाले हैं, जगत में वही फैले हैं।

महाभारत के बाद कलियुग तो परीक्षित के राज्याभिषेक के समय आ गया था। कागभुशुण्डि के मुख से तुलसीदास जी ने जो कलियुग के लक्षण बताए हैं, वह वास्तव में सोलहवीं शती के भारतीय समाज के दर्पण हैं। इस प्रसंग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अपनी पुस्तक ''गोस्वामी तुलसीदास'' में प्रस्तुत व्याख्या बड़ी महत्वपूर्ण है :

''नए-नए सम्प्रदायों की खींचतान के कारण आर्यधर्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था, एकांग दर्शिता बढ़ रही थी। जो एक कोना देख पाता था, वह दूसरे कोने पर दृष्टि रखनेवालों को बुरा-भला कहता था। शैवों, वैष्णवों, शाक्तों और कर्मठों की तू-तू मैं-मैं तो थी ही, बीच में मुसलमानों से अविरोध प्रदर्शन करने के लिये भी अपढ़ जनता को साथ लगानेवाले कई नए-नए पंथ निकल चुके थे, जिनमें एकेश्वरवाद का कट्टर स्वरूप, उपासना का आशिकी रंगढंग, ज्ञान-विज्ञान की निन्दा, विद्वानों का उपहास, वेदान्त के चार प्रसिद्ध शब्दों का अनधिकार प्रयोग आदि सब कुछ था, पर लोक को व्यवस्थित करने वाली वह मर्यादा न थी जो भारतीय आर्यधर्म का प्रधान लक्षण है। जिस उपासना प्रधान धर्म का ज़ोर बुद्ध के पीछे बढ़ने लगा, वह उस मुसलमानी राजत्वकाल में आकर--जिसमें जनता की बुद्धि भी पुरुषार्थ के ह्रास के साथ-साथ शिथिल पड़ गई थी -- कर्म और ज्ञान दोनों की उपेक्षा करने लगा था। ऐसे समय में इन नए पंथों का निकलना कुछ आश्चर्य की बात नहीं। उधर शास्त्रों का पठन-पाठन कम लोगों में रह गया, इधर ज्ञानी कहलाने की इच्छा रखने वाले मूर्ख बढ़ रहे थे जो किसी 'सत्य गुरु के प्रसाद' मात्र से ही अपने को सर्वज्ञ मानने के लिये तैयार बैठे थे। अतः सतगुरु भी उन्हीं में निकल पड़ते थे , जो धर्म का कोई एक अंग नोचकर एक ओर भाग खड़े होते थे, और कुछ लोग झाँज-खजंड़ी लेकर उनके पीछे हो लेते थे। दम्भ बढ़ रहा था। 'ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात'-- ऐसे लोगों ने भक्ति को बदनाम कर रखा था। भक्ति के नाम पर ही वे वेदशास्त्रों की निन्दा करते थे, पंडितों को गालियाँ देते थे और आर्यधर्म के सामाजिक तत्व को न समझकर लोगों में वर्णाश्रम के प्रति अश्रद्धा उत्पन कर रहे थे। यह उपेक्षा लोक के लिये कल्याणकर नहीं। जिस समाज से बड़ों का आदर, विद्वानों का सम्मान, अत्याचार का दलन करने वाले शूरवीरों के प्रति श्रद्धा इत्यादि भाव उठ जायें, वह कदापि फलफूल नहीं सकता;उसमें अशांति सदा बनी रहेगी।''

तुलसीदास वस्तुतः धर्मोपदेष्टा और नीतिकार थे और आर्यधर्म की मर्यादा का अतिक्रमण उनके लिये बड़ा दुखदायी था। उन्हें समकालीन समाज में मर्यादा के विरुद्ध जो भी दिखायी दिया, उसका उल्लेख उन्होंने कलियुग वर्णन में किया है। हम पाठकों का विशेष ध्यान तारांकित लक्षणों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। मध्यकालीन समाज के यह लक्षण वर्तमान भारतीय समाज में प्रखर रूप से दिखायी दे रहे हैं। वास्तव में यह दोष बहुत पहले से चले आ रहे हैं किन्तु अब वे इतने व्यापक हो चुके हैं कि उन पर प्रायः अंगुली नहीं उठायी जाती और उनमें से कुछ आधुनिकता के लक्षण समझे जाने लगे हैं।

दो०– सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार ।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार ।। १०२ (क)।।

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ।। १०२ (ख)।।

भावार्थ– हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी ! सुनिये । कलिकाल पाप और अवगुणों का घर है । किन्तु कलियुग में एक गुण भी बड़ा है कि उसमें बिना ही परिश्रम भवबन्धन से छुटकारा मिल जाता है । सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जो गति पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान के नाम से पा जाते हैं ।

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ।।
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ।।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ।।
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ।।
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ।।
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ।।
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं । नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ।।
कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ।।

भावार्थ– सत्ययुग में सब योगी विज्ञानी होते हैं । हरि का ध्यान करके सब प्राणी भवसागर से तर जाते हैं । त्रेता में मनुष्य अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं । और सब कर्मों को प्रभु के समर्पण करके भवसागर से पार हो जाते हैं । द्वापर में श्री रघुनाथ जी के चरणों की पूजा करके मनुष्य भव से तर जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है । और कलियुग में तो केवल श्री हरि की गुणगाथाओं का गान करने से ही मनुष्य भवसागर की थाह पा जाते हैं । कलियुग में न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान है । श्री राम जी का गुणगान ही एक मात्र आधार है । अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो श्री राम जी को भजता है और प्रेम सहित उनके गुण समूहों को गाता है, वही भवसागर से तर जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । नाम का प्रताप कलियुग में प्रत्यक्ष है । कलियुग का एक पवित्र प्रताप है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर मानसिक पाप नहीं होते ।

दो०– कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास ।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ।। १०३ (क)।।

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ।। १०३ (ख)।।

भावार्थ– यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुग के समान दूसरा युग नहीं, क्योंकि इस युग में श्री राम जी के निर्गुण गुणसमूहों को गा-गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम भव से तर जाता है। धर्म के चार चरण प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कलि में एक दानरूपी चरण ही प्रधान है, क्योंकि जिस किसी प्रकार से भी दिये जाने पर कल्याण ही करता है।

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥
काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥

भावार्थ– श्री राम जी की माया से प्रेरित होकर सब के हृदयों में सभी युगों के धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध, सत्वगुण, समता, विज्ञान और मन का प्रसन्न होना, इसे सत्ययुग का प्रभाव जानें। सत्व गुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेता का धर्म है। रजोगुण बहुत हो, सत्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमोगुण हो, मन में हर्ष और भय हो, यह द्वापर का धर्म है। तमोगुण बहुत ही रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुग का प्रभाव है। पण्डित लोग युगों के धर्म को मन में जान (पहचान)कर, अधर्म छोड़कर धर्म में प्रीति करते हैं। जिसका श्री रघुनाथ जी के चरणों में अत्यन्त प्रेम है उसको कालधर्म नहीं व्यापते। हे पक्षिराज! नट (बाजीगर)का किया हुआ कपट-चरित्र (इन्द्रजाल)देखने वालों के लिये बड़ा विकट होता है, पर नट के सेवक (जमूरे)को उसकी माया नहीं व्यापती।

दो०– हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥१०४(क)॥

तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस॥ १०४ (ख)॥

भावार्थ– श्री हरि की माया के द्वारा रचे हुए दोष गुण श्री हरि के भजन बिना नहीं जाते, मन में ऐसा विचारकर सब कामनाओं को छोड़कर (निष्काम भाव से) श्री राम जी का भजन करना चाहिये। हे पक्षिराज! उस कलिकाल में मैं बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं विपत्ति का मारा विदेश चला गया।

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी । दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥
गएँ काल कछु संपति पाई । तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई ॥
बिप्र एक बैदिक सिव पूजा । करइ सदा तेहि काजु न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिंदक । संभु उपासक नहिं हरि निंदक ।
तेहि सेवउँ मैं कपट समेता । द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं । बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ॥
संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा । सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा ॥
जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई । हृदयँ दंभ अहमिति अधिकाई ॥

भावार्थ— हे गरुड़ जी ! सुनिये, मैं दीन, मलीन (उदास), दरिद्र और दुखी होकर उज्जैन गया । कुछ काल बीतने पर कुछ सम्पत्ति पाकर फिर मैं वहीं भगवान शंकर की आराधना करने लगा । एक ब्राह्मण वेदविधि से सदा शिवजी की पूजा करते, उन्हें दूसरा कोई काम न था । वे परम साधु और परमार्थ के ज्ञाता थे । वे शम्भु के उपासक थे, पर श्री हरि की निन्दा करने वाले न थे । मैं कपट पूर्वक उनकी सेवा करता । ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीति के घर थे । हे स्वामी! बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्र की भाँति मानकर पढ़ाते थे । उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने मुझको शिवजी का मन्त्र दिया और अनेकों प्रकार से शुभ उपदेश किये । मैं शिवजी के मन्दिर में जाकर मन्त्र जपता । मेरे हृदय में दम्भ और अहंकार बढ़ गया ।

दो०— मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह ।
हरि जन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्नु कर द्रोह ॥ १०५ (क)॥

सो०— गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई ॥ १०५ (ख)॥

भावार्थ— मैं दुष्ट नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धिवाला मोहवश श्री हरि के भक्तों और द्विजों को देखते ही जल उठता और विष्णुभगवान से द्रोह करता था । गुरु जी मेरे आचरण देखकर दुःखित थे, वे मुझे नित्य ही भली भाँति समझाते, पर (पर मैं कुछ भी नहीं समझता, उल्टे)मुझे अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता । दम्भी को कभी नीति अच्छी लगती है?

एक बार गुर लीन्ह बोलाई । मोहि नीति बहु भाँति सिखाई ॥
सिव सेवा कर फल सुत सोई । अबिरल भगति राम पद होई ॥
रामहि भजहिं तात सिव धाता । नर पावँर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी । तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी ॥
हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ । सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥

अधम जाति मैं बिद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ॥
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती॥
अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा॥
जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥
रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई॥ पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥
सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती॥
उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥
मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई। गुर हित कहइ न मोहि सोहाई॥

भावार्थ– एक बार गुरु जी ने मुझे बुला लिया और बहुत प्रकार से (परमार्थ) नीति की शिक्षा दी कि "हे पुत्र! शिवजी की सेवा का फल यही है कि श्री राम जी के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति हो। हे तात! शिवजी और ब्रह्मा जी भी श्री राम जी को भजते हैं। फिर नीच मनुष्य की तो बात ही कितनी है। ब्रह्मा और शिव जी जिनके चरणों के प्रेमी हैं, अरे अभागे! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है।" गुरुजी ने शिवजी को हरि का सेवक कहा। यह सुनकर हे पक्षिराज! मेरा हृदय जल उठा। नीच जाति का मैं विद्या पाकर ऐसा हो गया, जैसे दूध पिलाने से साँप। अभिमानी, कुटिल, दुर्भाग्य, और कुजाति मैं दिन-रात गुरु जी से द्रोह करता। गुरु अत्यन्त दयालु थे। उनको थोड़ा सा भी क्रोध नहीं आता। (मेरे द्रोह करने पर भी) वे बार-बार मुझे उत्तम ज्ञान की शिक्षा देते। नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है, वह सब से पहले उसी को मारकर उसी का नाश करता है। हे भाई! सुनिये, धुआँ आग से उत्पन्न होता है, पर वही मेघ की पदवी पाकर उस अग्नि को बुझा देता है। धूल रास्ते में निरादर से पड़ी रहती है और सदा सब राह चलने वालों के लातों की मार सहती है। पर जब पवन उसे उड़ाता (ऊँचा उठाता) है, तो सब से पहले वह उसी (पवन) को भर देती है, फिर राजाओं के नेत्रों और किरीटों (मुकुटों) पर पड़ती है। हे पक्षिराज गरुड़ जी! सुनिये, ऐसी बात समझ कर बुद्धिमान लोग अधम (नीच) का संग नहीं करते। कवि और पण्डित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्ट से न कलह ही अच्छा है, न प्रेम ही। हे गोसाईं! उससे तो सदा उदासीन ही रहना चाहिये। दुष्ट को कुत्ते की तरह दूर से ही त्याग देना चाहिये। मैं दुष्ट था, हृदय में कपट और कुटिलता भरी थी। इसीलिये यद्यपि गुरु जी हित की बात कहते थे, पर मुझे वह सुहाती न थी।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १६ सम पंक्तियाँ हैं। कागभुशुण्डि ने अपने पूर्व भव की

कथा सुनाते हुये कहा कि एक कल्प में जब कलियुग चल रहा था, तब उन्होंने अयोध्यापुरी जाकर शूद्र वर्ण में जन्म लिया।* कथानक आगे बढ़ाते हुये उन्होंने गरुड़ जी से कहा कि एक बार अयोध्या में अकाल पड़ा। तब वह अयोध्या छोड़कर उज्जैन चले गये। वहाँ उनकी एक नीतिज्ञ और दयालु ब्राह्मण से भेंट हुयी। उस ब्राह्मण ने कागभुशुण्डि को अपना शिष्य बना लिया और शिव जी का मन्त्र दिया। ब्राह्मण शम्भू के उपासक थे, पर श्री हरि की निन्दा न करने वाले थे। ऐसी ही अपेक्षा वह अपने शिष्य से करते थे। पर उनका शिष्य (कागभुशुण्डि) भूल गया कि–

"संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।।" **

कागभुशुण्डि शिव की उपासना करता था परन्तु विष्णु भगवान से द्रोह करता था। गुरु ने उसको बुलाकर बहुत समझाया परन्तु दम्भ और अहंकार के कारण शिव और वैष्णव धर्म का समन्वय उसकी समझ में नहीं आया।

दो०– एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।। १०६ (क)।।

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस।। १०६ (ख)।।

भावार्थ– एक दिन मैं शिवजी के मन्दिर में शिवनाम जप रहा था। उसी समय गुरु जी वहाँ आये, पर अभिमान के मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया। गुरु जी दयालु थे। (मेरे दोष देखकर भी) उन्होंने कुछ नहीं कहा। उनके हृदय में लेशमात्र भी क्रोध नहीं हुआ। पर गुरु का अपमान बहुत बड़ा पाप है, अतः महादेव जी उसे नहीं सह सके।

मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा।।
तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही।।
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा।।
जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।
बैठ रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी।।
महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।।

---

* देखिए पृष्ठ ११६०

** देखिए लंकाकाण्ड, पृष्ठ ९०१

भावार्थ– मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि –"अरे हतभाग्य ! मूर्ख ! अभिमानी ! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है, वे अत्यन्त कृपालु चित्त के हैं और उन्हें पूर्ण तथा यथार्थ ज्ञान है, तो भी हे मूर्ख ! तुझको मैं शाप दूँगा । क्योंकि नीति का विरोध मुझे नहीं सुहाता अरे दुष्ट! यदि मैं तुझे दण्ड न दूँ, तो मेरा वेदमार्ग ही भ्रष्ट हो जाय । जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं । फिर वहाँ से निकलकर वे तिर्यक योनियों में शरीर धारण करते हैं और दस हज़ार जन्मों तक दुःख पाते रहते हैं । अरे पापी ! तू गुरु के सामने अजगर की भाँति बैठा रहा । रे दुष्ट ! तेरी बुद्धि पाप से ढक गयी है, अतः तू सर्प हो जा । और, अरे अधम से भी अधम ! इस अधोगति (सर्प की नीची योनि)को पाकर किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह ।"

दो०– हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप ।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप ।। १०७ (क)।।

करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि ।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि ।। १०७ (ख)।।

भावार्थ– शिवजी का भयानक शाप सुनकर गुरु जी ने हाहाकार किया। मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में बड़ा संताप उत्पन्न हुआ । प्रेम सहित दण्डवत् करके, वे ब्राह्मण श्री शिवजी के सामने हाथ जोड़कर मेरी भयंकर गति समझ कर गद्‌गद् वाणी में विनती करने लगे ।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।
निराकरमोंकारमूलं तुरीयं । गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ।।
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोऽहं ।।
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं । मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं ।।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ।।
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं । प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं ।।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ।।
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं ।।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं । भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ।।
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी । सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।।
चिदानंद संदोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।।
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं । भजंतीह लोके परे वा नराणां ।।

न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।।
न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ।।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ।।

भावार्थ– शिवजी ! आप मोक्षरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप तथा सब के स्वामी हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । निज स्वरूप (अर्थात मायादि रहित), मायिक गुणों से रहित, निर्विकल्प, इच्छा रहित, चेतन आकाश रुप एवं आकाश को ही वस्त्र रूप में धारण करने वाले (अथवा आकाश को भी आच्छादित करने वाले)आपको मैं भजता हूँ। निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय, वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे (तीनों गुणों से अतीत), कैलाशपति, विकराल, महाकाल के भी काल, कृपालु , गुणों के धाम, संसार से परे आपको, मैं नमस्कार करता हूँ । जो हिमाचल के समान गौर वर्ण तथा गम्भीर हैं, जिनके शरीर में करोड़ों कामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिरपर सुन्दर नदी गंगा जी हैं , जिनके ललाट पर बाल (द्वितीया का)चन्द्रमा और गले में सर्प सुशोभित है, जिनके कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, सुन्दर भ्रकुटी और विशाल नेत्र हैं, जो प्रसन्न मुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं, सिंह चर्म का वस्त्र धारण किये और मुण्डमाला पहने हैं, सब के प्यारे और सब के नाथ, कल्याण करने वाले श्री शंकर जी को मैं भजता हूँ। प्रचण्ड, श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के शूलों (दुःखों)को निर्मूल करने वाले , हाथ में त्रिशूल धारण किये, भाव के द्वारा प्राप्त होने वाले भवानीपति को मैं भजता हूँ। कलाओं से परे, कल्याण स्वरूप, कल्प का अन्त (प्रलय) तकने वाले, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले, त्रिपुर के शत्रु, सच्चिदानन्द, मोह को हरने वाले, मन को मथ डालने वाले, कामदेव के शत्रु, हे प्रभो ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइयें । जब तक, पार्वती के पति ! आपके चरणकमलों को मनुष्य नहीं भजते तब तक उन्हें न तो इहलोक और परलोक में सुख-शान्ति मिलती है और न उनके तापों का नाश होता है । अतः हे समस्त जीवों के अन्दर निवास करने वाले प्रभो ! प्रसन्न होइये । मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही । हे शम्भो! मैं तो सदा, सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! बुढ़ापा तथा जन्म (मृत्यु)के दुःख समूहों से जलते हुये, ुझ दुखी की दुःख से रक्षा कीजिये । हे ईश्वर! हे शम्भो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

टिप्पणी– एक दिन कागभुशुण्डि मन्दिर में शिव नाम जप रहे थे । उसी समय उनके गुरु वहाँ आये । पर अभिमान के मारे, उन्होंने उठकर गुरु को प्रणाम नहीं किया । गुरु का इस प्रकार अपमान शंकर भगवान को असह्य हुआ । भगवान ने कागभुशुण्डि को श्राप दिया कि "तू अजगर (सर्प) हो जा । इस नीच योनि को पाकर, किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह ।"

शिव जी का भयानक शाप सुनकर गुरु जी ने **हाहाकार किया । प्रेम सहित दण्डवत करके हाथ जोड़कर, वे शंकर भगवान की विनती करने लगे । इस विनती को अगले श्लोक में तुलसीदास जी ने "रुद्राष्टक" की संज्ञा दी है । इसकी दो विशेषताएँ हैं ।**

१. समस्त ''मानस'' में यह ही एक स्तुति है जो शिवजी को सम्बोधित है। शेष स्तुतियाँ विष्णु एवम् उनके विग्रह राम के प्रति हैं।

२. यह ही एक स्तुति शुद्ध संस्कृत में है। लंकाकाण्ड में पृष्ठ १०४१ पर शिवजी ने जो राम की स्तुति की है, उसमें ''बसहु'' और ''सहित'' भाषा के शब्द आ गए हैं, जो संस्कृत के नहीं हैं।

श्लोक- रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ।। ९ ।।

भावार्थ– भगवान रुद्र की स्तुति का यह अष्टक उन शंकर जी की तुष्टि (प्रसन्नता) के लिये ब्राह्मण द्वारा कहा गया। जो मनुष्य इसे भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं, उनपर भगवान शम्भु प्रसन्न होते हैं।

दो०– सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु ।। १०८ (क)।।

जौं प्रसन्न प्रभु मो पर नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु ।। १०८ (ख)।।

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ।। १०८ (ग)।।

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल ।। १०८ (घ)।।

भावार्थ– सर्वज्ञ शिवजी ने विनती सुनी और ब्राह्मण का प्रेम देखा। तब मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि ''हे विप्र श्रेष्ठ ! वर माँगो।'' (ब्राह्मण ने कहा–)''हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और हे नाथ ! यदि इस दीन पर आपका स्नेह है, तो पहले अपने चरणों की भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिये। हे प्रभो ! यह अज्ञानी जीव आपकी माया के वश होकर निरन्तर भूला फिरता है। हे कृपा के समुद्र भगवान ! उसपर क्रोध न कीजिये। हे दीनों पर दया करने वाले कल्याणकारी शंकर ! थोड़े ही समय में इस पर शाप के बाद अनुग्रह (शाप से मुक्ति)हो जाय।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना ।।
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी ।।
जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा ।।
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी ।।

छमासील जे पर उपकारी । ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी ॥
मोर श्राप द्विज व्यर्थ न जाइहि । जन्म सहस अवस्य यह पाइहि ॥
जनमत मरत दुसहि दुख होई । एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापहि सोई ॥
कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना । सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना ॥
रघुपति पुरीं जन्म तव भयऊ । पुनि तैं मम सेवाँ मन दयऊ ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें । राम भगति उपजिहि उर तोरें ॥
सुनु मम बचन सत्य अब भाई । हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई ॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना । जानेसु संत अनंत समाना ॥
इंद कुलिस मम सूल बिसाला । कालदंड हरि चक्र कराला ॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई । बिप्र द्रोह पावक सो जरई ॥
अस बिबेक राखेहु मन माहीं । तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
औरउ एक आसिषा मोरी । अप्रतिहत गति होइहि तोरी ॥

भावार्थ– हे कृपानिधान ! अब वही कीजिये, जिससे इसका परम कल्याण हो ।'' दूसरे के हित से सनी हुई ब्राह्मण की वाणी सुनकर, फिर आकाशवाणी हुई–''एवमस्तु (ऐसा ही हो) । यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने भी इसे क्रोध करके शाप दिया है, तो भी तुम्हारी साधुता देखकर मैं इस पर विशेष कृपा करूँगा । हे द्विज ! जो क्षमाशील एवं परोपकारी होते हैं, वे मुझे वैसे ही प्रिय हैं जैसे खरारि श्री रामचन्द्र जी । हे द्विज ! मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायगा । यह हजार जन्म अवश्य पायेगा । परन्तु जन्म लेने और मरने में जो दुःसह दुःख होता है, इसको वह दुःख ज़रा भी न व्यापेगा । और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा । हे शूद्र ! मेरा प्रामाणिक सत्य वचन सुन । प्रथम तो तेरा जन्म श्री रघुनाथ जी की पुरी में हुआ । फिर तूने मेरी सेवा में मन लगाया । पुरी के प्रभाव और मेरी कृपा से तेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न होगी । हे भाई ! अब मेरा सत्य वचन सुन । द्विजों की सेवा ही भगवान को प्रसन्न करने वाला व्रत है । अब कभी ब्राह्मण का अपमान न करना । संतों को अनन्त श्री भगवान ही के समान जानना । इन्द्र के वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, काल के दण्ड और श्री हरि के विकराल चक्र के मारे भी जो नहीं मरा वह भी विप्रद्रोह रूपी अग्नि से भस्म हो जाता है । ऐसा विवेक मन में रखना । फिर तुम्हारे लिये जगत् में कुछ भी दुर्लभ न होगा । मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति होगी (अर्थात तुम जहाँ जाना चाहोगे, वहीं जा सकोगे)।''

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १६ समपंक्तियाँ हैं । स्तुति सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए और गुरु से वरदान माँगने के लिए कहा । गुरु ने दो वरदान माँगे--शिव के चरणों में भक्ति और शिष्य की (कागभुशुण्डि की) थोड़े ही समय में शाप से मुक्ति । शिव जी ने वरदान देते

हुए कहा--"मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायेगा। यह हजार जन्म अवश्य पायेगा। परन्तु जन्म लेने और मरने में जो दुःसह दुःख होता है, इसको वह दुःख ज़रा भी न व्यापेगा। और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। इसकी सर्वत्र अबाध गति होगी--अर्थात् जहाँ जाना चाहेगा, वहाँ जा सकेगा।"

दो०-- सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि।। १०९ (क)।।

प्रेरित काल बिंधि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल।। १०९ (ख)।।

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान।। १०९ (ग)।।

सिवँ राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस।। १०९ (घ)।।

भावार्थ-- (आकाशवाणी के द्वारा) शिवजी के वचन सुनकर, गुरुजी हर्षित होकर "ऐसा ही हो" यह कहकर, मुझे बहुत प्रकार समझाकर और शिवजी के चरणों को हृदय में रखकर अपने घर गये। काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल में जाकर सर्प हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर बिना ही परिश्रम (कष्ट)के मैंने वह शरीर त्याग दिया । हे हरिवाहन ! मैं जो भी शरीर धारण करता हूँ उसे बिना ही परिश्रम वैसे ही सुखूर्वक त्याग देता था, जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र त्याग देता है और नया पहन लेता है। शिवजी ने वेद की मर्यादा की रक्षा की, और मैंने क्लेश भी नहीं पाया। इस प्रकार हे पक्षिराज! मैंने बहुत से शरीर धारण किये, पर मेरा ज्ञान नहीं गया।

टिप्पणी-- शिवजी के शापवश कागभुशुण्डि विन्ध्याचल में जाकर सर्प हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर, बिना ही कष्ट उसने वह शरीर त्याग दिया। इस प्रकार कागभुशुण्डि ने बहुत से शरीर धारण किए। जो भी शरीर धारण करता था, उसे बिना जन्म-मरण के कष्ट के सुखपूर्वक त्याग देता था। इस सन्दर्भ में तुलसीदास जी ने दोहा १०९-ग में गीता के अध्याय २ के श्लोक २२ का भाषा रूपान्तर किया है :

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।"

अर्थात्, जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरउँ । तहँ तहँ राम भजन अनुसरउँ ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ । गुर कर कोमल सील सुभाऊ ॥
चरम देह द्विज कै मैं पाई । सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई ॥
खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला । करउँ सकल रघुनायक लीला ॥
प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा । समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा ॥
मन ते सकल बासना भागी । केवल राम चरन लय लागी ॥
कहु खगेस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई । हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई ॥
भए काल बस जब पितु माता । मैं बन गयउँ भजन जनत्राता ॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ । आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ ॥
बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा । कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा ॥
सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा । अब्याहत गति संभु प्रसादा ॥
छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी । एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
राम चरन बारिज जब देखौं । तब निज जन्म सफल करि लेखौं ॥
जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई । ईस्वर सर्ब भूतमय अहई ॥
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई । सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई ॥

भावार्थ– तिर्यक योनि (पशु-पक्षी), देवता या मनुष्य का, जो भी शरीर धारण करता , वहाँ-वहाँ (उस-उस शरीर में)श्री राम भजन जारी रखता । (इस प्रकार मैं सुखी हो गया)परन्तु एक शूल मुझे बना रहा । गुरुजी का कोमल, सुशील स्वभाव मुझे कभी नहीं भूलता (अर्थात् मैंने ऐसे कोमल स्वभाव दयालु गुरु का अपमान किया, यह दुःख मुझे सदा बना रहा)। मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मण का पाया, जिसे पुराण और वेद देव दुर्लभ बताते हैं। मैं (वहाँ ब्राह्मण शरीर से) बालकों से मिलकर खेलता तो श्री रघुनाथ जी की लीलाएँ किया करता । बड़ा होने पर पिताजी मुझे, पढ़ाने लगे । मैं समझता, गुनता और विचारता, मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था । मेरे मन से सारी वासनाएँ भाग गयीं । केवल श्री राम जी के चरणों में लौ लग गई। हे गरुड़ जी ! कहिये, ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनू को छोड़कर गदही की सेवा करेगा ? प्रेम में मग्न रहने के कारण मुझे कुछ भी नहीं सुहाता । पिता जी पढ़ा-पढ़ाकर हार गये । जब पिता-माता कालवश हो गये (मर गये), तब मैं भक्तों की रक्षा करने वाले श्री राम जी का भजन करने के लिए बन में चला गया । बन में जहाँ-तहाँ मुनीश्वरों के आश्रम पाता, वहाँ-वहाँ जा जाकर उन्हें सिर नवाता । हे गरुड़ जी! उनसे मैं श्री राम जी के गुणों की कथाएँ पूछता । वे कहते और मैं हर्षित होकर सुनता । इस प्रकार मैं सदा-सर्वदा श्री हरि के गुणानुवाद सुनाता फिरता । शिवजी की कृपा से मेरी

सर्वत्र अबाधित गति थी (अर्थात मैं जहाँ चाहता वहीं जा सकता था)। मेरी तीनों प्रकार की (पुत्र की, धन की और मान की) गहरी सब वासनाएँ छूट गयीं। और हृदय में एक यही लालसा अत्यन्त बढ़ गयी कि जब श्री राम जी के चरणकमलों के दर्शन करुँ तब अपना जन्म सफल हुआ समझूँ। जिससे पूछता, वे ही मुनि ऐसा कहते कि ईश्वर सर्वभूतमय है। यह निर्गुण मत मुझे नहीं सुहाता था। हृदय में सगुण ब्रह्म पर प्रीति बढ़ रही थी।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं। पहले कागभुशुण्डि ने अयोध्या में शूद्र वर्ण में जन्म लिया ; फिर विन्ध्याचल में जाकर सर्प योनि पाई। कई अन्य योनियों में भटकने के बाद ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। पिता ने बहुत शिक्षा देनी चाही। परन्तु राम-भजन के अतिरिक्त और किसी बात में उसका मन नहीं लगता था। माता-पिता के देहान्त के बाद कागभुशुण्डि बन में चले गए और मुनीश्वरों का सत्संग किया। मुनियों के आश्रमों में जाकर, उन्हें राम के चरण कमलों के दर्शन की लगन लगी।

दो०– गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग ।। ११० (क)।।

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन ।। ११० (ख)।।

सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज ।। ११० (ग)।।

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान ।। ११० (घ)।।

भावार्थ– गुरुजी के वचनों का स्मरण करके मेरा मन श्री राम जी के चरणों में लग गया। मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ, श्री रघुनाथ जी का यश गाता फिरता था। सुमेरुपर्वत के शिखर पर बड़ की छाया में लोमश मुनि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणों में सिर झुकाया और अत्यन्त दीन वचन कहे। हे पक्षिराज ! मेरे अत्यन्त नम्र और कोमल वचन सुनकर कृपालु मुनि मुझ से आदर के साथ पूछने लगे–"हे ब्राह्मण आप किस कार्य से यहाँ आये हैं ?" तब मैंने कहा–"हे कृपानिधि ! आप सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। हे भगवान ! मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना की प्रक्रिया कहिये।"

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा ।।
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी ।।
लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ।।

अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभव गम्य अखंड अनूपा ॥
मन गोतीत अमल अबिनासी । निर्बिकार निरवधि सुख रासी ॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा । बारि बीचि इव गावहि बेदा ॥
बिबिधि भाँति मोहि मुनि समुझावा । निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा ॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा । सगुन उपासन कहहु मुनीसा ॥
राम भगति जल मम मन मीना । किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना ॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया । निज नयनन्हि देखौं रघुराया ॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा । तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा ॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा । खंडि सगुन मत अगुन निरूपा ॥
तब मैं निर्गुन मत कर दूरी । सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी ॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा । मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा ॥
सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ । उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ ॥
अति संघरषन जौं कर कोई । अनल प्रगट चंदन ते होई ॥

भावार्थ– तब हे पक्षिराज ! मुनीश्वर ने श्री रघुनाथ जी के गुणों की कुछ कथाएँ आदर सहित कहीं । फिर वे ब्रह्मज्ञान परायण विज्ञानवान मुनि मुझे परम अधिकारी मानकर ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है और हृदय का स्वामी (अन्तर्यामी) है । उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नाम रहित, रूपरहित, अनुभव से जानने योग्य, अखण्ड और उपमारहित है । वह मन और इन्द्रियों से परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुख की राशि है । वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है (तत्वमसि) । जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है । मुनि ने मुझे अनेकों प्रकार से समझाया । पर निर्गुण मत मेरे हृदय में नहीं आया । मैंने फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर कहा–"हे मुनीश्वर ! मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना कहिये । मेरा मन रामभक्तिरूपी जल में मछली हो रहा है । हे चतुर मुनीश्वर ! ऐसी दशा में वह उससे अलग कैसे हो सकता है? आप दया करके मुझे वही उपदेश कीजिये जिससे मैं श्री रघुनाथ जी को अपनी आँखों से देखूँ । पहले नेत्र भरकर श्री अयोध्यानाथ को, देखकर, तब निर्गुण का उपदेश सुनूँगा ।" मुनि ने फिर अनुपम हरिकथा कहकर, सगुण मत का खण्डन करके निर्गुण का निरुपण किया । तब मैं निर्गुण मत को हटाकर (काटकर) बहुत हठ करके सगुण का निरूपण करने लगा । मैंने उत्तर प्रति-उत्तर किया । इससे मुनि के शरीर में क्रोध के चिन्ह उत्पन्न हो गये । हे प्रभो ! सुनिये, बहुत अपमान करने पर ज्ञानी के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है । यदि कोई चन्दन की लकड़ी को बहुत अधिक रगड़े, तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जायेगी ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में १६ सम पंक्तियाँ हैं। सुमेरुपर्वत के शिखर पर बड़ की छाया में लोमश मुनि बैठे थे। कागभुशुण्डि ने उनसे बहुत विनय पूर्वक कहा– "हे कृपानिधि! आप मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना की प्रक्रिया बताइये।" मुनि, रघुनाथ जी के गुणों की कुछ कथाएँ सुनाकर, फिर ब्रह्म का उपदेश करने लगे। कागभुशुण्डि निर्गुण मत को हटाकर, हठपूर्वक सगुण का निरूपण करने लगे। आपस में बहुत उत्तर-प्रतिउत्तर हुए। इस पर लोमश मुनि को क्रोध आ गया।

दो०– बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान।
मैं अपनें मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान।। १११ (क)।।

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।। १११।। (ख)।।

भावार्थ– मुनि बार-बार क्रोध सहित ज्ञान का निरूपण करने लगे। तब मैं **बैठा-बैठा** अपने मन में अनेकों प्रकार के अनुमान करने लगा। बिना द्वैत बुद्धि के क्रोध कैसा?और बिना अज्ञान के क्या द्वैत बुद्धि हो सकती है? माया के वश रहनेवाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है?

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें।।
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका।।
बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें।।
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी।।
भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरि निंदक।।
राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें।।
पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई।।
लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना।।
हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई।।
अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म की दया सरिस हरिजाना।।
एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनऊँ।।
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा।।
मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि।।
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही।।
सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला।।
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई।।

भावार्थ– सबका हित देखने से क्या कभी दु:ख हो सकता है? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास क्या दारिद्र रह सकता है? दूसरे से द्रोह करने वाले क्या निर्भय हो सकते हैं? और कामी क्या कलंक रहित रह सकते हैं। ब्राह्मण का बुरा करने से क्या वंश रह सकता है? स्वरूप की पहचान (आत्मज्ञान) होने पर क्या आसक्तिपूर्वक कर्म हो सकते हैं? दुष्टों के संग से क्या किसी में सुबुद्धि उत्पन्न हुई है? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है ? परमात्मा को जानने वाले कहीं भवबन्धन में पड़ सकते हैं ? नीति बिना जानें क्या राज्य रह सकता है? श्री हरि के चरित्र वर्णन करने पर क्या पाप रह सकते हैं? बिना पुण्य के क्या पवित्र यश प्राप्त हो सकता है ? जिसे वेद, संत और पुराण गाते हैं उस हरिभक्ति सम क्या कोई दूसरा लाभ भी है ? हे भाई ! जगत में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्य का शरीर पाकर भी राम जी का भजन न किया जाय ? चुगलखोरों के समान क्या कोई दूसरा पाप है ? और हे गरूड़ जी ! दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है ? इस प्रकार मैं अनगिनत युक्तियां मन में विचारता था और आदर के साथ मुनि का उपदेश नहीं सुनता था। जब मैंने बार-बार सगुणका पक्ष स्थापित किया, तब मुनि क्रोधयुक्त वचन बोले–"अरे मूढ़ ! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ, तो भी तू उसे नहीं मानता और बहुत से उत्तर-प्रत्युत्तर (दलीलें) लाकर रखता है। मेरे सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता। कौए की भाँति सभी से डरता है। अरे मूर्ख ! तेरे हृदय में अपने पक्ष का बड़ा भारी हठ है। अत: तू शीघ्र चाण्डाल पक्षी (कौआ)हो जा।" मैंने आनन्द के साथ मुनि के शाप को सिर पर चढ़ा लिया। उससे मुझे न कुछ भय हुआ, न दीनता ही आई।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं। गुरु और शिष्य में निर्गुण और सगुण ब्रह्म को लेकर विवाद चला। अन्त में लोमष मुनि ने श्राप दिया–"अरे मूर्ख ! तेरे हृदय में अपने पक्ष की बड़ी हठ है। अत: तू शीघ्र चाण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा।" कागभुशुण्डि ने आनन्द के साथ मुनि के शाप को सिर पर चढ़ा लिया। इस प्रकार ब्राह्मण की गति को छोड़कर वे कौए की योनि को प्राप्त हुए।

दो०– तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ ।। ११२ (क)।।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ।।११२ (ख)।।

भावार्थ– तब मैं तुरन्त ही कौआ हो गया। फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर और रघुकुलशिरोमणि श्री राम जी का स्मरण करके मैं हर्षित होकर उड़ चला। (शिवजी कहते हैं–)"हे उमा ! जो श्री राम जी के चरणों में अनुरक्त हैं और काम, अभिमान और क्रोध से रहित हैं, वे जगत को अपने प्रभु से भरा हुआ देखते हैं, फिर वे किससे वैर करें ?"

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन । उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन ॥
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी । लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी ॥
मन बच क्रम मोहि निज जन जाना । मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ॥
रिषि मम महत सीलता देखी । राम चरन बिस्वास बिसेषी ॥
अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई । सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई ॥
मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा । हरषित राममंत्र तब दीन्हा ॥
बालकरूप राम कर ध्याना । कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना ॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा । सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा ॥
मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा । रामचरितमानस तब भाषा॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई । पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई ॥
रामचरित सर गुप्त सुहावा । संभु प्रसाद तात मैं पावा ॥
तोहि निज भगत राम कर जानी । ताते मैं सब कहेउँ बखानी ॥
राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं । कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं ॥
मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा । मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा ॥
निज कर कमल परसि मम सीसा । हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा ॥
राम भगति अबिरल उर तोरें । बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें ॥

भावार्थ– (कागभुशुण्डि जी ने कहा–) हे पक्षिराज ! गरुड़ जी ! सुनिये, इसमें ऋषि का कुछ भी दोष नहीं था । रघुवंश के विभूषण श्रीराम जी ही सब के हृदय में प्रेरणा करने वाले हैं । कृपासागर प्रभु ने मुनि की बुद्धि को भोली करके (भुलावा देकर)मेरे प्रेम की परीक्षा ली । मन, वचन और कर्म से जब प्रभु ने मुझे अपना दास जान लिया, तब भगवान ने मुनि की बुद्धि फिर पलट दी । ऋषि ने मेरा महान पुरुषों का-सा स्वभाव (धैर्य, अक्रोध, विनय आदि)और श्रीराम जी के चरणों में विशेष विश्वास देखा। तब मुनि ने बहुत दुःख के साथ बार-बार पछताकर मुझे आदरपूर्वक बुला लिया और उन्होंने अनेकों प्रकार से मेरा सन्तोष किया, फिर हर्षित होकर मुझे राममन्त्र दिया । कृपानिधान मुनि ने मुझे बालकरूप श्री राम जी का ध्यान (ध्यान की विधि) बताया । सुन्दर और सुख देने वाला यह ध्यान मैं आपको पहले ही सुना चुका हूँ । मुनि ने कुछ समयतक मुझको वहाँ (अपने पास)रक्खा । तब उन्होंने रामचरित मानस वर्णन किया । आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर मुनि मुझसे सुन्दर वाणी बोले–"हे तात ! यह सुन्दर और गुप्त रामचरितमानस मैंने शिवजी की कृपा से पाया था । तुम्हें श्री राम जी का 'निज भक्त' जाना, इसी से मैंने तुमसे सब चरित्र विस्तार के साथ बखान कर कहा । हे तात ! जिनके हृदय में श्री राम जी की भक्ति नहीं है, उनके सामने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिये ।" मुनि ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया।

तब मैंने प्रेम के साथ मुनि के चरणों में सिर नवाया। मुनीश्वर ने अपने कर कमलों से मेरा सिर स्पर्श करके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरी कृपा से तेरे हृदय में सदा प्रगाढ़ रामभक्ति बसेगी।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं। लोमष मुनि ने भले ही श्राप देकर कागभुशुण्डि को ब्राह्मण से कौआ बना दिया, परन्तु बाद में उन्हें अपनी करनी पर पछतावा हुआ। उन्होंने कागभुशुण्डि को अपने पास बुला लिया और अनेक प्रकार से उसका सन्तोष किया और उसे ''राम- मन्त्र'' दिया। बाल रूप राम पर ध्यान लगाने की विधि बताई। फिर उन्होंने ''रामचरितमानस'' वर्णन किया और आशीर्वाद दिया कि उसके हृदय में प्रगाढ़ रामभक्ति बसेगी।

दो०— सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान ।। ११३ (क)।।

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत ।। ११३ (ख)।।

भावार्थ—तुम सदा श्री राम जी को प्रिय हो और कल्याण रूप गुणों के धाम, मानरहित, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, इच्छा मृत्यु (जिसको शरीर छोडने की इच्छा करने पर ही मृत्यु हो, बिना इच्छा के मृत्यु न हो) एवं ज्ञान और वैराग्य के भण्डार होओ। इतना ही नहीं श्री राम भगवान का स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रम में निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोस)तक अविद्या (माया-मोह)नहीं व्यापेगी।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ ।।
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना ।।
बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ ।।
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ।।
सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा ।।
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी ।।
सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ ।।
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई ।।
हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ ।।
इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा ।।
करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना ।।
जब जब अवधपुरीं रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ।।

तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥
कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देह जेहिं कारन पाई॥
कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥

भावार्थ— काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभाव से उत्पन्न कुछ भी दुख तुमको कभी नहीं व्यापेगा। अनेकों प्रकार के सुन्दर श्री राम जी के रहस्य (गुप्त मर्म के चरित्र और गुण) जो इतिहास और पुराणों में गुप्त और प्रकट हैं (वर्णित और लक्षित हैं) तुम उन सबको भी बिना ही परिश्रम जान जाओगे। श्री राम जी के चरणों में तुम्हारा नित्य नया प्रेम हो। अपने मन में तुम जो कुछ इच्छा करोगे, श्री हरि की कृपा से उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी। हे धीरबुद्धि ! गरुड़ जी ! सुनिये, मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश में ब्रह्मवाणी हुई कि "ज्ञानी मुनि ! तुम्हारा वचन ऐसा ही (सत्य) हो। यह कर्म, मन और वचन से मेरा भक्त है।" आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं प्रेम में मग्न हो गया। और मेरा सब सन्देह जाता रहा। तदनन्तर मुनि की विनती करके, आज्ञा पाकर, और उनके चरणों में बार-बार सिर नवाकर मैं हर्ष के सहित इस आश्रम में आया। प्रभु श्री राम जी की कृपा से मैंने दुर्लभ वर पा लिया। हे पक्षिराज ! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प बीत गये। मैं यहाँ सदा श्री रघुनाथ जी के गुणों का गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसे आदरपूर्वक सुनते हैं। अयोध्यापुरी में जब-जब श्री रघुबीर भक्तों के (हित के) लिये मनुष्य शरीर धारण करते हैं, तब-तब मैं जाकर श्री राम जी की नगरी में रहता हूँ और प्रभु की शिशु लीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर हे पक्षिराज ! श्री राम जी के शिशु रूप को हृदय में रखकर अपने आश्रम में आ जाता हूँ। जिस कारण से मैंने कौए की देह पायी, वह सारी कथा आपको सुना दी। हे तात ! मैंने आपके सब प्रश्नों के उत्तर कहे। अहा ! रामभक्ति की बड़ी भारी महिमा है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ ११३९ पर **कागभुशुण्डि** ने कहा :

"जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥"

इस पर गरुड़ जी ने पृष्ठ ११५६ पर उनसे दो प्रश्न पूछे :-

"कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥
राम चरित सर सुन्दर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥"

पहले प्रश्न के उत्तर में **कागभुशुण्डि** ने अपने पूर्व जन्मों की कथा पृष्ठ ११७१ से लेकर पृष्ठ ११८४ तक सुनाई। दूसरे प्रश्न का उत्तर, उन्होंने ऊपर की चौपाई में दिया। लोमश मुनि ने शाप के साथ-साथ, **कागभुशुण्डि** को कई वरदान भी दिये :-

१. तुम सदा श्री राम जी को प्रिय हो।

२. तुम इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हो।

३. तुम्हारी इच्छामृत्यु हो।

४. तुम ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हो।

५. तुम जिस आश्रम में निवास करो, वहाँ चार कोस तक अविद्या नहीं **व्यापे**।

६. श्री राम के गुप्त और प्रकट चरित्र और गुण तुम बिना परिश्रम जान जाओगे।

७. अपने मन में तुम जो कुछ इच्छा करोगे, उसकी पूर्ति तुम्हारे लिये दुर्लभ नहीं होगी।

लोमश ऋषि के वरदान गिनाकर, **कागभुशुण्डि** ने फिर यह कहा कि सुमेरु पर्वत के उत्तर नील शिखर पर उसको निवास करते हुये सत्ताईस कल्प बीत गये। यहाँ नित्य रघुनायक के गुणों का गान किया करते हैं और चतुर पक्षी उसे आदरपूर्वक सुना करते हैं। हर कल्प में अयोध्यापुरी में जब जब श्री रघुबीर मनुष्य शरीर धारण करते हैं, तब-तब मैं (कागभुशुण्डि) वहाँ जाकर प्रभु की शिशु लीला देखकर सुख पाता हूँ। इस प्रकार जिस भाव को लेकर कागभुशुण्डि ने गरुड़ को अपना जीवन चरित सुनाना शुरु किया था, उसी भाव से उसका समापन किया। पृष्ठ ११३९ और ११८६ से एक-एक चौपाई उद्घृत की जा रही है। दोनों में भाव एक ही है :-

''जब जब राममनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं।।
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ।।
जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा।।
तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ।।''

दो०— ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह।। ११४ (क)।।

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप ।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप ।। ११४ (ख)।।

भावार्थ– मुझे अपना यह काक शरीर इसीलिये प्रिय है कि इसमें मुझे राम जी के चरणों का प्रेम प्राप्त हुआ । इसी शरीर से मैंने अपने प्रभु के दर्शन पाये और मेरे सब सन्देह जाते रहे (दूर हुए)। मैं हठ करके भक्ति पक्ष पर अड़ा रहा, जिससे महर्षि लोमश ने मुझे शाप दिया । परन्तु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियों को भी दुर्लभ है, वह वरदान मैंने पाया । भजन का प्रताप तो देखिये ।

जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ।।
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पय लागी ।।
सुनु खगेस हरिभगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ।।
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी । पैरी पार चाहहिं जड़ करनी ।।
सुनि भसुंडि के बचन भवानी । बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी ।।
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं । संसय सोक मोह भ्रम नाहीं ।।
सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा । तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा ।।
एक बात प्रभु पूँछउँ तोही । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ।।
कहहिं संत मुनि बेद पुराना । नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना ।।
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं । नहिं आदरेहु भगति की नाईं ।।
ग्यानहि भगतिहि अंतर केता । सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता ।।
सुनि उरगारि बचन सुख माना । सादर बोलेउ काग सुजाना ।।
भगतिहि ग्याहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव संभव खेदा ।।
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर । सावधान सोउ सुनु बिहंगबर ।।
ग्यान बिराग जोग बिग्याना । ए सब पुरुष सुनहु हरि जाना ।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँति । अबला अबल सहज जड़ जाती ।।

भावार्थ– जो भक्ति की ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिये श्रम (साधन) करते हैं, वह मूर्ख घरपर खड़ी हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिये मदार के पेड़ को खोजते फिरते हैं। हे पक्षिराज ! सुनिए, जो लोग श्री हरि की भक्ति को छोड़कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड़ करनी वाले (अभागे) बिना ही जहाज़ के तैरकर महासमुद्र के पार जाना चाहते हैं। (शिवजी कहते हैं--) हे भवानी ! भुशुण्डि के वचन सुनकर गरुड़ जी हर्षित होकर कोमल वाणी से बोले--"हे प्रभो ! आपके प्रसाद से मेरे हृदय में अब सन्देह, शोक, मोह और भ्रम कुछ भी नहीं रह गया। मैंने आपकी कृपा से श्री रामचन्द्र जी के पवित्र गुणसमूहों को सुना और शान्ति प्राप्त की। हे प्रभो ! अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ। हे कृपा सागर! मुझे समझाकर कहिये। संत, मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञान समान दुर्लभ कुछ भी नहीं है। हे गोसाई ! वही ज्ञान मुनि ने आपसे कहा। परन्तु आपने भक्ति के समान उसका आदर नहीं किया। हे कृपा के धाम ! हे प्रभो ! ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है ? यह सब मुझसे कहिये।" गरुड़ जी के वचन सुनकर सुजान कागभुशुण्डि जी ने सुख माना और आदर के साथ कहा-- भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही भव (संसार) से उत्पन्न क्लेशों को हर लेते हैं। हे नाथ ! मुनीश्वर इनमें कुछ अन्तर बतलाते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ ! उसे सावधान होकर सुनिये। हे हरिवाहन ! सुनिये। ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान--ये सब पुरुष हैं। पुरुष का प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है। अबला (स्त्री) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ (मूर्ख) होती है।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं। लोमश मुनि निरन्तर ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन करते रहे, परन्तु भुशुण्डि ने भक्ति मार्ग नहीं छोड़ा। शापित होने पर भी और कौये की योनि पाने पर भी, राम के प्रति उनकी अविरल भक्ति में कोई अन्तर नहीं आया। उनकी प्रगाढ़ भक्ति को देखकर, गरुड़ जी ने उनसे ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग में अन्तर पूछा। कागभुशुण्डि ने सरल स्वभाव से कहा--

"भगतिहि ग्यानिहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा ।।"

यह कर, उन्होंने आगे समझाया कि ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान यह सब पुल्लिग हैं। भक्ति स्त्रीलिंग है और माया भी स्त्री लिंग है। एक स्त्री दूसरी स्त्री की ओर आसक्त नहीं होती है। इसी कारण भक्तों को भगवान की माया नहीं व्यापती।

दो०– पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मतिधीर।
न तु कामी विषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर ।। ११५ (क)।।

सो०– सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट ।। ११५ (ख)।।

भावार्थ– परन्तु जो वैराग्यवान और धीर बुद्धि पुरुष हैं वही स्त्री को त्याग सकते हैं, न कि वे कामी पुरुष, जो विषयों के वश (उनके गुलाम) और श्री रघुबीर के चरणों से विमुख हैं। विज्ञान के भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चन्द्रमुख को देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते हैं। हे गरुड़ जी! साक्षात् भगवान विष्णु की माया ही स्त्री रूप से प्रकट है।

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मतभाषउँ।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।।
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकई कछु निज प्रभुताई।।
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी।।

भावार्थ– यहाँ मैं कुछ पक्षपात नहीं रखता। वेद, पुराण और संतों का मत (सिद्धान्त) ही कहता हूँ। हे गरुड़ जी ! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्री के रूप पर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती। आप सुनिये, माया और भक्ति ये दोनों ही स्त्री वर्ग हैं, यह सब कोई जानते हैं। फिर श्री रघुबीर जी को भक्ति प्यारी है। माया बेचारी तो निश्चय ही नाचने वाली नटनी मात्र है। श्री रघुनाथ जी भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं। इसलिये माया उससे अत्यन्त डरती रहती है। जिसके हृदय में उपमा रहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक टोक) के बसती है, उसे देखकर माया सकुचा जाती है। उस पर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐसा विचार कर ही जो विज्ञानी मुनि हैं, वे भी सब सुखों की खान भक्ति की ही याचना करते हैं।

दो०– यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ।। ११६ (क)।।

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन।। ११६ (ख)।।

भावार्थ– श्री रघुनाथ जी का यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। श्री रघुनाथ जी की कृपा से जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता। हे सुचतुर गरुड़ जी ! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिये। जिसके सुनने से श्री राम जी के चरणों में सदा अविच्छिन्न (निरन्तर) प्रेम हो जाता है।

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं । बँध्यो कीर मरकट की नाईं ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी । ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ॥
अस संजोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई ॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ॥
मुदिताँ मथै बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मदि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥

भावार्थ– हे तात ! यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिये । यह समझते ही बनती है, कही नहीं जा सकती । जीव ईश्वर का अंश है ; अतएव यह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है । हे गोसाई ! यह माया के वशीभूत होकर तोते और बानर की भाँति अपने-आप ही बँध गया । इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रन्थि (गाँठ) पड़ गयी । यद्यपि यह ग्रन्थि मिथ्या है, तथापि उसके छूटने में कठिनता है । तभी से जीव संसारी (आवागमनशील) हो गया । अब न तो गाँठ छूटती है, और न वह सुखी होता है । वेदों और पुराणों में बहुत से उपाय बताये हैं । पर यह ग्रन्थि छूटती नहीं, वरन् अधिकाधिक उलझती ही जाती है । जीव के हृदय में अज्ञानरूपी अन्धकार विशेष रूप से छा रहा है । इससे गाँठ देख ही नहीं पड़ती, छूटे तो कैसे ? जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग (जैसा आगे कहा जाता है) उपस्थित कर देते हैं तब भी कदाचित् ही वह ग्रन्थि छूट पाती है । श्री हरि की कृपा से यदि सात्विकी श्रद्धा रूपी गौ हृदयरूपी घर में आकर बस जाय । असंख्यों जप, तप, व्रत, यम और नियमादि शुभ धर्म और आचार (आचरण) जो श्रुतियों ने कहे हैं , उन्हीं धर्माचाररूपी हरे तृणों को (घास को) जब वह गौ चरे, और आस्तिक भावरूपी छोटे बछड़े को पाकर पन्हावे । निवृत्ति (सांसारिक विषयों से और प्रपञ्च से हटना) नोई (गौके दुहतेसमय पिछले पैर बाँछने की रस्सी) है, विश्वास दूध दुहने का बर्तन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो स्वयं अपना

दास है (अपने वश में है) दुहने वाला अहीर है। हे भाई! इस प्रकार (धर्माचार में प्रवृत्त सात्विकी श्रद्धा रूपी गौ से भाव, वृति और वश में किये हुए निर्मल मन की सहायता से) परम धर्ममय दुहकर उसे निष्काम भावरूपी अग्नि पर भलीभाँति औटावे। फिर क्षमा और संतोषरूपी हवा से उसे ठंडा करे, और धृति (धैर्य) तथा समरूपी जामन देकर उसे जमावे। तब मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरी में, तत्व विचार रूपी मथानी से दम (इन्द्रियदमन) के आधार पर (दम रूपी खंभे आदि के सहारे) सत्य और सुन्दर वाणी रूपी रस्सी लगाकर उसे मथे और मथकर तब उसमें से निर्मल, सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाल ले।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ हैं। जीव ईश्वर का अंश है। अतएव यह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है। परन्तु माया के वशीभूत होने से यह कर्म-बन्धन में बँध गया है। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रन्थी पड़ गयी। चेतन को जड़ से छुटाने के लिए, तुलसीदास जी ने एक महान रूपक बाँधा है :-

१. हरि में सात्विकी श्रद्धा मानो गौ है।

२. हृदय में उस गौ का घर है।

३. जप, तप, व्रत, यम और नियम उस गौ के चरने के लिए घास हैं।

४. आस्तिक भाव ही उस गाय का बछड़ा है।

५. निवृत्ति—सांसारिक विषयों से और प्रपंच से हटना—ही उस गाय की नोई (उसके दुहते समय पिछले पैर बाँछने की रस्सी) है।

६. विश्वास दूध दुहने का बर्तन है।

७. निर्मल मन दुहने वाला अहीर है।

८. परम धर्म-मय दूध को निष्काम भाव-रूपी अग्नि पर औटाना चाहिये।

९. क्षमा और सन्तोष मानो दूध को ठंडा करने के लिए हवा हैं।

१०. धैर्य और श्रम-रूपी जामन से दूधको जमाना चाहिये।

११. मुदिता (प्रसन्नता) ही कमोरी है।

१२. तत्व-विचार मथनी है ।

१३. इन्द्रीय दमन ही आधार (खम्भा)है।

१४. सत्य और सुन्दर वाणी मथने की रस्सी है।

१५. इस प्रकार मथने से निर्मल, सुन्दर और पवित्र वैराग्यरूपी मक्खन निकलता है।

१६. योग अग्नि है।

१७. शुभाशुभ कर्म ईंधन है। योगरूपी अग्नि में शुभाशुभ कर्म भस्म हो जाते हैं।

१८. वैराग्यरूपी मक्खन का ममता ही मल है।

१९. ममतारूपी मल के जल जाने से ज्ञानरूपी घी निकलता है।

२०. ज्ञानरूपी घी को निश्चयात्मक बुद्धि से ठंडा करना चाहिये।

२१. चित्त ही मानो दिया है।

२२. समता ही मानो दीवट है।

२३. ज्ञानरूपी घी को चित्तरूपी दिये में भरकर समतारूपी दीवट पर दृढ़तापूर्वक रखना चाहिये।

२४. तीनों अवस्थाएँ (जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति) और तीनों गुण (सत, रज और तम) मानो कपास हैं।

२५. तुरीया अवस्था मानो कपास से निकली हुई रुई है। इस रुई की सम्भाल कर सुन्दर बत्ती बनानी चाहिए।

२६. इस प्रकार तेज की राशि विज्ञानमय दीपक जलाये।

२७. इस दीपक के पास जाते ही मदरूपी पतंगे जल जाते हैं।

२८. "सोऽहमस्मि" वृत्ति ही ज्ञानदीपक की प्रचण्ड दीपशिखा है।

२९. यह दीपशिखा आत्मानुभव के सुख का प्रकाश फैलाती है।

३०. आत्मानुभव के प्रकाश से अविद्या के परिवार मोह आदि का अन्धकार मिट जाता है।

३१. इस प्रकार विज्ञानरूपिणी बुद्धि आत्मानुभव के प्रकाश को पाकर हृदय रूपी घर में बैठ कर जड़-चेतन की गाँठ को खोलती है।

दो०— जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ।। ११७ (क)।।

तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिआटे बनाइ ।। ११७ (ख)।।

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ।। ११७ (ग)।।

सो०— एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदातिक सलभ सब ।। ११७ (घ)।।

भावार्थ— तब योग रूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन लगा दे (सब कर्मों को योगरूपी अग्नि में भस्म कर दे)। जब वैराग्यरूपी मक्खन का ममता रूपी मल जल जाय, तब बचे हुए ज्ञान रूपी घी को निश्चयात्मिक बुद्धि से ठंडा करे। तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि उस ज्ञान रूपी निर्मल घी को पाकर उससे चित्तरूपी दिये को भरकर, समता की दीवट बनाकर, उस पर दृढ़ता पूर्वक (जमाकर) रक्खे। तीनों (जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति) अवस्थाएँ और तीनों (सत, रज और तम) गुण रूपी कपास से तुरीयावस्था रूपी रुई को निकाल कर, और फिर उसे सँवारकर उसकी सुन्दर कड़ी बत्ती बनाये। इस प्रकार तेज की राशि विज्ञान मय दीपक जलाये, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जायें।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।
प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा।।
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा।।
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई।।
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया।।
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई।।
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा।।
होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी।।
इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी।।

जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई । तबहिं दीप बिग्यान बुझाई ॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ॥

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई । बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥

भावार्थ– ''सोऽहमस्मि'' (वह ब्रह्म मैं हूँ) वृत्ति ही उस ज्ञानदीपक की परम प्रचण्ड दीपशिखा (लौ) है । इस प्रकार जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है तब जन्म-मृत्युरूप संसार के मूल भेद भ्रम का नाश हो जाता है । और महान बलवती अविद्या के परिवार मोह आदि का अपार अन्धकार मिट जाता है । तब वही (विज्ञानरूपिणी) बुद्धि आत्मानभुव रूप प्रकाश को पाकर हृदयरूपी घर में बैठकर उस जड़ चेतन की गाँठ को खोलती है । यदि वह (विज्ञानरूपिणी बुद्धि) उस गाँठ को खोलने पाये, तब यह जीव कृतार्थ हो । परन्तु हे पक्षिराज गरुड जी ! गाँठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है । हे भाई ! बहुत-सी ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती हैं जो आ कर बुद्धि को लोभ दिखाती हैं। और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जातीं और आँचल की वायु से उस ज्ञानरूपी दीपक को बुझा देती हैं । यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई, तो वह उनको (ऋद्धि-सिद्धियाँ को) अहितकर समझकर उनकी ओर ताकती नहीं । इस प्रकार यदि मायाके विघ्नों से बुद्धि को बाधा नहीं हुई, तो फिर देवता उपाधि (विघ्न) करते हैं । इन्द्रियों के द्वार हृदयरूपी घर के अनेकों झरोखे हैं । वहाँ-वहाँ प्रत्येक झरोखे पर देवता थाना किये (अड्डा जमाकर) बैठे हैं । ज्यों ही वे विषय रूपी हवा को आते देखते हैं त्यों ही हठपूर्वक किवाड़े खोल देते हैं । ज्यों ही वह तेज़ हवा हृदय रूपी घर में जाती है, त्यों ही यह विग्यानरूपी दीपक बुझ जाता है । गाँठ भी नहीं छूटी और वह प्रकाश भी मिट गया । विषय रूपी हवा से बुद्धि व्याकुल हो गयी (सारा किया-कराया चौपट हो गया) । इन्द्रियों और उनके देवताओं को तो ज्ञान स्वाभाविक ही नहीं सुहाता, क्योंकि उनकी विषय-भोगों में सदा ही प्रीति रहती है। और बुद्धि को भी विषय रूपी हवा ने बावली बना दिया । तब फिर (दुबारा) उस ज्ञान दीपक को उसी प्रकार कौन जलाये?

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में सोलह सम पंक्तियाँ है । पृष्ठ ११९२ से ११९६ तक एक महान रूपक बाँध कर तुलसीदास जी ने ज्ञान मार्ग की विषमता की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है । अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ज्ञान-बुद्धि यदि किसी प्रकार से जड़-चेतन की गाँठ को खोलने में सफल हो जाती है, तो माया फिर उसके मार्ग में अनेकों विघ्न डालती है । वह ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है जो बुद्धि को लोभ दिखाती हैं । ऋद्धि-सिद्धियाँ ''कल, बल और छल'' की वायु से ज्ञान-दीपक को बुझा देती हैं । यदि बुद्धि बहुत सयानी हुई और माया के विघ्नों से उसको कोई बाधा नहीं पहुँची, फिर भी देवता विघ्न पैदा कर देते हैं । इन्द्रियाँ हृदय के द्वार हैं । देवता यह द्वार खोल देते है और विषय-रूपी

हवा हृदय में प्रवेश करके विज्ञानरूपी दीपक को बुझा देती है। इन्द्रियों और उनके देवताओं को ज्ञान स्वाभाविक ही नहीं सुहाता, क्योंकि उनकी विषय-भोगों में सदा ही प्रीति रहती है। सारा किया-कराया चौपट हो जाता है। ज्ञान-दीपक को पुनः जलाना बहुत कठिन हो जाता है।

दो०— तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ।। ११८ (क)।।

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यहू अनेक ।। ११८ (ख)।।

भावार्थ— (इस प्रकार ज्ञानदीपक के बुझ जाने पर) तब फिर जीव अनेकों प्रकार से संसृति के (जन्म-मरणादि के) क्लेश पाता है। हे पक्षिराज ! हरि की माया अत्यन्त दुस्तर है, वह सहज ही में तरी नहीं जा सकती। ज्ञान कहने (समझाने) में कठिन और साधन में भी कठिन है। यदि घुणाक्षर न्याय से (संयोगवश) कदाचित वह ज्ञान हो भी जाय, तो फिर (उसे बचाये रखने में) अनेकों विघ्न हैं।

ग्यान पंथकृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा ।।
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई ।।
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद ।।
राम भगज सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं ।।
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई ।।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ।।
अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा ।।
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी ।।
असि हरि भगति सुगम सुखादाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ।।

भावार्थ— ज्ञान का मार्ग कृपाण (दुधारी तलवार) की धार के समान है। पक्षिराज! इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्विघ्न निबाह ले जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परम पद को प्राप्त करता है। संत, पुराण, वेद और तन्त्र आदि शास्त्र सब यह कहते हैं कि कैवल्यरूपी परमपद अत्यन्त दुर्लभ है। किन्तु हे गोसाईं! वही अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति श्री राम जी को भजने से बिना इच्छा किये भी जबरदस्ती आ जाती है। जैसे स्थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकार के उपाय क्यों न करें, वैसे ही, हे पक्षिराज! सुनिये, मोक्ष सुख भी श्री हरि की भक्ति को छोड़कर नहीं रह सकता। ऐसा विचार कर

बुद्धिमान हरिभक्त भक्ति पर लुभाये रहकर मुक्ति का तिरस्कार कर देते हैं। भक्ति करने से संसृति (जन्म-मृत्यु रूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यत्न और परिश्रम के (अपने आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है। जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्ति के लिये और उस भोजन को जठराग्नि अपने आप (बिना हमारी चेष्टा के) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देने वाली हरिभक्ति जिसे न सुहावे ऐसा मूढ़ कौन होगा ?

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। ज्ञानमार्ग की विषमता को और आगे समझाते हुए, तुलसीदास जी काकभुशुण्डि के मुख से कहते हैं कि ज्ञान का मार्ग दुधारी तलवार की धार के समान है। इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्विघ्न निभा ले जाता है वही कैवल्य (मोक्ष) पद को प्राप्त करता है। कैवल्य परम पद अत्यन्त दुर्लभ है। वही अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति श्री राम को भजने से अनायास मिल जाती है। भक्ति करने से संसृति (जन्म-मृत्यु रूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यत्न और परिश्रम के नष्ट हो जाती है। ऐसी सुगम और परम सुख देने वाली भक्ति को छोड़कर मूढ़ ही ज्ञान मार्ग की ओर छोड़ते हैं।

दो०– सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि ।। ११९ (क)।।

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ।। ११९ (ख)।।

भावार्थ– हे गरुड़ जी ! मैं सेवक हूँ और भगवान मेरे सैव्य (स्वामी) हैं, इस भाव के बिना भवसागर से तरना नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धान्त विचारकर श्रीराम चन्द्र जी के चरण-कमलों का भजन कीजिये। जो चेतन को जड़ कर देता है और जड़ को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्री रघुनाथ जी को जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं।

कहेउ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ।।
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ।।
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती ।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।।
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई ।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं ।।
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।।
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें ।।

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥
सुगम उपाय पाइबे केरे । नर हतभाग्य देहिं भटभेरे ॥
पावन पर्बत बेद पुराना । राम कथा रुचिराकर नाना ॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान बिराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी । पाव भगतचि मनि सब सुख खानी ॥
मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई । सो बिनु संत न काहूँ पाई ॥
अस बिचारि जोइ करि सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥

भावार्थ– मैंने ज्ञान का सिद्धान्त समझाकर कहा । अब भक्तिरूपी मणि की प्रभुता (महिमा) सुनिये । श्री राम जी की भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है । हे गरड़ जी ! यह जिसके हृदय के अंदर बसती है, वह दिन रात अपने-आप ही परम प्रकाश रूप रहता है । उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिये । (इस प्रकार मणि का एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है) फिर मोहमयी दरिद्रता समीप नहीं आती क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है । और तीसरे लोभरूपी हवा उस मणिमय दीपक को नहीं बुझाता, (क्योंकि मणि स्वयं प्रकाशरूप है, वह किसी दूसरेकी सहायता से नहीं प्रकाश करती)। उसके प्रकाश से अविद्या का प्रबल अन्धकार मिट जाता है । मायादि पतंगों का सारा समूह हार जाता है । जिसके हृदय में भक्ति बसती है काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं आते । उसके लिये विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाता है । उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता । जिन मानसिक रोगों से सब जीव दुखी रहते हैं, वह रोग भक्त को नहीं व्यापते हैं। श्री रामचन्द्र जी की भक्ति जिसके हृदय में बसती है, उसे स्वप्न में भी लेशमात्र दुःख नहीं होता ।जगत में वे ही मनुष्य चतुरों के शिरोमणि हैं जो उस भक्ति-मणि के लिए भली-भाँति यत्न करते हैं । यद्यपि यह मणि जगत में प्रकट(प्रत्यक्ष)है, पर बिना श्री राम जी की कृपा से उसे कोई नहीं पा सकता। उसके पाने के उपाय भी सुलभ हैं।अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं । वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं । श्री राम जी की नाना प्रकार की कथाएँ उन पर्वतों में सुन्दर खाने हैं । संत पुरुष इन खानों के रहस्य को जानने वाले मर्मी हैं और सुन्दर बुद्धि (खोदने वाली)कुदाल है । हे गरुड़ जी! ज्ञान और वैराग्य ये दो उनके नेत्र हैं । जो प्राणी उसे प्रेम के साथ खोजता वह सब सुखों की खान इस भक्ति रूपी मणि को पा जाता है । हे प्रभो! मेरे मन में तो ऐसा विश्वास है कि श्री राम जी के दास श्री राम जी से भी बढ़कर हैं । श्री रामचन्द्र जी समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं । श्री हरि चन्दन के वृक्ष हैं तो संत पवन हैं । सब साधनों का फल सुन्दर हरि भक्ति ही है । उसे संत के बिना किसी ने नहीं पाया । ऐसा विचार कर जो भी संतों का संग करता है, हे गरुड़ जी! उसके लिये श्री राम जी की भक्ति सुलभ हो जाती हैं ।

टिप्पणी- ऊपर की चौपाई में उन्नीस विषम पंक्तियाँ हैं। जैसे ज्ञानमार्ग को तुलसीदास जी ने एक रूपक द्वारा समझाया है (पृष्ठ ११९३-९४), वैसे ही भक्तिमार्ग को भी एक दूसरे रुपक द्वारा समझाया है। रूपक इस प्रकार है :-

१. राम की भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है।

२. वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं।

३. श्री राम की नाना प्रकार की कथाएँ, उन पर्वतों में सुन्दर खान हैं।

४. संत पुरुष उन खानों के रहस्य को जानने वाले मर्मी हैं।

५. सुन्दर बुद्धि खोदने वाली कुदाल है।

६. ज्ञान और वैराग्य खोदने वालों के दो नेत्र हैं।

७. जो प्राणी प्रेम के साथ खान को खोजता है, वह भक्ति-रूपी मणि को पा जाता है।

८. वेद समुद्र है।

९. ज्ञान मन्दराचल है।

१०. संत देवता हैं।

११. सन्त उस वेदरूपी समुद्र को मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं।

१३. वैराग्य ढाल है, ज्ञान तलवार है, मद, लोभ, और मोह वैरी हैं।

१४. हरिभक्ति वैराग्य रूपी ढाल से अपने को बचाते हुए ज्ञान रूपी तलवार से मद, लोभ और मोहरूपी वैरियों को मारकर विजय प्राप्त करती है।

बालकाण्ड में ''रामचरितमानस'' की प्रस्तावना में दोहा २३ में तुलसीदास जी कहते हैं :

''निरगुन ते एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार।।'' (पृष्ठ ५२)

राम का नाम ''राम'' से बड़ा है, इसकी पुष्टि करते हुए, तुलसीदास जी यहाँ कहते हैं कि-

१. श्री राम जी के दास श्री राम जी से भी बढ़कर हैं।

२. श्री रामचन्द्र जी समुद्र हैं, तो संतपुरुष मेघ हैं।

३. श्री हरि चन्दन के वृक्ष हैं, तो संत पवन हैं।

दो०– ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ।। १२०(क)।।
बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ।। १२० (ख)।।

भावार्थ– ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल है और संत देवता हैं, जो उस समुद्र को मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्ति रूपी मधुरता बसी रहती है। वैराग्यरूपी ढाल से अपने को बचाते हुए और ज्ञान रूपी तलवार से मद, लोभ और मोहरूपी वैरियों को मारकर जो विजय प्राप्त करती है, वह हरिभक्ति ही है। हे पक्षिराज ! इसे विचार कर देखिए।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ ।।
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखनी ।।
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा ।।
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी ।।
संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु ।।
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अस परम कराला ।।
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्वग्य कृपा अधिकाई ।।
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती ।।
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही ।।
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ।।
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर ।।
काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं ।।
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं ।।
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया ।।
संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी ।।
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला ।।
सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ।।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी ।।
पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ।।
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ।।
संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ।।
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा ।।

हर गुर निंदक दादुर होई । जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥

द्विज निंदक बहु नरक भोग करि । जग जनमइ बायस सरीर धरि ॥

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी । रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥

होहिं उलूक संत निंदा रत । मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत ॥

सब कै निंदा जे जड़ करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥

सुनहु तात अब मानस रोगा । जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥

बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥

ममता दादु कंडु इरषाई । हरष बिषाद गरह बहुताई ॥

पर सुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥

अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नेहरुआ ॥

तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी । त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी ॥

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

भावार्थ— पक्षिराज गरुड़ जी फिर प्रेम सहित बोले—"हे कृपालु ! यदि मुझ पर आपका प्रेम है, तो हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों के उत्तर बखानकर कहिये । हे नाथ! हे धीर बुद्धि! पहले तो यह बताइये कि सब से दुर्लभ कौन सा शरीर है?फिर सबसे बड़ा दु:ख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है? यह भी विचार कर संक्षेप में ही कहिये । संत और असंत का मर्म (भेद) आप जानते हैं । उनके सहज स्वभाव का वर्णन कीजिये । फिर कहिये कि श्रुतियों में प्रसिद्ध सबसे महान पुण्य कौन सा है । और सबसे भयंकर पाप कौन है ? फिर मानस रोगों को समझाकर कहिये । आप सर्वज्ञ हैं, और मुझ पर आपकी कृपा भी बहुत है ।" (कागभुशुण्डि जी ने कहा—) "हे तात! अत्यन्त प्रेम और आदर के साथ सुनिये । मैं यह नीति संक्षेप में कहता हूँ । मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है । चर अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं । यह मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाला है । ऐसे मनुष्य शरीर को धारण करके (प्राप्त करके) भी जो लोग श्री हरि का भजन नहीं करते और नीच से भी नीच विषयों में अनुरक्त रहते हैं , वे पारसमणि को हाथ से फेंक देते हैं और बदले में काँच के टुकड़े ले लेते हैं । जगत में दरिद्रता के समान दु:ख नहीं है, तथा संतों के मिलन के समान जगत में सुख नहीं है । और हे पक्षिराज ! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना यह संतो का सहज स्वभाव है । संत दूसरों के हित के लिये दु:ख सहते हैं और अभागे असंन्त दूसरों को दु:ख पहुँचाने के लिए । कृपालु संत भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिये विपत्ति

सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं)। किन्तु दुष्ट लोग सन की भाँति दूसरों को बाँधते हैं, और उन्हें बाँधने के लिए अपनी खाल खिचवाकर, विपत्ति सह कर मर जाते हैं। हे गरुड़ जी! सुनिये, दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं। वे परायी सम्पत्ति का नाश करके स्वंय नष्ट हो जाते हैं। जैसे खेती का नाश करके ओले नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट का अभ्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु के उदय की भाँति जगत के दुःख के लिये ही होता है। और संतों का अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्य का उदय विश्व भर के लिये सुखदायक है। वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना है। और परनिन्दा के समान भारी पाप नहीं है। शंकर जी और गुरु की निन्दा करने वाला मनुष्य अगले जन्म में मेढ़क होता है और वह हज़ार जन्म तक वही मेढ़क का शरीर पाता है। द्विजों की निन्दा करने वाला व्यक्ति बहुत से नरक भोगकर जगत में फिर कौए का शरीर धारण करके जन्म लेता है। जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदों की निन्दा करते हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं। संतों की निन्दा में लगे हुए लोग उल्लू होते हैं, जिन्हें मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है, और ज्ञानरूपी सूर्य जिनके लिये बीत गया (अस्त हो गया) रहता है। जो मूर्ख मनुष्य सबकी निन्दा करते हैं, वे चमगीदड़ होकर जन्म लेते हैं। हे तात! अब मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं। सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उसे से फिर और बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम बात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है, और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है। यदि कहीं ये तीनों भाई (बात, पित्त और कफ) (प्रीति कर लें) मिल जायँ, तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से प्राप्त (पूर्ण) होने वाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं। उनके नाम को कौन जानता है (अर्थात वे अपार हैं)। ममता दाद है, ईर्ष्या (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोगों की अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेंघा आदि रोग हैं)। पराये सुख को देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है। अहंकार अत्यन्त दुःख देने वाला डमरू (गाँठ का) रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसों का) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदरबृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार की (पुत्र, धन और मानकी) प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं। मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई ''मानस'' की सबसे लम्बी चौपाई है। इसमें सैंतीस विषम पंक्तियाँ हैं। गरुड़ जी ने कागभुशुण्डि से सात प्रश्न पूछे। प्रश्नोत्तरी इस प्रकार है :-

१. सबसे दुर्लभ कौन सा शरीर है ?

मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। यह मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाला है।

२. सबसे बड़ा दुःख कौन है ?

दारिद्र (गरीबी)के समान संसार में और कोई दुःख नहीं है ।

३. सबसे बड़ा सुख कौन है ?

संत समागम सबसे बड़ा सुख है ।

४. संतो और असंतों का स्वभाव कैसा होता है ?

संत— मन, वचन और शरीर से परोपकार करना, यह संतो का सहज स्वभाव है । संत भोज के वृक्ष के समान दूसरे के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं —अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं ।

(संतों के लक्षण की अधिक जानकारी के लिए देखिए भाग १, बालकाण्ड, पृष्ठ ९-१४ और दोहा ३७-३८ और उनके ऊपर की चौपाई, पृष्ठ १०९८-११००)

असंत— दूसरो को दुख पहुँचाने के लिए स्वयं दुःख सहते हैं । सन की भाँति दूसरों को बाँधते हैं, और उन्हें बाँधने के लिये अपनी खाल खिचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं । बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं। जैसे खेती का नाश कर के ओले नष्ट हो जाते हैं । दुष्ट का अभ्युदय प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु के उदय की भाँति जगत के दुःख के लिये ही होता है ।

(असंतों के लक्षणों की अधिक जानकारी के लिये देखिए भाग-१, बालकाण्ड, पृष्ठ १४-२० और दोहा ३९-४० और उनके ऊपर की चौपाई पृष्ठ ११००, ११०४)

५. सबसे बड़ा पुण्य कौन है ?

अहिंसा परमो धर्मः

६. सबसे बड़ा पाप कौन सा है ?

परनिन्दा के समान भारी पाप नहीं है । शंकर और गुरु जी की निन्दा करने वाला अगले जन्म में मेढ़क होता है । द्विजों की निन्दा करने वाला कौए का शरीर धारण करता है। जो देवताओं और वेदों की निन्दा करते हैं वे रौरव नरक पहुँचते हैं । संत की निन्दा में लगे हुए लोग उल्लू होते हैं ! जो सबकी निन्दा करते हैं वो चमगीदड़ होकर जन्म लेते हैं ।

७. मानस रोग कौन-कौन से हैं ?

सब रोगों की जड़ अज्ञान (मोह) है । अज्ञान से बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं । काम बात है, लोभ कफ है, क्रोध पित्त है । यदि यह तीनों भाई मिल जायें, तो दुख– दायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है । कठिनता से पूर्ण होने वाले जो विषयों के मनोरथ है, वे ही सब कष्टदायक

रोग हैं। ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है। हर्ष-विषाद गले की कंठमाला है, पराये सुख को देख कर जो जलन होती है वही क्षय रोग है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है। अहंकार अत्यन्त दुख देने वाला गठिया रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरूआ (नसों का)रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदर-वृद्धि (जलोदर)रोग है। तीन प्रकार की (पुत्र, धन और मान की)प्रबल इच्छाऐं तिजारी (मलेरिया या जूड़ी बुखार, जो एक दिन छोड़ कर आता है)हैं। मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं।

दो०— एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहैं समाधि ।। १२१ (क)।।

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान ।। १२१ (ख)।।

भावार्थ— एक ही रोग वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं। ये जीव को निरन्तर कष्ट देते रहते हैं। ऐसी दशा में वह समाधि को (शान्ति को)कैसे प्राप्त करे। नियम, धर्म , आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियां हैं, परन्तु गरुड़ जी ! उनसे ये रोग नहीं जाते।

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी ।।
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए ।।
जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी ।।
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे ।।
राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा ।।
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा ।।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी ।।
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ।।
जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई ।।
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई ।।
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई ।।
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ।।
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा ।।
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ।।
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा ।।

फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहिं सस सीस बिषाना ॥
अंधकारु बरु रबिहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥

भावार्थ– इस प्रकार जग में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक-हर्ष, भय-प्रीति और वियोग के दुःख से और भी दुखी हो रहे हैं । मैंने ये थोड़े से मानस रोग कहे हैं । ये हैं तो सब को, परन्तु इन्हें जान पाये हैं कोई विरले ही । प्राणियों को जलाने वाले, ये पाप (रोग)जान लिये जाने से कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं,परन्तु नाश को नहीं प्राप्त होते । विषयरूप कुपथ्य पाकर ये मुनियों के हृदयों में भी अंकुरित हो उठते हैं । तब बेचारे साधारण मनुष्य तो क्या चीज़ हैं । यदि श्री राम जी की कृपा से इस प्रकार का संयोग बन जाय, तो ये सब रोग नष्ट हो जायें । सद्गुरु रुपी वैद्य के वचन में विश्वास हो, विषयों की आशा न करे, यही संयम (परहेज़)है । श्री रघुनाथ जी की भक्ति संजीवनी जड़ी है । श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ दिया जाने वाला मधु आदि) है । इस प्रकार का संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जायें । नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते । हे गोसाई! मन को निरोग हुआ जानना चाहिये, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाय, उत्तम बुद्धिरुपी भूख नित-नयी बढ़ी रहे और विषयों की आशारूपी दुर्बलता मिट जाये । इस प्रकार सब रोगों से छूटकर जब मनुष्य निर्मल ज्ञान-रूपी जल में स्नान कर लेता है, तब उसके हृदय में राम भक्ति छा रहती है । शिवजी, ब्रह्मा जी, शुकदेव जी, नारद जी और सनकादि ब्रह्म विचार में परम निपुण जो मुनि हैं , हे पक्षिराज ! उन सब का मत यही है कि श्री राम जी के चरण कमलों में प्रेम करना चाहिये । श्रुति, पुराण और सभी ग्रन्थ कहते हैं कि श्री रघुनाथ जी की भक्ति के बिना सुख नहीं है । कछुए की पीठ पर भले ही बाल आयें, बाँझ का पुत्र भले ही किसी को मार डाले, आकाश में भले ही अनेकों प्रकार के फूल खिल उठें, परन्तु श्री हरि से विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता । मृगतृष्णा के जल को पीने से भले ही प्यास बुझ जाये, खरगोश के सिरपर भले ही सींग निकल आवें, अन्धकार भले ही सूर्य का नाश कर दे; परन्तु श्री राम से विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता । बर्फ से भले ही अग्नि प्रकट हो जाय (ये सब अनहोनी बाते चाहे हो जायँ), परन्तु श्री राम से विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में उन्नीस विषम पंक्तियाँ हैं । ''मानस रोग'' गिनाने के बाद, तुलसीदास जी कहते हैं कि भले ही कछुए की पीठ पर बाल उग आयें, बाँझ के पुत्र हो जाये, आकाश में फूल खिल उठें, मृगतृष्णा के जल को पीने से प्यास बुझ जाये, खरगोश के सिर पर सींग उग आवें, अन्धकार सूर्य का नाश कर दे, बर्फ से अग्नि प्रकट हो जाये, जल को मथने से घी उत्पन्न हो जाये, बालू को पेरने से तेल निकल आये—यह सब अनहोनी बातें चाहे हो जायें परन्तु श्री राम से विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता ।

मानस रोगों के उपचार के लिये, तुलसीदास जी ने एक रूपक बाँधा है :-

१. सद्‌गुरु मानो वैद्य है।

२. विषयों की आशा न करना, यही संयम (परहेज़)है।

३. रघुनाथ जी की भक्ति संजीवनी जड़ी है।

४. श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवा के साथ दिये जाने वाला मधु)है।

इस प्रकार सब रोगों से छूटकर जब मनुष्य निर्मल ज्ञान-रूपी जल में स्नान कर लेता है, तब उसके हृदय में राम भक्ति छा रहती है। मन को निरोग हुआ तब जानना चाहिए, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाये, उत्तम बुद्धि रुपी भूख नित्य नयी बढ़ी रहे है और विषयों की आशा रूपी दुर्बलता मिट जाये।

दो०— **बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।**
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ।। १२२ (क)।।
मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन ।। १२२ (ख)।।

भावार्थ— जल को मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाय, और बालू को पेरने से भले ही तेल निकल आये;परन्तु श्री हरि के भजन बिना भवसागर से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है। प्रभु मच्छर को ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचार कर चतुर पुरुष सब सन्देह त्याग कर श्री राम जी को ही भजते हैं।

श्लोक— **विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।**
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ।। १२२ (ग)।।

भावार्थ— मै आपसे भली-भाँति निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ। मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं, कि जो मनुष्य श्री हरि का भजन करते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसार सागर को सहज पार कर जाते हैं।

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरुपा ।।
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी ।।
प्रभु रघुपत तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही ।।
तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा ।।
पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि ।।
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा ।।
देखु गरुड निज हृदयँ बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी ।।
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन ।।

भावार्थ– हे नाथ ! मैंने श्री हरि का अनुपम चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से कहा। हे गरुड़ जी ! श्रुतियों का यही सिद्धान्त है कि सब काम भुलाकर (छोड़कर)श्री राम जी का भजन करना चाहिये। प्रभु जी रघुनाथ जी को छोड़कर और किसका सेवन (भजन)किया जाय, जिसका मुझ पर जैसे मूर्ख पर भी ममत्व (स्नेह) है। हे नाथ ! आप विज्ञानरुप हैं। आपको मोह नहीं है। आपने तो मुझ पर बड़ी कृपा की है, जो आपने मुझ से शुकदेव जी, सनकादि और शिवजी के मन को प्रिय लगने वाली अति पवित्र रामकथा पूछी। संसार में घड़ी भर का अथवा पलभर का एक बार भी सत्संग दुर्लभ है। हे गरुड़ जी ! अपने हृदय में विचार कर देखिये, क्या मैं भी श्री राम जी के भजन का अधिकारी हूँ ? पक्षियों में सबसे नीच और सब प्रकार से अपवित्र हूँ । परन्तु ऐसा होने पर भी प्रभु ने मुझ को सारे जगत को पवित्र करने वाला प्रसिद्ध कर दिया (अथवा प्रभु ने मुझ को जगत्प्रसिद्ध पावन कर दिया)।

दो०– आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन।। १२३ (क)।।

नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ।। १२३ (ख)।।

भावार्थ– यद्यपि मैं सब प्रकार से हीन (नीच)हूँ, तो भी आज मैं धन्य हूँ , अत्यन्त धन्य हूँ, जो श्री राम जी ने मुझे अपना ''निजजन'' जानकर संत-समागम दिया (आपसे मेरी भेंट करायी)।हे नाथ ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा, कुछ भी छिपा नहीं रक्खा। श्री रघुबीर के चरित्र समुद्र के समान हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है?''

सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना।।
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई।।
सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई।।
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ।।
साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी।।
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी।।
तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी।।
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी।।

भावार्थ– श्री राम चन्द्र जी के बहुत से गुणसमूहों का स्मरण करके सुजान भुशुण्ड जी बार-बार हर्षित हो रहे हैं।''जिनकी महिमा वेदों ने नेति-नेति कहकर गायी है; जिनका बल, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य)अतुलनीय है; जिन श्री रघुनाथ जी के चरण शिवजी और ब्रह्मा जी के द्वारा पूज्य हैं, उनकी मुझपर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है। किसी का ऐसा

स्वभाव कहीं न सुनता हूँ, न देखता हूँ। अतः हे पक्षिराज गरुड़ जी! मैं श्री रघुनाथ जी के समान किसे गिनूँ (समझूँ)। साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त (विरक्त), कवि, विद्वान, कर्म (रहस्य) के ज्ञाता, सन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पण्डित और विज्ञानी ये कोई भी मेरे स्वामी श्री राम जी का सेवन (भजन) किये बिना नहीं तर सकते। मैं उन्हीं श्री राम जी को बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनकी शरण जाने पर मुझ जैसे पापराशि भी शुद्ध (पापरहित) हो जाते हैं, उन अविनाशी श्री राम जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

दो०— जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि पर सदा रहउ अनुकूल ।। १२४ (क)।।

सुनि भसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह ।। १२४ (ख)।।

भावार्थ— जिनका नाम जन्म-मरण रोग की औषध और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरने वाला है, वे कृपालु श्री राम जी मुझ पर और आप पर सदा प्रसन्न रहें।" भुशुण्डि जी के मंगलमय वचन सुनकर और श्री राम जी के चरणों में उनका अतिशय प्रेम देखकर सन्देह से भली भाँति छूटे हुए गरुड़ जी प्रेमसहित वचन बोले।

मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी।।
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई।।
मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए।।
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा।।
पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी।।
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी।।
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।।
जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ।।
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहगबर।।

भावार्थ— "श्री रघुबीर के भक्ति-रस में सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्री राम जी के चरणों में मेरी नवीन प्रीति हो गई और माया से उत्पन्न सारी विपत्ति चली गई। मोह रूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिये आप जहाज़ हुए। हे नाथ! आपने मुझे बहुत प्रकार के सुख दिये (परम सुखी कर दिया)। मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकार के बदले में उपकार) नहीं हो सकता। मैं तो आपके चरणों की बार-बार वन्दना ही कर

सकता हूँ। आप पूर्ण काम हैं और श्री राम जी के प्रेमी हैं। हे तात ! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी, इन सब की क्रिया पराये हित के लिये ही होती है। संतों का हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है ; परन्तु उन्होंने (असली बात) कहना नहीं जाना। क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने से पिघलता है, और परम पवित्र संत दूसरे के दुःख से पिघल जाते हैं। मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपा से सब सन्देह चला गया। मुझे सदा अपना दास ही जानियेगा।'' (शिवजी कहते हैं—) ''हे उमा ! पक्षिराज गरुड़ जी बार-बार ऐसा कह रहे हैं।

टिप्पणी- ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ हैं। कागभुशुण्डि का उपदेश सुनकर, गरुड़ जी कृतार्थ हुए। वह कृतज्ञता ज्ञापन करके, वैकुण्ठ चले गये।

दो०— तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर ।। १२५ (क)।।

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ।। १२५ (ख)।।

भावार्थ— उनके (भुशुण्डि जी के)चरणों में प्रेम सहित सिर नवाकर और हृदय में श्री रघुबीर को धारण कर धीबुद्धि गरुड़ जी तब बैकुण्ठ को चले गये। हे गिरिजा ! संत-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत-समागम) श्री हरि की कृपा के बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं।

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा।।
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा।।
मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई।।
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई।।

भावार्थ— मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानों से सुनते ही भवपाश (संसार के बन्धन) छूट जाते हैं, और शरणागतों को (उनके इच्छानुसार फल देने वाले) कल्पवृक्ष तथा दया के समुद्र श्री राम जी के चरण कमलों में प्रेम उत्पन्न होता है। जो कान और मन लगाकर इस कथा को सुनते हैं, उनके मन, वचन, कर्म (शरीर)से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो

जाते हैं। तीर्थ यात्रा आदि बहुत से साधन ; योग, वैराग्य और ज्ञान में निपुणता , अनेकों प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत और दान ; अनेकों संयम, दम, जप, तप और यज्ञ; प्राणियों पर दया ; ब्राह्मण और गुरु की सेवा ; विद्या, विनय और विवेक की बड़ाई (आदि) जहाँ तक वेदों ने साधन बतलायें हैं – हे भवानी ! उन सबका फल श्री हरि की भक्ति ही है। किन्तु श्रुतियों में गायी हुई यह श्री रघुनाथ जी की भक्ति श्री राम जी की कृपा से किसी एक (विरले) में ही पायी जाती है।

दो०– मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास ।। १२६ ।।

भावार्थ– किन्तु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरन्तर सुनते हैं , वे बिना ही परिश्रम उस मुनि- दुर्लभ हरि भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता ।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता ।।
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना ।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा ।।
धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ।।
धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ।।
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ।।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ।।

भावार्थ– जिसका मन श्री राम जी के चरणों में अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला)है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है, वही पृथ्वी का भूषण, पण्डित और दानी है। वही धर्म परायण है और वही कुल का रक्षक है। जो छल छोड़कर श्री रघुबीर का भजन करता है,वही नीति में निपुण है, वही परम बुद्धिमान है।उसी ने वेदों में सिद्धान्त को भली भाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान तथा वही रणधीर है। वह देश धन्य है जहाँ श्री गंगा जी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पतिव्रत धर्म का पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है। और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता। वह धन धन्य है जिसकी पहली गति होती है (जो दान देने में व्यय होता है)।वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मण की अखण्ड भक्ति हो।

टिप्पणी– धन की तीन गतियाँ होती हैं —दान, भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच माना जाता है। जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति होती है।

दो०– सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ।। १२७ ।।

भावार्थ– हे उमा ! सुनो, वह कुल धन्य है, संसार भर के लिये पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्री रघुबीर परायण (अनन्य रामभक्त)विनम्र पुरुष उत्पन्न हों ।

मति अनुरुप कथा मैं भाषी । जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ।।
तव मन प्रीति देखि अधिकाई । तब मैं रघुपति कथा सुनाई ।।
यह न कहिअ सठही हठसीलहि । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ।।
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि । जो न भजहि सचराचर स्वामिहि ।।
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ।।
राम कथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी ।।
गुर पद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ।।
ता कहँ यह विसेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ।।

भावार्थ– मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह कथा कही, यद्यपि पहले इसको छिपाकर रक्खा था । जब तुम्हारे मन में प्रेम की अधिकता देखी तब मैंने श्री रघुनाथ जी की यह कथा तुमको सुनाई । यह कथा उनसे न कहनी चाहिये जो शठ (मूर्ख)हों, हठी स्वभाव के हों और श्री हरि की लीला को मन लगाकर न सुनते हों । लोभी, क्रोधी और कामी को, जो चराचर के स्वामी श्री राम जी को नहीं भजते, यह कथा नहीं कहनी चाहिये । ब्राह्मण के द्रोही को, यदि वह देवराज (इन्द्र)के समान ऐश्वर्यवान राजा भी हो, तब भी यह कथा कभी न सुनानी चाहिये । श्री राम जी की कथा के अधिकारी वे ही हैं जिनको सत्संगति अत्यन्त प्रिय है । जिनको गुरु के चरणों में प्रीति है, जो नीति परायण हैं और ब्राह्मण के सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं । और उसको तो यह कथा बहुत ही सुख देने वाली है, जिसको श्री रघुनाथ जी प्राणों के समान प्रिय हैं ।

दो०– राम चरन गति जो चह अथवा पद निर्बान ।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ।। १२८ ।।

भावार्थ– जो श्री राम जी के चरणों में प्रेम चाहता हो या मोक्ष पद चाहता हो, वह इस कथा रूपी अमृत को प्रेमपूर्वक अपने कानरूपी दोने से पिये ।

राम कथा गिरिजा मैं बरनी । कलि मल समनि मनोमल हरनी ।।
संसृति रोग सजीवन मूरी । राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ।।
एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भगति केर पंथाना ।।
अति हरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देइ एहिं मारग सोई ।।

मन कामना सिद्धि नर पावा । जे यह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥
सुनि सब कथा हृदय अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सुहाई ॥
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा । राम चरन उपजेउ नव नेहा ॥

भावार्थ– हे गिरिजे ! मैंने कलियुग के पापों का नाश करने वाली और मन के मल को दूर करने वाली रामकथा का वर्णन किया । यह रामकथा संसृति (जन्म-मरण) रूपी रोग के (नाश के)लिये संजीवनी जड़ी है, वेद और विद्वान पुरुष ऐसा कहते हैं । इसमें सात सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, जो श्री रघुनाथ जी की भक्ति को प्राप्त करने के मार्ग हैं । जिस पर श्री हरि की अत्यन्त कृपा होती है, वही इस मार्ग पर पैर रखता है । जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनोकामना की सिद्धि पा लेते हैं । जो इसे कहते सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संसाररूपी समुद्र को गौ के खुरसे बने हुए गड्ढे की भाँति पार कर जाते हैं ।'' सब कथा सुनकर श्री पार्वती जी के हृदय को बहुत ही प्रिय लगी और वे सुन्दर वाणी बोली–''स्वामी की कृपा से मेरा सन्देह जाता रहा और श्री राम जी के चरणों में नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया ।

टिप्पणी– भाग १, पृष्ठ ६३ पर बताया गया है कि राम-चरितमानस के चार वक्ता और श्रोता हैं । रामकथा सबसे पहले शिवजी ने पार्वती और अपने शिष्य कागभुशुण्डि को सुनाई ; काग भुशुण्डि ने याज्ञवल्क्य और गरुड़ को सुनाई ; याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को, गुरु नरहरिदास ने अपने शिष्य तुलसीदास को, और अन्त में तुलसीदास ने जनमानस को ।

कागभुशुण्डि-गरुड़ संवाद पृष्ठ ११२६ से १२१० तक चला है । इसके बाद शिवजी कागभुशुण्डि का स्थान ग्रहण कर लेते हैं । जो कथानक उन्होंने पृष्ठ१५४ पर आरम्भ किया था, उसका समापन ऊपर की चौपाई में किया है । शिवजी के कथा समापन करने पर, कथासूत्र को फिर याज्ञवल्क्य जी उठा लेते हैं । और इसी चौपाई में जो कथानक उन्होंनें भरद्वाज को सुनाना शुरु किया था (पृष्ठ ८६), उसका समापन करते हैं । और फिर इसी सूत्र को अगली चौपाई में तुलसीदास जी ने पकड़ा और अगले छन्द दोहा और श्लोक में उसका उपसंहार किया । इस प्रकार चारों वक्ता एक साथ एक के बाद एक, कथा का समापन करते हैं ।

दो०– मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ।। १२९ ।।

भावार्थ– हे विश्वनाथ ! आपकी कृपा से अब मैं कृतार्थ हो गयी । मुझमें दृढ़ रामभक्ति उत्पन्न हो गयी और मेरे सम्पूर्ण क्लेश बीत गये (नष्ट हो गये)। ''

यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपादन समन बिषादा ॥
भव भंजन गंजन संदेहा । जन रंजन सज्जन प्रिय एहा ॥

राम उपासक जे जग माहीं । एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं ॥
रघुपति कृपाँ जथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ॥
एहिं कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥
जासु पतित पावन बड़ बाना । गावहिं कबि श्रुति संत पुराना ॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई । राम भजें गति केहिं नहिं पाई ॥

भावार्थ– शंभु-उमा का यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करने वाला और शोक का नाश करने वाला है। यह जन्म-मरण का अन्त करने वाला, सन्देहों का नाश करने वाला, भक्तों को आनन्द देने वाला और संत पुरुषों को प्रिय है। जगत में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस रामकथा के समान कुछ भी प्रिय नहीं है। श्री रघुनाथ जी की कृपा से मैंने यह सुन्दर और पवित्र करने वाला चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है।'' (तुलसीदास जी कहते हैं—) पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस, श्री राम जी का स्मरण करना, श्री राम जी का ही गुण गाना और निरन्तर श्री राम जी के ही गुणसमूहों को सुनना चाहिये। पतितों को पवित्र करना जिनका महान (प्रसिद्ध) बाना है-ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं -रे मन ! कुटिलता त्यागकर उन्हीं को भज। श्री राम को भजने से किसने परम गति नहीं पायी ?

छं०–पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना ।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥ १ ॥
रघुबंश भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै ।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै ॥ २ ॥
सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो ।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को ॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ– अरे मूर्ख मन ! सुन। पतितों को भी पावन करने वाले श्री राम को भजकर किसने परम गति नहीं पायी? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत-से दुष्टों को उन्होंने तार दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, स्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यन्त

पापरूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिसका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्री राम जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो मनुष्य रघुवंश के भूषन श्री राम जी का यह चरित्र कहते हैं, सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुग के पाप और मन के मल को धोकर बिना ही परिश्रम श्री राम जी के परम धाम को चले जाते हैं। (अधिक क्या)जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयों को भी मनोहर जानकर (अथवा रामायण की चौपाइयों को श्रेष्ठ पंच [कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सच्चा निर्णायक] जानकर उनको)हृदय में धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न विकारों को श्री राम जी हरण कर लेते हैं। (अर्थात् सारे राम चरित्र की तो बात ही क्या, जो पाँच-सात चौपाइयों को भी समझकर उनका अर्थ हृदय में धारण कर लेते हैं, उनके भी अविद्या जनित सारे क्लेश श्री रामचन्द्र जी हर लेते हैं)।(परम) सुन्दर, सुजान और कृपानिधान तथा जो अनाथों पर प्रेम करते हैं, ऐसे एक श्री रामचन्द्र जी ही हैं। इनके समान निष्काम (निःस्वार्थ) हित करने वाला(सुहृद)और मोक्ष देने वाला दूसरा कौन हैं? जिनकी लेशमात्र कृपा से मन्दबुद्धि तुलसीदास ने भी परम शान्ति प्राप्त कर ली, उन श्री राम जी के समान प्रभु कहीं भी नहीं है।

टिप्पणी— ऊपर के दूसरे छन्द का अन्तिम पद इस प्रकार है :-

"*सत पंच चौपाई मनोहर* जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै।।"

इस पद की रेखांकित अर्धाली के सीधे-साधे अर्थ ऊपर दिये जा चुके हैं। परन्तु समीक्षकों ने इसके विभिन्न प्रकार के गूढ़ अर्थ निकाले हैं :

१. रामचरित मानस में से कोई भी पांच सत्यवादी (सत)चौपाइयों को यदि मनुष्य आत्मसाध करले तो उसके अविद्याजनित पाँच विकार नष्ट हो जायेंगे। यह विकार इस प्रकार हैं :-

(१) तम = अन्धकार

(२) मोह = अहंकार—अपनी देह को अपना आपा समझ बैठना।

(३) महामोह = विषयमार्ग से देह की वासनाओं को तृप्त करने की इच्छा।

(४) तामिस्र = भोगेच्छा के प्रतिघात से उपजे क्रोधादी विकार।

(५) अन्धतामिस्र = भोग के साधन छूटने पर समझना की मैं मर गया।

२. संस्कृत में सूक्ति है- "अंकानां वामतो गतिः"। इस सूक्ति के अनुसार, सत पंच में पाँच पहले रक्खा जायेगा, और सौ बाद में अर्थात् ५१००। मानस में ५१०० चौपाई हैं और बीच बीच में १९९० अन्य दोहे और छन्द। अतएव, समस्त मानस का पाठ करने से पाँचों विकार नष्ट हो जाते हैं।

३. पंच तीन प्रकार के होते हैं-सतपंच, पंच और असत् पंच । सतपंच नियुक्त होने पर, चाहे अपना पुत्र, पिता, बन्धु, मित्र ही क्यों न हो और दूसरा चाहे शत्रु ही क्यों न हो, वे यथार्थ ही कहते हैं । पंच वह हैं जो समझकर तो कहते हैं, पर अपने मित्र आदि के पक्ष में अधिक कहते हैं । और असत् पंच वे हैं जो सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा करते हैं । यह दृष्टान्त हुआ, अब दार्ष्टान्त सुनिये । ग्रन्थ तीन प्रकार के होते हैं । एक शुद्ध सात्विक, जहाँ केवल परमेश्वर रामचन्द्र जी प्रतिपाद्य हों और उनके आश्रय सात्विक देवता, कर्म-धर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान, ध्यान, समाधि, भक्ति का शुद्ध वर्णन हो । अर्थात् केवल परमेश्वर की प्राप्ति हेतु इनका वर्णन हो, ऐसा ग्रन्थ सत्ग्रन्थ है । जहाँ इन सब पदार्थों का वर्णन स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिये है, वे राजस ग्रन्थ हैं । जहाँ इन सत्पदार्थों का अर्थ, धर्म, काम की प्राप्ति के लिए वर्णन है, वह असत् ग्रन्थ हैं । गोसाई जी कहते हैं कि यहाँ जो चौपाई- छन्द बद्ध प्रबन्ध ग्रन्थ मैंने लिखा है, वह मनोहर है और सत्यवादी है । जीव और माया का जो झगड़ा अनादि काल से चला आता है, उसे चुकाने के लिये यह सत पंच है । प्रयोजन यह है कि यह ग्रन्थ निवृत्ति परख है । अतः प्रवृत्ति की ओर से जब माया विरोध करेगी, तब पंचायत होगी ही ।

दो०— मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ।।१३०(क)।।
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।। १३० (ख)।।

भावार्थ— हे श्री रघुबीर ! मेरे समान कोई दीन नहीं है । और आपके समान कोई दीनों का हित करने वाला नहीं है । ऐसा विचार कर, हे रघुवंशमणि मेरे जन्म-मरण के दुःख का हरण कर लीजिये । जैसे कामी पुरुष को स्त्री प्रिय होती है, और लोभी को धन प्रिय होता है, वैसे ही रघुनाथ जी आप मुझे निरन्तर प्रिय लगते रहें ।

श्लोक— यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम् ।

मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ।। १ ।।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवः ।।२।।

भावार्थ- श्रेष्ठ कवि भगवान श्री शंकर जी ने पहले दुर्गम रामायण की, श्री राम जी के चरण कमलों में नित्य-निरंतर (अनन्य)भक्ति प्राप्त होने के लिये, रचना की थी, उस रामायण को श्री रघुनाथ जी के नाम से निरत मानकर (ओत-प्रोत जानकर)अपने अंतःकरण के अंधकार को मिटाने के लिये, तुलसीदास ने इसे मानस के रुप में भाषाबद्ध किया। यह श्री रामचरित मानस पुण्यरूप, पापों को हरण करने वाली, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्ति को देने वाली, माया, मोह और मल का नाश करने वाली, परम निर्मल, प्रेम- रुपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस मानस में गोता लगाते हैं, वे संसार- रुपी सूर्य की अति प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते।

टिप्पणी- रामचरितमानस वकार से प्रारम्भ (वर्णानाम्) और अंत (मानव:) होती है। उसके उपक्रम और उपसंहार में कोई विशेष अंतर नहीं है। दोनों में लगभग एक ही भाव व्यक्त किये गये हैं। मोटी तौर पर अन्तर इस प्रकार है :--

उपक्रम	**उपसंहार**
१. बालकाण्ड के श्लोक चार में आदि कवि महर्षि वाल्मीकि को "कवीश्वर" कहा गया है।	१ उत्तरकाण्ड के अंतिम श्लोक एक में शम्भु भगवान को रामायण का आदि कवि बताया गया है।
२. बालकाण्ड के श्लोक सात में तुलसीदास जी कहते हैं कि उन्होंने रामायण "स्वान्त:सुखाय" लिखी है।	२. अन्तिम श्लोक एक के दूसरे पद में तुलसीदास जी कहते हैं कि उन्होंने रामायण को "अन्तःकरण के अंधकार को मिटाने के लिए" लिखा है।

इति "रामचरित मानस" समाप्तम्

लोकोक्तियाँ

पात्र - परिचय